

श्रीनरसिंहपुराण

पहला अध्याय

प्रयागमें ऋषियोंका समागम; सुतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न;
सुतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन

॥ श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १
तमहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्शं दिव्यसिंहं नमोऽस्तु ते ॥ २
पान्तु यो नरसिंहस्य नखलाङ्गुलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रामुककर्मधारुणाः ॥ ३
हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिशारण्यवासिनः ॥ ४
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ५
धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ६
कौमारपर्वते ये च ये च पम्पानिवासिनः ।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽपलाः ॥ ७
माघमासे प्रयागं तु स्नातुं तीर्थं समागताः ।
तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ८

अन्तर्दामी भगवान् नारायण (शंकृष्ण) उनके सखा
नरसिंह नर (अर्जुन) तथा इनकी लीला प्रकट करनेवाली
सरस्वती देवीको नमस्कार करनेके पक्षान् 'जय' (इतिहास-
पुराण)-का पाठ करे ॥ १ ॥

दिव्य सिंह! उपाये हुए सुवर्णके समान पीले केशोंके
भीतर प्रज्वलित अग्निकों भीति आपके नेत्र देदोप्यमान हो
रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक
कठोर है, इस प्रकार अमृत प्रभावशाली आप परमेश्वरको
मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके
अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वलःस्थलरूपी
खेतकी रक्तमयी कीचड़के लगनेसे लाल हो गये हैं,
आप लोगोंको रक्षा करें ॥ २-३ ॥

एक समय हिमालयकी घाटियोंमें रहनेवाले, वेदोंके
पारगामी एवं त्रिकालवेत्ता समस्त महात्मा मुनिगण
नैमिशारण्य, अर्बुदारण्य और पुष्करारण्यके निवासी मुनि,
महेन्द्र पर्वत और विन्ध्यगिरिके निवासी ऋषि, धर्मारण्य,
दण्डकारण्य, शैल और कुरुक्षेत्रमें वास करनेवाले मुनि
तथा कुमार पर्वत एवं पम्पानगरके निवासी ऋषि-ये तथा
अन्य भी बहुत-से जुड़ हृदयवाले महर्षिगण अपने शिष्योंके
साथ माघके महीनेमें स्नान करनेके लिये प्रयाग-तीर्थमें
आये ॥ ४-७ ॥

वहाँपर यथोचित रीतिसे स्नान और जप आदि करके

नत्वा तु माधवं देवं कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
 दृष्ट्वा तत्र भरद्वाजं पुण्यतीर्थनिवासिनम् ॥ ९
 तं पूजयित्वा विधिवत्तेनैव च सुपूजिताः ।
 आसनेषु विचित्रेषु वृष्यादिषु यथाक्रमम् ॥ १०
 भरद्वाजेन दत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः ।
 कृष्णाश्रिताः कथाः सर्वे परस्परमवाबुधन् ॥ ११
 कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥ १२
 व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः ।
 तान् प्रणम्य यथान्यायं स च तैश्चाभिपूजितः ॥ १३
 उपविष्टो यथायोग्यं भरद्वाजमतेन सः ।
 व्यासशिष्यं सुखासीनं ततस्तं लोमहर्षणम् ।
 स पप्रच्छ भरद्वाजो मुनीनामग्रतस्तदा ॥ १४

भरद्वाज उवाच

शौनकस्य महासत्रे वाराहाख्या तु संहिता ।
 त्वत्तः श्रुता पुरा सूत एतैस्माभिरेव च ॥ १५
 साम्प्रतं नारसिंहाख्यां त्वत्तः पौराणसंहिताम् ।
 श्रोतुमिच्छाम्यहं सूत श्रोतुकामा इमे स्थिताः ॥ १६
 अतस्त्वां परिपृच्छामि प्रश्नमेतं महामुने ।
 ऋषीणामग्रतः सूत प्रातर्होषां महात्मनाम् ॥ १७
 कुत एतत् समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते ।
 कस्मिन् वा लयमध्येति जगदेतच्चराचरम् ॥ १८
 किं प्रमाणं च वै भूमेर्नृसिंहः केन तुष्यति ।
 कर्मणा तु महाभाग तन्मे ब्रूहि महामते ॥ १९
 कथं च सृष्टेरादिः स्यादवसानं कथं भवेत् ।
 कथं युगस्य गणना किं वा स्यात्तु चतुर्युगम् ॥ २०
 को वा विशेषस्तेष्वत्र का वावस्था कलौ युगे ।
 कथमाराध्यते देवो नरसिंहोऽप्यमानुषैः ॥ २१
 क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पुण्याः शिलोच्चयाः ।
 नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराः शुभाः ॥ २२

उन्होंने भगवान् वेणीमाधवको नमस्कार किया; फिर पितरोंका तर्पण करके उस पावन तीर्थके निवासी भरद्वाज मुनिका दर्शन किया। वहाँ उन ऋषियोंने भरद्वाजजीका भलीभाँति पूजन किया और स्वयं भी भरद्वाजजीके द्वारा पूजित हुए। तत्पश्चात् वे सभी तपोधन भरद्वाज मुनिके दिये हुए वृषी आदि विचित्र आसनोंपर विराजमान हुए और परस्पर भगवान् श्रोकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे। उन शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंकी कथा हो ही रही थी कि व्यासजीके शिष्य लोमहर्षण नामक सूतजी वहाँ आ पहुँचे। वे अत्यन्त तेजस्वी, परम बुद्धिमान् और पुराणोंके विद्वान् थे। सूतजीने वहाँ बैठे हुए सभी ऋषियोंकी यथोचित विधिसे प्रणाम किया और स्वयं भी उनके द्वारा सम्मानित हुए। फिर भरद्वाजजीकी अनुमतिसे वे यथायोग्य आसनपर बैठे। इस प्रकार जब वे सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उस समय उन व्यासशिष्य लोमहर्षणजीसे भरद्वाजजीने सभी मुनियोंकि समक्ष यह प्रश्न किया ॥ ८—१४ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! पूर्वकालमें शौनकजीके महान् यज्ञमें हम सभी लोगोंने आपसे 'वाराह-संहिता' सुनी थी। अब हम 'नरसिंहपुराण' की संहिता सुनना चाहते हैं तथा वे ऋषि लोग भी इतने ही सुननेके लिये वहाँ उपस्थित हैं। अतः महामुने सूतजी! आज प्रातःकाल इन महत्त्वा मुनियोंके समक्ष हम आपसे ये प्रश्न पूछते हैं— 'यह चरचर जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है? कौन इसकी रक्षा करता है? अथवा किसमें इसका लय होता है? महाभाग! इस भूमिका प्रमाण क्या है तथा महामते! भगवान् नृसिंह किस कर्मसे संतुष्ट होते हैं—यह हमें बताइये। सृष्टिका आरम्भ कैसे हुआ? उसका अवसान (अन्त) किस प्रकार होता है? युगोंकी गणना कैसे होती है? चतुर्युगका स्वरूप क्या है? उन चारों युगोंमें क्या अन्तर होता है? कलियुगमें लोगोंकी क्या अवस्था होती है? तथा देवतालोक भगवान् नरसिंहकी किस प्रकार आराधना करते हैं? पुण्यक्षेत्र कौन-कौन हैं? पावन पर्वत कौन-से हैं? और मनुष्योंके पापोंकी हर लेनेवाली नरम पावन एवं उत्तम नदियाँ कौन-कौन-सी हैं?

देवादीनां कथं सृष्टिर्मनोमन्वन्तरस्य तु ।
तथा विद्याधरादीनां सृष्टिरादौ कथं भवेत् ॥ २३
यज्वानः के च राजानः के च सिद्धिं परां गताः ।
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥ २४

सुत उवाच

व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः ।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं नारसिंहकम् ॥ २५
पाराशर्यं परमपुरुषं विश्वदेवैकद्योनिं
विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यम् ।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धतेजो विशालं
वेदव्यासं विगतशमलं सर्वदाहं नमामि ॥ २६
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ।
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि वासुदेवकथामिमाम् ॥ २७
सुनिर्णीतो महान् प्रश्नस्त्वया यः परिकीर्तितः ।
विष्णुप्रसादेन विना वक्तुं केनापि शक्यते ॥ २८
तथापि नरसिंहस्य प्रसादादेव तेऽधुना ।
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं भारद्वाज भृणुष्व मे ॥ २९
भृण्वन्तु मुनयः सर्वे सशिष्यास्तत्र ये स्थिताः ।
पुराणं नरसिंहस्य प्रवक्ष्यामि यथातथा ॥ ३०
नारायणादिदं सर्वं समुत्पन्नं चराचरम् ।
तेनैव पाल्यते सर्वं नरसिंहादिमूर्तिभिः ॥ ३१
तथैव लीयते चान्ते हरी न्योतिःस्वरूपिणि ।
यथैव देवः सृजति तथा वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ३२
पुराणानां हि सर्वेषामयं साधारणः स्मृतः ।
श्लोको यस्तं मुने श्रुत्वा निःशेषं त्वं ततः शृणु ॥ ३३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ३४
आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनुसमासतः ॥ ३५

देवताओंकी सृष्टि कैसे हुई? मनु, मन्वन्तर एवं विद्याधर आदिकी सृष्टि किस प्रकार होती है? कौन-कौन राजा यज्ञ करनेवाले हुए हैं और किस-किसने परम उत्तम सिद्धि प्राप्त की है?' महाभाग! ये सारी बातें आप क्रमशः बताइये ॥ २५—२४ ॥

सुतजी बोले—तपोधनो! मैं जिन गुरुदेव व्यासजीके प्रसादसे पुराणोंका ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके आपलोगोंसे नरसिंहपुराणकी कथा कहना आरम्भ करता हूँ। जो समस्त देवताओंके एकमात्र कारण और वेदों तथा उनके छहों अङ्गोंद्वारा जाननेयोग्य परम पुरुष विष्णुके स्वरूप हैं; जो विद्यावान्, विमल बुद्धिदाता, नित्य ज्ञान, विषयकामनाशून्य और पापरहित हैं, उन विशुद्ध तेजोमय महात्मा पराशरनन्दन वेदव्यासजीको मैं सदा प्रणम करता हूँ। उन अमित तेजस्वी भगवान् व्यासजीको नमस्कार है, जिनकी कृपासे मैं भगवान् वासुदेवकी इस कथाको कह सकूँगा। मुनिगण! आपलोगोंने भलीभौति विचार करके मुझसे जो महान् प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर भगवान् विष्णुकी कृपा हुए बिना कौन बतला सकता है? तथापि भरद्वाजजी! भगवान् नरसिंहकी कृपाके बलसे ही आपके प्रश्नोंके उत्तरमें अत्यन्त पवित्र नरसिंहपुराणकी कथा आरम्भ करता हूँ। आप ध्यानसे सुनें। अपने शिष्योंके साथ जो-जो मुनि यहाँ उपस्थित हैं, वे सब लोग भी सावधान होकर सुनें। मैं सभीको यथावत् रूपसे नरसिंह-पुराणकी कथा सुनाता हूँ ॥ २५—३० ॥

यह समस्त चराचर जगत् भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ और वे ही नरसिंहादि रूपोंसे सबका पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तमें यह जगत् उनकी ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णुमें लीन हो जाता है। भगवान् जिस प्रकार सृष्टि करते हैं, उसे मैं बतलाता हूँ, आप सुनें। सृष्टिकी कथा पुरुषोंमें ही विस्तारके साथ वर्णित है, अतः पुराणोंका लक्षण बतानेके लिये यह एक श्लोक साधारणतया सभी पुराणोंमें कहा गया है। मुने! इस श्लोकको पहले सुनकर फिर सारी बातें सुनियेगा। यह श्लोक इस प्रकार है—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन्हीं पाँच लक्षणोंसे युक्त 'पुराण' होता है। आदिसर्ग, अनुसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन सबका मैं क्रमशः संक्षिप्तरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ ३१—३५ ॥

आदिसर्गो महांस्तावत् कथयिष्यामि वै द्विजाः ।
यस्मादारभ्य देवानां राज्ञां चरितमेव च ॥ ३६

ज्ञायते सरहस्यं च परमात्मा सनातनः ।
प्राक्सृष्टेः प्रलयादूर्ध्वं नासीत् किञ्चिद्द्विजोत्तम ॥ ३७

ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिष्मत्सर्वकारणम् ।
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्गुणं नित्यनिर्मलम् ॥ ३८

आनन्दसागरं स्वच्छं यं काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ।
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् ॥ ३९

सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वाऽसौ ज्ञातृनायकः ।
अन्तर्लीनं विकारं च तत्त्वद्रूपपञ्चक्रमे ॥ ४०

तस्मात् प्रधानमुद्धृतं ततश्चापि महानभूत् ।
सात्त्विको राजसञ्ज्ञैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥ ४१

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥ ४२

यथा प्रधानं हि महान् महता स तथाऽऽवृतः ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥ ४३

ससर्जं शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ ४४

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्जं ह ।
वतवानभ्वद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ ४५

आकाशं शब्दतन्मात्रं स्पर्शमात्रं तथाऽऽवृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्जं ह ॥ ४६

ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रं तु वै वायु रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ४७

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्जं ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि तु ॥ ४८

द्विजगण! आदिसर्गं महान् है, अतः पहले मैं उसीका वर्णन करता हूँ। यहाँसे सृष्टिका वर्णन आरम्भ करनेपर देवताओं और राजाओंके चरित्रोंका तथा सनातन परमात्माके तत्त्वका भी रहस्यसहित ज्ञान हो जाता है। द्विजोत्तम! सृष्टिके पहले महाप्रलय होनेके बाद (परब्रह्मके सिवा) कुछ भी शेष नहीं था। उस समय एकमात्र 'ब्रह्म' नामक तत्त्व ही विद्यमान था, जो परम प्रकाशमय और सबका कारण है। वह नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण एवं सदा ही दोषरहित है। मुमुक्षु पुरुष विशुद्ध आनन्द-महासागर परमेश्वरकी अभिलाषा किया करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा और अजय (अविकारी) है। सृष्टि-रचनाका समय आनेपर उसी ज्ञानीश्वर परब्रह्मने जगत्की अपनेमें लीन जानकर पुनः उसकी सृष्टि आरम्भ की ॥ ३६—४० ॥

उस ब्रह्मसे प्रधान (मूलप्रकृति) का आविर्भाव हुआ। प्रधानसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ। सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे महत्तत्त्व तीन प्रकारका है। महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप (तामस)—इन तीन भेदोंसे मुक्त अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत्त है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी व्याप्त है। तदनन्तर 'भूतादि' नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्दतन्मात्राकी सृष्टि की और उससे 'शब्द' गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। तब उस भूतादिने शब्द गुणवाले आकाशको आवृत्त किया। आकाशने भी विकृत होकर स्पर्शतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे वतवान् वायुको उत्पत्ति हुई। वायुका गुण स्पर्श माना गया है। फिर शब्द गुणवाले अवकाशने 'स्पर्श' गुणवाले वायुको आवृत्त किया। तत्पश्चात् वायुने विकृत होकर रूपतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे ज्योतिर्मय अग्रिका प्रादुर्भाव हुआ। ज्योतिका गुण 'रूप' कहा गया है। फिर स्पर्शतन्मात्रारूप वायुने रूपतन्मात्रावाले तेजको आवृत्त किया। तब तेजने विकृत होकर रस-तन्मात्राकी सृष्टि की। उससे रस गुणवाला जल प्रकट हुआ।

रसमात्राणि चाभ्यासि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाभ्यासि गन्धमात्रं समर्जिरे ॥ ४९

तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका ।
संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धगुणो मतः ॥ ५०

तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशोपराः ॥ ५१

भूततन्मात्रसर्गोऽयमहंकारात् तामसात् ।
कीर्तितस्ते समासेन भरद्वाज मया तव ॥ ५२

तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनश्चात्र कीर्तितं तत्र चिन्तकैः ॥ ५३

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चात्र पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावन ॥ ५४

श्रवणे च दृशी जिह्वा नासिका त्यक् च पञ्चमी ।
शब्दादिज्ञानसिद्धयर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै ॥ ५५

पायूपस्थे हस्तपादौ वाग् भरद्वाज पञ्चमी ।
विसर्गानन्दशिल्पी च गत्युक्ती कर्म तत्स्मृतम् ॥ ५६

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ।
शब्दादिभिर्गुणैर्विप्र संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥ ५७

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ।
नाशक्नुवन् प्रजां स्वष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ५८

समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयात् ।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥ ५९

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्तास्त्वण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ ६०

रूप गुणवाले तेजने रस गुणवाले जलको आवृण किया। तब जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राको सृष्टि की। उससे यह पृथिवी उत्पन्न हुई जो आकाशादि सभी भूतोंके गुणोंसे युक्त होनेके कारण उनसे अधिक गुणवाली है। गन्धतन्मात्रारूप पार्थिवतत्त्वसे ही स्पृह पिण्डकी उत्पत्ति होती है। पृथिवीका गुण 'गन्ध' है। उन-उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्राएँ हैं अर्थात् केवल उनके गुण स्पृह आदि ही हैं। इसलिये ये तन्मात्रा (गुण) रूप ही कहे गये हैं। तन्मात्राएँ अविशेष कहाँ गयी हैं; क्योंकि उनमें 'अमुक तन्मात्रा आकाशकी है और अमुक वायुकी' इसका ज्ञान करानेवाला कोई विशेष भेद (अन्तर) नहीं होता। किन्तु उन तन्मात्राओंसे प्रकट हुए आकाशादि भूत क्रमशः विशेष (भेद)-युक्त होते हैं। इसलिये उनकी 'विशेष' संज्ञा है। भरद्वाजजी! तन्मस अहंकारसे होनेवाली यह पञ्चभूतों और तन्मात्राओंकी सृष्टि मैंने आपसे छोटेमें कहा दी ॥ ४९-५२ ॥

सृष्टि-तत्त्वपर विचार करनेवाले सिद्धांतोंने इन्द्रियोंको तैजस अहंकारसे उत्पन्न कृतत्वाया है और उनके अभिमानी रस देवताओं तथा ग्धारहवे मनको वैकारिक अहंकारसे उत्पन्न कहा है। कुलको यांत्रिक करनेवाले भरद्वाजजी! इन इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। अथ मैं उन सम्पूर्ण इन्द्रियों तथा उनके कर्मोंका वर्णन कर रहा हूँ। कान, नेत्र, जिह्वा, नाक और पाँचवीं लघु—ये पाँच 'ज्ञानेन्द्रियाँ' कहाँ गये हैं, जो शब्द आदि विषयोंका ज्ञान करनेके लिये हैं। तथा वायु (गुदा), उपस्थ (लिंग), हाथ, पाँव और वाक्-इन्द्रिय—ये 'कर्मेन्द्रियाँ' कहलाती हैं। विसर्ग (मल-त्याग), आनन्द (मैभुवजनित सुख), शिल्प (हाथकी कला), गमन और खेलना—ये ही क्रमशः इन कर्मेन्द्रियोंके पाँच कर्म कहे गये हैं ॥ ५३-५६ ॥

विप्र! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँच भूत क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन गुणोंसे उत्पन्नकर युक्त हैं, अर्थात् आकाशमें एकमात्र शब्द गुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं, तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं, इसी प्रकार जलमें चार और पृथिवीमें पाँच गुण हैं। ये पञ्चभूत अलग-अलग भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त हैं। अतः परस्पर पूर्णतया मिले बिना ये सृष्टि-रचना नहीं कर सके। तब एक ही संघातको उत्पन्न करना जिनका लक्ष्य है, इन महत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर एक-दूसरेका आश्रय ले,

तत्क्रमेण विबुद्धं तु जलबुद्बुदवत् स्थितम् ।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेऽयम् ॥ ६१

प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ॥ ६२

ब्रह्मस्वरूपमास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ।
मैरुत्त्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभूवन् महात्मनः ॥ ६३

अत्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ६४

रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः ।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टौ प्रवर्तते ॥ ६५
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥ ६६

ब्राह्मेण रूपेण सृजत्यनन्तो
जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति
भूत्वाथ रुद्रः प्रकरोति नाशम् ॥ ६७

सर्वथा एकरूपताको प्राप्त हो, प्रधानतत्त्वके अनुग्रहसे एक अण्डकी उत्पत्ति की। वह अण्ड क्रमशः बढ़ा होकर जलके ऊपर बुलबुलेके समान स्थित हुआ। महाबुद्धे। समस्त भूतोंसे प्रकट हो जलपर स्थित हुआ। वह महान् प्राकृत अण्ड ब्राह्मा (हिरण्यगर्भ)-रूप भगवान् विष्णुका अत्यन्त उत्तम आधार हुआ। उसमें वे अण्डतत्त्वस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही हिरण्यगर्भरूपसे विराजमान हुए। उस समय सुमेरु पर्वत उन महात्मा भगवान् हिरण्यगर्भका उलब (गर्भको ढँकनेवाली झिल्ली) था। अन्यान्य पर्वत जरायुज (गर्भोत्पन्न) थे और समुद्र ही गर्भरूपके जल थे ॥ ६१-६३ ॥

पर्वत, द्वीप, समुद्र और ग्रह-ताराओंसहित समस्त लोक तथा देवता, असुर और मनुष्यादि प्राणी सभी उस अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। परमेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही रजोगुणसे युक्त ब्राह्माका स्वरूप धारणकर संसारको सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। जबतक कल्पकी सृष्टि रहती है, तबतक वे ही नरसिंहादिरूपसे प्रत्येक युगमें अपने रथे हुए इस जगत्की रक्षा करते हैं और कल्पान्तमें रुद्ररूपसे इसका मोहार कर लेते हैं। भगवान् अनन्त स्वयं ही ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, फिर इसके पालनकी इच्छासे रामादि अवतार धारणकर इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें रुद्ररूप होकर समस्त जगत्का नाश कर देते हैं ॥ ६४-६७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्गविरूपेण' नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सर्गविरूपेण' विषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा आदिकी आयु और कालका स्वरूप

मूल उक्तम्

ब्रह्मा भूत्वा जगत्सृष्टौ नरसिंहः प्रवर्तते ।
यथा ते कथयिष्यामि भरद्वाज निबोध मे ॥ १
नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मलोकपितामहः ।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन् नित्योऽसावुपचारतः ॥ २
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।
तत्पराख्यं तदर्थं च परार्धमभिधीयते ॥ ३

सूतजी कहते हैं—भरद्वाज! भगवान् नरसिंह जिस प्रकार ब्रह्मा होकर जगत्की सृष्टिके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिधे। विद्वन्! 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा नित्य—सनातन पुरुष हैं, तथापि वे 'उत्पन्न हुए हैं'—ऐसा उपचारसे कहा जाता है। उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी बतानी जाती है। उस सौ वर्षका नाम 'पर' है। उसका आधा 'परार्ध' कहलाता है। निष्पाप

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ ।
 तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम् ॥ ४
 अन्येषां चैव भूतानां चरणामचराश्च ये ।
 भूभृभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम ॥ ५
 संख्याज्ञानं च ते वच्मि मनुष्याणां निबोध मे ।
 अष्टादश निमेषास्तु काष्ठिका परिकीर्तिता ॥ ६
 काष्ठास्त्रिंशत्कला त्रेया कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकम् ।
 त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम् ॥ ७
 अहोरात्राणि तावन्ति मासपक्षद्वयात्मकः ।
 तैः षड्भिरयनं मासैर्द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ ८
 अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ।
 अयनद्वितयं वर्षं मर्त्यानामिह कीर्तितम् ॥ ९
 नृणां मासः पितॄणां तु अहोरात्रमुदाहृतम् ।
 वस्वादीनामहोरात्रं मानुषो यत्सरः स्मृतः ॥ १०
 दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु युगं त्रेतादिसंज्ञितम् ।
 चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥ ११
 चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
 दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः ॥ १२
 तत्प्रमाणीः शतैः संध्या पूर्वा तत्र विधीयते ।
 संध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ॥ १३
 संध्यासंध्यांशयोर्मध्ये यः कालो वर्तते द्विज ।
 युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञकः ॥ १४
 कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
 प्रोच्यते तत्सहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसं द्विज ॥ १५
 ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश ।
 भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ॥ १६
 समर्षयस्तु शकोऽथ मनुस्तत्सूनवोऽपि ये ।
 एककालं हि सृज्यन्ते संहियन्ते च पूर्ववत् ॥ १७
 चतुर्युगानां संख्या च साधिका ह्येकसमतिः ।
 मन्वन्तरं मनोः कालः शकादीनामपि द्विज ॥ १८

महर्षे। साधुशिरोमणे! मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके जिस कालस्वरूपका वर्णन किया था, उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा दूसरे भी जो पृथ्वी, पर्वत और समुद्र आदि पदार्थ एवं चरचर जीव हैं, उनकी आयुका परिमाण नियत किया जाता है। अब मैं आपसे मनुष्योंकी 'काल-गणना' का ज्ञान बता रहा हूँ, सुनिये ॥ १—५ ॥

अठारह निमेषोंकी एक 'काष्ठा' कही गयी है, तीस काष्ठाओंकी एक 'कला' समझनी चाहिये तथा तीस कलाओंका एक 'मुहूर्त' होता है। तीस मुहूर्तोंका एक मानव 'दिन-रात' माना गया है। उतने ही (तीस ही) दिन-रात मिलकर एक 'मास' होता है। इसमें दो पक्ष होते हैं। छः महीनोंका एक 'अयन' होता है। अयन दो हैं—'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण'। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन। दो अयन मिलकर मनुष्योंका एक 'वर्ष' कहा गया है। मनुष्योंका एक मास पितरोंका एक दिन-रात बताया गया है और मनुष्योंका एक वर्ष वसु आदि देवताओंका एक दिन-रात कहा गया है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका त्रेता आदि नामक चतुर्युग होता है। उसका विभाग आपलोग मुझसे समझ लें ॥ ६—११ ॥

पुराण-तत्त्ववेत्ताओंने कृत आदि युगोंका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाया है। ब्रह्मन्! प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सी वर्षोंकी 'संध्या' कही गयी है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले 'संध्यांश' होते हैं। विप्र! संध्या और संध्यांशके बीचका जो काल है, उसे सत्ययुग और त्रेता आदि नामोंसे प्रसिद्ध युग समझना चाहिये। 'सत्ययुग', 'त्रेता', 'द्वापर' और 'कलि'—ये चार युग मिलकर 'चतुर्युग' कहलाते हैं। द्विज! एक हजार चतुर्युग मिलकर 'ब्रह्माका एक दिन' होता है। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सुनिये। सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनु-पुत्र—ये पूर्व कल्पानुसार एक ही समय उत्पन्न किये जाते हैं तथा इनका संहार भी एक ही साथ होता है। ब्रह्मन्! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक काल एक 'मन्वन्तर' कहलाता है। यही मनु तथा इन्द्रादि देवोंका काल है।

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः ।
 द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ ११
 त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।
 सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥ २०
 विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।
 मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषैर्वत्सैर्द्विज ॥ २१
 चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ।
 विश्वस्यादौ सुपनसा सृष्टा देवास्तथा पितृन् ॥ २२
 गन्धर्वान् राक्षसान् यक्षान् पिशाचान् गृह्णांस्तथा ।
 ऋषीन् विद्याधरांश्चैव मनुष्यांश्च पशूंस्तथा ॥ २३
 पक्षिणः स्थावरांश्चैव पिपीलिकभुजंगमान् ।
 घातुर्बर्ष्य तथा सृष्टा नियुज्याध्वरकर्मणि ॥ २४
 पुनर्दिनान्ते त्रैलोक्यमुपसंहृत्य स प्रभुः ।
 शेते चानन्तशयने तावन्तीं रात्रिमध्ययः ॥ २५
 तस्यानेऽभून्महान्कल्पो ब्राह्म इत्यभिविश्रुतः ।
 यस्मिन् मत्स्यावतारोऽभून्मथनं च महोदधेः ॥ २६
 तद्बह्वराहकल्पश्च तृतीयः परिकल्पितः ।
 यत्र विष्णुः स्वयं प्रीत्या वाराहं वपुराश्रितः ।
 उद्धर्तुं वसुधां देवीं स्तुयमानो महर्षिभिः ॥ २७
 सृष्टा जगदव्योमचराप्रमेयः
 प्रजाश्च सृष्टा सकलास्तथेशः ।
 नैमित्तिकाख्ये प्रलये समस्तं
 संहृत्य शेते हरिरादिदेवः ॥ २८

इति श्रीनरसिंहपुराणे सर्गरचनार्थं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सृष्टिरचनविषयक' दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा लोकरचना और नौ प्रकारकी सृष्टियोंका निरूपण

सूत उवाच

तत्र सुप्तस्य देवस्य नाभौ पद्ममभून्महन् ।
 तस्मिन् पद्मे महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १
 ब्रह्मोत्पन्नः स तेनोक्तः प्रजां सृज महामते ।
 एवमुक्त्वा तिरोभावं गतो नारायणः प्रभुः ॥ २

इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनाके अनुसार यह मन्वन्तर आठ लाख बत्तन हजार वर्षोंका समय कहा गया है। महामुने! द्विजवर! मानवोंय वर्ष-गणनाके अनुसार पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षोंका काल एक मन्वन्तरका परिमाण है, इससे अधिक नहीं ॥ १२—११ ॥

इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माजीने विश्व-सृष्टिके आदिकालमें प्रसन्न मनसे देवताओं तथा पितरोंकी सृष्टि करके गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाच, गृह्णाक, ऋषि, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि), पिपीलिका (चींटी) और माँपोंकी रचना की है। फिर चारों वर्णोंकी सृष्टि करके वे उन्हें यज्ञकर्ममें नियुक्त करते हैं। तत्पश्चात् दिन बीतनेपर वे अविनाशी प्रभु त्रिभुवनका उपसंहार करके दिनके ही बराबर परिमाणवाली रात्रिमें शेषनागकी शय्यापर सोते हैं। उस रात्रिके बीतनेपर 'ब्राह्म' नामक विख्यात महाकल्प हुआ, जिसमें भगवान्का मत्स्यावतार और समुद्र-मन्थन हुआ। इस ब्राह्म-कल्पके ही समान तीसरा 'वाराह-कल्प' हुआ, जिसमें कि भगवती वसुंधरा (पृथ्वी)-का उद्धार करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्वक वाराहरूप धारण किया। उस समय महर्षिगण उनकी स्तुति करते थे। स्थलचर और आकाशचारी जीवोंके द्वारा जिनकी इच्छाको जान लेना निश्चय असम्भव है, वे आदिदेव भगवान् विष्णु समस्त प्रजाओंकी सृष्टि कर 'नैमित्तिक प्रलय' में सबका संहार करके शयन करते हैं ॥ २२—२८ ॥

सूतजी बोले—महाभाग! नैमित्तिक प्रलयकालमें सोये हुए भगवान् नारायणकी नाभिमें एक महान् कमल उत्पन्न हुआ। उसीसे वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। तब उनसे भगवान् नारायणने कहा—'महामते! तुम प्रजाकी सृष्टि करो' और यह कहकर वे अन्तर्धान

तथेत्युक्त्वा स तं देवं विष्णुं ब्रह्माथ चिन्तयन् ।
आस्ते किंचिज्जगद्दीजं नाध्यगच्छत किंचन ॥ ३

तावत्तस्य महान् रोषो ब्रह्मणोऽभूमहात्मनः ।
ततो बालः समुत्पन्नस्तस्याङ्गे रोषसम्भवः ॥ ४

स रुदन्वारितस्तेन ब्रह्मणा व्यक्तमूर्तिना ।
नाम मे देहि चेत्युक्तस्तस्य रुद्रेत्यसौ ददौ ॥ ५

तेनासौ विमुञ्जस्वेति प्रोक्तो लोकमिमं पुनः ।
अशक्तस्तत्र सलिले ममज्ज तपसाऽऽरतः ॥ ६

तस्मिन् सलिलमग्रे तु पुनरन्यं प्रजापतिः ।
ब्रह्मा ससर्ज भूतेशो दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽपरम् ॥ ७

दक्षं वामे ततोऽङ्गुष्ठे तस्य पत्नी व्यजायत ।
स तस्यां जनयामास मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः ॥ ८

तस्मात् सम्भाविता सृष्टिः प्रजानां ब्रह्मणा तदा ।
इत्येवं कथिता सृष्टिर्मया ते मुनिसत्तम ।
सृजतो जगतीं तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९

भरद्वाज उवाच

संक्षेपेण तदाऽऽख्यातं त्वया मे लोमहर्षण ।
विस्तरेण पुनर्ब्रूहि आदिसर्गं महामते ॥ १०

सूत उवाच

तथैव कल्पावसाने निशासुमोत्थितः प्रभुः ।
सत्त्वोद्भक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ ११

नारायणः परोऽचिन्त्यः पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः ॥ १२

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवात्मकम् ॥ १३

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अथनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १४

हो गये। उन भगवान् विष्णुसे 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी सोचने लगे—'क्या जगत्की सृष्टिका कोई बीज है?' परंतु बहुत सोचनेपर भी उन्हें किसी बीजका पता न लगा। तब महात्मा ब्रह्माजीको महान् रोष हुआ। रोष होते ही उनकी गोदमें एक बालक प्रकट हो गया, जो उनके रोषसे ही प्रादुर्भूत हुआ था। उस बालकको रोते देख स्थूल शरीरधारी ब्रह्माजीने उसे रोनेसे मना किया। फिर उसके यह कहनेपर कि 'मेरा नाम रख दीजिये', उन्होंने उसका 'रुद्र' नाम रख दिया ॥ १-५ ॥

इसके बाद ब्रह्माजीने उससे कहा कि 'तुम इस लोककी सृष्टि करो'—यह कहनेपर उस कार्यमें असमर्थ होनेके कारण वह सादर तपस्याके लिये जलमें निमग्न हो गया। उसके जलमें निमग्न हो जानेपर भूतनाथ प्रजापति ब्रह्माजीने फिर अपने दाहिने अँगूठेसे 'दक्ष' नामक एक दूसरे पुत्रको उत्पन्न किया, तत्पश्चात् वामे अँगूठेसे उसकी पत्नी प्रकट हुई। प्रभु दक्षने उस स्त्रीसे स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया। तब ब्रह्माजीने उसी मनुसे प्रजाओंकी सृष्टि बढ़ायी। मुनिवर! वसुधाकी सृष्टि करनेवाले उस विधाताकी सृष्टि-रचनाका यह क्रम मैंने आपसे वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६-९ ॥

भरद्वाजजी बोले—लोमहर्षणजी! आपने यह सब वृत्तान्त मुझसे पहले संक्षेपसे कहा है। महामते! अब आप विस्तारके साथ आदिसर्गका वर्णन कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी बोले—पिछले कल्पका अन्त होनेपर रात्रिमें सोकर उठनेके बाद सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त (नारायणस्वरूप) भगवान् ब्रह्माजीने उस समय सम्पूर्ण लोकको शून्यमय देखा। वे ब्रह्मस्वरूपी भगवान् नारायण सबसे परे हैं, अचिन्त्य हैं, पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं, अनन्दि हैं और सबको उत्पत्तिके कारण हैं। इस जगत्की उत्पत्तिके कारणभूत उन ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें पुराणवेत्ता विद्वान् यह श्लोक कहते हैं—'जल भगवान् नर—पुरुषोत्तमसे उत्पन्न है, इसलिये 'नार' कहलाता है। नार (जल) ही उनका प्रथम अयन (आदि शयन-स्थान) है, इसलिये वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं।' ॥

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकं तस्य प्रादुर्भूतं तमस्तदा ॥ १५

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वणा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ १६

पञ्चधाधिष्ठितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ।
मुख्यसर्गः स विज्ञेयः सर्गसिद्धिविचक्षणैः ॥ १७

यत्पुनर्ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः समपद्यत ।
तिर्यक्स्रोतस्ततस्तस्मात् तिर्यग्योनिस्ततः स्मृतः ॥ १८

पश्चादयस्ते विख्याता उत्पद्यन्नाहिणश्च ये ।
तमप्यसाधकं भत्वा तिर्यग्योनिं चतुर्मुखः ॥ १९

ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकः समवर्तत ।
तदा तुष्टोऽन्यसर्गं च चिन्तयामास वै प्रभुः ॥ २०

ततश्चिन्तयतस्तस्य सर्गवृद्धिं प्रजापतेः ।
अर्वाक्स्रोताः समुत्पन्ना मनुष्याः साधका भताः ॥ २१

ते च प्रकाशबहुलास्तमोयुक्ता रजोऽधिकाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥ २२

एते ते कथिताः सर्गा बहवो मुनिसत्तप ।
प्रथमो महतः सर्गस्तन्याज्राणां द्वितीयकः ॥ २३

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्यावराः स्मृताः ॥ २४

तिर्यक्स्रोताश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स उच्यते ।
ततोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ २५

ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमो मानुषः स्मृतः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विको य उदाहृतः ॥ २६

इस प्रकार कल्पके आदिमें पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करते समय ब्रह्मादीकें बिना जाने ही असावधानता हो जानेके कारण तमोगुणों सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११—१५ ॥

उस समय उन महात्मासे तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तमिस्र (ज्ञेय) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश), नामक पञ्चपर्व (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई। फिर सृष्टिके लिये ध्यान करते हुए ब्रह्माजीसे वृक्ष, गुल्म, रता, वीर्य एवं तृणरूप पाँच प्रकारका स्यावरात्मक सर्ग हुआ, जो बाहर-भीतरसे प्रकाशरहित, अविद्यासे आवृत एवं ज्ञानरूप्य था। सर्गसिद्धिके ज्ञाता विद्वान् इसे 'मुख्य सर्ग' समझे; (क्योंकि अथल वस्तुओंको मुख्य कहा गया है।) फिर सृष्टिके लिये ध्यान करनेपर उन ब्रह्माजीसे तिर्यक्-स्रोत नामक सृष्टि हुई। तिरछा चलनेके कारण उसको 'तिर्यक्' संज्ञा है। उससे उत्पन्न हुआ सर्ग 'तिर्यग्योनि' कहा जाता है। वे विख्यात पशु आदि जो कुम्हारोंसे चलनेवाले हैं, तिर्यग्योनि कहलाते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजीने उस तिर्यक्स्रोता सर्गको पुरुषार्थका असाधक मानकर जब पुनः सृष्टिके लिये चिन्तन किया, तब उनसे तृतीय 'ऊर्ध्वस्रोता' नामक सर्ग हुआ। यह सम्बन्धुणसे युक्त था (यही 'देवसर्ग' है)। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर पुनः अन्य सृष्टिके लिये चिन्तन किया। तदनन्तर सर्गको वृद्धिके विषयमें चिन्तन करते हुए उन प्रजापतिसे 'अर्वाक्स्रोता' नामक सर्गकी उत्पत्ति हुई। इसकी अन्तर्गत मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थके साधक माने गये हैं। इनमें प्रकाश (सात्वगुण), और रज—इन दो गुणोंकी अधिकता है और तमोगुण भी है। इसलिये ये अधिकतर दुःखी और आपत्तिक क्रियाशील होते हैं ॥ १६—२२ ॥

मुनिश्रेष्ठ! इन बहुत-से सर्गोंका मैंने आपसे वर्णन किया है। इनमें 'महत्तम' को पहला सर्ग कहा गया है। दूसरा सर्ग 'तन्मात्राओं' का है। तीसरा वैकारिक सर्ग है, जो 'ऐन्द्रिय' (इन्द्रियसम्बन्धी) कहलाता है। चौथा 'मुख्य' सर्ग है। स्यावर (वृक्ष, तृण, रता आदि) ही 'मुख्य' कहे गये हैं। तिर्यक्स्रोता नामक जो पाँचवाँ सर्ग कहा गया है, वह 'तिर्यग्योनि' कहलाता है। इसके बाद छठा 'ऊर्ध्वस्रोताओं' का सर्ग है। उसे 'देवसर्ग' कहा जाता है। फिर सातवाँ अर्वाक्स्रोताओंका सर्ग है, उसे 'मानव-सर्ग' कहते हैं। आठवाँ 'अनुग्रह-सर्ग' है, जिसे 'सात्त्विक' कहा गया है।

नवमो रुद्रसर्गस्तु नव सर्गाः प्रजापतेः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्ते त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥ २७

प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ।
सृजतो ब्रह्मणः सृष्टिमुत्पन्ना ये मयेरिताः ॥ २८

तं तं विकारं च परं परेशो
मायामधिष्ठाय सृजत्यनन्तः ।
अव्यक्तरूपी परमात्मसंज्ञः
सम्प्रेर्यमाणो निखिलात्मवेद्यः ॥ २९

इति श्रीनरसिंहपुराणे सृष्टिरत्नप्रकाशेऽथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सृष्टिरत्नप्रकाश प्रकाश' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

अनुसर्गके स्वप्न

ब्रह्मण उवाच

नवधा सृष्टिरुत्पन्ना ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कथं सा वयुधे सून एतत्कथय मेऽधुना ॥ १

सून उवाच

प्रथमं ब्रह्मणा सृष्टा मरीच्यादय एव च ।
मरीचिरत्रिंश तद्या अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ २

पुलस्त्यश्च महातेजाः प्रचेता भृगुरेव च ।
नारदो दशमश्चैव वसिष्ठश्च महामतिः ॥ ३

सनकादयो निवृत्ताख्ये ते च धर्मे नियोजिताः ।
प्रवृत्ताख्ये मरीच्याद्या सुक्वैकं नारदं मुनिम् ॥ ४

योऽसौ प्रजापतिस्त्वन्यो दक्षनामाह्वसम्भवः ।
तस्य दौहित्रवंशेन जगदेतच्चराचरम् ॥ ५

देवाश्च दानवाश्चैव गन्धर्वोरगपक्षिणः ।
सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः ॥ ६

चतुर्विधानि भूतानि ह्यचराणि चराणि च ।
वृद्धिगतानि तान्येवमनुसर्गोद्भवानि तु ॥ ७

अनुसर्गस्य कर्तारो मरीच्याद्या महर्षयः ।
वसिष्ठान्ता महाभाग ब्रह्मणो मानसोद्भवाः ॥ ८

नवों 'रुद्रसर्ग' है—ये ही नौ सर्ग प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं । इनमें पहलेके तीन 'प्राकृत सर्ग' कहे गये हैं । उसके बादवाले पाँच 'वैकृत सर्ग' हैं और नवों जो 'कौमार सर्ग' हैं, वह प्राकृत और वैकृत भी हैं । इस प्रकार सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए जो जगत्की उत्पत्तिके मूलकारण प्राकृत और वैकृत सर्ग हैं, उनका मैंने वर्णन किया । सबके आत्मरूपसे जाननेयोग्य अव्यक्तस्वरूप परमात्मा परमेश्वर भगवान् अनन्तदेव अपनी मायाका आश्रय लेकर प्रेरित होते हुए—से उन-उन विकारोंकी सृष्टि करते हैं ॥ २७—२९ ॥

ब्रह्माजी बोले—सूनजी ! अव्यक्त जन्म ब्रह्माजीसे जो नौ प्रकारकी सृष्टि हुई, उसका विस्तार किस प्रकार हुआ ? यही इस समय आप हमें बतलाइये ॥ १ ॥

सूनजी बोले—ब्रह्माजीने पहले जिन मरीचि आदि ऋषियोंको उत्पन्न किया, उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महातेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद और दसवें महाबुद्धिमान् वसिष्ठ हैं । सनक आदि ऋषि निवृत्तिधर्ममें तत्पर हुए और एकमात्र नारद मुनिको छोड़कर शेष सभी मरीचि आदि मुनि प्रवृत्तिधर्ममें निपुण हुए ॥ २—४ ॥

ब्रह्माजीके दाहिने अङ्गसे उत्पन्न जो 'दक्ष' नामक दूसरे प्रजापति कहे गये हैं, उनके दौहित्रके वंशसे यह चराचर जगत् व्याप्त है । देव, दानव, गन्धर्व, उरग (सर्प) और पक्षी—ये सभी, जो सब-के-सब बड़े धर्मात्मा थे, दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए । चार प्रकारके चराचर प्राणी अनुसर्गमें उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हुए । महाभाग ! पूर्वोक्त मरीचिसे लेकर वसिष्ठतक सभी ब्रह्माजीके मानस संतान हैं । ये सब अनुसर्गके स्वप्न हैं ।

सर्गे तु भूतानि धियश्च खानि
ख्यातानि सर्वं सृजते महात्मा।

स एव पश्चाच्चतुरास्यरूपी
मुनिस्वरूपी च सृजत्यनन्तः ॥ १ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

पाँचवाँ अध्याय

रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन; दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संततिका विस्तार

भरद्वाज उवाच

रुद्रसर्गं तु मे ब्रूहि विस्तरं महामते।
पुनः सर्वे मरीच्याद्याः समुजुस्ते कथं पुनः ॥ १ ॥

मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं भवेत्।
ब्रह्मणो मनसः पूर्वमुत्पन्नस्य महामते ॥ २ ॥

रुद्र उवाच

रुद्रसृष्टिं प्रवक्ष्यामि तत्सर्गांश्चैव सत्तम।
प्रतिसर्गं मुनीनां तु विस्तराद्ब्रूतः शृणु ॥ ३ ॥

कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः।
प्रादुरासीत् प्रभोरङ्गे कुमारो नीललोहितः ॥ ४ ॥

अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।
तेजसा भासयन् सर्वा दिशश्च प्रदिशश्च सः ॥ ५ ॥

तं दृष्ट्वा तेजसा दीप्तं प्रत्युवाच प्रजापतिः।
विभजात्मानमद्य त्वं मम वाक्यान्महामते ॥ ६ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विप्र रुद्रस्तेन प्रतापवान्।
स्त्रीभावं पुरुषत्वं च पृथक् पृथग्वाकरोत् ॥ ७ ॥

बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे द्विजसत्तम ॥ ८ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यः कपाली रुद्र एव च।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ९ ॥

वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १० ॥

सर्ग अर्थात् आदिसृष्टिमें महात्मा भगवान् नारायण पौंच महाभूत, बुद्धि तथा पूर्वोक्त इन्द्रियवर्ग—इन सबको उत्पन्न करते हैं। इसके पश्चात् (अनुसर्गाकालमें) वे अनन्तदेव स्वयं ही चतुर्मुख ब्रह्मा और मरीचि आदि मुनियोंके रूपसे प्रकट हो जगत्की सृष्टि करते हैं ॥ ५—९ ॥

श्रीभरद्वाजजी बोले—महामते! अब मुझसे 'रुद्रसर्ग' का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा यह भी बताइये कि मरीचि आदि ऋषियोंने पहले किस प्रकार सृष्टि की? महाबुद्धिमान् सुत! वसिष्ठजी तो पहले ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए थे; फिर वे मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये? ॥ १-२ ॥

सुतजी बोले—साधुशरीरमणे! आपके प्रश्नानुसार मैं अब रुद्र सृष्टिका तथा उसमें होनेवाले सर्गोंका वर्णन करूँगा, साथ ही मुनियोंद्वारा सम्पादित प्रतिसर्ग (अनुसर्ग) को भी मैं विस्तारके साथ बताऊँगा; आपलोग ध्यानसे सुनें। कल्पके आदिमें प्रभु ब्रह्माजी अपने ही समान शक्तिशाली पुत्र होनेका चिन्तन कर रहे थे। उस समय उनकी गोदमें एक नीललोहित वर्णका बालक प्रकट हुआ। उसका आन्ध्र शरीर स्त्रीका और आन्ध्र पुरुषका था। वह प्रचण्ड एवं विशालकाय था और अपने तेजसे दिशाओं तथा अग्रान्तर दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। उसे तेजसे देदीप्यमान देख प्रजापतिने कहा—'महामते! इस समय मेरे कहनेसे तुम अपने शरीरके दो भाग कर लो।' विप्र! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रतापी रुद्रने अपने स्त्रीरूप और पुरुषरूपको अलग-अलग कर लिया। द्विजश्रेष्ठ! फिर पुरुषरूपको उन्होंने ग्यारह स्वरूपोंमें विभक्त किया; मैं उन सबके नाम बतलाता हूँ, सुनें। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, कपाली, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत—ये 'ग्यारह रुद्र' कहे गये हैं, जो तीनों भुवनोंके स्वामी हैं। पुरुषको भीति स्त्रीरूपके भी रुद्रने ग्यारह

स्त्रीत्वं चैव तथा रुद्रो विभेद दशार्धकथा ।
 उभैव बहुरूपेण पत्नीं सैव व्यवस्थिता ॥ ११
 तपः कृत्वा जले घोरमुत्तीर्णः स यदा पुरा ।
 तदा स सृष्ट्वान् देवो रुद्रस्तत्र प्रतापवान् ॥ १२
 तपोबलेन विप्रेन्द्र भूतानि विविधानि च ।
 पिशाचान् राक्षसांश्चैव सिंहोष्टमकराननान् ॥ १३
 वेतालप्रमुखान् भूतानन्यांश्चैव सहस्रशः ।
 विनायकानामुग्राणां त्रिंशत्कोट्यर्धमेव च ॥ १४
 अन्यकार्यं समुद्दिश्य सृष्ट्वान् स्कन्दमेव च ।
 एवं प्रकारो रुद्रोऽसी मया ते कीर्तितः प्रभुः ॥ १५
 अनुसर्गं मरीच्यादेः कथयामि निबोध मे ।
 देवादिसंस्थावरान्ताश्च प्रजाः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ १६
 यदास्य च प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः ।
 तदा मानसपुत्रान् स मदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ १७
 मरीचिमव्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
 प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं चैव महामतिम् ॥ १८
 नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निक्षयं गताः ।
 अग्निश्च पितरश्चैव ब्रह्मपुत्रौ तु मानसी ॥ १९
 सृष्टिकाले महाभागी ब्रह्मन् स्वायम्भुवोदृती ।
 शतरूपां च सृष्ट्वा तु कन्यां स मनवे ददौ ॥ २०
 तस्माच्च पुरुषार्तेष्वी शतरूपा व्यजायत ।
 प्रियव्रतौत्तानपादौ प्रसूतिं चैव कन्यकाम् ॥ २१
 ददौ प्रसूतिं दक्षाय मनुः स्वायम्भुवः सुताम् ।
 प्रसूत्यां च तदा दक्षश्चतुर्विंशतिकं तथा ॥ २२
 ससर्ज कन्यकास्तासां शृणु नामानि मेऽधुना ।
 श्रद्धा लक्ष्मीर्भृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया ॥ २३
 बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ।
 अपत्यार्थं प्रजग्राह धर्मो दाक्षायणोः प्रभुः ॥ २४
 श्रद्धादीनां तु पत्नीनां जाताः कामादयः सुताः ।
 धर्मस्य पुत्रपौत्रादौर्धर्मवंशो विवर्धितः ॥ २५

विभाग किये। भगवती उमा ही अनेक रूप धारण कर
 इन सबको पत्नी हैं ॥ ३-११ ॥

विप्रेन्द्र! पूर्वकालमें प्रतापी रुद्रदेव जलमें घोर तपस्या
 करके जब बाहर निकले, तब अपने तपोबलसे उन्होंने
 वहाँ नाग प्रकारके भूतोंकी सृष्टि की। सिंह, कूट और
 मगरके समान मुँहवाले पिशाचों, राक्षसों तथा वेताल
 आदि अन्य सहस्रों भूतोंको उत्पन्न किया। साढ़े तीस
 करोड़ उग्र स्वभाववाले विनायकगणोंकी सृष्टि की तथा
 दूसरे कार्पिक उदरस्यसे स्कन्दकी उत्पन्न किया। इस
 प्रकार भगवान् रुद्र तथा उनके सर्गका मैंने आपसे वर्णन
 किया ॥ १२-१५ ॥

अब मरीचि आदि ऋषियोंने अनुसर्गका वर्णन करता
 हैं, आप सुनें। स्वयम्भू ब्रह्माजीने देवताओंसे लेकर
 स्ववरीतक सारी प्रजाओंकी सृष्टि की। किंतु इन
 बुद्धिमान् ब्रह्माजीकी ये सब प्रजाएँ जब बुद्धिको प्राप्त
 नहीं हुई, तब इन्होंने अपने ही समान मानस-पुत्रोंकी
 सृष्टि की। मरीचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु,
 प्रचेता, वसिष्ठ और महाबुद्धिमान् भृगुको उत्पन्न किया।
 ये लोग पुराणमें नौ ब्रह्म निहित किये गये हैं। ब्रह्मन्।
 अग्नि और पितर भी ब्रह्माके ही मानस-पुत्र हैं। इन
 दोनों महाभागोंकी सृष्टिकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने उत्पन्न
 किया। फिर उन्होंने 'शतरूपा' नामक कन्याकी सृष्टि
 करके उसे मनुको दे दिया ॥ १६-२० ॥

उन स्वायम्भुव मनुसे देवी शतरूपाने 'प्रियव्रत'
 और 'उत्तानपाद' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और
 'प्रसूति' नामवाली एक कन्याको जन्म दिया। स्वायम्भुव
 मनुने अपनी कन्या प्रसूति दक्षको व्याह दी। दक्षने
 प्रसूतिसे बीबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। अब मुझसे उन
 कन्याओंके नाम सुनें—ब्रद्धा, लक्ष्मी, भृति, तुष्टि, पुष्टि,
 मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और
 तेरहवीं कीर्ति थी। भगवान् धर्मने संतानोत्पत्तिके लिये
 इन तेरह कन्याओंका पाणिग्रहण किया। धर्मकी इन
 ब्रद्धा आदि पत्नियोंके गर्भसे काम आदि पुत्र उत्पन्न
 हुए। अपने पुत्र और पौत्र आदिके धर्मका वंश खूब
 बढ़ा ॥ २१-२५ ॥

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्यस्तासां नामानि कीर्तये ।
 सम्भूतिश्चानसूया च स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ २६
 संनतिश्चाथ सत्या च ऊर्जा ख्यातिर्द्विजोत्तम ।
 तद्वत्पुत्री महाभागी मातरिश्वाथ सत्यवान् ॥ २७
 स्वाहाथ दशमी ज्ञेया स्वधा वैकादशी स्मृता ।
 एताश्च दत्ता दक्षेण ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ २८
 मरीच्यादीनां तु ये पुत्रास्तानहं कथयामि ते ।
 पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्जज्ञे सा कश्यपं मुनिम् ॥ २९
 स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रमृता कन्यकास्तथा ।
 सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥ ३०
 अनसूया तथा चात्रेर्जज्ञे पुत्रानकत्वथान् ।
 सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ ३१
 योऽसावग्रेरभीमानी ब्रह्मणस्तनपोऽग्रजः ।
 तस्मात् स्वाहा सुतांशेभे त्रीनुदारीजसो द्विज ॥ ३२
 पायकं पवमानं च शुचिं चापि जलाशिनम् ।
 तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ ३३
 कश्यपेन बह्वयश्चेते पिता पुत्रत्रयं च यत् ।
 एवमेकोनपञ्चाशद्बह्वयः परिकीर्तिताः ॥ ३४
 पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ।
 तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तच्च ॥ ३५
 प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
 यथा ससर्ज भूतानि तथा मे शृणु सत्तम ॥ ३६
 मनसैव हि भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजन्मुनिः ।
 देवानृषींश्च गन्धर्वानसुरान् पन्नगांस्तथा ॥ ३७
 यदास्य मनसा जाता नाभ्यवर्धन्त ते द्विज ।
 तदा संचिन्त्य स मुनिः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः ॥ ३८
 मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
 असिक्नीमुद्बहन् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ॥ ३९

द्विजश्रेष्ठ! ब्रह्मा आदिसे छोटी अवस्थावाली जो उनकी शेष कहने लगी, उनके नाम बता रहा हूँ—सम्भूति, अनसूया, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, सत्या, ऊर्जा, ख्याति, दसवीं स्वाहा और ग्यारहवीं स्वधा है। दक्षके 'मातरिश्वा' और 'सत्यवान्' नामक दो महाभाग पुत्र भी हुए। उपर्युक्त ग्यारह कन्याओंको दक्षने पुण्यात्मा ऋषियोंको दिया ॥ २६—२८ ॥

मरीचि आदि मुनियोंके जो पुत्र हुए, उन्हें मैं आपसे बतलाता हूँ। मरीचिकी पत्नी सम्भूति थी। उसने कश्यप मुनिको जन्म दिया। अङ्गिराकी भार्या स्मृति थी। उसने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार अग्नि मुनिकी पत्नी अनसूयाने सोम, दुर्वास और योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको जन्म दिया। द्विज! ब्रह्माजीका श्रेष्ठ पुत्र, जो अग्निका अभिमानी देवता है, उससे उसकी पत्नी स्वाहाने पायक, पवमान और जलका भक्षण करनेवाले शुचि—इन अत्यन्त तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। इन तीनोंके (प्रायेकके पंद्रह-पंद्रहके क्रमसे) अन्य पैतालीस अग्निरूप संतानें हुईं। पिता अग्नि, उसके तीनों पुत्र तथा उनके भी ये पूर्वोक्त पैतालीस पुत्र सब मिलकर 'अग्नि' ही कहलाते हैं। इस प्रकार उनचार अग्नि कहे गये हैं। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये जिन पितरोंका मैंने आपके समक्ष वर्णन किया था, उनसे उनकी पत्नी स्वधाने मेना और धारिणी—इन दो कन्याओंको जन्म दिया ॥ २९—३५ ॥

साधुशिरोमणै! पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीके द्वारा 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो' यह आज्ञा पाकर दक्षने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की थी, उसे सुनिये। विषय! दक्षमुनिने पहले देवता, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प—इन सभी भूतोंको मनसे ही उत्पन्न किया। परंतु जब मनसे उत्पन्न किये हुए ये देवादि सर्ग वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए, तब उन दक्ष प्रजापति ऋषिने सृष्टिके लिये पूर्वोक्त विचार करके मैथुनधर्मके द्वारा ही नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छा मनमें लिये वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह किया।

षष्टि दक्षोऽसृजत् कन्या वीरण्यामिति नःश्रुतम् ।
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ ४०
 समविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
 द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥ ४१
 द्वे कुशाश्वाय विदुषे तदपत्यानि मे शृणु ।
 विश्वेदेवांस्तु विश्वा या साध्या साध्यानसूयत ॥ ४२
 मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ।
 भानोस्तु भानवो देवा मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥ ४३
 लम्बायाश्चैव घोषारब्धो नागवीथिश्च जामिजा ।
 पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत ॥ ४४
 संकल्पायाश्च संकल्पः पुत्रो जज्ञे महामते ।
 ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ४५
 वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ।
 आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः ॥ ४६
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४७
 साध्याश्च बहवः प्रोक्तास्तत्पुत्राश्च सहस्रशः ।
 कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु ।
 अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥ ४८
 सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
 कर्दूमणिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥ ४९

हमने सुना है कि दक्ष प्रजापतिने वीरण-कन्या अंसिनीके गर्भसे स्रष्ट कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दस कन्याएँ उन्होंने धर्मको और तेरह कश्यप मुनिको ब्याह दीं*। फिर सत्तारस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो अङ्गिराको और दो कन्याएँ विद्वान् कुशाश्वको समर्पित कर दीं। अब इन सबको संतानोंका वर्णन सुनिये ॥ ३६—४१ १/२

जो विश्वा नामकी कन्या थी, उसने विश्वेदेवोंको और साध्यासे साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीके मरुत्वान् (वायु), वसुके वसुगण, भानुके भानुदेवता और मुहूर्तकी मुहूर्तीभिमानी देवगण हुए। लम्बासे घोष नामक पुत्र हुआ, जामिसे नागवीथि नामवाली कन्या हुई और अरुन्धतीसे पृथिवीके समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। महाबुद्धे! संकल्पा नामक कन्यासे संकल्पका जन्म हुआ, अनेक प्रकारके वसु (तेज अथवा धन) जो जिनके प्राण हैं, ऐसे जो आठ ज्योतिर्मय वसु देवता कहे गये हैं, उनके नाम सुनिये—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये 'आठ वसु' कहलाते हैं। इनके पुत्रों और पौत्रोंकी संख्या सैकड़ों और हजारोंतक पहुँच गयी है ॥ ४२—४७ ॥

इसी प्रकार साध्यगणोंकी भी संख्या बहुत है और उनके भी हजारों पुत्र हैं। जो (दक्ष-कन्याएँ) कश्यप मुनिको पत्नियाँ हुई, उनके नाम सुनिये—ये अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कर्दू और मुनि थीं। धर्मज्ञ! अब आप मुझसे उनकी संतानोंका विवरण सुनिये।

* चौथवें अध्यायके श्लोक बाईसमें यह चर्चा आती है कि स्वायम्भुव मनुने प्रजापतिकी अपनी पुत्री प्रसूति ब्याह दी थी। उसके गर्भसे दक्षने चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह उन्होंने धर्मके साथ कर दिया था। फिर इसी अध्यायके उन्नीसवालीस-चालीस श्लोकोंमें यह बात आती है कि दक्षने वीरण प्रजापतिकी पुत्री अंसिनीके साथ विवाह किया, जिसके गर्भसे उन्होंने स्रष्ट कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे दसका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया था। एक ही दक्षके विषयमें ये दो प्रकारकी बातें आगतः संदेह उत्पन्न करती हैं। विष्णुपुराणमें भी यह प्रसंग आया है। अध्याय सातके उन्नीसवें चौबीसवें श्लोकतक तथा अध्याय पंद्रहके उक्त दोनों प्रसंगोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। एक ही तीनवें श्लोकमें उन प्रसंगोंके पञ्चालोचनसे यह प्रतीत होता है कि उक्त दोनों दक्ष दो व्यक्ति थे और दोनों दो कालमें उत्पन्न हुए थे। पहले दक्ष ब्रह्मजनोंके मातम-पुत्र थे और दूसरे प्रचेत्योंके पुत्र। इतनेपर भी मैत्रेयजीने यह प्रश्न उठाया है कि 'ब्रह्मजनोंके पुत्र दक्ष प्रचेत्योंके पुत्र कैसे हो गये?' वहाँ पराशरजीने यह समाधान दिया है कि 'युगे युगे भवन्त्येते दक्षाश्च मुनिसप्तमः।' इस प्रकार बुधोदसे दोनों प्रसंगोंकी संगति पैदायी गयी है। वही समाधान यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

† यहाँ 'अरुन्धती' की जगह 'मरुत्वती' पठ भी मिलता है, परन्तु वह असंगत है। 'मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः' कहकर मरुत्वतीकी संततिका वर्णन आ चुका है। अतः यहाँ 'अरुन्धती' पठ ही ठीक है; अन्यत्र धर्मकी नौवीं पत्नीका नाम नहीं मिलेगा। विष्णुपुराण १५।१०९वें श्लोकमें भी 'अरुन्धत्याम्' ही पठ है।

अदित्यां कश्यपाज्जाताः पुत्रा द्वादश शोभनाः ।
 तानहं नामतो वक्ष्ये भृगुष्व गदतो मम ॥ ५०
 भगोऽशुश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
 सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महामते ॥ ५१
 त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
 दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ५२
 हिरण्याक्षो महाकायो वाराहेण तु यो हतः ।
 हिरण्यकशिपुश्चैव नरसिंहेन यो हतः ॥ ५३
 अन्ये च बहवो दैत्या दनुपुत्राश्च दानवाः ।
 अरिष्टायां तु गन्धर्वा जज्ञिरे कश्यपात्तथा ॥ ५४
 सुरसायामथोत्पन्ना विद्याधरगणा बहू ।
 गा वै स जनयामास सुरभ्यां कश्यपो मुनिः ॥ ५५
 विनतायां तु द्वौ पुत्री प्रख्यातौ गरुडागुणी ।
 गरुडो देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥ ५६
 वाहनत्वमिद्याद्रीत्या अरुणः सूर्यसारधिः ।
 ताम्रायां कश्यपाज्जाताः षट्पुत्रास्तात्रिविधो मे ॥ ५७
 अथा उष्टा गर्दभाश्च हस्तिनो गवया मृगाः ।
 क्रोधायां जज्ञिरे तद्वत्ते भूम्यां दुष्टजातयः ॥ ५८
 इरा वृक्षलतावल्लीशणजातौश्च जज्ञिरे ।
 खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ ५९
 कद्रुपुत्रा महानागा दंदशूका विषोत्त्वणाः ।
 समविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ॥ ६०
 तासां पुत्रा महामत्स्या बुधाद्यास्त्यभवन् द्विज ।
 अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्न्यानीह षोडश ॥ ६१
 बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।
 प्रत्यङ्गिरस्मृताः श्रेष्ठा ऋषयश्चर्षिसत्कृताः ॥ ६२
 कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवाश्च ऋषयः सुताः ।
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ ६३
 एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ।
 स्थितौ स्थितस्य देवस्य नरसिंहस्य धर्मतः ॥ ६४
 एता विभूतयो विप्र मया ते परिकीर्तिताः ।
 कथिता दक्षकन्यानां मया तेऽपत्यसंततिः ॥ ६५
 श्रद्धावान् संस्मरेदेतां स सुसंतानवान् भवेत् ॥ ६६

महामते! अदितिके कश्यपजीसे बारह सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम बता रहा हूँ, सुनिधे—महामते। भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और वाराहेण विष्णु कहे जाते हैं। दितिके कश्यपजीसे दो पुत्र हुए थे, ऐसा हमने सुना है। पहला महाकाय हिरण्याक्ष हुआ, जिसे भगवान् वाराहने मारा और दूसरा हिरण्यकशिपु हुआ, जो नृसिंहजीके द्वारा मारा गया। इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से दैत्य दितिसं उत्पन्न हुए। दनुके पुत्र दानव हुए और अरिष्टाके कश्यपजीसे गन्धर्वगण उत्पन्न हुए। सुरसासे अनेक विद्याधराण हुए और सुरभिसे कश्यप मुनिने गौओंको जन्म दिया ॥ ४८—५५ ॥

विनताके 'गरुड' और 'अरुण' नामक दो विख्यात पुत्र हुए। गरुडजी प्रेमवत अमित-तेजस्वी देवदेव भगवान् विष्णुके वाहन हो गये और अरुण सूर्यके सारथि बने। ताम्राके कश्यपजीसे छः पुत्र हुए, उन्हें आप मुझसे सुनिधे—चोड़ा, ऊँट, गदाहा, हाथी, गवय और मृग। पुष्पीपर जितने दुष्ट जीव हैं, वे क्रोधासे उत्पन्न हुए हैं। इराने वृक्ष, लता, बल्ली और 'मन' जातिके तुणवर्गको जन्म दिया। खसाने यक्ष और राक्षसों तथा मुनिने अप्सराओंको प्रकट किया। कद्रुके पुत्र प्रचण्ड विषवाले 'दंदशूक' नामक महासर्प हुए। विप्रवर। चन्द्रमाकी सुन्दर ब्रतवाली जिन सत्ताईस स्त्रियोंकी खचां की गयी है, उनसे बुध आदि महान् पराक्रमी पुत्र हुए। अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके गर्भसे सोलह संतानें हुई ॥ ५६—६१ ॥

विद्वान् बहुपुत्रकी संतानें कपिला, अतिलोहिता, पोता और सिता—इन चार वर्णोंवाली चार निजलियों कही गयी हैं। प्रत्यङ्गिराके पुत्राण ऋषियोंद्वारा सम्मानित उताम ऋषि हुए। देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवर्षि ही हुए। ये एक-एक हजार युग (अर्थात् एक कल्प)—के जीतनेपर पुनः—पुनः उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए चर-अचर प्राणियोंका वर्णन किया गया। विप्रवर। धर्मपूर्वक पालनकर्ममें लगे हुए भगवान् नरसिंहकी इन विभूतियोंका यहाँ मैंने आपके समक्ष वर्णन किया है। साथ ही दक्षकन्याओंकी वंश-परम्परा भी बतलायी है। जो ब्रह्मापूर्वक इन सबका स्मरण करता है, वह सुन्दर संतानसे युक्त होता है।

सर्गानुसर्गं कथितं मया ते
समास्तः सृष्टिविवृद्धिहेतोः ।
पठन्ति ये विष्णुपुराः सदा नरा
इदं द्विजास्ते विमला भवन्ति ॥ ६७ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे सृष्टिकथने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणके सृष्टिवर्णनमें पौर्णवी अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग

सूत उवाच

सृष्टिस्ते कथिता विष्णोर्मयास्य जगतो द्विज ।
देवदानवयक्षाद्या यद्योत्पन्ना महात्मनः ॥ १ ॥
यमुद्दिश्य त्वया पृष्ठः पुराहमृषिसंनिधौ ।
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं त्विति ॥ २ ॥
तदिदं कथयिष्यामि पुण्याख्यानं पुरातनम् ।
शृणुष्वैकाग्रमनसा भरद्वाज विशेषतः ॥ ३ ॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ।
पारगः सर्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४ ॥
तेन दत्ताः शुभाः कन्याः सर्वाः कमललोचनाः ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णाः कश्यपाय त्रयोदश ॥ ५ ॥
तासां नामानि वक्ष्यामि निबोधत ममाधुना ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला मुहूर्ता सिंहिका मुनिः ॥ ६ ॥
इरा क्रोधा च सुरभिर्विनता सुरसा खसा ।
कद्रू सरमा चैव या तु देवशुनी स्मृता ॥ ७ ॥
दक्षस्यैता दुहितरस्ताः प्रादात् कश्यपाय सः ।
तासां ज्येष्ठा वरिष्ठा च अदितिर्नामतो द्विज ॥ ८ ॥
अदितिः सुषुवे पुत्रान् द्वादशाग्रिसमप्रभान् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ ९ ॥

ब्रह्मन्! सृष्टि-विस्तारके लिये ब्रह्मा तथा अन्य प्रजापतियोंद्वारा जो सर्ग और अनुसर्ग सम्पादित हुए, उन सबको मैंने संक्षेपसे आपको बता दिया। जो द्विजाति मानव भगवान् विष्णुमें मन लगाकर इन प्रसङ्गोंको सदा पढ़ेंगे वे निर्मल हो जायेंगे ॥ ६२—६७ ॥

सूतजी बोले—ब्रह्मन्! परमात्म भगवान् विष्णुसे जिस प्रकार देव, दानव और यक्ष आदि उत्पन्न हुए, वह जगत्की सृष्टिका वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया। अब प्रश्रितियोंके निकट जिस उद्देश्यको लेकर पहले आपने मुझसे प्रश्न किया था कि 'वसिष्ठजी मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये?' उसी पुरातन पवित्र कथाको कहूँगा। भारद्वाजजी! आप एकाग्रचित्त हो, विशेष सावधानीके साथ उसे सुनिये ॥ १—३ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले, समस्त वेदवेदांगोंमें श्रेष्ठ तथा समग्र विद्याओंके धारदशी 'दक्ष' नामक प्रजापतिने अपनी तेरह सुन्दरी कन्याओंको, जो सभी कमलके समान नेत्रोंवाली और समस्त शुभ लक्षणोंमें सम्पन्न थीं, कश्यप मुनिको दिया था। उनके नाम बतलाता हूँ, आप लोग इस समय मुझसे उनके नाम जान लें—अदिति, दिति, दनु, काला, मुहूर्ता, सिंहिका, मुनि, इरा, क्रोधा, सुरभि, विनता, सुरसा, खसा, कद्रू और सरमा, जो देवताओंकी कुत्तिपा कहो गयी हैं—ये सभी दक्ष-प्रजापतिकी कन्याएँ हैं*। इनको दक्षने कश्यपजीको समर्पित किया था। विप्रवर! अदिति नामकी जो कन्या थी, वही इन सबमें श्रेष्ठ और बड़ी थी ॥ ४—८ ॥

अदितिने बारह पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अग्निके समान कान्तिमान् एवं तेजस्वी थे। उन सबके नाम बतला रहा हूँ, आप मुझसे उन्हें सुनें।

* अध्याय चौथेके ४८-४९ श्लोकोंमें कश्यपकी तेरह पत्नियोंके नाम आये हैं। यहाँ पंद्रह नाम आये हैं; इनमें 'मुहूर्ता' और 'सरमा'—ये दो नाम अधिक हैं। 'मुहूर्ता' तो धर्मकी पत्नी थी। 'सरमा' कश्यपकी पत्नी होनेपर भी दक्षकन्या नहीं थी। इसके अतिरिक्त अरिष्टा एवं ताप्राके स्थानपर यहाँ काला और सिंहिका नाम आये हैं। ये नाम अन्यत्र पुराणोंमें भी आते हैं।

† यद्यपि चौथे अध्यायके ५१-५२ श्लोकोंमें अदितिकी सन्तानोंका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इस प्रसङ्गकी पुनर्सर्जित जान पड़ती है; तथापि इसका समाधान यह है कि वहाँ सृष्टिवर्णनके प्रसङ्गमें यह बात कही गयी है और यहाँ 'वसिष्ठ तथा अगस्त्यजीकी मित्रावरुणके पुत्ररूपमें पुनस्तपति कैसे हुई?' इस प्रश्नके समाधानके प्रसङ्गमें मित्र और वरुण देवताका परिचय देना आवश्यक हुआ। ये दोनों बारह आदित्योंमें परिगणित हैं; अतः अदितिके उन बारहों पुत्रोंका पुनः वर्णन प्रसंगपरम्परा आ गया है; अतः पुनर्सर्जित-दोष नहीं मानना चाहिये।

धैरिदं वासरं नक्तं वर्तते क्रमशः सदा ।
 भर्गोऽशुस्त्वयमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ॥ १०
 सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महामते ।
 त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो विष्णुर्द्वादशमः स्मृतः ॥ ११
 एते च द्वादशादित्यास्तपन्ते वर्षयन्ति च ।
 तस्याश्च मध्यमः पुत्रो वरुणो नाम नामतः ॥ १२
 लोकपाल इति ख्यातो वारुण्यां दिशि शब्दते ।
 पश्चिमस्य समुद्रस्य प्रतीच्यां दिशि राजते ॥ १३
 जातरूपमयः श्रीमानास्ते नाम शिलोच्चयः ।
 सर्वरत्नमयैः भृङ्गैर्धातुप्रस्रवणान्वितैः ॥ १४
 संयुक्तो भाति शैलेशो नानारत्नमयः शुभः ।
 महादरीगुहाभिश्च सिंहशार्दूलनादितः ॥ १५
 नानाविविक्तभूमीषु सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
 यस्मिन् गते दिनकरे तमसाऽऽपूर्यते जगत् ॥ १६
 तस्य भृङ्गे महादिव्या जाम्बूनदमयी शुभा ।
 रम्या मणिमयैः स्तम्भैर्विहिता विश्वकर्मणा ॥ १७
 पुरी विश्वावती नाम समृद्धा भोगसाधनैः ।
 तस्यां वरुण आदित्यो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ १८
 पाति सर्वाणिषांशोकान् नियुक्तो ब्रह्मणा स्वयम् ।
 उपास्यमानो गन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ १९
 दिव्यगन्धानुलिमाङ्गो दिव्याभरणाभूषितः ।
 कदाचिद्गुरुणो यातो मित्रेण सहितो वनम् ॥ २०
 कुरुक्षेत्रे शुभे रम्ये सदा ब्रह्मर्षिसेविते ।
 नानापुष्पफलोपेते नानातीर्थसमाकुले ॥ २१
 आश्रमा यत्र दृश्यन्ते मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
 तस्मिंस्तीर्थे समाश्रित्य बहुपुष्पफलोदके ॥ २२
 चीरकृष्णाजिनधरी चरन्तौ तप उत्तमम् ।
 तत्रैकस्मिन् वनोद्देशे विमलोदो हृदः शुभः ॥ २३

उन्होंने द्वारा सर्वदा क्रमशः दिन और रात होते रहते हैं ।
 भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्,
 त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु हैं । ये बारह आदित्य
 तपते और वर्षा करते हैं ॥ १-११ १/२ ॥

अदितिके मध्यम पुत्र वरुण 'लोकपाल' कहे गये
 हैं; इनकी स्थिति वरुण-दिशा (पश्चिम)-में बतलायी
 जाती है । वे पश्चिम दिशामें पश्चिम समुद्रके तटपर सुशोभित
 होते हैं । वहाँ एक सुन्दर सुवर्णमय पर्वत है । उसके
 शिखर सब रत्नमय हैं । उनपर नाना प्रकारकी धातुएँ और
 जहने हैं । इनसे पुच्छ और नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण
 वह सुन्दर पर्वत बड़ी शोभा पाता है । उसमें बड़े-बड़े दर्रे
 और गुहाएँ हैं, जहाँ बाघ और सिंह दहाड़ते रहते हैं ।
 वहाँके अनेकानेक एकान्त स्थलोंपर सिद्ध और गन्धर्व
 वास करते हैं । जब सूर्य वहाँ पहुँचते हैं, तब समस्त संसार
 अन्धकारमें पूर्ण हो जाता है । उसी पर्वतके शिखरपर
 विश्वकर्माजी वनायी हुई एक 'विश्वावती' नामकी शोभनपुरी
 है, जो बड़ी, दिव्य तथा सुवर्णसे बनी हुई है और उसमें
 मणिपोंके खंभे लगे हैं । इस प्रकार वह पुरी रमणीय एवं
 सम्पूर्ण भोग-साधनोंसे सम्पन्न है । उसीमें अपने तेजसे प्रकाशित
 होते हुए 'वरुण' नामक आदित्य ब्रह्माजीकी प्रेरणासे इन
 सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं । वहाँ उनकी सेवामें
 गन्धर्व और अप्सराएँ रहा करती हैं ॥ १२-१९ ॥

एक दिन वरुण अपने अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप
 लगाये, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो 'मित्र' के साथ वनको
 गये । ब्रह्मर्षिगण सदा जिसका सेवन करते हैं, जो नाना
 प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त तथा अनेक तीर्थोंसे व्याप्त
 है; जहाँ ऊर्ध्वरेता मुनियोंके आश्रम दृष्टिगोचर होते हैं तथा
 जो प्रचुर फल-फूल और जलसे पूर्ण है, उस सुन्दर सुरम्य
 कुरुक्षेत्रतीर्थमें पहुँचकर वे दोनों देवता चीर और कृष्णमृगचर्म
 धारण करके तपस्या करने लगे । वहाँपर वनके एक
 भागमें निर्मल जलसे भरा हुआ एक सुन्दर सरोवर है,

बहुगुल्मलताकीर्णो नानापक्षिनिषेवितः ।
नानातरुवनच्छत्रो नलिन्या चोपशोभितः ॥ २४

पीण्डरीक इति ख्यातो मीनकच्छपमेवितः ।
ततस्तु मित्रावरुणौ भ्रातरी वनचारिणौ ।
तं तु देशं गत्वा देवीं विचरन्तीं यदुच्छया ॥ २५

ताभ्यां तत्र तदा दृष्टा उर्वशी तु वराप्सराः ।
स्नायन्ती सहितान्याभिः सखीभिः सा वसनन् ।
गायन्ती च हसन्ती च विभ्रस्ता निर्जने वने ॥ २६

गौरी कमलगर्भाभा स्निग्धकृष्णशिरोरुहा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी रक्तोष्ठी मृदुभाषिणी ॥ २७

शङ्खकुन्देन्दुधवलैर्दन्तैरविरलैः समैः ।
सुधुः सुवास सा सुमुखी सुललाटा मनस्विनी ॥ २८

सिंहवत् सूक्ष्ममध्याङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ।
मधुरालापचतुरा सुमध्या चारुहासिनी ॥ २९

रक्तोत्पलकरा तन्वी सुपदी विनयान्विता ।
पूर्णचन्द्रनिभा बाला मत्तद्विरदगामिनी ॥ ३०

दृष्ट्वा तस्यास्तु तद्रूपं ती देवी विस्मयं गती ।
तस्या हास्येन तास्येन स्मितेन ललितेन च ॥ ३१

मृदुना वायुना शैव शीतानिलसुगन्धिना ।
मत्तभ्रमरगीतेन पुंस्कोकिलरुतेन च ॥ ३२

सुस्वरेण हि गीतेन उर्वश्या मधुरेण च ।
ईक्षितो च कटाक्षेण स्कन्दतुस्तावुभावपि ।

निमेषः शापादथोत्क्रम्य स्वदेहान्मुनिसत्तम ॥ ३३

वसिष्ठ मित्रावरुणात्मजोऽसी-
त्यधोचुरागत्य हि विभ्रुदेवाः ।

रेतस्त्रिभागं कमलेऽचरत्तद्

वसिष्ठ एवं तु पितामहोक्तेः ॥ ३४

जो बहुत-सो झाड़ियों और बेलोंसे आवृत है; अनेकानेक पक्षी उसका सेवन करते हैं। वह भौंते-भौंतेके वृक्षसमूहोंमें आच्छन्न और कमलोंसे सुशोभित है। उस सरोवरकी 'पीण्डरीक' नामसे प्रसिद्धि है। उसमें बहुत-सी मछलियाँ और कछुए निवास करते हैं। तब आरम्भ करनेके पश्चात् वे दोनों भाई—मित्र और वरुणदेवता एक दिन वनमें विपरण करते और स्वैच्छानुसार धूमते हुए उस सरोवरको ओर गये ॥ २०—२५ ॥

वहाँ उन दोनोंने उस समय श्रेष्ठ एवं सुन्दरी अप्सरा उर्वशीको देखा, जो अपनी अन्य सहैलियोंके साथ स्नान कर रही थी। वह सुमुखी अप्सरा उस निर्जन वनमें विह्वल होकर हँसती और गायी थी। उसका वर्ण गोरा था। कमलके भीतरी भागके समान उसकी कानि थी। उसकी अलंके काली काली और चिकनी थीं, और वह कमल-दलके समान बड़ी-बड़ी थीं, होठ लाल थे, उसका भाषण बहुत ही मधुर था। उसके दंत शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमाके समान रंगके, परस्पर मिले हुए और बराबर थे। उस मनस्विनीकी भी हैं, नासिका, मुख और ललाट—सभी सुन्दर थे। कटिभाग सिंहके कटिप्रदेशकी भाँति पतला था। उरोज, ऊरु और जघन—ये मोटे और मजबूत थे। वह मधुर भाषण करनेमें चतुर थी। उसका मध्यभाग सुन्दर और मुस्कान मनोहर थी। दोनों हाथ लाल कमलके समान सुन्दर एवं कोमल थे। शरीर पतला और पैर सुन्दर थे। वह बाला बड़ी ही विनोदनी थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रके समान आह्लादजनक और गति मधु मकराजके समान मन्द थी। उर्वशीके उस दिव्य रूपको देखकर वे दोनों देवता विस्मयमें पड़ गये। उसके लास्य (नृत्य), हास्य, ललितभाव-मिश्रित मन्द मुसकान और मधुर सुरीले गानसे तथा शीतल-मन्द सुगन्धित मलयानिलके स्पर्शसे एवं मतवाले भीरोंके संगीत और कोकिलोंके कलरवसे उन दोनोंका मन और भी मग्न हो गया। साथ ही उर्वशीकी तिरछी नितवनके तिकार होकर वे दोनों ही वहाँ स्थलित हो गये (उनके चोखेका पतन हो गया)। मुनिसत्तम! इसके बाद निम्निके शापवश वसिष्ठजीका जीवात्मा अपने शरीरमें पृथक् होकर (मित्रावरुणके चोखेमें आविष्ट हुआ) ॥ २६—३३ ॥

'वसिष्ठ! तुम मित्रावरुणके पुत्र होओगे'—इस प्रकार विभ्रुदेवोंने (निम्निके श्रुतमें) आकर कहा था तथा ब्रह्मजीका भी यही कथन था; अतएव मित्रावरुणके तीन स्वर्णोपर

* एक बार राजा विमले यह करनेकी इच्छासे अपने पुत्रहित वसिष्ठजीसे काममें निकल। वसिष्ठजीने कहा—'मैं देवलोकाँमें एक यज्ञ आरम्भ करा चुका हूँ। उसके समस्त होनेतक और आरत यह उचित नहीं। वहाँसे आकर हम आनका यज्ञ आरम्भ करणेंगे।' विमले उसकी प्रार्थना नहीं की। वसिष्ठजीने औरनेत्र यह सोच देख करजबकी राजा विमले कि 'मैं यज्ञित हो जाओ।' यह राजा ने भी राजा विमले कि 'आपका भी यह शरीर न रहे।'।

त्रिधा समभवद्रेतः कमलेऽथ स्थले जले ।
अरविन्दे वसिष्ठस्तु जातः स मुनिसत्तमः ।
स्थले त्वगस्त्यः सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ॥ ३५

स तत्र जातो मतिमान् वसिष्ठः
कुम्भे त्वगस्त्यः सलिलेऽथ मत्स्यः ।
स्थानत्रये तत्पतितं समानं
मित्रस्य यस्माद्गुरुणस्य रेतः ॥ ३६

एतस्मिन्नेव काले तु गता सा उर्वशी दिवम् ।
उपेत्य तानुपीन् देवी गता भूयः स्वपाश्र्वम् ।
यमावपि तु तप्येते पुनरुग्रं परं तपः ॥ ३७

तपसा प्राप्तुकामी ती परं ज्योतिः सनातनम् ।
तपस्यन्ती सुरश्रेष्ठी ब्रह्माऽऽगत्येदमब्रवीत् ॥ ३८

मित्रावरुणकौ देवी पुत्रवन्ती महाद्युती ।
सिद्धिर्भविष्यति यथा युवयोर्वैष्णवी पुनः ॥ ३९

स्वाधिकारेण स्थायेतामधुना लोकसाक्षिकौ ।
इत्युक्त्वानर्दधे ब्रह्मा ती स्थितौ स्वाधिकारकौ ॥ ४०

एवं ते कथितं विप्र वसिष्ठस्य महात्मनः ।
मित्रावरुणपुत्रत्वमगस्त्यस्य च धीमतः ॥ ४१

इदं पुंसीयमाख्यानं वारुणं पापनाशनम् ।
पुत्रकामास्तु ये केचिच्छृण्वन्तीदं शुचिब्रताः ।
अचिरादेव पुत्रांस्ते लभन्ते नात्र संशयः ॥ ४२

यश्चेतत्पठते नित्यं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ।
देवाश्च पितरस्तस्य तृप्ता यान्ति परं सुखम् ॥ ४३

यश्चेतच्छृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।
मन्दते स सुखं भूमौ विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४४

इत्येतदाख्यानमिदं मयेरितं
पुरातनं वेदविद्वद्दीरितम् ।

पठिष्यते यस्तु शृणोति सर्वदा
स याति शुद्धो हरिलोकमग्निसा ॥ ४५

गिरे हुए बीर्यमेंसे जो भाग कमलपर गिरा था, उसीसे वसिष्ठजी हुए। उन दोनों देवताओंका बीर्य तीन भागोंमें विभक्त होकर कमल, जल और स्थलपर (घट्टमें) गिरा। कमलपर गिरे हुए बीर्यसे मुनिवर वसिष्ठ उत्पन्न हुए, स्थलपर गिरे हुए रेतसूसे अगस्त्य और जलमें गिरे हुए मत्स्यसे अत्यन्त कान्तिमान् मत्स्यकी उत्पत्ति हुई। इन्हें तरह उस कमलपर बुद्धिमान् वसिष्ठ, कुम्भमें अगस्त्य और जलमें मत्स्यका आविर्भाव हुआ; क्योंकि मित्रावरुणका बीर्य त्रेनों स्थानोंपर बराबर गिरा था। इसी समय उर्वशी स्वर्गलोकमें चली गयी। वसिष्ठ और अगस्त्य—इन दोनों ब्रह्मपत्नीको साथ लेकर वे दोनों देवता पुनः अपने आश्रममें लौट आये और पुनः इन दोनोंने अत्यन्त उग्र तप आरम्भ किया ॥ ३४—३७ ॥

तपस्याके द्वारा सनातन परम ज्योति (ब्रह्मधाम) को प्राप्त करनेकी इच्छाकाले उन दोनों तपस्वी देवधरोंसे ब्रह्माजीने आकर यह कहा—‘महान् कान्तिमान् और पुत्रवान् मित्र तथा वरुण देवताओं! तुम दोनोंको पुनः वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होगी। इस समय संसारके साक्षीरूपसे तुम लोग अपने अधिकारपर स्थित हो जाओ।’ यों कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे दोनों देवता अपने अधिकृत पदपर स्थित हुए ॥ ३८—४० ॥

ब्राह्मण। इस प्रकार महात्मा वसिष्ठजी और बुद्धिमान् अगस्त्यजी जिस तरह मित्रावरुणके पुत्र हुए थे, वह सब प्रसन्न मैंने आपसे कह दिया। यह वरुणदेवता-सम्बन्धी पुंसगनाख्यान पाप नष्ट करनेवाला है। जो लोग पुत्रकी कामनासे शुद्ध ब्रतका आचरण करते हुए इसका श्रवण करते हैं, वे शीघ्र ही अनेक पुत्र प्राप्त करते हैं—इसमें संदेह नहीं है। जो उत्तम ब्राह्मण हव्य (देवयाग) और कव्य (पितृयाग) में इसका पाठ करता है, उसके देवता तथा पितर तृप्त होकर आगन्तु सुख प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण करता है, वह पृथ्वीपर सुखपूर्वक प्रसन्नताके साथ रहता है और फिर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। वेदवेत्ताओंके द्वारा प्रतिपादित इस पुरातन उपाख्यानको, जिसे मैंने कहा है, जो लोग सादर पढ़ेंगे और सुनेंगे, वे शुद्ध होकर अनायास ही विष्णुलोकको प्राप्त कर लेंगे ॥ ४१—४५ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे पुंसगनाख्यानं चमकौऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रमाण श्रीनारसिंहपुराणमें ‘पुंसगना’ नामक कथा अध्याय द्वारा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युञ्जय-स्तोत्र' का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना

श्रीभरद्वाज उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः ।
एतदाख्याहि मे सूत त्वयैतत् सूचितं पुरा ॥ १

सूत उवाच

इदं तु महदाख्यानं भरद्वाज शृणुष्व मे ।
शृण्वन्तु ऋषयश्च मे पुरावृत्तं ब्रवीम्यहम् ॥ २
कुसक्षेत्रे महापुण्ये व्यासपीठे वसाम्भवे ।
तत्रासीनं मुनिवरं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ ३
कृतस्नानं कृतजपं मुनिशिष्यैः समावृतम् ।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४
प्रणिपत्य यथान्यायं शुकः परमधार्मिकः ।
इममेवार्थमुद्दिश्य तं पप्रच्छ कुताञ्जलिः ॥ ५
यमुद्दिश्य वयं पृष्टास्त्वयात्र मुनिसंनिधौ ।
नरसिंहस्य भक्तेन कृततीर्थनिवासिना ॥ ६

श्रीशुक उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः ।
एतदाख्याहि मे तात श्रोतुमिच्छामि तेऽधुना ॥ ७

व्यास उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना यथा मृत्युः पराजितः ।
तथा ते कथयिष्यामि शृणु वत्स महामते ॥ ८
शृण्वन्तु मुनयश्च मे कथ्यमानं मयाधुना ।
मच्छिष्याश्चैव शृण्वन्तु महदाख्यानमुत्तमम् ॥ ९

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी! मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको कैसे पराजित किया? यह मुझे बताइये। आपने पहले यह सूचित किया था कि वे मृत्युपर विजयी हुए थे* ॥ १ ॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी! इस महान् पुरातन इतिहासको आप और ये सभी ऋषि सुनें; मैं कह रहा हूँ। आपका पवित्र कुस्थेत्रमें, व्यासपीठपर, एक सुन्दर आश्रममें स्नान तथा जप आदि समाप्त करके व्यासासनपर बैठे हुए और शिष्यभूत मुनियोंसे घिरे हुए मुनिवर महर्षि कृष्णद्वैपायनसे, जो वेद और वेदार्थके तत्त्ववेत्ता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ थे, परम धर्मात्मा शुकदेवजीने हाथ जोड़ उन्हें यथोचितरूपसे प्रणाम कर इसी विषयको जाननेके लिये प्रश्न किया था, जिसके लिये कि इन मुनियोंके निकट आप पुण्यतीर्थनिवासी नृसिंहभक्तने मुझसे पूछा है ॥ २-६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! मार्कण्डेय मुनिने मृत्युपर कैसे विजय पायी? यह कथा कहिये। इस समय मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

व्यासजी बोले—महामते पुत्र! मार्कण्डेय मुनिने जिस प्रकार मृत्युपर विजय पायी, वह तुमसे कहता हूँ, सुनो। मुझसे कहे जानेवाले इस महान् एवं उत्तम उपाख्यानको ये सभी मुनि और मैं शिष्यगण भी सुनें।

* यद्यपि नरसिंहपुराणके तब अध्यायमें मार्कण्डेयजीका नाम नहीं मिला था। अतः 'आपने पहले यह सूचित किया था—(त्वयैतत् सूचितं पुरा)' इत्यादि कथनकी कोई संभावना नहीं होती। तबही प्रथम अध्यायके वीरहर्षे स्तोत्रमें इस बातकी सूचना मिलती है कि भरद्वाजजीने सूतजीके मुखसे पहले 'व्यासपीठे' सूची थी, उसके बाद उन्होंने 'नरसिंहसंहिता' सुननेको इच्छा प्रकट की। तब सूतजीने 'नरसिंहसंहिता' सुनाना आरम्भ किया था। अतः यह अनुमान लगाना जा सकता है कि नारदासंहिता-खण्डके प्रारम्भमें भरद्वाजजीको सूतजीके मुखसे मार्कण्डेयजीके मृत्युपर विजय पहलेके इतिहासकी कोई सूचना प्राप्त हुई हो, जिसका उपयोग उन्होंने यहाँ दिलाया है।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नो मूकण्डुर्नाम वै सुतः ।
 सुमित्रा नाम वै पत्नी मूकण्डोस्तु महात्मनः ॥ १०
 धर्मज्ञा धर्मनिरता पतिशुश्रूषणे रता ।
 तस्यां तस्य सुतो जातो मार्कण्डेयो महामतिः ॥ ११
 भृगुपौत्रो महाभागो बालत्वेऽपि महामतिः ।
 ववुधे वल्लभो बालः पित्रा तत्र कृतक्रियः ॥ १२
 तस्मिन् वै जातमात्रे तु आगमी कश्चिदब्रवीत् ।
 वर्षे द्वादशमे पूर्णे मृत्युरस्य भविष्यति ॥ १३
 श्रुत्वा तन्मातृपितरौ दुःखितौ तौ बभूवतुः ।
 विदूयमानहृदयौ तं निरीक्ष्य महामते ॥ १४
 तथापि तत्पिता तस्य यत्नात् काले क्रियां ततः ।
 चकार सर्वा मेधावी उपनीतो गुरोगृहे ॥ १५
 वेदानेवाभ्यसन्नास्ते गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
 स्वीकृत्य वेदशास्त्राणि स पुनर्गृहमागतः ॥ १६
 मातापितृभ्यमस्कृत्य पादयोर्विनयान्वितः ।
 तस्थी तत्र गृहे धीमान् मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ १७
 तं निरीक्ष्य महात्मानं सत्पुत्रं च विचक्षणम् ।
 दुःखितौ तौ भृशं तत्र तन्मातापितरौ शुचा ॥ १८
 तौ दृष्ट्वा दुःखमापन्नौ मार्कण्डेयो महामतिः ।
 उवाच वचनं तत्र किमर्थं दुःखमीदृशम् ॥ १९
 सदैतत् कुरुषे मातस्तातेन सह धीमता ।
 वक्तुमर्हसि दुःखस्य कारणं मम पृच्छतः ॥ २०
 इत्युक्त्वा तेन पुत्रेण माता तस्य महात्मनः ।
 कथयामास तत्सर्वमागमी यदुवाच ह ॥ २१
 तच्छ्रुत्वासी मुनिः प्राह मातरं पितरं पुनः ।
 पित्रा सार्धं त्वया मातर्न कार्यं दुःखमण्वपि ॥ २२
 अपनेष्यामि भो मृत्युं तपसा नात्र संशयः ।
 यथा चाहं चिरायुः स्यां तथा कुर्यामहं तपः ॥ २३
 इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य पितरौ वनमभ्यगात् ।
 वल्लीवटं नाम वनं नानाऋषिनिषेवितम् ॥ २४
 तत्रासी मुनिभिः सार्धमासीनं स्वपितामहम् ।
 भृगुं ददर्श धर्मज्ञं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ २५

भृगुजीके उनकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे 'मूकण्डु' नामक एक पुत्र हुआ। महात्मा मूकण्डुकी पत्नी सुमित्रा हुई। यह धर्मको जाननेवाली, धर्मपरायणा और पतिकी सेवामें लगे रहनेवाली थी। इसीके गर्भसे मूकण्डुके पुत्र मेधावी मार्कण्डेयजी हुए। ये भृगुके पौत्र महाभाग मार्कण्डेय वचनमें भी बड़े बुद्धिमान् थे। पिताके द्वारा जातकर्म आदि संस्कार कर देनेपर माँ-बापके लाड़ले बालक मार्कण्डेयजी क्रमशः बढ़ने लगे ॥ ८—१२ ॥

उनके जन्म लेते ही किसी भविष्यवेत्ता ज्योतिषीने यह कहा था कि 'बारहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही इस बालककी मृत्यु हो जायगी।' यह सुनकर उनके माता-पिता बहुत ही दुःखी हुए। महामते! उन्हें देख-देखकर उन दोनोंका हृदय व्यथित होता रहता था, तथापि उनके पिताने उनके नामकरण आदि सभी संस्कार किये। तत्पश्चात् मेधावी बालक मार्कण्डेय गुरुके घर ले जाये गये। वहाँ उनपर उपनयन-संस्कार हुआ। वहाँ ये गुरुकी सेवामें तपस्य रहकर वेदाभ्यास करते हुए ही रहने लगे। वेद-शास्त्रोंका यथावत् अध्ययन करके वे पुनः अपने घर लौट आये। घर आनेपर बुद्धिमान् महामुनि मार्कण्डेयने विनयपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें शीश सुकाया और तबसे वे घरपर ही रहने लगे ॥ १३—१७ ॥

सुकदेव। उस समय उन परम बुद्धिमान् महात्मा एवं विद्वान् पुत्रको देखकर माता पिता शोकसे बहुत ही दुःखी हुए। उन्हें दुःखी देखकर महामति मार्कण्डेयजीने कहा—'माँ! तुम बुद्धिमान् पिताजीके साथ क्यों इस प्रकार निरन्तर दुःखी रहा करती हो? मैं पूछता हूँ, मुझसे अपने दुःखका कारण बतलाओ।' अपने पुत्र मार्कण्डेयजीके इस प्रकार पूछनेपर उन महात्माकी माताने, ज्योतिषी जो कुछ कह गया था, वह सब कह सुनाया। यह सुनकर मार्कण्डेयमुनिने माता-पितासे कहा—'माँ! तुम और पिताजी तनिक भी दुःख न मानो। मैं तपस्याके द्वारा अपनी मृत्युको दूर हटा दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं ऐसा तप करूँगा, जिससे चिरजीवी हो सकूँ' ॥ १८—२३ ॥

इस प्रकार कहकर, माता-पिताको आश्वासन देकर, वे अनेक ऋषियोंसे सुसेवित 'वल्लीवट' नामक वनमें गये। वहाँ पहुँचकर महामति मार्कण्डेयजीने मुनियोंके

अभिवाद्य यथान्यायं मुनींश्चैव स धार्मिकः ।
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तस्थौ तत्पुरतो दम्भी ॥ २६
 गतायुषं ततो दृष्ट्वा पौत्रं बालं महामतिः ।
 भृगुराह महाभागं मार्कण्डेयं तदा शिशुम् ॥ २७
 किमागतोऽसि पुत्रात्र पितुस्ते कुशलं पुनः ।
 मातुश्च बान्धवानां च किमागमनकारणम् ॥ २८
 इत्येवमुक्तो भृगुणा मार्कण्डेयो महामतिः ।
 उवाच सकलं तस्मै आदेशिवचनं तदा ॥ २९
 पौत्रस्य वचनं श्रुत्वा भृगुस्तु पुनरब्रवीत् ।
 एवं सति महाबुद्धे किं त्वं कर्म चिकीर्षसि ॥ ३०

मार्कण्डेय उवाच

भूतापहारिणं मृत्युं जेतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
 शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि तत्रोपायं वदस्व नः ॥ ३१

भृगुवाच

नारायणमनाराध्यं तपसा महता सुत ।
 को जेतुं शक्नुयान्मृत्युं तस्मात्तं तपसार्चय ॥ ३२
 तमनन्तमजं विष्णुमच्युतं पुरुषोत्तमम् ।
 भक्तप्रियं सुरश्रेष्ठं भक्त्या त्वं शरणं व्रज ॥ ३३
 तमेव शरणं पूर्वं गतवात्रारदो मुनिः ।
 तपसा महता वत्स नारायणमनामयम् ॥ ३४
 तत्प्रसादान्महाभाग नारदो ब्रह्मणः सुतः ।
 जरां मृत्युं विजित्याशु दीर्घायुर्वर्धते सुखम् ॥ ३५
 तमृते पुण्डरीकाक्षं नारसिंहं जनार्दनम् ।
 कः कुर्यान्मानवो वत्स मृत्युसत्तानिवारणम् ॥ ३६
 तमनन्तमजं विष्णुं कृष्णं जिष्णुं श्रियः पतिम् ।
 गोविन्दं गोपतिं देवं सततं शरणं व्रज ॥ ३७
 नरसिंहं महादेवं यदि पूजयसे सदा ।
 वत्स जेतासि मृत्युं त्वं सततं नात्र संशयः ॥ ३८

व्यास उवाच

उक्तः पितामहेनैवं भृगुणा पुनरब्रवीत् ।
 मार्कण्डेयो महातेजा विनयात् स्वपितामहम् ॥ ३९

साथ विराजमान अपने पितामह धर्मात्मा भृगुजीका दर्शन किया। उनके साथ ही अन्य ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन करके धर्मपरायण मार्कण्डेयजी मनोनिग्रहपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर भृगुजीके समक्ष खड़े हो गये। महामति भृगुजीने अपने बालक पौत्र महाभाग मार्कण्डेयको, जिसकी आयु प्रायः बीत चुकी थी, देखकर कहा—'वत्स! तुम यहाँ कैसे आये? अपने माता-पिता और बान्धवजनोंका कुशल कहो तथा यह भी बतलाओ कि यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है?' भृगुजीके इस प्रकार पूछनेपर महाशय मार्कण्डेयजीने उनसे उस समय ज्योतिषीकी कही हुई सारी बात कह सुनायी। पौत्रकी बात सुनकर भृगुजीने पुनः कहा—'महाबुद्धे! ऐसी स्थितिमें तुम कौन-सा कर्म करना चाहते हो?' ॥ २४—३० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन्! मैं इस समय प्राणियोंका अपहरण करनेवाले मृत्युको जीतना चाहता हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आप मुझे कोई उपाय बतायें ॥ ३१ ॥

भृगुजी बोले—पुत्र! बहुत बड़े तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना किये बिना कौन मृत्युको जीत सकता है? इसलिये तुम तपस्याद्वारा उनकी अर्चन करो। भक्तोंके प्रियतम और देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ उन अनन्त, अजन्मा, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वत्स! पूर्वकालमें नारदमुनि भी महान् तपके द्वारा उनकी अनामय भगवान् नारायणकी शरणमें गये थे। महाभाग! ब्रह्मपुत्र नारदजी उनकी कृपासे जरा और मृत्युको शीघ्र ही जीतकर दीर्घायु-हो सुखपूर्वक रहते हैं। पुत्र! उन कमललोचन नृसिंहरूप भगवान् जनार्दनके बिना कौन मनुष्य यहाँ मृत्युकी सत्ताका निवारण कर सकता है? तुम निरन्तर उनकी अनन्त, अजन्मा, विजयी, कृष्णवर्ण, लक्ष्मीपति, गोविन्द, गोपति भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ! वत्स! यदि तुम सदा उन महान् देवता भगवान् नरसिंहकी पूजा करते रहोगे तो सदाके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३२—३८ ॥

व्यासजी बोले—पितामह भृगुके इस प्रकार कहनेपर महान् तेजस्वी मार्कण्डेयजीने उनसे विनयपूर्वक कहा ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आराध्यः कथितस्तात विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ।
कथं कुत्र मया कार्यमच्युताराधनं गुरो ।
येनासौ मम तुष्टस्तु मृत्युं सहोऽपनेष्यति ॥ ४०

भृगुवाच

तुङ्गभद्रेति विख्याता या नदी सह्यपर्वते ।
तत्र भद्रवटे वत्स त्वं प्रतिष्ठाप्य केशवम् ॥ ४१
आराध्य जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं मनः संयम्य तत्त्वतः ॥ ४२
हृत्पुण्डरीके देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
ध्यायन्नेकमना वत्स द्वादशाक्षरमभ्यसन् ॥ ४३
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
इमं मन्त्रं हि जपतो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
प्रीतो भवति विश्वात्मा मृत्युं येनापनेष्यति ॥ ४४

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याथ स जगाम तपोवनम् ॥ ४५
सह्यपादोद्भवायास्तु भद्रायास्तटमुत्तमम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ ४६
गुल्मवैष्णुलताकीर्णं नानामुनिजनाकुलम् ।
तत्र विष्णुं प्रतिष्ठाप्य गन्धधूपादिभिः क्रमात् ॥ ४७
पूजयामास देवेशं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
पूजयित्वा हरिं तत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ४८
निराहारो मुनिस्तत्र वर्षमेकमतन्द्रितः ।
मात्रोक्तकाले त्यासत्रे दिने तत्र महामतिः ॥ ४९
स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ५०
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा कृत्वासौ प्राणसंयमम् ।
ॐकारोच्चारणाद्धीमान् हृत्पद्मं स विकासयन् ॥ ५१
तन्मध्ये रविसोमग्निमण्डलानि यथाक्रमम् ।
कल्पयित्वा हरेः पीठं तस्मिन् देशे सनातनम् ॥ ५२

मार्कण्डेयजी बोले—तात! गुरो! आपने विश्वपति भगवान् विष्णुको आराध्य तो बतलाया, परंतु मैं उन अच्युतकी आराधना कहाँ और किस प्रकार करूँ? जिससे वे शीघ्र प्रसन्न होकर मेरी मृत्युको दूर कर दें ॥ ४० ॥

भृगुजी बोले—सह्यपर्वतपर जो 'तुङ्गभद्रा' नामसे विख्यात नदी है, वहाँ 'भद्रवट' नामक वृक्षके नीचे जगन्नाथ भगवान् केशवकी स्थापना कर क्रमशः गन्ध और पुष्प आदिसे उनकी पूजा करो। इन्द्रियोंको मनमें नियंत्रित कर मनको भी पूर्णतः संयममें रखते हुए एकाग्रचित्त हो, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो और अपने हृदयकमलमें शङ्ख, चक्र, गदा (एवं पद्म) धारण किये देवेश भगवान् विष्णुका ध्यान किया करो। जो देवाधिदेव शार्ङ्गधन्या विष्णुके इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, उसके ऊपर वे विश्वात्मा प्रसन्न होते हैं। तुम भी इसका जप करो जिससे प्रसन्न होकर वे तुम्हारी मृत्यु दूर कर दें ॥ ४१—४४ ॥

व्यासजी कहते हैं—वत्स! भृगुजीके इस प्रकार कहनेपर उन्हें प्रणाम करके मार्कण्डेयजी सह्यपर्वतकी शङ्खसे निकली हुई तुङ्गभद्राके तटान्त तटपर विविध प्रकारके वृक्ष और लताओंमें भरे हुए नाना भौतिके पुष्पोंसे सुशोभित, गुल्म, लता और वैष्णुओंसे व्याप्त तथा अनेकानेक मुनिजनसे पूर्ण तपोवनमें गये। वहाँ ये महामुनि देवेश भगवान् विष्णुकी स्थापना करके क्रमशः गन्ध-पुष्प आदिसे उनकी पूजा करने लगे। भगवान्की पूजा करते हुए वहाँ उन्होंने निरालस्यभावसे निराहार राहकर सालभर अत्यन्त दुष्कर तप किया। माताका बतलाया हुआ समय निकट आनेपर उस दिन महामति मार्कण्डेयजीने वहाँ स्नान करके पूर्वोक्त विधिसे विष्णुकी पूजा की और स्वस्तिकासन बौध्द इन्द्रियममूहको मनमें संयत कर विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त हो प्राणायाम किया। फिर ॐकारके उच्चारणसे हृदयकमलको विकसित करते हुए उसके मध्यभागमें क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निमण्डलको कल्पना करके भगवान् विष्णुका पीठ निश्चित किया

पीताम्बरधरं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
भावपुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ५३
ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायंस्ततो मन्त्रमुदीरयत् ।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५४

व्यास उवाच

इत्येवं ध्यायतस्तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
मनस्तत्रैव संलग्नं देवदेवे जगत्पती ॥ ५५
ततो यमाज्ञया तत्र आगता यमकिंकराः ।
पाशहस्तास्तु तं नेतुं विष्णुदूतैस्तु ते हताः ॥ ५६
शूलैः प्रहन्यमानास्तु द्विजं मुक्त्वा ययुस्तदा ।
वयं निवर्त्य गच्छामो मृत्युरेवागमिष्यति ॥ ५७

विष्णुदूत उवाच

यत्र नः स्वामिनो नाम लोकनाथस्य शार्ङ्गिणः ।
को यमस्तत्र मृत्युर्वा कालः कलयतां वरः ॥ ५८

व्यास उवाच

आगत्य स्वयमेवाह मृत्युः पार्श्वं महात्मनः ।
मार्कण्डेयस्य बधाम विष्णुकिंकरशङ्कया ॥ ५९
तेऽप्युद्यम्याशु मुशलानायसान् विष्णुकिंकराः ।
विष्णवाज्ञया हनिष्यामो मृत्युमद्योति संस्थिताः ॥ ६०
ततो विष्णुर्षीतमना मार्कण्डेयो महामतिः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥ ६१
विष्णुर्नैवोदितं यत्तत्स्तोत्रं कर्णं महात्मनः ।
सुभाषितेन मनसा तेन तुष्टाव माधवम् ॥ ६२

मार्कण्डेय उवाच

नारायणं सहस्राक्षं पचनाभं पुरातनम् ।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६३
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६४
वासुदेवं जगद्योनिं भानुवर्णमतीन्द्रियम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६५

और उस स्थानपर पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी भावमय पुष्पोंसे पूजा करके उनमें अपने चित्तको लगा दिया। फिर उन ब्रह्म-स्वरूप श्रीहरिको ध्यान करते हुए वे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रका जप करने लगे ॥ ४५—५४ ॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! इस प्रकार ध्यान करते हुए बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीका मन उन देवाधिदेव जगदीश्वरमें लीन हो गया। तदनन्तर यमराजकी आज्ञासे उन्हें ले जानेके लिये हाथोंमें पाश लिये हुए यमदूत वहाँ आये; परंतु भगवान् विष्णुके दूतोंने उन्हें मार भगाया। शूलोंसे मारे जानेपर वे उस समय विप्रवर मार्कण्डेयकी छोड़कर भाग चले और यह कहते गये कि 'हमलोग तो लौटकर चले जा रहे हैं, परंतु अब साक्षात् मृत्युदेव ही यहाँ आयेगे' ॥ ५५—५७ ॥

विष्णुदूत बोले—जहाँ हमारे स्वामी जगदीश्वर शङ्खचक्रगदाधर भगवान् विष्णुका नाम जपा जाता हो, वहाँ उनकी क्या घिसात है? घसनेवालोंमें श्रेष्ठ काल, मृत्यु अथवा यमराज कौन होते हैं? ॥ ५८ ॥

व्यासजी कहते हैं—यमदूतोंके लौटनेके बाद साक्षात् मृत्युने ही वहाँ आकर उन्हें यमलोक चलनेकी कहा, परंतु श्रीविष्णुदूतोंके डरसे वे महात्मा मार्कण्डेयके आसपास ही घूमते रह गये; उन्हें स्पर्श करनेका साहस न कर सके। इधर विष्णुदूत भी शीघ्र ही लोहेके मूसल उठाकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि 'आज हमलोग विष्णुकी आज्ञासे मृत्युका बध कर डालेंगे।' उत्पश्चात् महामति मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णुमें चित्त लगाये उन देवाधिदेव जनार्दनकी प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने ही वह स्तोत्र उन महात्माके कानमें कह दिया। उसी सुभाषित स्तोत्रद्वारा उन्होंने मनोयोगपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्तुति की ॥ ५९—६२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रियोंके स्वामी, पुरातन पुरुष तथा पचनाभ (अपनी नाभिसे ब्रह्माण्डमय कमलकी प्रकट करनेवाले) हैं, उन श्रीनारायणदेवकी मैं प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा? मैं अन्न, अजन्मा, अत्रिकारी, गोविन्द, कमलनयन भगवान् केशवकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा? मैं संसारकी उत्पत्तिके स्थान, सृष्टिके समान प्रकाशमान, इन्द्रियतोत वासुदेव (सर्वव्यापी देवता) भगवान् दामोदरकी शरणमें आ गया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा?

शङ्खचक्रधरं देवं छत्ररूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६६

बाराहं वामनं विष्णुं नरसिंहं जनार्दनम् ।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६७

पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम् ।
लोकनार्थं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६८

भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६९

सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ७०

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।
अपघातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ॥ ७१

इति तेन जितो मृत्युमार्कण्डेयेन धौपता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥ ७२

मृत्युञ्जयमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥ ७३

य इदं पठते भक्त्या त्रिकालं नियतः शुचिः ।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ॥ ७४

हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं
नारायणं शाश्वतमादिदेवम् ।
संचिन्त्य सूर्यादपि राजमानं
मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव ॥ ७५

जिनका स्वरूप अव्यक्त है, जो विकारोंसे रहित है, उन शङ्ख-चक्रधारी भगवान् अधोक्षजकी मैं शरणमें आ गया; मृत्यु मेरा क्या कर लेगा? मैं बाराह, वामन, विष्णु, नरसिंह, जनार्दन एवं माधवकी शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा? मैं पवित्र, पुष्कररूप अथवा पुष्कल (पूर्ण) रूप, कल्याणयोज, जगत्-प्रतिपालक एवं लोकनाथ भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा? जो समस्त भूतोंके आत्मा, महात्मा (परमात्मा) एवं जगत्की योनि (उत्पत्तिके स्थान) होते हुए भी स्वयं अयोनिज हैं, उन भगवान् विश्वरूपकी मैं शरणमें आया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा? जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप हैं, उन महायोगी सनातन देवकी मैं शरणमें आया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा? ॥ ६६—७० ॥

महात्मा मार्कण्डेयके द्वारा उच्चारित हुए उस स्तोत्रको सुनकर विष्णुदूतोंद्वारा पीडित हुए मृत्युदेव वहाँसे भाग चले। इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेयने मृत्युपर विजय पायी। सच है, कमललोचन भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। स्वयं भगवान् विष्णुने ही मार्कण्डेयजीके हितके लिये मृत्युको शान्त करनेवाले इस परम पावन मङ्गलमय मृत्युञ्जय-स्तोत्रका उपदेश दिया था। जो नित्य नियमपूर्वक पवित्रभावसे भक्तियुक्त होकर सायं, प्रातः और मध्यह्न—तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् अच्युतमें चित्त लगानेवाले उस पुरुषका अकालमरण नहीं होता। योगी मार्कण्डेयने अपने हृदय कमलमें सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान सनातन पुराण-पुरुष आदिदेव नारायणका चिन्तन करके तत्काल मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली ॥ ७१—७५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयमुनिपुत्रोक्तं तमः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेयकी मृत्युपर विजय' नामक सातवीं अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

आठवाँ अध्याय

मृत्यु और दूतोंको समझाते हुए यमका उन्हें वैष्णवोंके पास जानेसे रोकना; उनके मुँहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नरकस्थ जीवोंका भगवान्‌को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धाममें जाना

श्रीव्यास उवाच

मृत्युश्च किंकराश्चैव विष्णुदूतैः प्रपीडिताः ।
स्वराजस्तेऽनु निर्वेशं गत्वा ते चुक्रुरुर्भुशम् ॥ १

शृणु किंकार उवाच

शृणु राजन् वचोऽस्माकं तवाग्रे यद् व्रवीमहे ।
त्वदादेशाद्द्वयं गत्वा मृत्युं संस्थाप्य दूरतः ॥ २

ब्राह्मणस्य समीपं च भृगोः पौत्रस्य सत्तम ।
तं ध्यायमानं कमपि देवमेकाग्रमानसम् ॥ ३

गन्तुं न शक्तास्तत्पार्श्वं वयं सर्वे महामते ।
यावत्तावन्महाकायैः पुरुषैर्मुशलैर्हतः ॥ ४

वयं निवृत्तास्तद्दीक्ष्य मृत्युस्तत्र गतः पुनः ।
अस्माग्निर्भर्त्स्य तत्रायं तेनैर्मुशलैर्हतः ॥ ५

एवमत्र तमानेतुं ब्राह्मणं तपसि स्थितम् ।
अशक्ता वयमेवात्र मृत्युना सह वै प्रभो ॥ ६

तद्व्रवीहि महाभाग यद्वह्य ब्राह्मणस्य तु ।
देवं कं ध्यायते विप्रः के वा ते यैर्हता वयम् ॥ ७

व्यास उवाच

इत्युक्तः किंकरैः सर्वैर्मृत्युना च महामते ।
ध्यात्वा क्षणं महाबुद्धिः प्राह वैवस्वतो ययः ॥ ८

यय उवाच

शृण्वन्तु किंकराः सर्वे मृत्युश्चान्ये च मे वचः ।
सत्यमेतत्प्रवक्ष्यामि ज्ञानं यद्योगमार्गतः ॥ ९

भृगोः पौत्रो महाभागो मार्कण्डेयो महामतिः ।
स ज्ञात्वाद्यात्मनः कालं गतो मृत्युजिगीषया ॥ १०

भृगुणोक्तेन मार्गेण स तपे परमं तपः ।
हरिमाराध्य मेधावी जपन् वै द्वादशाक्षरम् ॥ ११

श्रीव्यासजी बोले—विष्णुदूतोंके द्वारा अल्पना पीड़ित
हुए मृत्युदेव और यमदूत अपने राजा यमके भवनमें
जाकर बहुत रोने-कलपने लगे ॥ १ ॥

मृत्यु और यमदूत बोले—राजन्! आपके आगे हम
जो कुछ कह रहे हैं, हमारा इन बातोंको आप सुनें।
हमलोगोंने आपकी आज्ञाके अनुसार यहाँसे जाकर मृत्युको
तो दूर ठहरा दिया और स्वयं भृगुके पौत्र ब्राह्मण मार्कण्डेयके
समीप गये। परंतु सत्पुरुषोंशरीरमें! वह उस समय
एकाग्रचित्त होकर किसी देवताका ध्यान कर रहा था।
महामते! हम सभी लोग उसके पासतक पहुँचने भी नहीं
पाए थे कि बहुत से महाकाय पुरुष मूलतः हमें मारने
लगे। तब हमलोग तो लौट पड़े, परंतु यह देखकर
मृत्युदेव यहाँ फिर पधारे। तब हमें डाँट-फटकारकर उन
लोगोंने इन्हें भी मूलतः मारा। प्रभो! इस प्रकार तपस्यामें
स्थित हुए उस ब्राह्मणको यहाँतक लानेमें मृत्युसहित हम
सब लोग समर्थ न हो सके। महाभाग! उस ब्राह्मणका
जो तप है, उसे आप बतलाइये, वह किस देवताका
ध्यान कर रहा था और जिन लोगोंने हमें मारा, वे कौन
थे? ॥ २-७ ॥

व्यासजी कहते हैं—महामते! मृत्यु तथा यमदूत
दूतोंके इस प्रकार कहनेपर महाबुद्धि सूर्यकुमार ययने
क्षणभर ध्यान करके कहा ॥ ८ ॥

यय बोले—मृत्यु तथा मैं अन्य सभी किंकर आज
मेरी बात सुनें—योगमार्ग (समाधि) के द्वारा मैंने इस
समय जो कुछ जाना है, वही सब-सब बतला रहा हूँ।
भृगुके पौत्र महाबुद्धिमान् महाभाग मार्कण्डेयजी आजके
दिन अपनी मृत्यु जानकर मृत्युको जीतनेकी इच्छासे
तपोवनमें गये थे। यहाँ उन बुद्धिमान्ने भृगुजीके बतलाये
हुए मार्गके अनुसार भगवान् विष्णुकी आराधना एवं
द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हुए उत्कृष्ट तपस्या की है।

एकाग्रेणीव मनसा ध्यायते हृदि केशवम् ।
 सततं योगयुक्तस्तु स मुनिस्तत्र किंकराः ॥ १२
 हरिध्यानमहादीक्षाबलं तस्य महामुनेः ।
 नान्यद्वै प्राप्तकालस्य बलं पश्यामि किंकराः ॥ १३
 हृदिस्थे पुण्डरीकाक्षे सततं भक्तवत्सले ।
 पश्यन्तं विष्णुभूतं नु को हि स्यात् केशवाश्रयम् ॥ १४
 तेऽपि वै पुरुषा विष्णोर्वैयूयं ताडिता भृशम् ।
 अत ऊर्ध्वं न गन्तव्यं यत्र वै वैष्णवाः स्थिताः ॥ १५
 न चित्रं ताडनं तत्र अहं मन्ये महात्मभिः ।
 भवतां जीवनं चित्रं यक्षदत्तं कृपालुभिः ॥ १६
 नारायणपरं विप्रं कस्तं वीक्षितुमुत्सहेत् ।
 युष्माभिश्च महापापैर्माकण्डेयं हरिप्रियम् ।
 समानेतुं कृतो यत्रः समीचीनं न तत्कृतम् ॥ १७
 नरसिंहं महादेवं ये नराः पर्युपासते ।
 तेषां पार्श्वे न गन्तव्यं युष्माभिर्मम शासनात् ॥ १८

श्रीभगवत् उवाच

स एवं किंकरानुक्त्वा मृत्युं च पुरतः स्थितम् ।
 यमो निरीक्ष्य च जनं नरकस्थं प्रपीडितम् ॥ १९
 कृपया परया युक्तो विष्णुभक्त्या विशेषतः ।
 जनस्यानुग्रहाय तेनोक्ताश्च गिरः शृणु ॥ २०
 नरके पच्यमानस्य यमेन परिभाषितम् ।
 किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥ २१
 उदकेनाप्यलाभे तु द्रव्याणां पूजितः प्रभुः ।
 यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न पूजितः ॥ २२
 नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः ।
 स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः ॥ २३
 इत्युक्त्वा नारकान् सर्वान् पुनराह स किंकरान् ।
 वैवस्वतो यमः साक्षाद्विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ २४
 नारदाय स विधात्मा प्राह्वं विष्णुरख्ययः ।
 अन्येभ्यो वैष्णवेभ्यश्च सिद्धेभ्यः सततं श्रुतम् ॥ २५
 तद्गः प्रीत्या प्रवक्ष्यामि हरिवाक्यमनुत्तमम् ।
 शिक्षार्थं किंकराः सर्वे शृणुत प्रणता हरेः ॥ २६

दूतो! वे मुनि निरन्तर योगयुक्त होकर वहाँ एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें केशवका ध्यान कर रहे हैं। किंकरो! उस महामुनिको भगवान् विष्णुके ध्यानकी महादीक्षाका ही बल प्राप्त है; क्योंकि जिसका मरणकाल प्राप्त हो गया है, उसके लिये मैं दूसरा कोई बल नहीं देखता। भक्तवत्सल कमललोचन भगवान् विष्णुके निरन्तर हृदयस्थ हो जानेपर उस विष्णुस्वरूप भगवच्छरणागत पुरुषकी ओर कौन देख सकता है? ॥ १-१४ ॥

ये पुरुष भी, जिन्होंने तुम्हें बहुत मारा है, भगवान् विष्णुके ही दूत हैं। आजसे जहाँ वैष्णव हों, वहाँ तुमलोग न जाना। उन महात्माओंके द्वारा तुम्हारा मारा जाना आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि उन दकाल महापुरुषोंने तुम्हें जीवित रहने दिया है। भला, नारायणके ध्यानमें तत्पर हुए उस ब्राह्मणको देखनेका भी साहस कौन कर सकता है? तुम महापापियोंने भगवान्के प्रिय भक्त मार्कण्डेयजीको जो वहाँ लानेका प्रयत्न किया है, यह अच्छा नहीं किया। आजसे तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर उन महात्माओंके पास न जाना, जो महादेव भगवान् नरसिंहजी उपासना करते हों ॥ १५-१८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव! यमने अपने सामने खड़े हुए मृत्युदेव और दूतोंसे इस प्रकार कहकर नरकमें पड़े हुए पीडित मनुष्योंकी ओर देखा तथा अत्यन्त कृपा एवं विशेषतः विष्णुभक्तसे युक्त होकर नारकीय जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो बातें कहीं, उन्हें तुम सुनो। नरकमें यातना सहते हुए जीवोंसे यमने कहा—‘पापसे कष्ट पानेवाले जीव! तुमने क्लेशनाशक भगवान् केशवकी पूजा क्यों नहीं की? पूजन-सम्पत्तियोंके न मिलनेपर केवल जलमात्रसे भी पूजित होनेपर जो भगवान् पूजककी अपना लोकतक दे डालते हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की? कमलके समान लोचनोंवाले, नरसिंहरूपधारी जो भगवान् हृषीकेश स्मरणमात्रसे ही मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की?’ ॥ १९-२३ ॥

नरकमें पड़े हुए जीवोंके प्रति यों कहकर विष्णुभक्तसे युक्त सूर्यनन्दन यमने अपने किंकरोसे पुनः कहा—‘किंकरो! अविनाशी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने नारदजीसे जैसा कहा था और अन्य वैष्णवों तथा सिद्धोंसे जैसा सदा ही सुना गया है, वह अत्यन्त उत्तम भागवद्वाक्य मैं प्रसन्न होकर तुम लोगोंसे शिक्षाके लिये कह रहा हूँ। तुम सभी भगवान्के शरणागत होकर सुनो ॥ २४-२६ ॥

हे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ २७
पुण्डरीकाक्ष देवेश नरसिंह त्रिविक्रम ।
त्वामहं शरणं प्राप्त इति यस्तं समुद्धरे ॥ २८
त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेव जनार्दन ।
इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम् ॥ २९

यम उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य हरिवाक्यं यमेन च ।
नारकाः कृष्णकृष्णेति नारसिंहेति चुकुशुः ॥ ३०
यथा यथा हरेर्नाम कीर्तयन्वयं नारकाः ।
तथा तथा हरेर्भक्तिमुद्रहन्तोऽब्रुवन्निदम् ॥ ३१

यम उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै केशवाय महात्मने ।
यन्नामकीर्तनात् सद्यो नरकाग्निः प्रशाम्यति ॥ ३२
भक्तप्रियाय देवाय रक्षाय हरये नमः ।
लोकनाथाय शान्ताय यज्ञेशायादिमूर्तये ॥ ३३
अनन्तायाप्रमेयाय नरसिंहाय ते नमः ।
नारायणाय गुरवे शङ्खचक्रगदाभूते ॥ ३४
वेदप्रियाय महते विक्रमाय नमो नमः ।
याराहायाप्रतर्क्याय वेदाङ्गाय महीभूते ॥ ३५
नमो द्युतिमते नित्यं ब्राह्मणाय नमो नमः ।
वामनाय बहुज्ञाय वेदवेदाङ्गधारिणे ॥ ३६
बलिबन्धनदक्षाय वेदपालाय ते नमः ।
विष्णवे सुरनाथाय व्याधिने परमात्मने ॥ ३७
चतुर्भुजाय शुद्धाय शुद्धद्रव्याय ते नमः ।
जामदग्न्याय रामाय दुष्टक्षप्रान्तकारिणे ॥ ३८
रामाय रावणान्ताय नमस्तुभ्यं महात्मने ।
अस्मानुद्धर गोविन्द पूतिगन्धात्रमोऽस्तु ते ॥ ३९

भगवान् कहते हैं—'हे कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!'—
इस प्रकार जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उसको मैं
उसी प्रकार नरकमें निकाल लेता हूँ, जैसे जलको भेदकर
कमल बाहर निकल आता है। 'पुण्डरीकाक्ष! देवेश
नरसिंह! त्रिविक्रम! मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ'—यों
कहता है, उसका मैं उद्धार कर देता हूँ। 'देवाभिदेव!
जनार्दन! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ'—इस प्रकार
जो मेरा शरणागत होता है, उसे मैं क्लेशसे मुक्त कर देता
हूँ ॥ २७—२९ ॥

व्यासजी कहते हैं—वत्स! यमराजके कहे हुए इस
भगवद्वाक्यको सुनकर नरकमें पड़े हुए जीव 'कृष्ण!
कृष्ण! नरसिंह!' इत्यादि भगवन्नामोंका जोरसे उच्चारण
करने लगे। नरकीप जीव यहाँ ज्यों-ज्यों भगवन्नामका
कीर्तन करते थे, त्यों-ही त्यों भगवद्भक्तिसे युक्त होते
जाते थे। इस तरह भक्तिभाषसे पूर्ण हो ये इस प्रकार
कड़ने लगे ॥ ३०—३१ ॥

नरकस्थ जीव बोले—'ॐ' जिनका नाम कीर्तन
करनेसे नरकको ज्वाला तत्काल शान्त हो जाती है, उन
महात्मा भगवान् केशवको नमस्कार है। जो यहाँके ईश्वर,
आदिमूर्ति, शान्तात्मरूप और संसारके स्वामी हैं, उन
भक्तप्रिय, विश्वपालक भगवान् विष्णुको नमस्कार है।
अनन्त, अप्रमेय नरसिंहस्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा धारण
करनेवाले, लोकगुरु आप श्रीनारायणको नमस्कार है।
वेदोंके प्रिय, महान् एवं विशिष्ट गतिवाले भगवान्को
नमस्कार है। तर्कोंके अधिपति, वेदस्वरूप, पृथ्वीको धारण
करनेवाले भगवान् याराहको प्रणाम है। ब्राह्मणकुलमें
अवतारने, वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता और अनेक विषयोंका
ज्ञान रखनेवाले कान्तिमान् भगवान् वामनको नमस्कार
है। बलिको बँधनेवाले, वेदके पालक, देवताओंके स्वामी,
व्यापक, परमात्मा आप वामनरूपधारी विष्णुभगवान्को
प्रणाम है। शुद्ध द्रव्यमय, शुद्धस्वरूप भगवान् चतुर्भुजको
नमस्कार है। दुष्ट क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले जमदग्निवन्दन
भगवान् परशुरामको प्रणाम है। रावणका यध करनेवाले
आप महात्मा श्रीरामको नमस्कार है। गोविन्द! आपको
कर्रबार प्रणाम है। आप इस दुर्गन्धपूर्ण नरकसे हमारा
उद्धार करें ॥ ३२—३९ ॥

व्यास उवाच

इति संकीर्तिते विष्णौ नारकैर्भक्तिपूर्वकम् ।
 तदा सा नारकी पीडा गता तेषां महात्मनाम् ॥ ४० ॥
 कृष्णरूपधराः सर्वे दिव्यवस्त्रविभूषिताः ।
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ४१ ॥
 तानारोप्य विमानेषु दिव्येषु हरिपूरुषाः ।
 तर्जयित्वा यमभटान् नीतास्ते केशवालयम् ॥ ४२ ॥
 नारकेषु च सर्वेषु नीतेषु हरिपूरुषैः ।
 विष्णुलोकं यमो भूयो नमश्चक्रे तदा हरिम् ॥ ४३ ॥
 यन्नामकीर्तनाद्याता नारकाः केशवालयम् ।
 तं नमामि सदा देवं नरसिंहमहं गुरुम् ॥ ४४ ॥
 तस्य वै नरसिंहस्य विष्णोरमिततेजसः ।
 प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥ ४५ ॥
 दृष्ट्वा प्रशान्तं नरकाग्निमुग्रं
 यन्त्रादि सर्वं विपरीतमत्र ।
 पुनः स शिक्षार्थमद्यात्मदूतान्
 यमो हि वक्तुं कृतवान् मनः स्वयम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे यमराज कथनश्चोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमराज' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

यमाष्टक — यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश

श्रीव्यास उवाच

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
 वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
 परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्
 प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ १ ॥
 अहममरगणार्चितेन धात्रा
 यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
 हरिगुरुविमुखान् प्रशास्मि मर्त्यान्
 हरिचरणप्रणतात्रमस्करोमि ॥ २ ॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! इस प्रकार नरकमें पड़े हुए जीवोंने जब भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका कीर्तन किया, तब उन महात्माओंकी नरक-पीड़ा तत्काल दूर हो गयी। वे सभी अपने अङ्गोंमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाये, दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे विभूषित हो श्रीकृष्णस्वरूप हो गये। फिर भगवान् विष्णुके किंकर यमदूतोंकी भर्त्सना करके उन्हें दिव्य विमानोंपर बिठाकर विष्णुधामको ले गये। विष्णुदूतोंद्वारा सभी नरकस्थ जीवोंके विष्णुलोकमें ले जाये जानेपर यमराजने पुनः भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। 'जिनके नामकीर्तनसे नरकमें पड़े हुए जीव विष्णुधामको चले गये, उन गुरुदेव नरसिंह-भगवान्को मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अमित तेजस्वी नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें भी मेरा बार-बार नमस्कार है' ॥ ४०—४५ ॥

उग्र नरकाग्निको शान्त और सभी यन्त्र आदिको विपरीत दशामें पड़े देखकर यमराजने स्वयं ही पुनः अपने दूतोंको शिक्षा देनेके लिये मनमें विचार किया ॥ ४६ ॥

श्रीव्यासजी बोले—अपने किंकरको हाथमें पाए लिये कहीं जानेकी उद्यत देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—'दूत! तুম भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्राणियोंको छोड़ देना; क्योंकि मेरी प्रभुता दूसरे मनुष्योंपर ही चलती है, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है। देवयुजित ब्रह्माजीने मुझे 'यम' कहकर लोगोंके पुण्य पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्हीं मनुष्योंका शासन करता हूँ। जो श्रीहरिके चरणोंमें शीश झुकानेवाले हैं, उन्हें तो

सुगतिमभिलषामि वासुदेवा-
 दहमपि भागवते स्थितान्तरात्मा ।
 मधुवधवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः
 प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ॥ ३
 भगवति विमुखस्य नास्ति सिद्धि-
 विषममृतं भवतीति नैदमस्ति ।
 वर्षशतमपीह पच्यमानं
 व्रजति न काञ्चनतामयः कदाचित् ॥ ४
 नहि शशिकलुषच्छविः कदाचिद्-
 विरमति नो रवितामुपैति चन्द्रः ।
 भगवति च हरावनन्यचेता
 भृशमलिनोऽपि विराजते मनुष्यः ॥ ५
 महदपि सुविचार्य लोकतत्त्वं
 भगवदुपास्तिमृते न सिद्धिरस्ति ।
 सुरगुरुसुहृदप्रसाददौ तौ
 हरिचरणीं स्मरतापवर्हितोः ॥ ६
 शुभमिदमुपलभ्य मानुषत्वं
 सुकृतशतेन व्यथेन्द्रियार्थितोः ।
 रमयति कुरुते न मोक्षमार्गं
 दहयति चन्दनमाशु भस्महेतोः ॥ ७
 मुकुलितकरकुङ्कुमलैः सुरेन्द्रैः
 सततनमस्कृतपादपङ्कजो यः ।
 अविहृतगतये सनातनाय
 जगति जनिं हरते नमोऽग्रजाय ॥ ८
 यमाष्टकमिदं पुण्यं पठते यः शृणोति वा ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९
 इतीदमुक्तं यमवाक्यमुत्तमं
 मयाधुना ते हरिभक्तिवर्द्धनम् ।
 पुनः प्रवक्ष्यामि पुरातनीं कथां
 भृगोस्तु पौत्रेण च या पुरा कृता ॥ १०

मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ। भगवद्भक्तोंके चिन्तन एवं स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् वासुदेवसे अपनी सुगति चाहता हूँ। मैं मधुसूदनके वशमें हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्से विमुख है, उसे कभी सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती; विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है; लोहा सैकड़ों वर्षोंतक आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता; चन्द्रमाकी कलङ्कित कान्ति कभी निष्कलङ्क नहीं हो सकती; वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो सकता; परंतु जो अनन्यचित्त होकर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरसे अत्यन्त मलिन होनेपर भी बड़ी शोभा पाता है। महान् लोकतत्त्वका अच्छी तरह विचार करनेपर भी यही निश्चित होता है कि भगवान्की उपासनाके बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती; इसीलिये देवगुरु बृहस्पतिके ऊपर सुदृढ़ अनुकम्पा करनेवाले भगवच्चरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्मरण करते रहो। जो लोग सैकड़ों पुण्योंके फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य-शरीरको पाकर भी व्यर्थ विषयसुखोंमें रमण करते हैं, मोक्षपथका अनुसरण नहीं करते, वे मनीं राखके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ीको फूँक रहे हैं। बड़े-बड़े देवेश्वर हाथ जोड़कर मुकुलित कर पङ्कज-कोषद्वारा जिन भगवान्के चरणारविन्दोंको प्रणाम करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती, उन भवजन्मनाशक एवं सबके अग्रज सनातन पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है ॥ १-८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—इस पवित्र यमाष्टकको जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको चला जाता है। भगवान् विष्णुकी भक्तिको बढ़ानेवाला यमराजका यह उत्तम वचन मैंने इस समय तुमसे कहा है; अब पुनः उसी पुरानी कथाको अर्थात् भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो कुछ किया था, उसको कहूँगा ॥ ९-१० ॥

इति श्रीनारदसिंहपुराणे यमाष्टकं यमराजस्य स्वयं उपदेशः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीनारदसिंहपुराणमें 'यमाष्टक नाम' नवीं अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयका विवाह कर वेदशिराको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयवटके नीचे तप एवं भगवान्की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना

श्रीकृष्ण उवाच

जित्वैवमात्मनो मृत्युं तपसा शंसितव्रतः ।
 स जगाम पितुर्गेहं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ १
 कृत्वा विवाहं धर्मेण भूगोर्वाक्यविशेषतः ।
 स वेदशिरसं पुत्रमुत्पाद्य च विधानतः ॥ २
 इष्ट्वा यज्ञैस्तु देवेशं नारायणमनामयम् ।
 श्राद्धेन तु पितुनिष्ट्वा अन्नदानेन चातिथीन् ॥ ३
 प्रयागमासाद्य पुनः स्नात्वा तीर्थं गरीयसि ।
 मार्कण्डेयो महातेजास्तेषु यदतले तपः ॥ ४
 यस्य प्रसादेन पुरा जितवान् मृत्युमात्मनः ।
 तं देवं ब्रह्मिच्छन् यः स तेपे परमं तपः ॥ ५
 वायुभक्षश्चिरं कालं तपसा शोषयन्तनुम् ।
 एकदा तु महातेजा मार्कण्डेयो महामतिः ॥ ६
 आराध्य माधवं देवं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
 अग्रे व्यग्रमनाः स्थित्वा हृदये तमनुस्मरन् ।
 शङ्खचक्रगदापाणिं तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥ ७

मार्कण्डेय उवाच

नरं नृसिंहं नरनाथमच्युतं
 प्रलम्बबाहुं कमलायतेक्षणम् ।
 क्षितीश्वरैरर्चितपादपङ्कजं
 नमामि विष्णुं पुरुषं पुरातनम् ॥ ८
 जगत्पतिं श्रीरसमुद्रमन्दिरं
 तं शार्ङ्गपाणिं मुनिवृन्दवन्दितम् ।
 श्रियःपतिं श्रीधरमीशमीश्वरं
 नमामि गोविन्दमनन्तवर्चसम् ॥ ९

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव! इस प्रकार तपस्याद्वारा अपनी मृत्युको जीतकर प्रशंसित व्रतवाले महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी पिताके घर गये। वहाँ भृगुजीके विशेष आग्रहसे धर्मपूर्वक विवाह करके उन्होंने विधिके अनुसार 'वेदशिरा' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तत्पश्चात् निरामय (निर्विषकार) देवेश्वर भगवान् नारायणका यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए उन्होंने श्राद्धसे पितरोंका और अन्नदानसे अतिथियोंका पूजन किया। इसके बाद पुनः प्रयागमें जाकर वहाँके वैष्णव तीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करके महातेजस्वी मार्कण्डेयजी अक्षयवटके नीचे तप करने लगे। जिनके कृपाप्रसादसे उन्होंने पूर्वकालमें मृत्युपर विजय प्राप्त की थी, उन्हीं देवाधिदेवके दर्शनको इच्छासे उन्होंने उत्कृष्ट तपस्या आरम्भ की। दीर्घकालतक केवल वायु पीकर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए ये महातेजस्वी महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी एक दिन गन्ध-पुष्प आदि शुभ उपकरणोंसे भगवान् वेणीमाधवकी आराधना करके उनके सम्मुख स्वस्थचित्तसे खड़े हो गये और हृदयमें उन्हीं शङ्ख-चक्र-गदाधारी गरुडध्वज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ १—७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो भगवान् श्रेष्ठ नर, नृसिंह और नरनाथ (मनुष्योंके स्वामी) हैं, जिनको भुजाएँ लम्बी हैं, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल हैं तथा चरचारविन्द असंख्य भूपतियोंद्वारा पूजित हैं, उन पुरातन पुरुष भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो संसारके पालक हैं, क्षीरसमुद्र जिनका निवास-स्थान है, जो हाथमें शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, मुनिवृन्द जिनकी वन्दना करते हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं और लक्ष्मीको निरन्तर अपने हृदयमें धारण करते हैं, उन सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर, अनन्त तेजोमय भगवान् गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ।

अजं वरेण्यं जनदुःखनाशनं
गुरुं पुराणं पुरुषोत्तमं प्रभुम् ।
सहस्रसूर्यद्युतिमन्तमच्युतं
नमामि भक्त्या हरिमाद्यमाधवम् ॥ १०
पुरस्कृतं पुण्यवतां परं गतिं
क्षितीश्वरं लोकपतिं प्रजापतिम् ।
परं पराणामपि कारणं हरिं
नमामि लोकत्रयकर्मसाक्षिणम् ॥ ११
भोगे त्वनन्तस्य पयोदधौ सुरः
पुरा हि शंते भगवाननादिकृत् ।
क्षीरोदवीचीकणिकाम्बुनोक्षितं
तं श्रीनिवासं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १२
यो नारसिंहं वपुरास्थितो महान्
सुरो मुरारिमधुकैटभान्तकृत् ।
समस्तलोकार्तिहरं हिरण्यकं
नमामि विष्णुं सततं नमामि तम् ॥ १३
अनन्तमव्यक्तमतीन्द्रियं विभुं
स्वे स्वे हि रूपे स्वयमेव संस्थितम् ।
योगेश्वरैरेव सदा नमस्कृतं
नमामि भक्त्या सततं जनार्दनम् ॥ १४
आनन्दमेकं विरजं विदात्मकं
वृन्दालयं योगिभिरेव पूजितम् ।
अणोरणीयांसपवृद्धिमक्षयं
नमामि भक्तप्रियमीश्वरं हरिम् ॥ १५

श्रीव्यास उवाच

इति स्तोत्रावसाने तं वागुवाचाशरीरिणी ।
मार्कण्डेयं महाभागं तीर्थेऽनु तपसि स्थितम् ॥ १६
किमर्थं क्लिश्यते ब्रह्मंस्त्वया यो नैव दृश्यते ।
माधवः सर्वतीर्थेषु यावत् स्नानमाचरोः ॥ १७
इत्युक्तः सर्वतीर्थेषु स्नात्वोवाच महामतिः ।
कृत्वा कृत्वा सर्वतीर्थे स्नानं चैव कृतं भवेत् ।
तद्वद त्वं मम प्रीत्या योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥ १८

जो अजन्मा, सबके वरणीय, जन-समुदायके दुःखोंका नाश करनेवाले, गुरु, पुराण-पुरुषोत्तम एवं सबके स्वामी हैं, सहस्रों सूर्योंके समान जिनकी कान्ति है तथा जो अच्युतस्वरूप हैं, उन आदिमाधव भगवान् विष्णुको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। जो पुण्यात्मा भक्तोंके ही समस्त सगुण-साकार रूपसे प्रकट होते हैं, सबको परमार्थ हैं, भूमि, लोक और प्रजाओंके पति हैं, 'पर' अर्थात् कारणोंके भी परम कारण हैं तथा तीनों लोकोंके कर्मोंके साक्षी हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनादि विधाता भगवान् पूर्वकालमें क्षीरसमुद्रके भीतर 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीररूपी शय्यापर सोये थे, क्षीरसन्धुकी तरङ्गोंके जलकणोंसे अभिषिक्त होनेवाले उन लक्ष्मीनिवास भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनोंने वरसिंहस्वरूप धारण किया है, जो महान् देवता हैं, मुर दैत्यके शत्रु हैं, मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंका अन्त करनेवाले हैं और समस्त लोकोंको पीड़ा दूर करनेवाले एवं हिरण्यगर्भ हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अनन्त, अण्यक्त, इन्द्रियातीत, सर्वव्यापी और अपने विभिन्न रूपोंमें स्वयं ही प्रतिष्ठित हैं तथा योगेश्वराण जिनके चरणोंमें सदा ही मस्तक झुकते हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करता हूँ। जो आनन्दमय, एक (अद्वितीय), रजोगुणसे रहित, ज्ञानस्वरूप, वृन्दा (लक्ष्मी) के धाम और योगियोंद्वारा पूजित हैं; जो अणुसे भी अत्यन्त अणु और वृद्धि तथा क्षयसे शून्य हैं, उन भक्तप्रिय भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८—१५ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—यत्स! इस प्रकार स्तुति समाप्त होनेपर उस तीर्थमें तपस्या करनेवाले उन महाभाग मार्कण्डेयजीसे आकाशवाणीने कहा—'ब्रह्मन्! क्यों क्लेश उठा रहे हो, तुम्हें जो भगवान् माधवका दर्शन नहीं हो रहा है, वह तभीतक जबतक तुम समस्त तीर्थोंमें स्नान नहीं कर लेते' उसके यों कहनेपर महामति मार्कण्डेयजीने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया (परंतु जब फिर भी दर्शन नहीं हुआ, तब उन्होंने आकाशवाणीको लक्ष्य करके कहा—) 'जो कार्य करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करना सफल होता है, अथवा समस्त तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जाता है, वह कार्य मुझे प्रसन्न होकर आप बतलाइये। आप जो भी हों, आपकी नमस्कार है' ॥ १६—१८ ॥

वायुवाच

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र स्तुहि नारायणं प्रभुम् ।
नान्यथा सर्वतीर्थानां फलं प्राप्यसि सुव्रत ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तदेवाख्याहि भगवन् स्तोत्रं तीर्थफलप्रदम् ।
येन जप्तेन सकलं तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥ २० ॥

वायुवाच

जय जय देवदेव जय माधव केशव ।
जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते ॥ २१ ॥
जय जय पद्मनाभ जय वैकुण्ठ वामन ।
जय पद्म हृषीकेश जय दामोदराच्युत ॥ २२ ॥
जय परेश्वरानन्त जय लोकगुरो जय ।
जय शङ्खगदापाणे जय भूधरसूकर ॥ २३ ॥
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप ।
जय योगेश योगज्ञ जय योगप्रवर्तक ॥ २४ ॥
जय योगप्रवर्तक जय धर्मप्रवर्तक ।
कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्ग जय ॥ २५ ॥
जय वन्दितसद्द्विज जय नारदसिद्धिद ।
जय पुण्यवता गेह जय वैदिकभाजन ॥ २६ ॥
जय जय चतुर्भुज (श्री) जयदेव जय दैत्यभयावह ।
जय सर्वज्ञ सर्वात्मन् जय शंकर शाश्वत ॥ २७ ॥
जय विष्णो महादेव जय नित्यमयोक्षज ।
प्रसादं कुरु देवेश दर्शयाद्य स्वकां तनुम् ॥ २८ ॥

व्यास उवाच

इत्येवं कीर्तिते तेन मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रादुर्बभूव भगवान् पीतवासा जनार्दनः ॥ २९ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिः सर्वाभरणभूषितः ।
तेजसा द्योतयन् सर्वां दिशो विष्णुः सनातनः ॥ ३० ॥
तं दृष्ट्वा सहसा भूमौ चिरप्रार्थितदर्शनम् ।
प्रयातः शिरसा वश्यो भक्त्या स भृगुनन्दनः ॥ ३१ ॥
निपत्योत्पत्य च पुनः पुनः साङ्गं महामनाः ।
प्रबद्धसम्पुटकरो गोविन्दं पुरतः स्तुवन् ॥ ३२ ॥

आकाशवाणीने कहा—विप्रेन्द्र! सुव्रत! इस स्तोत्रसे प्रभुवर नारायणका स्तवन करो; और किसी उपायसे तुम्हें समस्त तीर्थोंका फल नहीं प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन्! जिसका जप करनेसे तीर्थस्नानका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है, वह तीर्थफल दापक स्तोत्र कौन-सा है? उसे ही मुझे बताइये ॥ २० ॥

आकाशवाणीने कहा—देवदेव! माधव! केशव! आपकी जय हो, जय हो। आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं। गोविन्द! गोपते! आपकी जय हो, जय हो। पद्मनाभ! वैकुण्ठ। वामन! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। पद्मस्वरूप हृषीकेश! आपकी जय हो। दामोदर! अच्युत! आपको जय हो। लक्ष्मीपते। अनन्त! आपकी जय हो। लोकगुरो! आपकी जय हो, जय हो। शङ्ख और गदा धारण करनेवाले तथा पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वाराह! आपकी जय हो, जय हो। यज्ञेश्वर! पृथ्वीका धारण तथा पोषण करनेवाले वाराह! आपकी जय हो, जय हो। योगके ईश्वर, ज्ञाता और प्रवर्तक! आपकी जय हो, जय हो। योग और धर्मके प्रवर्तक! आपकी जय हो, जय हो। कर्मप्रिय। यज्ञेश्वर! यज्ञाङ्ग! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। उत्तम ब्राह्मणोंकी वन्दना करने—उन्हें सम्मान देनेवाले देवता! आपको जय हो और नारदजीको सिद्धि देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। पुण्यवानोंके आश्रय, वैदिक वाणीके धरम तात्पर्यभूत एवं वेदोक्त कर्मोंके परम आश्रय नारायण! आपकी जय हो, जय हो। चतुर्भुज! आपकी जय हो। दैत्योंको भय देनेवाले श्रीजयदेव! आपकी जय हो, जय हो। सर्वज्ञ! सर्वात्मन्! आपकी जय हो। सनातनदेव! कल्याणकारी भगवन्! आपकी जय हो, जय हो। महादेव! विष्णो! अयोक्षज। देवेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये और आज मुझे अपने स्वरूपका अत्यन्त दर्शन कराइये ॥ २९—३० ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव! आकाशवाणीके कथनानुसार जब बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने इस प्रकार भगवन्नामोंका कीर्तन किया, तब पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन वहाँ प्रकट हो गये। वे सनातन भगवान् विष्णु हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये, समस्त आभूषणोंसे भूषित हो अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। भृगुवंशको आनन्दित करनेवाले मार्कण्डेयजीने भगवान्को, जिनका दर्शन चिरकालसे प्रार्थित था, सहसा सामने प्रकट हुआ देख, भक्तिविवश हो, भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। भूमिपर गिर-गिरकर बारंबार साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो, महामना मार्कण्डेय दोनों हाथ जोड़ सामने उपस्थित हुए भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २९—३२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नमोऽस्तु ते देवदेव महाचित्त महाकाय
महाप्राज्ञ महादेव महाकीर्त्त ब्रह्मेन्द्रचन्द्र-
रुद्राचितपादयुगल श्रीपद्महस्त सम्मर्दितदैत्य-
देह ॥ ३३ ॥ अनन्तभोगशयनार्पितसर्वाङ्ग सनक-
सनन्दनसनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्नासाग्रन्यस्तलोचनै-
रनवरतमभिचिन्तितमोक्षतत्त्व । गन्धर्व-
विद्याधरयक्षकिंनरकिम्पुरुषैरहरहोगीयमानदिव्य-
यशः ॥ ३४ ॥ नृसिंह नारायण पद्मनाभ गोविन्द
गोवर्द्धनगुहानिवास योगीश्वर देवेश्वर जलेश्वर
महेश्वर ॥ ३५ ॥ योगधर महामायाधर विद्याधर
यशोधर कीर्त्तिधर त्रिगुणनिवास त्रितत्त्वधर
प्रेताग्रिधर ॥ ३६ ॥ त्रिवेदभाक् त्रिनिकेत त्रिसुपर्ण
त्रिदण्डधर ॥ ३७ ॥ त्रिगन्धमेघाभाचितद्युतिविराजित
गीताम्बरधर किरीटकटक-
केयूरहारमणिरत्नाशुदीप्तिविद्योतितसर्वदिश ॥ ३८ ॥
कनकमणिकुण्डलमण्डितगण्डस्थल मधुसूदन
विश्वमूर्ते ॥ ३९ ॥ लोकनाथ यज्ञेश्वर यज्ञप्रिय तेजोमय
भक्तिप्रिय वासुदेव दुरितापहाराध्य पुरुषोत्तम
नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य भगवांस्तु जनार्दनः ।
देवदेवः प्रसन्नात्मा मार्कण्डेयमुवाच ॥ ४१

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स तपसा महता पुनः ।
स्तोत्रैरपि महाबुद्धे नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ॥ ४२
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ।
नातस्तपसा ब्रह्मन् ब्रह्मं साध्योऽहमञ्जसा ॥ ४३

मार्कण्डेयजी बोले—महामना! महाकाय! महामते!
महादेव! महाव्यशस्व! देवाधिदेव! आपको नमस्कार है।
ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा तथा रुद्र निरन्तर आपके युगल-
चरणारविन्दोंकी अर्चना करते हैं। आपके हाथमें शोभाशाली
कमल सुशोभित होता है; आपने दैत्योंके शरीरोंको मसल
ढाला है, आपको नमस्कार है। आप 'अनन्त' नामसे
विख्यात शेषनागके शरीरकी शय्याको अपने सम्पूर्ण अङ्ग
सम्पत्ति कर देते हैं—इसीपर शयन करते हैं। सनक,
सनन्दन और सनत्कुमार आदि योगीजन अपने नेत्रोंकी
दृष्टिको नायिकाके अग्रभागपर सुस्थिर करके नित्य-
निरन्तर जिस मोक्षतत्त्वका चिन्तन करते हैं, वह आप ही
हैं। गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर और किम्पुरुष प्रतिदिन
आपके ही दिव्य सुपशका गान करते रहते हैं। नृसिंह!
नारायण! पद्मनाभ! गोविन्द! गिरियज गोवर्धनको कन्दरामें
जोड़ा-विश्रामादिके लिये निवास करनेवाले! योगीश्वर!
देवेश्वर! जलेश्वर और महेश्वर! आपको नमस्कृत है।
योगधर! महामायाधर! विद्याधर! यशोधर! कीर्त्तिधर!
सत्त्वदि तीनों गुणोंके आश्रय। त्रितत्त्वधारी तथा गार्हपत्यादि
तीनों अग्निगणोंको धारण करनेवाले देव! आपको प्रणाम
है। आप ऋक्, साम और यजुष—इन तीनों वेदोंके परम
प्रतिपाद्य, त्रिनिकेत (तीनों लोकोंके आश्रय), त्रिसुपर्ण,
मन्त्ररूप और त्रिदण्डधारी हैं; ऐसे आपको प्रणाम है।
रत्नगन्ध मेघमते आपके सदृश सुन्दर श्यामवर्त्तनसे सुशोभित,
गीताम्बरधारी, किरीट, वलय, केयूर और हारोंमें जटित
मणिरत्नोंकी किरणोंसे समस्त दिशओंकी प्रकाशित करनेवाले
नारायणदेव! आपको नमस्कार है। सुवर्ण और मणियोंसे
जने हुए कुण्डलोंद्वारा अलंकृत कपोलोंवाले मधुसूदन
विश्वमूर्ते! आपको प्रणाम है। लोकनाथ! यज्ञेश्वर! यज्ञप्रिय!
तेजोमय! भक्तिप्रिय वासुदेव! पापहारिन्! आराध्यदेव
पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है ॥ ३३—४० ॥

श्रीव्यासजी बोले—इस प्रकार स्तवन सुनकर देवदेव
भगवान् जनार्दनने प्रसन्नचित्त होकर मार्कण्डेयजीसे
कहा ॥ ४१ ॥

श्रीभगवान् बोले—वत्स! मैं तुम्हारे महान् तप
और फिर स्तोत्रपाठसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महाबुद्धे!
इस समय तुम्हारा सारा पाप नष्ट हो चुका है। विप्रेन्द्र!
मैं तुम्हारे सम्मुख वर देनेके लिये उपस्थित हूँ; वर माँगे।
ब्रह्मन्! जिसने तप नहीं किया है, ऐसा कोई भी मनुष्य
अनायास ही मेरा दर्शन नहीं पा सकता ॥ ४२—४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तव दर्शनात् ।
त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ४४
यदि प्रसन्नो भगवन् मम माधव श्रीपते ।
चिरायुष्यं हृषीकेश येन त्वां चित्तमर्चये ॥ ४५

श्रीभगवानुवाच

मृत्युस्ते निर्जितः पूर्वं चिरायुस्त्वं च लब्धवान् ।
भक्तिरस्त्वचला ते मे वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ ४६
इदं तीर्थं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ।
पुनस्त्वं ब्रह्मसे मां वै क्षीराब्धी योगज्ञाथिनम् ॥ ४७

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ।
मार्कण्डेयोऽपि धर्मात्मा चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥ ४८
अर्चयन् देवदेवेशं जपन् शुद्धं नमस्त्रपि ।
वेदशास्त्राणि पुण्यानि पुराणान्यखिलानि च ॥ ४९
मुनीनां श्रावयामास गाथांश्चैव तपोधनः ।
इतिहासानि पुण्यानि पितृतत्त्वं च सत्तमः ॥ ५०
ततः कदाचित् पुरुषोत्तमोक्तं

यच्च स्मरन् शास्त्रविदां यरिष्ठः ।

धमन् समुद्रं स जगाम द्रष्टुं

हरिं सुरेशं मुनिरुग्रतेजः ॥ ५१

श्रमेण युक्तश्चिरकालसम्भ्रमाद्

भूगोः स पौत्रो हरिभक्तिमुद्रहन् ।

क्षीराब्धिमासाद्य हरिं सुरेशं

वागेन्द्रभोगे कृतनिद्रमैक्षत ॥ ५२

इति श्रीनारदपुराणे मार्कण्डेयटीकं दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस अध्याय श्रीनारदपुराणमें 'मार्कण्डेयके जटिल' कहलके प्रसंगमें दसवाँ अध्याय पूरा हुआ है १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीद्वारा शेषशायी भगवान्का स्तवन

व्यास उवाच

प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ।
मार्कण्डेयोऽभितुष्टाव भोगपर्यङ्कशाथिनम् ॥ १

मार्कण्डेयजी बोले—देवेशर! इस समय आपके दर्शनसे हो मैं कृतार्थ हो गया। जगत्पते! अब तो मुझे एकमात्र अपनी अविचल भक्ति हो दीजिये। माधव! श्रीपते! हृषीकेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे चिरकालिक आयु दीजिये, जिससे मैं चिरकालतक आपकी शराभसा कर सकूँ ॥ ४४-४५ ॥

श्रीभगवान् बोले—मृत्युको तो तुम पहले ही जीत चुके हो, अब चिरकालिक आयु भी तुम्हें प्राप्त हुई। साथ ही, मेरी मुक्तिदायिनी अविचल वैष्णवी भक्ति भी तुम्हें प्राप्त हो। महाभाग! यह तीर्थ आजसे तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा; अब पुनः तुम क्षीरसमुद्रमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए मेरा दर्शन पाओगे ॥ ४६-४७ ॥

श्रीव्यासजी बोले—यों कहकर कमललोचन भगवान् विष्णु वहाँ अदृश्य हो गये। धर्मात्मा, साधुशरोवर्णि, तपोधन मार्कण्डेयजी भी शुद्धस्वरूप देवदेवेशर मधुसूदनका ध्यान, पूजन, जप और नमस्कार करते हुए वहाँ रहकर मुनियोंके पवित्र वेदशास्त्र, अखिल पुराण, विविध प्रकारकी गाथाएँ, शास्त्र इतिहास और पितृतत्त्व भी सुनाने लगे। तदनन्तर किसी समय भगवान् पुरुषोत्तमके कहे हुए बचनको स्मरण कर, वे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उग्रतेजस्वी मुनि उन सुरेशर भगवान् ओहरीका दर्शन करनेके लिये पुराते हुए समुद्रकी ओर चले। हृदयमें भगवान्की भक्ति धारण किये चिरकालतक परिश्रमपूर्वक चलते-चलते क्षीरसागारमें पहुँचकर उन भूगके पौत्रने वागराजके शरीररूपी पर्यङ्कपर निद्रामग्न हुए सुरेशर भगवान् विष्णुका दर्शन किया ॥ ४८-५२ ॥

व्यासजी बोले—शुकदेव! तदनन्तर मार्कण्डेयजी शेषशय्यापर सोये हुए उन चराचरगुरु जगदीशर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम।
 प्रसीद देवदेवेश प्रसीद गरुडध्वज ॥ २

प्रसीद विष्णो लक्ष्मीश प्रसीद धरणीधर।
 प्रसीद लोकनाथाद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ ३

प्रसीद सर्वदेवेश प्रसीद कपलेश्वर।
 प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ ४

प्रसीद सुभगाकान्त प्रसीद भुवनाधिप।
 प्रसीदाद्य महादेव प्रसीद मम केशव ॥ ५

जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय।
 जय विश्व जयाव्यक्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ ६

जय देव जयाज्येय जय सत्य जयाक्षर।
 जय काल जयेशान जय सर्व नमोऽस्तु ते ॥ ७

जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभो।
 जय भूतपते नाथ जय सर्वपते विभो ॥ ८

जय विश्वपते नाथ जय दक्ष नमोऽस्तु ते।
 जय पापहरानन्त जय जन्मजरापह ॥ ९

जय भद्रातिभद्रेश जय भद्र नमोऽस्तु ते।
 जय कामद काकुत्स्थ जय मानद माधव ॥ १०

जय शंकर देवेश जय श्रीश नमोऽस्तु ते।
 जय कुङ्कुमरकाभ जय पङ्कजलोचन ॥ ११

जय चन्दनलताङ्ग जय राम नमोऽस्तु ते।
 जय देव जगन्नाथ जय देवकिनन्दन ॥ १२

जय सर्वगुरो ज्ञेय जय शम्भो नमोऽस्तु ते।
 जय सुन्दर पद्माभ जय सुन्दरिवाङ्मभ।
 जय सुन्दरसर्वाङ्ग जय वन्द्य नमोऽस्तु ते ॥ १३

जय सर्वद सर्वेश जय शर्मद शाश्वत।
 जय कामद भक्तानां प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते ॥ १४

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न हों। पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। देवदेवेश्वर! गरुडध्वज! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीपते विष्णो! धरणीधर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लोकनाथ! आदिपरमेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। कमलके समान नेत्रोंवाले सर्वदेवेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। समुद्रमन्थनके समय मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले मधुसूदन! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीकान्त! भुवनपते! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। आदिपुरुष महादेव! केशव! आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ॥ २—५ ॥

कृष्ण! अचिन्त्यनीय कृष्ण! अव्यय विष्णो! विश्वके रूपमें रहनेवाले एवं व्यापक व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त! परमेश्वर! आपकी जय हो, आपको मेरा प्रणाम है। अजेय देव! आपकी जय हो, जय हो। अविनाशी सत्य! आपकी जय हो, जय हो। सबका शासन करनेवाले काल! आपकी जय हो, जय हो। सर्वमय! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है। यज्ञेश्वर! नाथ! व्यापक विश्वनाथ! आपकी जय हो, जय हो। स्वामिन्! भूतनाथ! सर्वेश्वर! विभो! आपकी जय हो, जय हो। विश्वपते! नाथ! कार्यदा ईश्वर! आपकी जय हो, जय हो; आपको प्रणाम है। पापहारी! अनन्त! जन्म तथा मृत्प्राप्त्यस्थानके भयको नष्ट करनेवाले देव! आपकी जय हो, जय हो। भद्र! अतिभद्र! ईश! कल्याणमय प्रभो! आपको जय हो, जय हो; आपकी नमस्कार है। कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ककुत्स्थ-कुलोत्पन्न श्रीराम! सम्मान देनेवाले माधव! आपकी जय हो, जय हो। देवेश्वर शंकर! लक्ष्मीपते! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। कुङ्कुमके समान अरुण कान्तिवाले कमलनयन! आपकी जय हो, जय हो। चन्दनसे अनुलित श्रीअङ्गोंवाले श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। देव! जगन्नाथ! देवकीनन्दन! आपकी जय हो, जय हो। सर्वगुरो! जाननेयोग्य शम्भो! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। नील कमलको-सी आभावाले श्यामसुन्दर! सुन्दरी श्रीरामाके प्राणवातभ! आपकी जय हो, जय हो। सर्वाङ्गसुन्दर! वन्दनीय प्रभो! आपको नमस्कार है; आपकी जय हो, जय हो। सब कुछ देनेवाले सर्वेश्वर! कल्याणदायी सनातन पुरुष! आपकी जय हो, जय हो। भक्तोंकी कामनाओंको देनेवाले प्रभुवर! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है ॥ ६—१४ ॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।
लोकनाथ नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमोऽस्तु ते ॥ १५

नमस्त्रैलोक्यनाथाय चतुर्भूतै जगत्पते।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय ते ॥ १६

नमस्ते वासुदेवाय नमस्ते पीतवाससे।
नमस्ते नरसिंहाय नमस्ते शार्ङ्गधारिणे ॥ १७

नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते भुवनेश्वर ॥ १८

नमो वेदान्तवेद्याय नमोऽनन्ताय विष्णवे।
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते श्रीधराव्युत ॥ १९

लोकाध्यक्ष जगत्पूज्य परमात्मन् नमोऽस्तु ते।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ २०

त्वमात्मानं सुहृन्मित्रं प्रियस्त्वं प्रपितामहः।
त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पतिस्त्वं परायणः ॥ २१

त्वं ध्रुवस्त्वं वषट्कर्ता त्वं हविस्त्वं हुताशनः।
त्वं शिवस्त्वं यसुर्धाता त्वं ब्रह्मा त्वं सुरेश्वरः ॥ २२

त्वं यमस्त्वं रविर्वायुस्त्वं जलं त्वं धनेश्वरः।
त्वं मनुस्त्वमहोरात्रं त्वं निशा त्वं निशाकरः।
त्वं धृतिस्त्वं श्रियः कान्तिस्त्वं क्षमा त्वं धराधरः ॥ २३

त्वं कर्ता जगतामीशस्त्वं हन्ता मधुसूदन।
त्वमेव गोप्ता सर्वस्य जगतस्त्वं चराचर ॥ २४

करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः।
शङ्खचक्रगदापाणौ भौ समुद्रर माधव ॥ २५

प्रिय पद्मपलाशाक्ष शेषपर्श्वद्वशायिनम्।
त्वामेव भक्त्या सततं नमामि पुरुषोत्तमम् ॥ २६

श्रीवत्साङ्गं जगद्बीजं श्यामलं कमलेश्वरम्।
नमामि ते वपुर्देव कलिकल्मषनाशनम् ॥ २७

लक्ष्मीधरमुदाराङ्गं दिव्यमालाविभूषितम्।
चारुपृष्ठं महाबाहुं चारुभूषणभूषितम् ॥ २८

पद्मनाभं विशालाक्षं पद्मपत्रनिभेश्वरम्।
दीर्घतुङ्गमहाघ्राणं नीलजीमूतसंनिभम् ॥ २९

दीर्घबाहुं सुगुमाङ्गं रत्नहारोज्ज्वलोरसम्।
सुभूललाटमुकुटं स्निग्धदन्तं सुलोचनम् ॥ ३०

जिनको नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला पहने हुए हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। लोक-नाथ! वीरभद्र! आपको बार-बार नमस्कार है। चतुर्व्यूह-स्वरूप जगदीश्वर! आप त्रिभुवननाथ देवाधिदेव नारायणको नमस्कार है। पीताम्बरधारी वासुदेवको प्रणाम है, प्रणाम है। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नरसिंहस्वरूप आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है। भुवनेश्वर! चक्रधारो विष्णु, कृष्ण, राम और भगवान् शिवके रूपमें वर्तमान आपको बार-बार नमस्कार है। आपके स्वामी श्रीधर! अच्युत! वेदान्त शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य आप अनार्यद्वित भगवान् विष्णुको बारम्बार नमस्कार है। लोकाध्यक्ष! जगत्पूज्य परमात्मन्! आपको नमस्कार है ॥ १५—१९ ॥

आप ही समस्त संसारकी माता और आप ही सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं। आप पीढ़ियोंके मुहूर्त हैं; आप सबके मित्र, प्रियतम, पिताके भी पितामह, गुरु, गति, साक्षी, पति और परम अवश्य हैं। आप ही ध्रुव, वषट्कर्ता, हवि, हुताशन (अग्नि), शिव, यम, धाता, ब्रह्मा, मुरारि इन्द्र, यम, सूर्य, वायु, जल, कुबेर, मनु, दिन-रात, रजनी, चन्द्रमा, भूति, श्री, कान्ति, क्षमा और धराधर शेषनाम हैं। चराचरस्वरूप मधुसूदन! आप ही जगत्के स्रष्टा, शासक और संहारक हैं तथा आप ही समस्त संसारके रक्षक हैं। आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं। हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले माधव! आप मेरा उद्धार करें। कमलदललोचन प्रियतम! शेषशय्यापर शयन करनेवाले पुरुषोत्तम आपको ही मैं सदा भक्तिके साथ प्रणम करता हूँ। देव! जिसमें श्रीवत्साङ्गि जोभा पाता है, जो जगत्का आदिकारण है, जिसका वर्ण श्यामल और नेत्र कमलके समान हैं तथा जो कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाला है, आपके उस श्रीविग्रहकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २०—२७ ॥

जो लक्ष्मीजीकी अपने हृदयमें धारण करते हैं, जिनका शरीर सुन्दर है, जो दिव्यमालासे विभूषित हैं, जिनका पृष्ठदेश सुन्दर और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत हैं, जिनकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर और विशाल हैं, नासिका बड़ी ऊँची और लम्बी हैं, जो नील मेखके समान श्याम हैं, जिनकी भुजाएँ लम्बी, जड़ी सुरक्षित और वक्षःस्थल रत्नके हारसे प्रकाशमान हैं, जिनकी भीहें, ललाट और मुकुट—सभी सुन्दर हैं, दाँत चिकने और नेत्र मनोहर हैं,

चारुबाहुं सुताप्रोष्ठं रत्नोज्ज्वलितकुण्डलम् ।
वृत्तकण्ठं सुपीनांसं सरसं श्रीधरं हरिम् ॥ ३१

सुकुमारमजं नित्यं नीलकुञ्जितमूर्धजम् ।
उन्नतांसं महोरस्कं कर्णान्तायतलोचनम् ॥ ३२

हेमारविन्दवदनमिन्दिरायनमीश्वरम् ।
सर्वलोकविधातारं सर्वपापहरं हरिम् ॥ ३३

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वसत्त्वमनोरमम् ।
विष्णुमच्युतमीशानमनन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ ३४

नतोऽस्मि मनसा नित्यं नारायणमनामयम् ।
वरदं कामदं कान्तमनन्तं सूनृतं शिवम् ॥ ३५

नमामि शिरसा विष्णो सदा त्वां भक्तवत्सल ।
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे वायुस्कम्भितचञ्चले ॥ ३६

अनन्तभोगशयने सहस्रकणशोभिते ।
विचित्रशयने रम्ये सेविते मन्दवायुना ॥ ३७

भुजपद्मरससक्तकमलालयसेवितम् ।
इह त्वां मनसा सर्वमिदानीं दृष्टवानहम् ॥ ३८

इदानीं तु सुदुःखार्तो मायया तव मोहितः ।
एकोदके निरालम्बे नष्टस्थावरजङ्गमे ॥ ३९

शून्ये तमसि दुष्पारे दुःखपङ्के निरामये ।
शीतातपजरागशोकतृष्णादिभिः सदा ॥ ४०

पीडितोऽस्मि भृशं तात सुचिरं कालमच्युत ।
शोकमोहग्रहग्रस्तो विचरन् भवसागरे ॥ ४१

इहाद्य विधिना प्राप्तस्तव पादाब्जसंनिधौ ।
एकार्णवे महाघोरे दुस्तरे दुःखपीडितः ॥ ४२

चिरभ्रमपरिश्रान्तस्त्वामद्य शरणं गतः ।
प्रसीद सुमहामाय विष्णो राजीवलोचन ॥ ४३

जो सुन्दर भुजाओं और रुचिर अरुण अधरोंसे सुशोभित हैं, जिनके कुण्डल खजडित होनेके कारण जगमगा रहे हैं, कण्ठ वतुलाकार हैं और कंधे मांसल हैं, उन रसिकशेखर श्रीधर हरिको नमस्कार है ॥ २८—३१ ॥

जो अजन्मा एवं नित्य होनेपर भी सुकुमारस्वरूप धारण किये हुए हैं, जिनके केश काले-काले और घुँघराले हैं, कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल विशाल हैं, आँखें कानोंतक फैली हुई हैं, मुखारविन्द सुवर्णमय कमलके समान परम सुन्दर हैं, जो लक्ष्मीके निवासस्थान एवं सबके तामक हैं, सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा और समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं, समग्र शुभ लक्ष्णोंसे सम्पन्न और सभी जीवोंके लिये मनोरम हैं तथा जो सर्वव्यापी, अच्युत, ईशान, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं, वरदाता, कामपूरक, कमनीय, अनन्त, मधुरभाषी एवं कल्याणस्वरूप हैं, उन निरामय भगवान् नारायण श्रीहरिको मैं सदा हृदयसे नमस्कार करता हूँ ॥ ३२—३५ ॥

भक्तवत्सल विष्णो! मैं सदा आपको मस्तक झुकाकर प्रणम करता हूँ। इस भयंकर एकार्णवमें, जो प्रलयकालिक वायुकी प्रेरणासे विधुब्ध एवं चञ्चल हो रहा है, सहस्र फर्णोंसे सुशोभित 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी विचित्र एवं रमणीय शय्यापर, जहाँ मन्द-मन्द वायु चल रही है, आपके भुजपाशमें बँधी हुई श्रीलक्ष्मीजीसे आप सेवित हैं; मैंने इस समय सर्वस्वरूप आपके रूपका यहाँपर जो भरकर दर्शन किया है ॥ ३६—३८ ॥

इस समय आपकी मायासे मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःखसे पीडित हो रहा हूँ। दुःखरूपी पङ्कसे भरे हुए, व्याधिपूर्ण एवं अवलम्बशून्य इस एकार्णवमें समस्त स्थावर-जङ्गम नष्ट हो चुके हैं। सब ओर शून्यमय अवार अन्धकार छाया हुआ है। मैं इसके भीतर शीत, आतप, जरा, रोग, शोक और तृष्णा आदिके द्वारा सदा चिरकालसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ। ताहा! अच्युत! इस भवसागरमें शोक और मोहरूपी ग्रहसे ग्रस्त होकर भटकता हुआ आज मैं यहाँ दैववश आपके चरणकमलोंके निकट आ पहुँचा हूँ। इस महाभयानक दुस्तर एकार्णवमें बहुत कालतक भटकते रहनेके कारण दुःखपीडित एवं थका हुआ मैं आज आपकी शरणमें आया हूँ। महामाया कमललोचन भगवन्! विष्णो! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३९—४३ ॥

विश्वयोने विशालाक्ष विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
 अनन्यशरणं प्राप्तमतोऽत्र कुलनन्दन ॥ ४४
 त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतमातुरम् ।
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुराणपुरुषोत्तम ॥ ४५
 अञ्जनाभ हृषीकेश मायामय नमोऽस्तु ते ।
 मामुद्धर महाबाहो मग्ने संसारसागरे ॥ ४६
 गह्वरे दुस्तरे दुःखक्लिष्टे क्लेशमहाग्रहैः ।
 अनाथं कृपणं दीनं पतितं भवसागरे ।
 मां समुद्धर गोविन्द वरदेश नमोऽस्तु ते ॥ ४७
 नमस्त्रैलोक्यनाथाय हरये भूधराय च ।
 देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीबालभ नमोऽस्तु ते ॥ ४८
 कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भवान् ।
 संसारार्णवमग्नानां प्रसीद मधुसूदन ॥ ४९
 त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं
 जगत्पतिं कारणमच्युतं प्रभुम् ।
 जनार्दनं जन्मजरार्तिनाशनं
 सुरेश्वरं सुन्दरमिन्दिरापतिम् ॥ ५०
 बृहद्भुजं श्यामलकोमलं शुभं
 वराननं वारिजपत्रनेत्रम् ।
 तरंगभङ्गायतकुन्तलं हरिं
 सुकान्तमीशं प्रणतोऽस्मि शाश्वतम् ॥ ५१
 सा जिह्वा या हरिं स्तीति तच्चित्तं यत्त्वदर्पितम् ।
 तावेव केवली श्लाघ्यी यौ त्वत्पूजाकरौ करौ ॥ ५२
 जन्मान्तरसहस्रेषु यन्मया पातकं कृतम् ।
 तन्मे हर त्वं गोविन्द वासुदेवेति कीर्तनात् ॥ ५३

व्यास उवाच

इति स्तुतस्ततो विष्णुमार्कण्डेयेन धीमता ।
 संतुष्टः प्राह विश्वात्मा तं मुनिं गरुडध्वजः ॥ ५४

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा विप्र स्तुत्या च भृगुनन्दन ।
 वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रार्थितं दत्ति ते वरम् ॥ ५५

कुलनन्दन कृष्ण! आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, विशाललोचन, विद्योत्पादक और विश्वात्मा हैं; अतः दूसरेकी शरणमें न जाकर एकमात्र आपकी ही शरणमें आये हुए मुझ आतुरका आप कृपापूर्वक यहाँ उद्धार करें। पुराण-पुरुषोत्तम पुण्डरीकलोचन! आपको नमस्कार है। कञ्जालके समान श्याम कान्तिवाले हृषीकेश! मायाके आश्रयभूत महेश्वर! आपको नमस्कार है। महाबाहो! संसार-सागरमें डूबे हुए मुझ शरणागतका उद्धार कर दें। वरदाता ईश्वर! गोविन्द! क्लेशरूपी महान् प्राणोंसे भरे हुए, दुःख और क्लेशोंसे युक्त, दुस्तर एवं गहरे भवसागरमें गिरे हुए मुझ दीन, अनाथ एवं कृपणका उद्धार करें। त्रिभुवननाथ विष्णु और धरणीधर अनन्तको नमस्कार है। देवदेव! श्रेयस्लभ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४४—४८ ॥

कृष्ण! कृष्ण! आप दयालु और आश्रयहीनके आश्रय हैं। मधुसूदन! संसार-सागरमें निमग्न हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न हों। आज मैं एक (अद्वितीय), आदि, पुराणपुरुष, जगदीश्वर, जगत्के कारण, अच्युतस्वरूप, सबके स्वामी और जन्म-जरा एवं पीड़ाको नष्ट करनेवाले, देवेश्वर, परम सुन्दर लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दनको प्रणाम करता हूँ। जिनको भुजाएँ चढ़ी हैं, जो श्यामवर्ण, कोमल, सुशीघ्र, सुमुख और कमलदललोचन हैं, श्रीरसागरकी तरंगभङ्गीके समान जिनके लम्बे-लम्बे घुँघराले केश हैं, उन परम कमनोष, सनातन ईश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवान्! वही जिह्वा सफल है, जो आप श्रीहरिका स्तवन करती है; वही चित्त सार्थक है, जो आपके चरणोंमें समर्पित हो चुका है तथा केवल ये ही हाथ श्लाघ्य हैं, जो आपको पूजा करते हैं। गोविन्द! हजारों जन्मान्तरोंमें मैंने जो-जो पाप किये हों, उन सबको आप 'वासुदेव' इस नामका कीर्तन करनेमात्रसे हर लीजिये ॥ ४९—५३ ॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर गरुडचिह्नित श्वजावाले विश्वात्मा भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ ५४ ॥

श्रीभगवान् बोले—विप्र! भृगुनन्दन! मैं तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे वर माँगो। मैं तुम्हें मुँहमाँगा वर दूँगा ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वत्पादपद्मं देवेश भक्तिं मे देहि सर्वदा ।
यदि तुष्टो ममाद्य त्वमन्यदेकं वृणोम्यहम् ॥ ५६
स्तोत्रेणानेन देवेश यस्त्वां स्तोष्यति नित्यशः ।
स्वलोकवसतिं तस्य देहि देव जगत्पते ॥ ५७
दीर्घायुष्ट्वं तु यद्वत् त्वया मे तप्यतः पुरा ।
तत्सर्वं सफलं जातमिदानीं तव दर्शनात् ॥ ५८
वस्तुमिच्छामि देवेश तव पादाब्जमर्चयन् ।
अत्रैव भगवन् नित्यं जन्ममृत्युविवर्जितः ॥ ५९

श्रीभगवानुवाच

मय्यस्तु ते भृगुश्रेष्ठ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
भक्त्या मुक्तिर्भवत्येव तव कालेन मत्तम ॥ ६०
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं सायं प्रातस्तवेरितम् ।
मयि भक्तिं दृढां कृत्वा मम लोके स मोदते ॥ ६१
यत्र यत्र भृगुश्रेष्ठ स्थितस्त्वं मां स्मरिष्यसि ।
तत्र तत्र समेष्यामि दान्तो भक्तवशोऽस्मि भोः ॥ ६२

कदाच उवाच

इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठे मार्कण्डेयं स माधवः ।
विरराम स सर्वत्र पश्यन् विष्णुं यतस्ततः ॥ ६३
इति ते कथितं विप्र चरितं तस्य धीमतः ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेस्तेनैवोक्तं पुरा मम ॥ ६४
ये विष्णुभक्त्या चरितं पुराणं
भृगोस्तु पौत्रस्य पठन्ति नित्यम् ।
ते मुक्तपापा नरसिंहलोके
वसन्ति भक्तिरभिपूज्यमानाः ॥ ६५

मार्कण्डेयजी बोले—देवेश्वर! यदि आज आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि 'आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' इसके सिवा एक दूसरा घर भी मैं माँग रहा हूँ—'देव! देवेश्वर! जगत्पते! जो इस स्तोत्रसे आपकी नित्य स्तुति करे, उसे आप अपने वैकुण्ठधाममें निवास प्रदान करें।' पूर्वकालमें तपस्या करते हुए मुझको जो आपने दीर्घायु होनेका वरदान दिया था, वह सब आज आपके दर्शनसे सफल हो गया। देवेश! भगवन्! अब मैं आपके चरणारविन्दोंका पूजन करता हुआ जन्म और मृत्युसे रहित होकर यहाँ ही नित्य निवास करना चाहता हूँ ॥ ५६—५९ ॥

श्रीभगवान् बोले—भृगुश्रेष्ठ! मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति बनी रहे तथा साधुशिरोमणे! समय आनेपर इस भक्तिसे तुम्हारी मुक्ति भी अवश्य ही हो जायगी। तुम्हारे कहे हुए इस स्तोत्रका जो लोग नित्य प्रातःकाल और संध्याके समय पाठ करेंगे, वे मुझमें सुदृढ़ भक्ति रखते हुए मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक रहेंगे। भृगुश्रेष्ठ! मैं दान्त (स्ववश) होनेपर भी भक्तोंके वशमें रहता हूँ; अतः तुम जहाँ-जहाँ रहकर मेरा स्मरण करोगे, वहाँ-वहाँ मैं पहुँच जाऊँगा ॥ ६०—६२ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवर मार्कण्डेयसे यों कहकर भगवान् लक्ष्मीपति मौन हो गये तथा वे मुनि इधर उधर विचरते हुए सर्वत्र भगवान् विष्णुका साक्षात्कार करने लगे। विप्र! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस चरित्रका, जिसे पूर्वकालमें उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा था, मैंने तुमसे वर्णन किया। जो लोग भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीके इस पुरातन चरित्रका भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए नित्य पाठ करते हैं, वे पापोंसे मुक्त हो, भक्तोंसे पूजित होते हुए भगवान् नृसिंहके लोकमें निवास करते हैं ॥ ६३—६५ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे मार्कण्डेयखण्डे तमः एकविंशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेय-चरित' नामक मन्त्ररहस्य अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

यम और यमीका संवाद *

सूत उवाच

श्रुत्वेमाममृतां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
अवितृप्तः स धर्मात्मा शुको व्यासमभाषत ॥ १

श्रीशुक उवाच

अहोऽतीव तपश्चर्या मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
येन दृष्टो हरिः साक्षाद्येन मृत्युः पराजितः ॥ २
न तृप्तिरस्ति मे तात श्रुत्वामां वैष्णवीं कथाम् ।
पुण्यां पापहरां तात तस्मादन्यत्तु मे वद ॥ ३
नराणां दुष्टचित्तानामकार्यं नेह कुर्वताम् ।
यत्पुण्यमृषिभिः प्रोक्तं तन्मे वद महामते ॥ ४

व्यास उवाच

नराणां दृढचित्तानामिह लोके परत्र च ।
पुण्यं यत् स्यान्मुनिश्रेष्ठ तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यस्या च सह संवादं यमस्य च महात्मनः ॥ ६
विवस्यानदितेः पुत्रस्तस्य पुत्री सुवर्चसा ।
जज्ञाते स यमश्चैव यमी चापि यवीपसी ॥ ७
तौ तत्र संविवर्धेते पितुर्भवन उत्तमे ।
क्रीडमानौ स्वभावेन स्वच्छन्दगमनावुभौ ॥ ८
यमी यमं समासाद्य स्वसा भ्रातरमब्रवीत् ॥ ९

सूतजी बोले—समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली और
अमृतके समान मधुर इस पावन कथाको सुनकर धर्मात्मा
शुकदेवजी तृप्त न हुए—उनकी श्रवणविषयक इच्छा बढ़ती
ही गयी; अतः वे व्यासजीसे बोले ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी-
की तपस्या बड़ी भारी और अद्भुत है, जिन्होंने साक्षात्
भगवान् विष्णुका दर्शन किया और मृत्युपर विजय पायी।
तात! पापोंको नष्ट करनेवाली इस विष्णु-सम्बन्धीन पावन
कथाको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है; अतः अब मुझसे
कोई दूसरी कथा कहिये। महामते! जिनका मन सुदृढ़ है,
जो इस जगत्में कभी निषिद्ध कर्म नहीं करते, उन
मनुष्योंको जिस पुण्यकी प्राप्ति श्रापियोंने यत्नायी है, उससे
ही आप कहिये ॥ २—४ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शुकदेव! स्थिर चित्तवाले
पुरुषोंकी इस लोकमें या परलोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है,
उसमें मैं बालता हूँ; तुम सुनो। इसी विषयमें विद्वान् पुरुष
यमीके साथ महात्मा यमके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका
वर्णन किया करते हैं। अर्द्धदिवसके पुत्र जो विवस्यान् (सूर्य)
हैं, उनके दो तेजस्वी संतानें हुईं। उनमें प्रथम तौ 'यम' नामक
पुत्र था और दूसरी उससे छोटी 'यमी' नामकी कन्या थी।
वे दोनों अपने पिताके उत्तम भवनमें दिनोदिन भलीभाँति बढ़ने
लगे। वे बाल स्वभावके अनुसार साथ-साथ खेलते-कूदते
और इच्छानुसार घूमते-फिरते थे। एक दिन यमकी बहिन
यमीने अपने भाई यमके पास जाकर कहा— ॥ ५—९ ॥

* यह 'यम-यमी-संवाद' कण्वदेके एक भूतपर आधारित है। वहाँ प्रसंग यह है कि यम और यमी, जो परस्पर भाई और बहन
हैं, कुम्भारवस्त्रामें बालीचित्र खेलते मन बहला रहे थे। उनके सम्मने एक ऐसा दृश्य आया, जिसमें कोई बर-बाजे-गाजेके साथ विवाहके
लिये जा रहा था। यमीने पूछा—'पिता! यह क्या है?' यमने उसे बताया कि 'यह जरात है'। इसमें बर-बेधारी पुरुष किसी कुमारी स्त्रीके
साथ विवाह करेगा। फिर वे दोनों पति-पत्नी होकर गृहस्थ-जीवन व्यतीत करेंगे। यमी बालीचित्र मरलताके साथ प्रस्ताव कर बैठी—
'पिता! आओ, हम और तुम भी परस्पर विवाह कर लें।' यमने उसे समझाया कि पाकि साथ जहनका विवाह नहीं होता। तुम्हें मुखसे
भिन्न किसी दूसरे श्रेष्ठ पुरुषकी अपना पति चुनना होगा—'अयं वृणुष्व सुभगे पतिं मत्'।

इसी वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, यानी यमी कामवेदनासे पीड़ित हो यमसे यह प्रार्थना कर रही
है कि—'वे उसे अपनी पत्नी बनाकर उसकी इच्छा पूर्ण करें। इसमें यमीका विकासोत्प्रेरक चित्र प्रस्तुत किया गया है और 'विकासहेतु
सर्त विक्रियको चेष्टा न चेतासि त एव धीराः।' (विकासका कारण उपस्थित होनेका भी जिसके चित्तमें विकार नहीं होता, वे ही पुरुष
धीर—ज्ञानी और संयमी हैं—) इस उक्तिके अनुसार यमकी निवेदिता, उनकी धर्मविषयक अविवल निष्ठा, धैर्य और निवेदकको लोकके
समक्ष प्रकाशमें लाया गया। जैसे सीता आगमें तपकर लग्न उत्तरा है, उसी प्रकार यम यमीकी अग्रि-परीक्षामें उत्तीर्ण हो सुदृढ़ धर्मात्मा,
संयमी और धिरोकी सिद्ध हुए हैं। यमके दृग्गल चरित्रकी और भी बलप्राप्ति रूपमें समने लाता इस कथाका उद्देश्य है। इससे प्रत्येक
भाई तथा नवयुवककी लक्ष्यकारी, संयमी तथा धर्ममें अविवलभावसे निष्ठ रहनेकी शिक्षा और प्रेरणा मिलती है। यमीके चरित्रसे यह
शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक कुमारीका विवाहयोग्य अवस्था होनेका अतिव्यक्त किसी योग्य बरके साथ विवाह कर देना चाहिये।
बाल्यमें यम और यमी दोनों ही मूर्खदकी दिव्य संतानें हैं। उनमें किसी प्रकारके विकारको लेनामात्र भी सम्भावना नहीं है। लोगोंको
सदाचार और संयमकी शिक्षा देनेके लिये ही व्यासजीने इस वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार चित्रित किया है।

यमुवाच

न भ्राता भगिनीं योग्यां कामयन्तीं च कामयेत् ।
 भ्रातृभूतेन किं तस्य स्वसुर्यो न पतिर्भवेत् ॥ १०
 अभूत इव स ज्ञेयो न तु भूतः कथञ्चन ।
 अनाथां नायमिच्छन्तीं स्वसारं यो न नायति ॥ ११
 काङ्क्षन्तीं भ्रातरं नाथं भ्रातरं यस्तु नेच्छति ।
 भ्रातेति नोच्यते लोके स पुमान् मुनिसत्तमः ॥ १२
 स्याद्द्वान्यतनया तस्य भार्या भवति किं तथा ।
 ईक्षतस्तु स्वसा भ्रातुः कामेन परिदृष्टते ॥ १३
 यत्कार्यमहमिच्छामि त्वमेवेच्छ तदेव हि ।
 अन्यथाहं भरिष्यामि त्वामिच्छन्तीं विचेतना ॥ १४
 कामदुःखमसह्यं नु भ्रातः किं त्वं न चेच्छसि ।
 कामाग्निना भृशं तप्ता प्रलीयाम्यङ्ग मा चिरम् ॥ १५
 कामार्तायाः स्त्रियाः कान्त वशगो भव मा चिरम् ।
 स्वेन कायेन मे कार्यं संयोजयितुमर्हसि ॥ १६ ॥

यम उवाच

किमिदं लोकविद्विष्टं धर्मं भगिनि भाषसे ।
 अकार्यमिह कः कुर्यात् पुमान् भद्रे सुचेतनः ॥ १७
 न ते संयोजयिष्यामि कार्यं कायेन भाषिनि ।
 न भ्राता मदनार्तायाः स्वसुः कामं प्रयच्छति ॥ १८
 महापातकमित्याहुः स्वसारं योऽधिगच्छति ।
 पशूनापेय धर्मः स्यात् तिर्यग्योनिवर्ता शुभे ॥ १९

यमुवाच

एकस्थाने यथा पूर्वं संयोगो नी न दुष्यति ।
 मातृगर्भे तथैवायं संयोगो नी न दुष्यति ॥ २०
 किं भ्रातरप्यनाथां त्वं मा नेच्छसि शोभनम् ।
 स्वसारं निर्रुन्ती रक्षः संगच्छति च नित्यशः ॥ २१

यमी बोली—जो भाई अपनी योग्य बहिनको उसके चाहनेपर भी न चाहे, जो बहिनका पति न हो सके, उसके भाई होनेसे क्या लाभ? जो स्वामीकी इच्छा रखनेवाली अपनी कुमारी बहिनका स्वामी नहीं बनता, उस भ्राताको ऐसा समझना चाहिये कि वह पैदा ही नहीं हुआ। किसी तरह भी उसका उत्पन्न होना नहीं माना जा सकता। भैया! यदि बहिन अपने भाईको ही अपना स्वामी—अपना पति बनाना चाहती है, इस दशामें जो बहिनको नहीं चाहता, वह पुरुष मुनिशिरोंमणि ही क्यों न हो, इस संसारमें भ्राता नहीं कहा जा सकता। यदि किसी दूसरेकी हो कन्या उसकी पत्नी हो तो भी उससे क्या लाभ, यदि उस भाईकी अपनी बहिन उसके देखते-देखते कामसे दग्ध हो रही है। मेरे होश, इस समय अपने ठिकाने नहीं हैं। मैं इस समय जो काम करना चाहती हूँ, तुम भी उसीको इच्छा करो; नहीं तो मैं तुम्हारी ही बाह लेकर प्राण त्याग दूँगी, मर जाऊँगी। भाई! कामको वेदना असह्य होती है। तुम मुझे क्यों नहीं चाहते? प्यारे भैया! कामाग्निसे आपन्ता संतप्त होकर मैं मरी जा रही हूँ; अब दूर न करो। कान्त! मैं कामपीड़िता रही हूँ। तुम शीघ्र ही मेरे अधीन हो जाओ। अपने शरीरसे मेरे शरीरका संयोग होने दो ॥ १०—१६ ॥

यम बोले—बहिन! सारा संसार जिसकी विन्दा करता है, उसी इस पापकर्मको तु धर्म कैसे बता रही है? भद्रे! भला कौन सर्वत्र पुरुष यह न करने योग्य पाप कर्म कर सकता है? भाषिनि! मैं अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका संयोग न होने दूँगा। कोई भी भाई अपनी काम पीड़िता बहिनकी इच्छा नहीं पूरी कर सकता। जो बहिनके साथ सन्तानम् करता है, उसके इस कर्मको महापातक बताया गया है—शुभे! यह तिर्यग्-योनिमें पड़े हुए पशुओंका धर्म है—देवता या मनुष्यका नहीं ॥ १७—१९ ॥

यमी बोली—भैया! हम दोनों जुड़कर संतानें हैं और माताके गर्भमें एक साथ रहे हैं। पहले माताके गर्भमें एक ही स्थानपर हम दोनोंका जो संयोग हुआ था, वह कैसे दुषित नहीं माना गया, उसी प्रकार यह संयोग भी दुषित नहीं हो सकता। भाई! अभीतक मुझे पतिकी प्राप्ति नहीं हुई है। तुम मेरा भला करना क्यों नहीं चाहते? 'निर्रुन्ती' नामक राक्षस जो अपनी बहिनके साथ नित्य ही सन्तानम् करता है ॥ २०—२१ ॥

यम उवाच

स्वयम्भुवापि निन्देत लोकवृत्तं जुगुप्सितम् ।
 प्रधानपुरुषाचीर्णं लोकोऽयमनुवर्तते ॥ २२
 तस्मादनिन्दितं धर्मं प्रधानपुरुषश्चरेत् ।
 निन्दितं वर्जयेद्यत्रादेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ २३
 यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
 स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २४
 अतिपापमहं मन्ये सुभगे वचनं तव ।
 विरुद्धं सर्वधर्मेषु लोकेषु च विशेषतः ॥ २५
 मतोऽन्यो यो भवेद्यो वै विशिष्टो रूपशीलतः ।
 तेन सार्धं प्रमोदस्व न ते भर्ता भवाम्यहम् ॥ २६
 नाहं स्पृशामि तस्या ते तनुं भद्रे दृढव्रतः ।
 मुनयः पापपाहुस्तं यः स्वसारं निगूहति ॥ २७

रामुवाच

दुर्लभं चैव पश्यामि लोके रूपमिहेंदुशम् ।
 यत्र रूपं वयश्चैव पृथिव्यां क्व प्रतिष्ठितम् ॥ २८
 न विजानामि ते चित्तं कुत एतत् प्रतिष्ठितम् ।
 आत्मरूपगुणोपेतां न कामयसि मोहिताम् ॥ २९
 लतेव पादपे लग्ना कामं त्वच्छरणं गता ।
 बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य निवसामि शुचिस्मिता ॥ ३०

यम उवाच

अन्यं श्रयस्व सुश्रोणि देवं देव्यसितेक्षणं ।
 यस्तु ते काममोहेन चेतसा विध्रमं गतः ।
 तस्य देवस्य देवी त्वं भवेद्या खरवर्णिनि ॥ ३१
 ईप्सितां सर्वभूतानां वर्यां शंसन्ति मानवाः ।
 सुभद्रां चात्सर्वाङ्गीं संस्कृतां परिचक्षते ॥ ३२
 तत्कृतेऽपि सुविद्वांसो न करिष्यन्ति दूषणम् ।
 परितापं महाप्राज्ञे न करिष्ये दृढव्रतः ॥ ३३
 चित्तं मे निर्मलं भद्रे विष्णो रुद्रे च संस्थितम् ।
 अतः पापं नु नेच्छामि धर्मचित्तो दृढव्रतः ॥ ३४

यम बोले—बहिन! कुत्सित लोकव्यवहारको निन्दा ब्रह्मजने भी की है। इस संसारके लोग श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मका ही अनुसरण करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वह व्रतम धर्मका ही आचरण करे और निन्दित कर्मको बलपूर्वक त्याग दे—यही धर्मका लक्षण है। श्रेष्ठ पुरुष जिस-जिस कर्मका आचरण करता है, उसीको अन्य लोग भी आचरणमें लाते हैं और वह जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसीका अनुसरण करते हैं। सुभगे! मैं तो तुम्हारे इस वचनको अत्यन्त पापपूर्ण समझता हूँ। इतना ही नहीं, मैं इसे सब धर्मों और विशेषतः समस्त लोकोके विपरीत मानता हूँ। भुज्जसे अन्य जो कोई भी रूप और शीलमें विशिष्ट हो, उसके साथ तुम आनन्दपूर्वक रहो; मैं तुम्हारा पति नहीं हो सकता। भद्रे! मैं दृढतापूर्वक उक्त्य प्राप्तका पालन करनेवाला हूँ, अतः अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका स्पर्श नहीं करूँगा। जो बहिनको ग्रहण करता है, उसे भुविवांसे 'पापी' कहा है ॥ २२—२७ ॥

यमो बोली—मैं देखती हूँ, इस संसारमें ऐसा (तुम्हारे समान) रूप दुर्लभ है। भला, पृथ्वीपर ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ रूप और समान अवस्था—दोनों एकत्र वर्तमान हों। मैं नहीं समझती, तुम्हारा यह चित्त इतना स्थिर कैसे है, जिसके कारण तुम अपने समान रूप और गुणमें युक्त होनेपर भी भुज्ज मोहित स्त्रीकी इच्छा नहीं करते हो। वृक्षमें संलग्न हुई लताके समान मैं स्वेच्छानुसार तुम्हारे शरणमें आयी हूँ। मेरे मुखपर पवित्र मुसकान शोभा पाती है। अब मैं अपनी दोनों भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करके हो रहूँगी ॥ २८—३० ॥

यम बोले—श्वमलोचने! सुश्रोणि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेमें असमर्थ हूँ। तुम किसी दूसरे देवताका आश्रय लो। खरवर्णिनि! तुम्हें देखकर काममोहसे जिसका चित्त विभ्रान्त हो उठे, उसी देवताकी तुम देवी हो जाओ। जिसे समस्त प्राणी चाहते हैं, मानवगण जिसे खरणीय बतलाते हैं, कल्याणमयी, सर्वाङ्गसुन्दरी और सुसंस्कृता कहते हैं, उसके लिये भी विद्वान् पुरुष कभी दूषित कर्म नहीं करेंगे। महाप्राज्ञे! मेरा व्रत अटल है। मैं यह पश्चात्तापजनक पाप कदापि नहीं करूँगा। भद्रे! मेरा चित्त निर्मल है, भगवान् विष्णु और शिवके चिन्तनमें लगा हुआ है। इसलिये मैं दृढसंकल्प एवं भयान्त्र होकर निश्चय हो यह पापकर्म नहीं करना चाहता ॥ ३१—३४ ॥

व्यास उवाच

असकृत् प्रोच्यमानोऽपि तथा चैवं दृढव्रतः ।
 कृतवान् न यमः कार्यं तेन देवत्वमाप्तवान् ॥ ३५
 नराणां दृढचित्तानामेवं पापमकुर्वताम् ।
 अनन्तं फलमित्याहुस्तेषां स्वर्गफलं भवेत् ॥ ३६
 एतत्तु यम्युपाख्यानं पूर्ववृत्तं सनातनम् ।
 सर्वपापहरं पुण्यं श्रोतव्यमनसुयया ॥ ३७
 यश्चीतत् पठते नित्यं हव्यकव्येषु ब्राह्मणः ।
 संतुष्टाः पितरस्तस्य न विशन्ति यमालयम् ॥ ३८
 यश्चीतत् पठते नित्यं पितृणामनुजो भवेत् ।
 वैवस्वतीभ्यस्तीव्राभ्यो यातनाभ्यः प्रमुच्यते ॥ ३९
 पुत्रैतदाख्यानमनुत्तमं मया
 तयोदितं वेदपदार्थनिश्चितम् ।
 पुरातनं पापहरं सदा नृणां
 किमन्यदप्येव वदामि शंस मे ॥ ४०

इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीवैष्णवसंकाटी नाम ब्राह्मणोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मयी नमः जगद' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी
 रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश

श्रीशुक उवाच

विचित्रेयं कथा तात वैदिकी मे त्वयेरिता ।
 अन्याः पुण्याश्च मे बृहि कथाः पापप्रणाशिनीः ॥ १

व्यास उवाच

अहं ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
 पतिव्रतायाः संवादं कस्यचिद्ब्रह्मचारिणः ॥ २
 कश्यपो नीतिमान् नाम ब्राह्मणो वेदपारगः ।
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो व्याख्याने परिनिष्ठितः ॥ ३

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव! यमीके चारंबार
 कहनेपर भी दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले
 यमने वह पाप-कर्म नहीं किया; इसलिये वे देवत्वको
 प्राप्त हुए। इस प्रकार स्थिरचित्त होकर पाप न करनेवाले
 मनुष्योंके लिये अनन्त पुण्यफलको प्राप्ति बतलायी गयी
 है। ऐसे लोगोंको स्वर्गरूप फल उपलब्ध होता है। यह
 यमीका उपाख्यान, जो प्राचीन एवं सनातन इतिहास है,
 सब पापोंको दूर करनेवाला और पवित्र है। असूया
 त्यागकर इसका श्रवण करना चाहिये। जो ब्राह्मण देवप्राण
 और पितृप्राणमें सदा इसका पाठ करता है, उसके पितृप्राण
 पूर्णतः दृढ़ होते हैं। उन्हें कभी यमराजके भवनमें प्रवेश
 नहीं करना पड़ता। जो इसका नित्य पाठ करता है, वह
 पितृप्राणमें मुक्त हो जाता है तथा उसे तीव्र यम-यातनाओंसे
 छुटकारा मिल जाता है। बेटा शुकदेव! मैंने तुमसे यह
 सर्वोत्तम एवं पुरातन उपाख्यान कह सुनाया, जो वेदके
 पदों तथा अर्थोंद्वारा निश्चित है। इसका पाठ करनेपर यह
 सदा ही मनुष्योंका पाप हर लेता है। मुझे बताओ, अब
 मैं तुम्हें और क्या सुनाऊँ? ॥ ३५—४० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! आपने जो यह वैदिक
 कथा मुझे सुनायी है, बड़ी विचित्र है। अब दूसरी
 पापनाशक कथाओंका मैंने सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—बेटा! अब मैं तुमसे उस परम
 उत्तम प्राचीन इतिहासका वर्णन करूँगा, जो किसी
 ब्रह्मचारी और एक पतिव्रता स्त्रीका संवादरूप है।
 (मध्यदेहमें) एक कश्यप नामक ब्राह्मण रहते थे, जो
 बड़े ही नीतिज्ञ, वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, समस्त
 शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वके ज्ञाता, व्याख्यानमें प्रवीण,

स्वधर्मकार्यनिरतः परधर्मपरादमुखः ।
 ऋतुकालाभिगामी च अग्निहोत्रपरायणः ॥ ४
 सायंप्रातर्महाभाग हुत्वाग्निं तर्पयन् द्विजान् ।
 अतिथीनागतान् गेहं नरसिंहं च पूजयत् ॥ ५
 तस्य पत्नी महाभागा सावित्री नाम नामतः ।
 पतिव्रता महाभागा पत्युः प्रियहिते रता ॥ ६
 भर्तुः शुश्रूषणेनैव दीर्घकालमनिन्दिता ।
 परोक्षज्ञानमापन्ना कल्याणी गुणसम्पन्ना ॥ ७
 तथा सह स धर्मात्मा मध्यदेशे महामतिः ।
 नन्दिग्रामे वसन् धीमान् स्वानुष्ठानपरायणः ॥ ८
 अथ कौशलिको विप्रो यज्ञशर्मा महामतिः ।
 तस्य भार्याभवत् साध्वी रोहिणी नाम नामतः ॥ ९
 सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिशुश्रूषणे रता ।
 सा प्रसूता सुतं त्वेकं तस्माद्भर्तुरनिन्दिता ॥ १०
 स यायावरवृत्तिस्तु पुत्रे जाते विचक्षणः ।
 जातकर्म तदा चक्रे स्नात्वा पुत्रस्य मन्त्रतः ॥ ११
 द्वादशेऽहनि तस्यैव देवशर्मेति बुद्धिमान् ।
 पुण्याहं वाचयित्वा तु नाम चक्रे यथाविधि ॥ १२
 उपनिष्क्रमणं चैव चतुर्थे मासि यज्रतः ।
 तथात्रप्राशनं षष्ठे मासि चक्रे यथाविधि ॥ १३
 संवत्सरे ततः पूर्णे बृडाकर्म च धर्मवित् ।
 कृत्वा गर्भाष्टमे वर्षे व्रतवन्धं चकार सः ॥ १४
 सोपनीतो यथान्यायं पित्रा वेदमधीतवान् ।
 स्वीकृते त्वेकवेदे तु पिता स्वर्लोकमास्थितः ॥ १५
 मात्रा सहास दुःखी स पितर्युपरते सुतः ।
 धैर्यमास्थाय मेधावी साधुभिः प्रेरितः पुनः ॥ १६
 प्रेतकार्याणि कृत्वा तु देवशर्मा गतः सुतः ।
 गङ्गादिषु सुतीर्थेषु स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १७
 तमेव प्राप्तवान् ग्रामं यत्रास्ते सा पतिव्रता ।
 सम्प्राप्य विश्रुतः सोऽथ ब्रह्मचारी महापते ॥ १८

अपने धर्मके अनुकूल कार्योंमें तत्पर और परधर्मसे विमुख रहनेवाले थे। वे ऋतुकाल आनेपर ही पत्नी-समागम करते और प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे। महाभाग! कश्यपजी नित्य सायं और प्रातःकाल अग्रिमें हवन करनेके पश्चात् ब्राह्मणों तथा घरपर आये हुए अतिथियोंको तृप्त करते हुए भगवान् नृसिंहका पूजन किया करते थे। उनकी चरम सौभाग्यशालिनी पत्नीका नाम सावित्री था। महाभाग! सावित्री पतिव्रता होनेके कारण पतिके ही प्रिय और हित-साधनमें लगी रहती थी। अपने गुणोंके कारण उसका बड़ा सम्मान था। वह कल्याणमयी अनिन्दिता सती-साध्वी दीर्घकालतक पतिकी शुश्रूषामें संलग्न रहनेके कारण परोक्ष ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी थी—परोक्षमें भटित होनेवाली षट्नाओंका भी उसे ज्ञान हो जाता था। मध्यदेशके निवासी वे धर्मात्मा एवं परम बुद्धिमान् कश्यपजी अपनी उसी धर्मपत्नीके साथ नन्दिग्राममें रहते हुए स्वधर्मके अनुष्ठानमें लगे रहते थे ॥ २—८ ॥

उन्हीं दिनों कौशलदेशमें उत्पन्न यज्ञशर्मा नामक एक परम बुद्धिमान् ब्राह्मण थे, जिनकी सती-साध्वी स्त्रीका नाम रोहिणी था। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी और पतिकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी। उस उत्तम आधार-विचारवाली स्त्रीने अपने स्वामी यज्ञशर्मासे एक पुत्र उत्पन्न किया। पुत्रके उत्पन्न होनेपर यायावर-वृत्तिकाले बुद्धिमान् पण्डित यज्ञशर्माने स्नान करके मन्त्रोंद्वारा उसका जातकर्म-संस्कार किया और जन्मके बारहवें दिन उन्होंने विधिपूर्वक पुण्याहवाचन कराकर उसका 'देवशर्मा' नाम रखा। इसी प्रकार चौथे माहमें पञ्चपूर्वक उसका उपनिष्क्रमण हुआ अर्थात् वह घरसे बाहर लाया गया और छठे मासमें उन्होंने उस पुत्रका विधिपूर्वक अन्नप्राशन-संस्कार किया ॥ ९—१३ ॥

तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होनेपर धर्मज्ञ पिताने उसका बृडाकर्म और गर्भमें आठवें वर्षपर उपनयन-संस्कार किया। पिताके द्वारा यथोचितरूपसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर उसने वेदाध्ययन किया। उसके द्वारा एक वेदका अध्ययन पूर्ण हो जानेपर उसके पिता स्वर्गगामी हो गये। पिताको मृत्यु होनेपर वह अपनी माताके साथ बहुत दुःखी हो गया। फिर श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञासे उस बुद्धिमान् पुत्रने धैर्य धारण करके पिताका प्रेतकार्य किया। इसके पश्चात् ब्राह्मणकुमार देवशर्मा घरसे निकल गया (निरक्त हो गया)। वह गङ्गा आदि उत्तम तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करके धूमता हुआ वहाँ जा पहुँचा, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री निवास करती थी। महामते! यहाँ जाकर

भिक्षाटनं तु कृत्वासी जपन् वेदमतन्त्रितः ।
कुर्वन्नेवाग्रिकार्यं तु नन्दिग्रामे च तस्मिन्वान् ॥ १९

मृते भर्तारं तन्माता पुत्रे प्रव्रजिते तु सा ।
दुःखाद्दुःखमनुप्राप्ता नियतं रक्षकं विना ॥ २०

अथ स्नात्वा तु नद्यां वै ब्रह्मचारी स्वकर्पटम् ।
क्षितीं प्रसार्य शोषार्थं जपत्रासीत् वाग्यतः ॥ २१

काको बलाका तद्वत्सं परिगृह्णाशु जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा भर्त्सयामास देवशर्मा ततो द्विजः ॥ २२

विष्टामुत्सृज्य वत्से तु जग्मतुस्तस्य भर्त्सनात् ।
रोषेण वीक्षयामास खेयान्ती पक्षिणी तु सः ॥ २३

तद्रोषवह्निना दग्धी भूम्यां निपतिती खागौ ।
स दृष्ट्वा तौ क्षितिं यातौ पक्षिणी विस्मयं गतः ॥ २४

तपसा न मया कश्चित् सदृशोऽस्ति महीतले ।
इति मत्वा गतो भिक्षामटितुं ग्राममञ्जसा ॥ २५

अटन् ब्राह्मणगेहेषु ब्रह्मचारी तपःस्मयी ।
प्रविष्टस्तद्गृहं वत्स गृहे यत्र पतिव्रता ॥ २६

तं दृष्ट्वा याच्यमानापि तेन भिक्षां पतिव्रता ।
वाग्यता पूर्वं विज्ञाय भर्तुः कृत्वानुशासनम् ॥ २७

क्षालयामास तत्पादौ भूय उष्णेन वारिणा ।
आश्रास्य स्वपतिं सा तु भिक्षां दातुं प्रचक्रमे ॥ २८

ततः क्रोधेन रक्ताक्षो ब्रह्मचारी पतिव्रताम् ।
दग्धुकामस्तपोवीर्यात् पुनः पुनरुदैक्षत ।

सावित्री तु निरीक्ष्यैवं हसन्ती सा तमग्रवीत् ॥ २९

न काको न बलाकाहं त्वत्क्रोधेन तु यौ मृता ।
नदीतीरेऽद्य कोपात्मन् भिक्षां मतो यदीच्छसि ॥ ३०

वह 'ब्रह्मचारी' के रूपमें विद्यमान हुआ। भिक्षाटन करके जीवन-निर्वाह करता हुआ वह आलस्यरहित हो वेदके स्वाध्याय तथा अग्निहोत्रमें तत्पर रहकर उसी नन्दिग्राममें रहने लगा। इधर उसकी माता अपने स्वामीके मरने और पुत्रके विरक्त होकर घरसे निकल जानेके बाद किस नियत रक्षकके न होनेसे दुःख-पर-दुःख भोगने लगी ॥ १८—२० ॥

तदनन्तर एक दिन ब्रह्मचारीने नदीमें स्नान करके अपना वस्त्र सुखानेके लिये पृथ्वीपर फैला दिया और स्वयं भीन होकर जप करने लगा। इसी समय एक कौआ और बगुला—दोनों वह वस्त्र लेकर शीघ्रतासे उड़ चले। तब उन्हें इस प्रकार करते देख देवशर्मा ब्राह्मणने डाँट बताया। उसकी डाँट सुनकर वे पक्षी उस वस्त्रपर घाँट करके उसे वहीं छोड़कर चले गये। तब ब्राह्मणने आकाशमें जाते हुए उन पक्षियोंकी ओर क्रोधपूर्वक देखा। वे पक्षी उसकी क्रोधाग्निसे भस्म होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें पृथ्वीपर गिर देख ब्रह्मचारी बहुत ही विस्मित हुआ। फिर वह यह समझकर कि इस पृथ्वीपर तपस्यामें घेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है, अनायास हो गविये भिक्षा माँगने चला ॥ २१—२५ ॥

कल। तपस्याका अभिमान रखनेवाला वह ब्रह्मचारी ब्राह्मणके घरेमें भोजन माँगता हुआ उस घरमें गया, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री रहती थी। पतिव्रताने उसे देखा, ब्रह्मचारीने भिक्षाके लिये उससे याचना की, तो भी वह भीन ही रहो। पहले उसने अपने ग्नीकी आदेशकी ओर ध्यान दे उसीका पालन किया; फिर गरम जलसे शीतके चरण धोये—इस प्रकार स्वामीकी आज्ञा देकर वह भिक्षा देनेका उद्यत हुई। तब ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल आँखें करके अपने तपोबलके द्वारा पतिव्रताकी जला देनेकी दृष्ट्यासे उसकी ओर आरंभ देखने लगा। सावित्री उसे यों करते देख हैसती हुई बोली—'ऐ क्रोधो ब्राह्मण! मैं कौआ और बगुला नहीं हूँ, जो आज नदीके तटपर तुम्हारे जोरसे जलकर भस्म हो गये थे। मुझे यदि भोजन चाहते हो, तो भुपचाय ले लो' ॥ २६—३० ॥

तथैवमुक्तः सावित्र्या भिक्षामादाय सोऽग्रतः ।
चिन्तयन् मनसा तस्याः शक्तिं दूरार्थवेदिनीम् ॥ ३१
एत्याश्रमे मठे स्थाप्य भिक्षापात्रं प्रयततः ।
पतिव्रतायां भुक्तायां गृहस्थे निर्गते पती ॥ ३२
पुनरागम्य तद्देहं तामुवाच पतिव्रताम् ।

ब्रह्मचारिणी

प्रब्रूयतेन्महाभागे पुच्छतो मे यद्यार्थतः ॥ ३३
विप्रकृष्टार्थविज्ञानं कथमाशु तवाभवत् ।
इत्युक्ता तेन सा साध्वी सावित्री तु पतिव्रता ॥ ३४
तं ब्रह्मचारिणं प्राह पुच्छन्तं गृहमेत्य वै ।
शृणुष्यावहितो ब्रह्मन् यन्मां त्वं परिपुच्छसि ॥ ३५
तनेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि स्वधर्मपरिवृंहितम् ।
स्त्रीणां तु पतिशुश्रूषा धर्म एषः परिस्थितः ॥ ३६
तमेवाहं सदा कुर्यां नान्यमस्मि महामते ।
दियारात्रमसंदिग्धं ब्रह्मया परितोषणम् ॥ ३७
कुर्वन्त्या मम सम्भूतं विप्रकृष्टार्थदर्शनम् ।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं यदीच्छसि ॥ ३८
पिता यायावरः शुद्धस्तस्माद्देदमधीत्य वै ।
मृते पितरि कृत्वा तु प्रेतकार्यमिहागतः ॥ ३९
उत्सृज्य मातरं द्रष्टुं वृद्धां दीनां तपस्विनीम् ।
अनाथां विधवामत्र नित्यं स्वोदरपोषकः ॥ ४०
यया गर्भे धृतः पूर्वं पालितो लालितस्तथा ।
तां त्यक्त्वा विपिने धर्मं चरन् विप्रं न लज्जसे ॥ ४१
यया तव कृतं ब्रह्मन् बाल्ये मलनिकृन्तनम् ।
दुःखितां तां गृहे त्यक्त्वा किं भवेद्विपिनेऽटतः ॥ ४२
मातृदुःखेन ते वक्त्रं पृतिगन्धमिदं भवेत् ।
पित्रैव संस्कृतो यस्मात् तस्माच्छक्तिरभूदियम् ॥ ४३

सावित्रीके यों कहनेपर उससे भिक्षा लेकर वह आगे चला और उसकी दूरवर्ती घटनाको ज्ञान लेनेवाली शक्तिका मन हो-मन चिन्तन करता हुआ अपने आश्रमपर पहुँचा। वहाँ भिक्षापात्रको यत्नपूर्वक मठमें रखकर जब पतिव्रता भोजनसे निवृत्त हो गयी और जब उसका गृहस्थ पति घरसे बाहर चला गया, तब वह पुनः उसके घर आयी और उस पतिव्रतासे बोली ॥ ३१—३२ १/२ ॥

ब्रह्मचारिने कहा—महाभागे! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, तुम मुझे यद्यार्थरूपसे बताओ, तुम्हें दूरकी घटनाका ज्ञान इतना शीघ्र कैसे हो गया? ॥ ३३ १/२ ॥

उसके यों कहनेपर वह साध्वी पतिव्रता सावित्री घर आकर प्रश्न करनेवाले उस ब्रह्मचारिसे यों बोली—‘ब्रह्मन्! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उसे सावधान होकर सुनो—स्वधर्म-पालनसे बड़े हुए अपने परोक्षज्ञानके विषयमें मैं तुमसे भलीभाँति बताऊँगी। पतिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका सुनिश्चित धर्म धर्म है। महामते! मैं सदा उसी धर्मका पालन करती हूँ किसी अन्य धर्मका नहीं। निस्संदेह मैं दिन-रात ब्रह्मपूर्वक पतिको संतुष्ट करती रहती हूँ, इसीलिये मुझे दूर होनेवाली घटनाका भी ज्ञान हो जाता है। मैं तुम्हें कुछ और भी बताऊँगी; तुम्हारी इच्छा हो, तो सुनो—‘तुम्हारे पिता यज्ञशर्मा यायावर-वृत्तिके शुद्ध ब्राह्मण थे। उनसे ही तुमने वेदाध्ययन किया था। पिताके मर जानेपर उनका प्रेतकार्य करके तुम यहाँ चले आये। दोन-अवस्थामें पढ़कर कष्ट भोगते हुई उस अनाथ विधवा वृद्धा माताकी देख-भाल करना छोड़कर तुम यहाँ रोज अपना ही पेट भरनेमें लगे हुए हो। ब्रह्मण! जिसने पहले तुम्हें गर्भमें धारण किया और जन्मके बाद तुम्हारा लालन पालन किया, उसमें असहाय्यवस्थामें छोड़कर वनमें धर्माचरण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? ब्रह्मन्! जिसने बाल्यावस्थामें तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया था, उस दुखिया माताकी घरमें अकेली छोड़कर वनमें घूमनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? माताके कष्टमें तुम्हारा मुँह दुर्गन्धयुक्त हो जायगा। तुम्हारे पिताने ही तुम्हारा उत्तम संस्कार कर दिया था, जिससे तुम्हें यह शक्ति प्राप्त हुई है।

पक्षी दग्धः सुदुर्बुद्धे पापात्मन् साम्प्रतं वृथा ।
 वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जसं वृथा हुतम् ॥ ४४
 स जीवति वृथा ब्रह्मन् यस्य माता सुदुःखिता ।
 यो रक्षेत् सततं भक्त्या मातरं मातृवत्सलः ॥ ४५
 तस्येहानुष्ठितं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ।
 मातुश्च वचनं ब्रह्मन् पालितं यैर्नरोत्तमैः ॥ ४६
 ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ।
 अतस्त्वं तत्र गत्वाद्य यत्र माता व्यवस्थिता ॥ ४७
 तां त्वं रक्षय जीवन्तीं तद्रक्षा ते परं तपः ।
 क्रोधं परित्यजेन त्वं दृष्टादृष्टविघातकम् ॥ ४८
 तयोः कुरु यथे शुद्धिं पक्षिणोरात्मशुद्धये ।
 याथातथ्येन कथितमेतत्सर्वं मया तव ॥ ४९
 ब्रह्मचारिन् कुरुष्व त्वं यदीच्छसि सतां गतिम् ।
 इत्युक्त्वा विररामाथ द्विजपुत्रं पतिव्रता ॥ ५०
 सोऽपि तामाह भूयोऽपि सावित्री तु क्षमापयन् ।
 अज्ञानात्कृतपापस्य क्षमस्य वरवर्णिनि ॥ ५१
 मया तवाहितं यच्च कृतं क्रोधनिरीक्षणम् ।
 तत् क्षमस्व महाभागे हितमुक्तं पतिव्रते ॥ ५२
 तत्र गत्वा मया यानि कर्माणि तु शुभव्रते ।
 कार्याणि तानि मे ब्रूहि यथा मे सुगतिर्भवेत् ॥ ५३
 तेनैवमुक्ता साप्याह तं पृच्छन्तं पतिव्रता ।
 यानि कार्याणि वक्ष्यामि त्वया कर्माणि मे शृणु ॥ ५४
 पोष्या माता त्वया तत्र निश्चयं भक्षवृत्तिना ।
 अत्र वा तत्र वा ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं च पक्षिणोः ॥ ५५
 यज्ञशर्मसुता कन्या भार्या तव भविष्यति ।
 तां गृहीष्व च धर्मेण गते त्वयि स दास्यति ॥ ५६
 पुत्रस्ते भविता तस्यामेकः संततिवर्धनः ।
 यायावरधनाद्वृत्तिः पितृवत्ते भविष्यति ॥ ५७

दुर्बुद्धि पापात्मन्! तुमने व्यर्थ ही पक्षियोंको जलाया। इस समय तुम्हारा किया हुआ स्नान, तीर्थसेवन, जप और होम—सब व्यर्थ है। ब्रह्मन्! जिसकी माता अत्यन्त दुःखमें पड़ी हो, वह व्यर्थ ही जीवन धारण करता है। जो पुत्र मातापर दया करके भक्तिपूर्वक निरन्तर उसकी रक्षा करता है, उसका किया हुआ सब कर्म यहाँ और परलोकमें भी फलप्रद होता है। ब्रह्मन्! जिन उत्तम पुरुषोंने माताके वचनका पालन किया है, वे इस लोक और परलोकमें भी माननीय तथा नमस्कारके योग्य हैं। अतः जहाँ तुम्हारी माता है, वहाँ जाकर उसके जीते-जी उसीकी रक्षा करो। उसकी रक्षा करना ही तुम्हारे लिये परम तपस्या है। इस क्रोधको त्याग दो; क्योंकि यह तुम्हारे दृष्ट और अदृष्ट—सभी कर्मोंको नष्ट करनेवाला है। उन पक्षियोंकी हत्याके पापसे अपनी शुद्धिके लिये तुम प्रायश्चित्त करो। यह सब मैंने तुम्हें यथार्थ बातें कही हैं। ब्रह्मचारिन्! यदि तुम सत्पुरुषोंको यत्निको प्राप्त करना चाहते हो—तो मेरे कहे अनुसार करो ॥ ३४—४९/१ ॥

ब्राह्मणकुमारसे यों कहकर वह पतिव्रता चुप हो गयी। तब ब्रह्मचारी भी पुनः अपने अपराधके लिये क्षमा माँगता हुआ सावित्रीसे बोला—“वरवर्णिनि। अनजानमें किये हुए मेरे इस पापको क्षमा करो। महाभागे! पतिव्रते। तुमने मेरे हितकी ही बात कही है। मैंने जो क्रोधपूर्वक तुम्हारी ओर देखकर तुम्हारा अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। शुभव्रते! अब मुझे माताके पास जाकर जिन कर्तव्योंका पालन करना चाहिये, उन्हें बताओ, जिनके करनेसे मेरी शुभगति हो” ॥ ५०—५३ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर उस पृच्छनेवाले ब्राह्मणसे पतिव्रता सावित्री पुनः बोली—“ब्रह्मन्! वहाँ तुमको जो कर्म करने चाहिये, उन्हें बतलाती हूँ; सुनो—‘तुम्हें भिक्षावृत्तिसे जीवननिर्वाह करते हुए वहाँ माताका निश्चय ही पोषण करना चाहिये और पक्षियोंकी हत्याका प्रायश्चित्त यहाँ अथवा वहाँ अवश्य करना चाहिये। यज्ञशर्माकी’ पुत्री तुम्हारी पत्नी होगी। उसे ही तुम धर्मपूर्वक ग्रहण करो। तुम्हारे जानेपर यज्ञशर्मा अपनी कन्या तुम्हें दे देंगे। उसके गर्भसे तुम्हारी वंश-परम्पराको बढ़ानेवाला एक पुत्र होगा। पिताकी भाँति यायावर-वृत्तिसे प्राप्त हुए धनसे ही तुम अपनी जीविका चलाओगे।

पुनर्मृतायां भार्यायां भविता त्वं त्रिदण्डकः ।
स यत्याश्रमधर्मेण यथोक्त्यानुष्ठितेन च ।
नरसिंहप्रसादेन वैष्णवं पदमाप्स्यसि ॥ ५८

भाष्यमेतत् कथितं मया तव हि पृच्छतः ।
मन्यसे नानृतं त्वेतत् कुरु सर्वं हि मे वचः ॥ ५९

ब्राह्मण उवाच

गच्छामि मातृरक्षार्थमद्यैवाहं पतिव्रते ।
करिष्ये त्वद्वचः सर्वं तत्र गत्वा शुभेक्षणे ॥ ६०
इत्युक्त्वा गतवान् ब्रह्मन् देवशर्मा ततस्त्वरन् ।
संरक्ष्य मातरं यत्नात् क्रोधमोहवियर्जितः ॥ ६१
कृत्वा विवाहमुत्पाद्य पुत्रं वंशकरं शुभम् ।
मृतभार्यश्च संन्यस्य समलोष्टाश्रमकाञ्चनः ।
नरसिंहप्रसादेन परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥ ६२
पतिव्रताशक्तिरियं तवेरिता
धर्मश्च मातुः परिरक्षणं परम् ।
संसारवृक्षं च निहत्य बन्धनं
छित्त्वा च विष्णोः पदमेति मानवः ॥ ६३

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्रह्मवैवर्तसंस्कृतं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पतिव्रता और ब्रह्मचारिकों का पालन' विषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

॥ ॥ ॥

चौदहवाँ अध्याय

तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन

ज्वास उवाच

शृणु वत्स महाबुद्धे शिष्याश्चैतां परां कथाम् ।
मयोच्यमानां शृण्वन्तु सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १
पुरा द्विजवरः कश्चिद्वेदशास्त्रविशारदः ।
मृतभार्यो गतस्तीर्थं चक्रे स्नानं यथाविधि ॥ २
तपः सुतप्तं विजने निःस्पृहो दारकर्मणि ।
भिक्षाहारः प्रवसितो जपस्नानपरायणः ॥ ३

फिर तुम अपनी पत्नीको मृत्युके बाद त्रिदण्डो (संन्यासी) हो जाओगे। वहाँ संन्यासाश्रमके लिये शास्त्रविहित धर्मका यथावत् रूपसे पालन करनेपर भगवान्‌ नरसिंहकी प्रसन्नतासे तुम विष्णुपदको प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे पृष्ठनेपर मैंने ये भविष्यमें होनेवाली बातें तुमसे बतलाई हैं। यदि तुम इन्हें असत्य नहीं मानते, तो मेरे सब वचनोंका पालन करो ॥ ५४—५९ ॥

ब्राह्मण बोला—पतिव्रते। मैं माताकी रक्षाके लिये आज ही जाता हूँ। शुभेक्षणे! वहाँ जाकर तुम्हारी सब बातोंका मैं पालन करूँगा ॥ ६० ॥

ब्रह्मन्। यों कहकर देवशर्मा वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चला गया और क्रोध तथा मोहसे रहित होकर उसने यज्ञ-पूर्वक माताकी रक्षा की। फिर विवाह करके एक सुन्दर वंश-वर्धक पुत्र उत्पन्न किया और कुछ कालके बाद पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर संन्यासी होकर डेले और मिट्टीको बराबर समझते हुए उसने भगवान्‌ नरसिंहकी कृपासे परमसिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर ली। यह मैंने तुमसे पतिव्रताकी शक्ति बताया और यह भी बतलाया कि माताकी रक्षा करना परम धर्म है। संसारवृक्षका उच्छेद करके सब बन्धनोंको तोड़ देनेपर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ६१—६३ ॥

व्यासजी बोले—महाबुद्धिमान्‌ पुत्र शुकदेव! तुम और मेरे अन्य शिष्यगण भी मेरे द्वारा कही जानेवाली इस पापहारिणी कथाको सुनो ॥ १ ॥

पूर्वकालमें कोई वेदशास्त्रविशारद श्रेष्ठ ब्राह्मण अपनी पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर तीर्थमें गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक स्नान किया और विजने (एकान्त)-में रहकर उत्तम तपस्या की। तत्पश्चात्‌ दारकर्म (विवाह) को इच्छा न रखकर वह परदेशमें रहता हुआ भिक्षा माँगकर

स्नात्वा स गङ्गां यमुनां सरस्वतीं
पुण्यां वितस्तामथ गोमतीं च।
गयां सभासाद्य पितृन् पितामहान्
संतर्पयन् सन् गतवान् महेन्द्रम् ॥ ४

तत्रापि कुण्डेषु गिरौ महामतिः
स्नात्वा नु दृष्ट्वा भृगुनन्दनोत्तमम्।
कृत्वा पितृभ्यस्तु तथैव तृप्तिं
ब्रजन् वनं पापहरं प्रविष्टः ॥ ५

धारां पतन्तीं महतीं शिलोच्चयात्
संधार्य भक्त्या त्वन् नारसिंहे।
शिरस्यशेषाघविनाशिनीं तदा
विशुद्धदेहः स बभूव विप्रः ॥ ६

विन्ध्याचले सक्तमननमच्युतं
भक्तैर्मुनीन्द्रैरपि पूजितं सदा।
आराध्य पुष्पैर्गिरिसम्भवैः शुभै-
स्तत्रैव सिद्धिं त्वभिर्कांक्ष्य संस्थितः ॥ ७

स नारसिंहो बहुकालपूजया
तुष्टः सुनिद्रागतमाह भक्तम्।
अनाश्रमित्वं गृहभङ्गकारणं
ह्यतो गृहाणाश्रममुत्तमं द्विज ॥ ८

अनाश्रमीति द्विजवेदपारगा-
नपि त्वहं नानुगृहामि चात्र।
तथापि निष्ठां तव वीक्ष्य सत्तम
त्वयि प्रसन्नेन मयेत्पुदीरितम् ॥ ९

तेनैवमुक्तः परमेश्वरेण
द्विजोऽपि बुद्ध्या प्रविचिन्त्य वाक्यम्।
हरेरलङ्घ्यं नरसिंहमूर्ते-
र्वाधं च कृत्वा स यतिर्बभूव ॥ १०

त्रिदण्डयुक्षाक्षपवित्रपाणि-
राप्तुत्य तोये त्ववहारिणि स्थितः।
जपन् सदा मन्त्रमपास्तदोषं
सावित्र्यमीशं हृदये स्मरन् हरिम् ॥ ११

यथाकथंचित् प्रतिलभ्य शाकं
भैक्ष्याभितुष्टो वनवासवासी।
अभ्यर्च्य विष्णुं नरसिंहमूर्तिं
ध्यात्वा च नित्यं हृदि शुद्धमाद्यम् ॥ १२

जीवननिर्वाह करने और जप, स्नान आदि उत्तम कर्ममें तत्पर रहने लगा। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, पावन वितस्ता (झेलम) और गोमती आदिमें स्नान करके वह गयामें पहुँचा और वहाँ अपने पिता-पितामह आदिका तर्पण करके महेन्द्र पर्वतपर गया। वहाँ उस परम बुद्धिमान् द्विजने पर्वतीय कुण्डोंमें स्नान करनेके पश्चात् ऋषिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीका दर्शन किया; फिर पूर्ववत् पितरोंके लिये तर्पण करके चलते-चलते एक वनमें प्रवेश किया, जो पापोंका नाश करनेवाला था ॥ २-५ ॥

वहाँ एक पर्वतसे बहुत बड़ी धारा गिरती थी, जो निराले पापप्राशिका विनाश करनेवाली थी। उसके जलको लेकर ब्राह्मणने भक्तिपूर्वक भगवान् नृसिंहके मस्तकपर चढ़ाया। इससे उसी समय उसका शरीर विशुद्ध हो गया। फिर विन्ध्याचल पर्वतपर स्थित होकर भक्तों और मुनीश्वरोंसे सदा पूजित होनेवाले अनन्त अच्युत भगवान् विष्णुकी सुन्दर पर्वतीय पुष्पीमें पूजा करता हुआ वह ब्राह्मण सिद्धिकी कामनासे वहाँ ठहर गया ॥ ६-७ ॥

इस तरह दीर्घकालतक उसने पूजा की। उससे प्रसन्न होकर ये भगवान् नृसिंह गाढ़ निद्रामें सोये हुए अपने उस भक्तसे स्वप्नमें दर्शन देकर बोले—'ब्राह्मन्! किसी आश्रमभङ्गीको स्वीकार करके न चलना गृहस्थकी मर्यादाके भङ्गका कारण होता है; अतः यदि तुम्हें गृहस्थ नहीं रहना है तो किसी दूसरे उत्तम आश्रमको ग्रहण करो। ब्राह्मन्! जो किसी आश्रममें स्थित नहीं है, वह यदि वेदोंका पारगामो विद्वान् हो, तो भी मैं वहाँ उसपर अनुग्रह नहीं करता; परन्तु साधुवर! तुम्हारी निष्ठा देखकर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसीसे मैंने तुमसे यह बात कही है' ॥ ८-९ ॥

उन परमेश्वरके इस प्रकार कहनेपर उस ब्राह्मणने भी अपनी बुद्धिसे नृसिंहस्वरूप श्रीहरेके उस कथनपर विचार करके उसे अलङ्घनीय माना और सम्पूर्ण जगत्का बाध (त्याग) करके वह संन्यासी हो गया ॥ १० ॥

फिर प्रतिदिन उस पापहारी जलमें डुबकी लगाकर तथा उसीमें लड्डा रहकर त्रिदण्ड और अक्षमाला धारण करनेसे पवित्र हाथोंवाला वह ब्राह्मण मन ही मन भगवान् विष्णुका स्मरण करता हुआ निर्दोष गायत्री-मन्त्रका जप करने लगा। नित्यप्रति शुद्ध आदिदेव भगवान् विष्णुका हृदयमें ध्यान करके उनके नृसिंह विग्रहका पूजन करता

विविक्तदेशे विपुले कुशासने
निवेश्य सर्वं हृदयेऽस्य सर्वम् ।
बाह्यं समस्तं गुणमिन्द्रियाणां
विलीय भेदं भगवत्पुनन्ते ॥ १३ ॥
विज्ञेयमानन्दमजं विशालं
सत्यात्मकं क्षेमपदं वरेण्यम् ।
संचिन्त्य तस्मिन् प्रविहाय देहं
बभूव मुक्तः परमात्मरूपी ॥ १४ ॥
इमां कथां मुक्तिपरां यद्योक्तां
पठन्ति ये नारसिंहं स्मरन्तः ।
प्रयागतीर्थप्लवने तु यत्फलं
तत् प्राप्य ते यान्ति हरेः पदं महत् ॥ १५ ॥
इत्येतदुक्तं तव पुत्र पृच्छतः
पुरातनं पुण्यतमं पवित्रकम् ।
संसारवृक्षस्य विनाशनं परं
पुनः कमिच्छस्यभिवाञ्छितं वद ॥ १६ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकरण श्रीनारसिंहपुराणमें चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा

श्रीशुक उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यहं तात साम्प्रतं मुनिभिः सह ।
संसारवृक्षं सकलं येनेदं परिवर्तने ॥ १ ॥
वक्तुमर्हसि मे तात त्वयैतत् सूचितं पुरा ।
नान्यो वेत्ति महाभाग संसारोच्चारलक्षणम् ॥ २ ॥

सूत उवाच

स पुत्रेणैवमुक्तस्तु शिष्याणां मध्यगेन च ।
कृष्णार्द्धपायनः प्राह संसारतरुलक्षणम् ॥ ३ ॥

शुक उवाच

शृण्वन्तु शिष्याः सकला वत्स त्वं शृणु भावितः ।
संसारवृक्षं वक्ष्यामि येन चेदं समावृतम् ॥ ४ ॥

और जनमानसी हो किसी प्रकार शाक आदि खाकर भिक्षावृत्तिसे ही संतोषपूर्वक रहता था। विस्तृत एकान्त प्रदेशमें कुशासनपर बैठकर वह इन्द्रियोंके समस्त बाह्य विषयों तथा भेदबुद्धिको हृदयस्थित भगवान् अनन्तमें विलीन करके विज्ञेय, अजन्मा, विराट्, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ, कल्याणधाम आनन्दमय परमेश्वरका चिन्तन करता हुआ आयु पूरी होनेपर शरीर त्यागकर मुक्त एवं परमात्मस्वरूप हो गया ॥ १३—१४ ॥

जो लोग मोक्ष-सम्बन्धितों अथवा मोक्षकी ही उत्कृष्ट वानवाली इस कथाको भगवान् नृसिंहका स्मरण करते हुए पढ़ते हैं, वे प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे जो फल होता है, उसे पाकर अन्तमें भगवान् विष्णुके महान् पदको प्राप्त कर लेंगे हैं। घेडा! तुम्हारे पूछनेसे मैंने यह उत्तम, पवित्र, पुण्यतम एवं पुरातन उपाख्यान, जो संसारवृक्षका नाश करनेवाला है, तुमसे कहा है; अब और क्या सुनना चाहते हो? अपना मनोरथ प्रकट करो ॥ १५—१६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! मैं इस समय मुनियोंके साथ संसारवृक्षका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा यह परिवर्तनका सम्पूर्ण चक्र चलता रहता है। तात! आपने ही पहले इस वृक्षको सूचित किया है; अतः आप ही इसका वर्णन करनेके योग्य हैं। महाभाग! आपके सिवा दूसरा कोई इस संसारवृक्षका लक्षण नहीं जानता ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—भद्राज! अपने शिष्योंके बीचमें बैठे हुए पुत्र शुकदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णार्द्धपायन (व्यासजी) ने उन्हें संसारवृक्षका लक्षण इस प्रकार बताया ॥ ३ ॥

श्रीव्यासजी बोले—मैंने सभी शिष्य इस विषयको सुने; तथा वत्स! तुम भी सावधान होकर सुनो—मैं

अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्मादग्रे तद्योन्वितः ।
 बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥ ५
 महाभूतविशाखश्च विशेषैः पत्रशाखयान् ।
 धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदुःखफलोदयः ॥ ६
 आर्जीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्म वृक्षः सनातनः ।
 एतद् ब्रह्म परं चैव ब्रह्म वृक्षस्य तस्य तत् ॥ ७
 इत्येवं कथितं यत्स संसारवृक्षलक्षणम् ।
 वृक्षमेवं समारूढा मोहमायानि देहिनः ॥ ८
 संसरन्तीह सततं सुखदुःखसमन्विताः ।
 प्रायेण प्राकृता मर्त्या ब्रह्मज्ञानपराङ्मुखाः ॥ ९
 छित्त्वेन कृतिनो यानि नो यानि ब्रह्मज्ञानिनः ।
 कर्मक्रिये महाप्राज्ञ नैनं छिन्दन्ति दुष्कृताः ॥ १०
 एनं छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमासिता ।
 ततोऽमरत्वं ते यानि यस्मात्प्रावर्तते पुनः ॥ ११
 देहदारमयैः पाशैर्वृद्धं बद्धोऽपि मुच्यते ।
 ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाञ्छितम् ।
 तोषणं नरसिंहस्य ज्ञानहीनः पशुः पुमान् ॥ १२
 आहारनिश्रभयमैथुनानि
 समानमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
 ज्ञानं नराणामधिकं हि लोके
 ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १३

संसारवृक्षका वर्णन करता है, जिसने इस सारे दृश्य-
 उपपन्नको व्याप्त कर रखा है। यह संसार-वृक्ष अव्यक्त
 परमात्मालम्बी मूलसे प्रकट हुआ है। उन्हींसे प्रकट होकर
 हमारे सामने इस रूपमें खड़ा है। बुद्धि (महत्तत्त्व)
 उसका तना है, इन्द्रियाँ ही उसके अङ्गुर और कोटर हैं।
 पञ्चमहाभूत उसकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं, विशेष पदार्थ
 ही उसके पत्ते और टङ्गनियाँ हैं, धर्म-अधर्म फूल हैं,
 उससे 'सुख' और 'दुःख' नामक फल प्रकट होते हैं,
 प्रकाङ्क्षरूपसे सदा रहनेवाला यह संसारवृक्ष ब्रह्माकी भीति
 सभी भूतोंका आश्रय है। यह अपरब्रह्म और परब्रह्म भी
 इस संसार-वृक्षका कारण है। पुत्र! इस प्रकार मैंने तुमसे
 संसारवृक्षका लक्षण बतलाया है। इस वृक्षपर चढ़े हुए
 देहाभिमानी जीव मोहित हो जाते हैं। प्रायः ब्रह्मज्ञानसे
 विमुख प्राकृत मनुष्य सदा सुख-दुःखमें पटक होकर इस
 संसारमें फँसे रहते हैं, ब्रह्मज्ञानी विद्वान् इस संसारवृक्षको
 नहीं छान्न होते। वे इसका उच्छेद करके मुक्त हो जाते
 हैं। महाप्राज्ञ मुक्तदेव! जो पाते हैं, वे कर्म क्रियाका
 उच्छेद नहीं कर पाते। ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी उतम खड्गके
 द्वारा इस वृक्षकी छित्त-भित्त करके उस अमरपदकी प्राप्ति
 करते हैं, जहाँसे जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता।
 शरीर तथा स्त्रीरूपी बन्धनोंसे दृढ़तापूर्वक घेरा हुआ
 पुरुष भी ज्ञानके द्वारा मुक्त हो जाता है; अतः श्रेयतम
 पुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्ति ही परम अभीष्ट होती है; क्योंकि
 ज्ञान ही भगवान् नृसिंहकी संतोष देता है। ज्ञानहीन पुरुष
 तो पशु ही है। मनुष्योंके आहार, निद्रा, भय और मैथुन
 आदि कर्म तो पशुओंके ही समान होते हैं; उनमें केवल
 ज्ञान ही अधिक होता है। जो ज्ञानहीन हैं, वे पशुओंके
 ही तुल्य हैं ॥ ४-१३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्रह्मसंहिताध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें ब्रह्मसंहिता अध्याय द्वादश हुआ ॥ १६ ॥

॥ १६ ॥

सोलहवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके ध्यानसे मोक्षकी प्राप्तिका प्रतिपादन

श्रीशुक उवाच

संसारवृक्षमारुह्य इन्द्रपाशजतैर्द्वैः ।
 बध्यमानः सुतैर्धृष्यः पतितो योनिसागरे ॥ १

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! जो संसार-वृक्षपर
 आरोह्य हो; राम-देवसिंह इन्द्रमण्य सैकड़ों मुद्गद पाशों तथा
 पुत्र और धृष्यसे आदिबन्ध बन्धनसे बँधकर जेनि समुद्रमें

यः कामक्रोधलोभस्तु विषयैः परिपीडितः ।
बद्धः स्वकर्मभिर्गौणैः पुत्रदारैषणादिभिः ॥ २
स केन निस्तरत्याशु दुस्तरं भवसागरम् ।
पृच्छामाख्याहि मे तात तस्य मुक्तिः कथं भवेत् ॥ ३

श्रीव्यास उवाच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यन्नात्वा मुक्तिमाप्नुयात् ।
तच्च वक्ष्यामि ते दिव्यं नारदेन श्रुतं पुरा ॥ ४
नरके रौरवे घोरं धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
स्वकर्मभिर्महादुःखं प्राप्ता यत्र यमालये ॥ ५
महापापकृतं घोरं सम्प्राप्ताः पापकृज्जनाः ।
आलोक्य नारदः शीघ्रं गत्वा यत्र त्रिलोचनः ॥ ६
गङ्गाधरं महादेवं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रणम्य विधिवद्देवं नारदः परिपृच्छति ॥ ७

नारद उवाच

यः संसारे महाद्वन्द्वैः कामभोगैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्वद्धः पीड्यमानः बद्धिर्मिथिः ॥ ८
कथं नु मुच्यते क्षिप्रं मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् ब्रूहि मे तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥ ९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उवाच तमुपि शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः ॥ १०

महाश्वर उवाच

ज्ञानामृतं च गुह्यं च रहस्यमुपिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुःखार्जं सर्वबन्धभयापहम् ॥ ११
तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥ १२
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यते ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥ १३
भोगैश्चर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः ।
संसारसुमहापङ्के जीर्णं गौरिव मज्जति ॥ १४

गिरा हुआ है तथा काम, क्रोध, लोभ और विषयोंसे पीड़ित होकर अपने कर्ममय मुख्य बन्धनों तथा पुत्रैषणा और दारैषणा आदि गौण बन्धनोंसे आवद्ध है, वह मनुष्य इस दुस्तर भवसागरको कैसे शीघ्र पार कर सकता है? उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? हमारे इस प्रश्नको समाधान कीजिये ॥ १—३ ॥

श्रीव्यासजी बोले—महाप्राज्ञ पुत्र! मैंने पूर्वकालमें नारदजीके मुखसे जिसका श्रवण किया था और जिसे जान लेनेपर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस दिव्य ज्ञानका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। यमराजके भवनमें जहाँ घोर रौरव नरकके भीतर धर्म और ज्ञानसे रहित प्राणी अपने पापकर्मोंके कारण महान् कष्ट पाते हैं, वहाँ एक बार नारदजी गये। उन्होंने देखा, पापी जीव अपने महान् पापोंके फलस्वरूप घोर संकटमें पड़े हैं। यह देखकर नारदजी शीघ्र ही उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिलोचन महादेवजी थे। जहाँ पहुँचकर सिरपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले महान् देवता शूलपाणि भगवान् शंकरको उन्होंने विधिवत् प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४—७ ॥

नारदजी बोले—'भगवन्! जो संसारमें महान् द्वन्द्वों, शुभाशुभ कामभोगों और शब्दादि विषयोंसे बँधकार छहाँ 'कर्मियोद्धार' पीड़ित हो रहा है, वह मृत्युमय संसार-सागरसे किस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो सकता है? कल्याणस्वरूप भगवान् शिव! यह बात मुझे बताइये। मैं यही सुनना चाहता हूँ।' नारदजीका वह वचन सुनकर त्रिनेत्रधारी भगवान् हरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उन महर्षिसे बोले ॥ ८—१० ॥

श्रीमहेश्वरने कहा—मुनिश्रेष्ठ! सुनो; मैं सब प्रकारके बन्धनोंका भय और दुःख दूर करनेवाले गौपनीय रहस्यभूत ज्ञानामृतका वर्णन करता हूँ। तूणसे लेकर चतुरानन ब्रह्माजीतक, जो चार प्रकारका प्राणिसमुदाय है, वह अथवा समस्त चराचर जगत् जिनकी मायासे सुप्त हो रहा है, उन भगवान् विष्णुकी कृपासे यदि कोई जाग उठता है—ज्ञानवान् हो जाता है तो वही देवताओंके लिये भी दुस्तर इस संसार-सागरको पार कर जाता है। जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त और तात्पर्यज्ञानसे विमुख है, वह संसाररूपी महान् पङ्कमें उस तरह डूब जाता है, जैसे कीचड़में फँसी हुई बूढ़ी गाय।

यस्त्वात्मानं निब्रज्जाति कर्मभिः कोशकारवत् ।
 तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥ १५ ॥

तस्मान्नाश्रद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम् ।
 आराधयेत्सदा सध्यां ध्यायेद्विष्णुं समाहितः ॥ १६ ॥

यस्तं विश्वमनाघन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम् ।
 सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १७ ॥

निर्विकल्पं निराकाशं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ।
 वासुदेवमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १८ ॥

निरञ्जनं परं शान्तमच्युतं भूतभावनम् ।
 देवगर्भं विभुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १९ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तमप्रमेयमलक्षणम् ।
 निर्वाणमनघं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २० ॥

अमृतं परमानन्दं सर्वपापविनिर्जितम् ।
 ब्रह्मण्यं शंकरं विष्णुं सदा संकीर्त्य मुच्यते ॥ २१ ॥

योगेश्वरं पुराणाख्यमशरणं गुहाशयम् ।
 अमात्रमव्ययं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २२ ॥

शुभाशुभविनिर्मुक्तममिषदकरं विभुम् ।
 अचिन्त्यममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २३ ॥

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वदुःखविनिर्जितम् ।
 अप्रतर्क्यमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २४ ॥

अनामगोत्रमद्वैतं चतुर्थं परमं पदम् ।
 तं सर्वद्वन्द्वं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २५ ॥

अरूपं सत्यसंकल्पं शुद्धमाकाशवत्परम् ।
 एकाग्रमनसा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २६ ॥

सर्वात्मकं स्वभावस्थमात्मचेतन्यरूपकम् ।
 शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २७ ॥

अनिर्वाच्यमविज्ञेयमक्षरादिमसम्भवम् ।
 एकं नृत्वं सदा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २८ ॥

जो केवलके कोड़ोंकी भीति अपनेको कर्मोंके बन्धनसे बंध लेता है, उसके लिये करोड़ों जन्मोंमें भी मैं मुक्तिको सम्भावना नहीं देखता। इसलिये नमद! सदा समाहितचित होकर सर्वेश्वर अविनाशी देवदेव भगवान् विष्णुको सदा भलीभाँति आराधन और ध्यान करना चाहिये ॥ १९—२६ ॥

जो सदा उन विष्णुस्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सत्यके आदिकारण, आत्मनिष्ठ, अमल एवं सर्वतः भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। जो विकल्पसे रहित, अवकाशशून्य, प्रपञ्चसे परे, रोग-शोकसे हीन एवं अवन्मा है, उन वासुदेव (सर्वव्यापी भगवान्) विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सत्य दोषोंसे रहित, परम शान्त, अच्युत, प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा देवताओंके भी उत्पत्ति-स्थान हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सम्पूर्ण पापोंसे शून्य, प्रमाणरहित, लक्षणहीन, शान्त तथा निष्प्रपञ्च हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा चिन्तन करनेवाला मनुष्य कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो अमृतमय, परमानन्दस्वरूप, सब पापोंसे रहित, ब्राह्मणोपश्रय तथा सत्यवा कल्याण करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्णुका निरन्तर नाम-ज्योर्तन करनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो योगोंके ईश्वर, पुराण, प्राकृत देहहीन, बुद्धिरूप गुहामें शयन करनेवाले, विष्णुओंके सम्पर्कसे शून्य और अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है ॥ १७—२२ ॥

जो शुभ और अशुभके बन्धनसे रहित, सः उभयोंमें परे, सर्वव्यापी, अचिन्तनीय तथा निर्मल हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त द्रव्योंसे मुक्त और सत्य दुःखोंसे रहित हैं, उन तर्कोंके अविषय, अवन्मा भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। जो नाम-गोत्रसे शून्य, अद्वितीय और जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओंमें परे दुरीय समनन्द हैं, समस्त भूतोंके हृदय-मन्दिरमें विद्यमान उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष मुक्त हो जाता है। जो रूपरहित, सत्यसंकल्प और आकाशके समान परम शुद्ध हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा एकाग्रचित्तसे चिन्तन करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो सर्वरूप, स्वभावनिष्ठ और आत्मचैतन्यरूप हैं, उन प्रकृतमान एकाक्षर (प्रणवमय) भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है।

विश्वाद्यं विश्वगोप्तारं विश्वाद्यं सर्वकामदम् ।
 स्थानत्रयातिगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २९
 सर्वदुःखक्षयकरं सर्वशान्तिकरं हरिम् ।
 सर्वपापहरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३०
 ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः ।
 योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३१
 विष्णौ प्रतिष्ठितं विश्वं विष्णुर्विश्वे प्रतिष्ठितः ।
 विश्वेश्वरमजं विष्णुं कीर्तयन्नेव मुच्यते ॥ ३२
 संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन् काममशेषतः ।
 भक्त्यैव वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३३

व्यास उवाच

नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः ।
 यदुवाच तदा तस्मै तन्मया कथितं तव ॥ ३४
 तमेव सततं ध्याहि निर्वीजं ब्रह्म केवलम् ।
 अवाप्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ३५
 श्रुत्वा सुरश्रपिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।
 स विष्णुं सम्यगाराध्य परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥ ३६
 यश्चैनं पठते चैव नृसिंहकृतमानसः ।
 शतजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥ ३७
 विष्णोः स्तवमिदं पुण्यं महादेवेन कीर्तितम् ।
 प्रातः स्नात्वा पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥ ३८
 ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं
 हृत्पद्ममध्येष्वथ कीर्तयन्ति ये ।
 उपासकानां प्रभुमीश्वरं परं
 ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥ ३९ ॥

जो अनिर्वचनीय, ज्ञानातीत, प्रणवस्वरूप और जन्म-
 रहित हैं, उन एकमात्र नित्यनूतन भगवान् विष्णुका सदा
 ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो विश्वके
 आदिकारण, विश्वके रक्षक, विश्वका भक्षण (संहार) करनेवाले
 तथा सम्पूर्ण काम्यवस्तुओंके दाता हैं, तीनों अवस्थाओंमें
 अतीत उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य
 मुक्त हो जाता है। समस्त दुःखोंके नाशक, सबको शान्ति
 प्रदान करनेवाले और सम्पूर्ण पापोंको हर लेनेवाले भगवान्
 विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसार बन्धनसे
 मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, मुनि,
 सिद्ध, चारण और योगियोंद्वारा सेवित भगवान् विष्णुका
 सदा ध्यान करनेवाला पुरुष पाप-तापसे मुक्त हो जाता
 है। वह विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है और भगवान्
 विष्णु इस विश्वमें प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी,
 अजन्मा भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त
 हो जाता है। जो संसार-बन्धनसे मुक्ति तथा सम्पूर्ण
 व्यपनाओंको पूर्ति चाहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक वरदायक
 भगवान् विष्णुका ध्यान करे तो सफलमनोरथ होकर
 संसार बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २९—३३ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—बेटा! इस प्रकार पूर्वकालमें
 देवीपि नारदजीके पूछनेपर उन वृषभचिह्नित
 भ्राजावाले भगवान् शंकरने उस समय उनके प्रति जो
 कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। तात!
 निर्वीज ब्रह्मरूप उन अद्वितीय विष्णुका ही निरन्तर ध्यान
 करो; इससे तुम अवश्य ही सनातन अविनाशी पदको
 प्राप्त करोगे ॥ ३४—३५ ॥

देवीपि नारदेने शंकरजीके मुखसे इस प्रकार भगवान्
 विष्णुके ब्रह्मण्य प्रतिपादन सुनकर उनकी भलीभाँति आगमना-
 करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली। जो भगवान् नृसिंहमें चित्त
 लगाकर इस प्रणयका नित्य पाठ करता है, उसका सौ-
 जन्मोंमें किया हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है। महादेवजीके
 द्वारा कथित भगवान् विष्णुके इस पावन स्तोत्रका जो प्रतिदिन
 प्रातःकाल स्नान करके पाठ करता है, वह अमृतपद (मोक्ष)-
 को प्राप्त कर लेता है। जो लोग अपने हृदय-कमलके
 मध्यमें विराजमान अनन्त भगवान् अच्युतका सदा ध्यान
 करते हैं और उपासकोंके प्रभु उन परमेश्वर भगवान्
 विष्णुका कीर्तन करते हैं, वे परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि
 (विष्णु-सायुज्य) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६—३९ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराण विष्णोः स्तवतर्जनीन्यासे बौद्धरोड्भाष्यः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीविष्णुस्तवतर्जनीकृत' विषयक स्तोत्रार्चन अन्त्य पुरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य

श्रीगुरु उवाच

किं जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः ।
संसारदुःखात् सर्वेषां हिताय यद् मे पितः ॥ १

व्यास उवाच

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम् ।
यं जपन् मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याजपं द्विजः ॥ ३

एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै ॥ ४

अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य ऋषिनांरायणः स्वयम् ।
छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥ ५

शुक्लवर्णं च ओंकारं नकारं रक्तमुच्यते ।
मोकारं वर्णतः कृष्णं नाकारं रक्तमुच्यते ॥ ६

राकारं कुङ्कुमाभं तु यकारं पीतमुच्यते ।
णाकारमञ्जनाभं तु यकारं बहुवर्णकम् ॥ ७

ओं नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफलप्रदः ।

वेदानां प्रणवेनैष सिद्धो मन्त्रः सनातनः ॥ ८

सर्वपापहरः श्रीमान् सर्वमन्त्रेषु चोत्तमः ।
एनमष्टाक्षरं मन्त्रं जपन्नारायणं स्मरेत् ॥ ९

संध्यावसाने सततं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥ १०

एष एव परो मोक्ष एष स्वर्ग उदाहृतः ।
सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः ॥ ११

विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा ।
एवं ज्ञात्वा ततो विप्रो ह्यष्टाक्षरमिमं स्मरेत् ॥ १२

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! पिताजी! मनुष्य सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहकर किस मन्त्रका अप करनेमें सामानरिक कष्टमें मुक्त होता है? यह मुझे बताइये। इससे सब लोगोंका हित होगा ॥ १ ॥

श्रीव्यासजी बोले—बेटा! मैं तुम्हें सभी मन्त्रोंमें उत्तम अष्टाक्षरमन्त्र बतलाऊँगा, जिसका अप करनेवाला मनुष्य जन्म और मृत्युमें युक्त संसारकी बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

द्विजको चाहिये कि अपने हृदय-कमलके मध्यभागमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुका एकाग्रचित्तसे ध्यान करे हुए अप करे। एकान्त, जनशून्य स्थानमें, श्रीविष्णुमूर्तिके सम्मुख अथवा जलतटके निकट धनमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए अष्टाक्षरमन्त्रका अप करना चाहिये। साक्षात् भगवान् नारायण ही अष्टाक्षरमन्त्रके ऋषि हैं, देवी गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, ओंकार शुक्लवर्ण है, 'न' रक्तवर्ण है, 'मो' कृष्णवर्ण है, 'वा' रक्त है, 'रा' कुङ्कुम-रंगका है, 'य' पीतवर्णका है, 'णा' अञ्जनके समान कृष्णवर्णवाला है और 'य' विविध वर्णोंमें युक्त है। तात! यह 'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र समस्त प्रयोजनोंका साधक है और भक्तिपूर्वक अप करनेवाले लोगोंको स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल देनेवाला है ॥ ३—७ ॥

यह सनातन मन्त्र वेदोंके प्रणव (सारभूत अक्षरों) से सिद्ध होता है। यह सभी मन्त्रोंमें उत्तम, श्रीसम्पत् और सम्पूर्ण पापोंकी नष्ट करनेवाला है। जो सदा संध्याके अन्तमें इस अष्टाक्षरमन्त्रका अप करता हुआ भगवान् नारायणका स्मरण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। यही उत्तम मन्त्र है और यही उत्तम तपस्या है। यही उत्तम मोक्ष तथा यही स्वर्ग कहा गया है। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैष्णवजनोंके हितके लिये सम्पूर्ण वेद-रहस्योंसे यह सारभूत मन्त्र निकाला है। इस प्रकार जानकर ब्राह्मणको चाहिये कि इस अष्टाक्षर-मन्त्रका स्मरण (जप) करे ॥ ८—१२ ॥

स्नात्वा शुचिः शुचीं देशे जपेत् पापविशुद्धये ।
जपे दाने च होमे च गमने ध्यानपर्वसु ॥ १३

जपेत्रारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वं परे तथा ।
जपेत्सहस्रं नियुतं शुचिर्भूत्वा सप्ताहितः ॥ १४

मासि मासि तु द्वादश्यां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः ।
स्नात्वा शुचिर्जपेद्यस्तु नमो नारायणं शतम् ॥ १५

स गच्छेत् परमं देवं नारायणमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्विष्णुमनेनाराध्य यो जपेत् ॥ १६

महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ।
हृदि कृत्वा हरिं देवं मन्त्रमेनं तु यो जपेत् ॥ १७

सर्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ।
प्रथमेन तु लक्षेण आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥ १८

द्वितीयेन तु लक्षेण मनुसिद्धिमवाप्नुयात् ।
तृतीयेन तु लक्षेण स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ १९

चतुर्थेन तु लक्षेण हरेः साप्तीष्यमाप्नुयात् ।
पञ्चमेन तु लक्षेण निर्मलं ज्ञानमाप्नुयात् ॥ २०

तथा षष्ठेन लक्षेण भवेद्विष्णोः स्थिरा मतिः ।
सप्तमेन तु लक्षेण स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥ २१

अष्टमेन तु लक्षेण निर्वाणमधिगच्छति ।
स्वस्वधर्मसमायुक्तो जपं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥ २२

एतत् सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्द्रितः ।
दुःस्वप्नासुरपैशाचा उरगा बह्वराक्षसाः ॥ २३

जापिनं नोपसर्पन्ति चीरक्षुद्राद्यस्तथा ।
एकाग्रमनसाव्यग्रो विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥ २४

जपेत्रारायणं मन्त्रमेतन्मृत्युभयापहम् ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो देवतानां च देवतम् ॥ २५

स्नान करके, पवित्र होकर, शुद्ध स्थानमें बैठकर पापशुद्धिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये। जप, दान, होम, गमन, ध्यान तथा पर्वके अवसरपर और किसी कर्मके पहले तथा पश्चात् इस नारायण-मन्त्रका जप करना चाहिये। भगवान् विष्णुके भक्तप्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको पवित्र-भावसे एकाग्रचित्त होकर सहस्र या लक्ष मन्त्रका जप करे ॥ १३-१४ १/२ ॥

स्नान करके पवित्रभावसे जो 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका सौ (एक सौ आठ) बार जप करता है, वह निरामय परमदेव भगवान् नारायणको प्राप्त करता है। जो इस मन्त्रके द्वारा गन्ध पुष्प आदिसे भगवान् विष्णुको आराधना करके इसका जप करता है, वह महापातकसे मुक्त होनेपर भी निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जो हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह समस्त पापोंसे विशुद्धचित्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ १५-१७ १/२ ॥

एक लक्ष मन्त्रका जप करनेसे चित्तशुद्धि होती है, दो लक्षके जपसे मन्त्रकी सिद्धि होती है, तीन लक्षके जपसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है, चार लक्षसे भगवान् विष्णुकी सम्पत्ता प्राप्त होती है और पाँच लक्षसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार छः लक्षसे भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर होता है, सात लक्षसे भगवत्स्वरूपका ज्ञान होता है और आठ लक्षसे पुरुष निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। द्विजमात्रको चाहिये कि अपने-अपने धर्मसे मुक्त रहकर इस मन्त्रका जप करे। यह अष्टाक्षरमन्त्र सिद्धिदायक है। आलस्य त्यागकर इसका जप करना चाहिये। इस जप करनेवाले पुरुषके पास दुःस्वप्न, असुर, पिशाच, सर्प, ब्रह्मरक्षस, चोर और छोटी-मोटी मानसिक व्यथियाँ भी नहीं पटकती हैं ॥ १८-२३ १/२ ॥

विष्णुभक्तको चाहिये कि वह दृढ़संकल्प एवं स्वस्थ होकर एकाग्रचित्तसे इस नारायण मन्त्रका जप करे। यह मृत्यु भयका नाश करनेवाला है। मन्त्रोंमें सबसे उत्कृष्ट मन्त्र और देवताओंका भी देवता (आराध्य) है।

गुह्यानां परमं गुह्यमोकाराद्यक्षराष्टकम् ।
 आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून् विद्यां महद्यशः ॥ २६
 धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपत्रयः ।
 एतत् सत्यं च धर्म्यं च वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥ २७
 एतत् सिद्धिकरं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः ।
 ऋषयः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुरराक्षसाः ॥ २८
 एतदेव परं जप्त्वा परां सिद्धिमितो गताः ।
 ज्ञात्वा यस्वात्मनः कालं शास्त्रान्तरविधानतः ।
 अन्तकाले जपत्रेति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २९

नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यं
 संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः ।
 शृण्वन् भव्यमतयो मुदितास्त्वराणां
 उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥ ३० ॥

भूत्वोर्ध्वबाहुरक्षाहं सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ।
 हे पुत्र शिष्याः शृणुत न मन्योऽष्टाक्षरात्परः ॥ ३१

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ।
 वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात् परः ॥ ३२

आलोच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
 इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३३

इत्येतत् सकलं प्रोक्तं शिष्याणां तव पुण्यदम् ।
 कथाश्च विविधाः प्रोक्ता मया भज जनार्दनम् ॥ ३४

अष्टाक्षरमिमं मन्त्रं सर्वदुःखविनाशनम् ।
 जप पुत्र महायुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि ॥ ३५

इदं स्तवं व्यासमुखात् नुस्मृतं
 संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति ।

ते धौतपाण्डुरपटा इव राजहंसाः
 संसारसागरमपेतभयास्तरन्ति ॥ ३६

यह ॐकारादि अष्टाक्षर-मन्त्र गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है। इसका जप करनेवाला मनुष्य आयु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, महान् यश एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। यह वेदों और श्रुतियोंके कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मन्त्ररूपी नारायण मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं। ऋषि, पितृगण, देवता, सिद्ध, असुर और राक्षस इसी परम उत्तम मन्त्रका जप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो प्योतिष आदि अन्य शास्त्रोंके विधानसे अपना अन्तकाल निकट ज्ञानकर इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रसिद्ध परमपदको प्राप्त होता है ॥ २४—२९ ॥

भव्य बुद्धिवाले विरक्त पुरुष प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनें—मैं दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उच्चस्वरसे यह उपदेश देता हूँ कि "संसाररूपी सर्पके भयानक विषका नाश करनेके लिये यह 'ॐ नारायणाय नमः' मन्त्र ही सत्य (अमोघ) औषध है"। पुत्र और शिष्यों! सुनो—आज मैं दोनों बाँहें ऊपर उठाकर सत्यपूर्वक कह रहा हूँ कि 'अष्टाक्षरमन्त्र' से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। मैं भुजाओंको ऊपर उठाकर सत्य, सत्य और सत्य कह रहा हूँ, 'वेदसे बढ़कर दूसरा शास्त्र और भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है।' सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना तथा बार-बार उनका विचार करनेसे एकमात्र यही उत्तम कर्तव्य सिद्ध होता है कि 'नित्य-निरन्तर भगवान् नारायणका ध्यान ही करना चाहिये'। घेरा! तुमसे और शिष्योंसे यह सारा पुण्यदायक प्रसंग मैंने कह सुनाया तथा नाना प्रकारकी कथाएँ भी सुनायीं; अब तुम भगवान् जनार्दनका भजन करो। महाबुद्धिमान् पुत्र! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो इस सर्वदुःखनाशक अष्टाक्षरमन्त्रका जप करो। जो पुरुष श्रोत्र्यासजीके मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका त्रिकाल संध्याके समय पाठ करेंगे, वे धुले हुए श्वेत वस्त्र तथा राजहंसीके समान निर्मल (विशुद्ध)-चित्त हो निर्भयतापूर्वक संसार-सागरसे पार हो जाएँगे ॥ ३०—३६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे अष्टाक्षरमन्त्रोक्त्यर्थे सप्तमोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'अष्टाक्षरमन्त्रका माहात्म्य' नामक मन्त्रकी अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु, यम और यमीकी, छायाके गर्भसे मनु, शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अक्षारूपधारिणी संज्ञासे अश्विनोक्तुमारोंका प्रादुर्भाव

आ ३३४

इति श्रुत्वा कथाः पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः ।
नानाविधा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णद्वैपायनात् पुनः ॥ १

शुकः पूर्वं महाभागो भरद्वाजो महामते ।
सिद्धैरन्यैश्च सहितो नारायणपरोऽभवत् ॥ २

एवं ते कथिता विप्र मार्कण्डेयादिकाः कथाः ।
मया विचित्राः पापघ्न्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३

भरद्वाज उवाच

वस्यादीनां तथा प्रोक्ता मम सृष्टिस्त्वया पुरा ।
अश्विनोर्मरुतां चैव नोक्तोत्पत्तिस्तु तां वद ॥ ४

शुक उवाच

मरुतां विस्तरेणोक्ता वेष्णावाख्ये महामते ।
पुराणे शक्तिपुत्रेण पुरोत्पत्तिश्च वायुना ॥ ५

अश्विनोर्देवयोश्चैव सृष्टिरुक्ता सुविस्तरात् ।
संक्षेपान्तव दक्ष्यामि सृष्टिमेतां भृशूष मे ॥ ६

दक्षकन्यादितिः । अदितेरादित्यः पुत्रः । तस्मै त्वष्टा दुहितरं संज्ञां नाम कन्यां दत्तवान् ॥ ७ ॥ सोऽपि त्वार्ष्टीं रूपवतीं मनोज्ञां प्राप्य तया सह रेमे । सा कतिपयात् कालात् स्वभर्तुरादित्यस्य तापमसहन्ती पितुर्गुहं जगाप ॥ ८ ॥ तामवलोक्य सुतां पितोवाच किं पुत्रि तव भर्तां सविता स्नेहात् त्वां रक्षत्वुत परुष इति ॥ ९ ॥ एवं पितुर्वचनं श्रुत्वा संज्ञा तं प्रत्युवाच । दग्धाहं भर्तुः प्रचण्डताशादिति ॥ १० ॥ एवं श्रुत्वा तामाह पिता गच्छ पुत्रि भर्तुर्गुहमिति ॥ ११ ॥ युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान् । अहमपि कतिपयदिवसादागत्या-दित्यस्योष्णतां जामातुरुद्धरिष्यामि ॥ १२ ॥

सुतजी बोले—मुनिवरो तथा महामते भरद्वाज ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णद्वैपायनसे इस प्रकार नाना भौतिकी पावन पापनाशक कथाएँ सुनकर महाभाग शुक अन्य सिद्धरज्योंके साथ भगवान् नारायणकी आरधनामें तापर हो गये । ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने आपसे पाप नाश करनेवाली मार्कण्डेय आदिकों विचित्र कथाएँ कहीं ; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ १—३ ॥

भरद्वाजजी बोले—सुतजी ! आपने पहले मुझसे यमु आदि देवताओंकी सृष्टिका उस प्रकार वर्णन किया ; परंतु अश्विनोक्तुमारों तथा मरुदणोंकी उत्पत्ति वहीं कही ; अतः अब उसे ही कहिये ॥ ४ ॥

सुतजी बोले—महामते ! पूर्वकालमें शक्तिनन्दन श्रीपरशुरजोंने विष्णुपुत्राक्षमें मरुदणोंकी उत्पत्तिका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है तथा वायुदेवताने वायुपुराणमें अश्विनोक्तुमारोंकी उत्पत्ति भी विस्तारपूर्वक कही है ; अतः मैं यहाँ संक्षेपसे ही इस सृष्टिका वर्णन करौंगा, सुनिये ॥ ५, ६ ॥

प्रजापति दक्षकी एक कन्या अदिति नामसे प्रसिद्ध है । उनके गर्भसे 'अदित्य' नामक पुत्र हुआ । अदितिकुमार अदित्यको तबश प्रजापतिने अपनी संज्ञा तामकी कन्या व्याह दी । अदित्य भी तबशकी रूपवती एवं मनोरम कन्या संज्ञाकी पाकर उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । संज्ञा अपने पतिके तापको न सह सकनेके कारण कुछ कालके बाद अपने पिताके घर चली गयी । उस कन्याको देखकर पिताने कहा—'बेटी ! तुम्हारे स्वामी सूर्यदेव तुम्हारा स्नेहपूर्वक पालन करते हैं या तुम्हारे साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार करते हैं ?' पिताकी ऐसी बात सुनकर संज्ञा उनसे बोली—'तत ! मैं स्वामीके प्रचण्ड तापसे थल गयी हूँ । यह सुनकर पिताने उससे कहा—'बेटी ! तुम पतिके घर चली जाओ । पतिकी सेवा करना ही युवतों स्त्रियोंका परम उत्तम धर्म है । मैं भी कुछ दिनोंके बाद आकर जानाता अदित्यदेवकी उष्णताको उनके शरीरसे कुछ कम कर दूँगा ॥ ७—१२ ॥

इत्युक्ता सा च पुनर्भर्तुर्गृहं प्राप्य कतिपय-
दिवसान्मनुं यमीं यमं चापत्यत्रयमादित्यात् प्राप्तुम् ।
पुनस्तदुष्णतामसहन्ती छायां भर्तुरुपभोगाय
स्वप्रज्ञाबलेनोत्पाद्य तत्र संस्थाप्य गत्वोत्तर-
कुरुन्धिष्ठायाश्च भूत्वा विचचार ॥ १३ ॥

आदित्योऽपि संज्ञेयमिति मत्वा तस्यां जायां
पुनरपत्यत्रयमुत्पादयामास ॥ १४ ॥ मनुं शनैश्चरं तपतीं
च । स्वेष्ट्यपत्येषु पक्षपातेन वर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमः
स्वपितरमाह नेयमस्मन्मातेति ॥ १५ ॥ पितापि
तच्छ्रुत्वा भार्या प्राह । सर्वेष्ट्यपत्येषु सममेव
वर्ततामिति ॥ १६ ॥ पुनरपि स्वेष्ट्यपत्येषु स्नेहान्
प्रवर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमो यमीं च तां
यद्विधमपीत्यमुवाच । आदित्यसंनिधानात् तूष्णीं
बभूवतुः ॥ १७ ॥ ततश्छाया तयोः शापं दत्तवती ।
यम त्वं प्रेतराजो भव यमि त्वं यमुना नाम नदी
भवेति ॥ १८ ॥ ततः क्रोधादादित्योऽपि छायापुत्रयोः
शापं दत्तवान् हे पुत्र शनैश्चरं त्वं ग्रहो भव
कूरहृष्टिर्मन्दगामी च पापग्रहस्त्वं च ॥ १९ ॥ पुत्रि
तपती नाम नदी भवेति । अथादित्यो ध्यानमास्थाय
संज्ञां कृत् स्थितेति विचारयामास ॥ २० ॥

स दृष्ट्वा नुत्तरकुरुषु ध्यानचक्षुषाक्षोभूय
विचरन्तीम् । स्वयं चाक्षरूपेण तत्र गत्वा तया सह
सम्पर्कं कृतवान् ॥ २१ ॥
तस्यामेवादित्यादश्चिनावुत्पत्नी तयोरतिशयवपुषोः
साक्षात् प्रजापतिरागत्य देवत्वं यज्ञभागत्वं मुख्यं च
देवानां भिषज्जत्वं दत्त्वा जगाम । आदित्यश्चाक्षरूपं
विहाय स्वभार्या संज्ञां त्वाष्ट्री स्वरूपधारिणीं
नीत्वा स्वरूपमास्थाय दिवं जगाम ॥ २२ ॥

पिताके यों कहनेपर वह पुनः पतिके घर लौट आया
तब कुछ दिनोंके बाद जन्मले मनु, यम और यमी (यमुना) —
इन तीन संतानोंको जन्म दिया । किंतु पुनः जब सूर्यका ताप
उससे नहीं सह्य गया, तब संज्ञाने अपनी बुद्धिके बलसे
स्वामीके उपलोकके लिये अपनी छाया (प्रतिबिम्ब) — स्वरूप
एक स्त्रीको उत्पन्न किया तथा उसे ही धारमें रखकर वह
उत्तरकुरुदेहमें चली गयी और वहाँ शोड़ीका रूप धारण
करके ऊपर-ऊपर विचरने लगी ॥ १३ ॥

अदितिनन्दन सूर्यने भी उते संज्ञा ही मानकर उस
अपनी जाया (भार्या) — रूपधारिणी छायाके गर्भसे पुनः
मनु, शनैश्चर तथा तपती — इन तीन संतानोंको उत्पन्न किया ।
छायाको अपनी संतानोंके प्रति पक्षपातपूर्ण वाग्विषय करती
देखकर यमने अपने पितासे कहा — 'ताता ! यह हमसंतानोंकी
माया नहीं है ।' पिताने भी जब यह सुन्य, तब उस भार्यासे
कहा — 'सब संतानोंके प्रति समानरूपसे ही वाग्विषय करो ।'
फिर भी छायाको अपनी ही संतानोंके प्रति अधिक स्नेहपूर्ण
वाग्विषय करने देख यम और यमीने उते बहुत कुछ घृण-
भला कहा, किंतु जब सूर्यदेव पास आये, तब ये दोनों चुप
ही रहे । यह देख छायाने उन दोनोंको शाप देते हुए
कहा — 'यम ! तूमे प्रेतोंके राजा बने और यमी ! तू 'यमुना'
नामक नदी हो जा ।' छायाका यह क्रूरतापूर्ण वाग्विषय
देखकर भगवान् सूर्य भी क्रुणित हो उठे और उसके
पुत्रोंको शाप देते हुए बोले — 'वेद्य शनैश्चर ! तू क्रूरतापूर्ण
बुद्धिसे देखनेवाला मन्दगामी ग्रह हो जा । तेरी वपुषा पापग्रहोंमें
होगी । वेद्य तपती ! तू भी 'तपती' नामकी नदी हो जा !'
इसके बाद भगवान् सूर्य ध्यानस्थ होकर विचार करने लगे
कि 'संज्ञा' कहाँ है ॥ १४—२० ॥

उन्होंने ध्यान-देखते देखा, संज्ञा उत्तरकुरुमें 'अक्षा' का
रूप धारण करके विचर रही है । तब वे स्वयं भी अक्षका
रूप धारण करके वहाँ गये । जाकर उन्होंने उसके साथ
सम्पर्क किया । उस अक्षरूपधारिणी संज्ञाके ही गर्भसे
सूर्यके वीर्यसे दोनों 'अभिनीकुमार' उत्पन्न हुए । उनके शरीर
सब देवताओंसे अधिक सुन्दर थे । साक्षात् ब्रह्माजीने वहाँ
पधारकर उन दोनों कुमारोंको देवत्व तथा यज्ञोंमें भाग प्राप्त
करनेका अधिकार प्रदान किया । साथ ही उन्हें देवताओंका
प्रभु बनना दिया । इसके बाद यज्ञज्वली चले गये । फिर
सूर्यदेवने अक्षका रूप त्यागकर अपना स्वरूप धारण कर

विश्वकर्मा चागत्य आदित्यं नामभिः स्तुत्वा
तदतिशयोष्णतांशतामपशातयामास ॥ २३ ॥

एवं वः कथिता विप्रा अधिनोत्पत्तिरुत्तमा ।
पुण्या पवित्रा पापघ्नी भरद्वाज महापते ॥ २४ ॥

आदित्यपुत्री भिषजी सुराणां
दिव्येन रूपेण विराजमाना ।
श्रुत्वा तयोजन्म नरः पृथिव्यां
भवेत् सुरुपो दिवि मोदते च ॥ २५ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे अद्वितीयोत्पत्तिर्नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें 'दोनों अद्वितीयकुमारोंको उत्पत्ति' नामक अष्टादशवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

१८१८ • १८१८

उन्नीसवाँ अध्याय

विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन

भरद्वाज उवाच

यैः स्तुतो नामभिस्तेन सविता विश्वकर्मणा ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि वद सूत विवस्वतः ॥ १ ॥

सूत उवाच

तानि मे शृणु नामानि यैः स्तुतो विश्वकर्मणा ।
सविता तानि वक्ष्यामि सर्वपापहराणि ते ॥ २ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड आशुगः ॥ ३ ॥

लिया। त्वष्टा प्रजापतिकी पुत्री संज्ञा भी अश्वका रूप
छोड़कर अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रकट हो गयी। उस
अवस्थामें सूर्यदेव त्वष्टाकी पुत्री अपनी पत्नी संज्ञाको
आदित्यलोकमें ले गये। तदनन्तर विश्वकर्मा सूर्यके पास
आये और उन्होंने विविध नामोंद्वारा उनका स्तवन किया तथा
उनको अनुमतिसे ही उनके श्रीअङ्गोंकी अतिशय उष्णताके
अंशको कुछ शान्त कर दिया ॥ २१—२३ ॥

महामते भरद्वाज तथा अन्य ब्राह्मणो! इस प्रकार
मैंने आपलोगोंसे दोनों अधिनीकुमारोंके जन्मकी उत्तम,
पुण्यमयी, पवित्र एवं पापनाशक कथा कह सुनायी।
सूर्यके वे दोनों पुत्र देवताओंके वैद्य हैं। अपने
दिव्यरूपसे सदा प्रकाशित होते रहते हैं। उन दोनोंकी
जन्मकी कथा सुनकर मनुष्य इस भूतलपर सुन्दर रूपसे
सुशोभित होता है और अन्तमें स्वर्गलोकमें जाकर वहाँ
आनन्दका अनुभव करता है ॥ २४—२५ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! विश्वकर्माने जिन
नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन किया था, उन्हें मैं
सुनना चाहता हूँ। आप सूर्यदेवके उन नामोंका वर्णन
करें ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन्! विश्वकर्माने जिन नामोंद्वारा
भगवान् सविताका स्तवन किया था, उन सर्वपापहारी
नामोंको तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

१. आदित्यः—आदितिके पुत्र, २. सविता—जगत्के
उत्पादक, ३. सूर्यः—सम्पत्ति एवं प्रकाशके स्रोत,
४. खगः—आकाशमें विचरनेवाले, ५. पूषा—सबका
पोषण करनेवाले, ६. गभस्तिमान्—सहस्रों किरणोंसे

हिरण्यगर्भः कपिलस्तपनो भास्करो रविः ।

अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ॥ ४

अंशुमानंशुमाली च तमोघ्नस्तेजसां निधिः ।

आतपी मण्डली मृत्युः कपिलः सर्वतापनः ॥ ५

हरिविंशो महातेजाः सर्वरत्नप्रभाकरः ।

अंशुमाली तिमिरहा ऋग्यजुस्सामभावितः ॥ ६

प्राणाविष्करणो मित्रः सुप्रदीपो मनोजवः ।

यज्ञेशो गोपतिः श्रीमान् भूतज्ञः क्लेशनाशनः ॥ ७

युक्त. ७. तिमिरोन्मथनः—अन्धकारनाशक, ८. शम्भुः—कल्याणकारी, ९. त्वष्टा—विश्वकर्मा अथवा विश्वरूपी शिल्पके निर्माता, १०. मार्तण्डः—सूत अण्डसे प्रकट, ११. आशुगः—शीघ्रगामी ॥ ३ ॥

१२. हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, १३. कपिलः—कपिलवर्मणाले अथवा कपिलमुनिस्वरूप, १४. तपनः—तपने या ताप देनेवाले, १५. भास्करः—प्रकाशक, १६. रविः—रव—वेदत्रयीकी ध्वनिसे युक्त अथवा भूतलके रसोंका आदान (आकर्षण) करनेवाले, १७. अग्निगर्भः—अपने भीतर अग्निमय तेजको धारण करनेवाले, १८. अदितेः पुत्रः—अदितिदेवीके पुत्र, शम्भुः—कल्याणके उत्पादक, १९. तिमिरनाशनः—अन्धकारका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥

२०. अंशुमान्—अनन्त किरणोंसे प्रकाशमान, २१. अंशुमाली—किरणमालामण्डित, २२. तमोघ्नः—अन्धकारनाशक, २३. तेजसां निधिः—तेज अथवा प्रकाशके भण्डार, २४. आतपी—आतप या घाम प्रकट करनेवाले, २५. मण्डली—अपने मण्डल या बिम्बसे युक्त, २६. मृत्युः—मृत्युस्वरूप अथवा मृत्युके अधिष्ठाता यमको जन्म देनेवाले, २७. कपिलः सर्वतापनः—भूरी या सुनहरे किरणोंसे युक्त होकर सबको संताप देनेवाले ॥ ५ ॥

२८. हरिः—सूर्य अथवा पाचहारी, २९. विश्वः—सर्वरूप, ३०. महातेजाः—महातेजस्वी, ३१. सर्वरत्न-प्रभाकरः—सम्पूर्ण रत्नों तथा प्रभापुञ्जको प्रकट करनेवाले, ३२. अंशुमाली तिमिरहा—किरणोंकी माला धारण करके अन्धकारको दूर करनेवाले, ३३. ऋग्यजुस्सामभावितः—ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनोंके द्वारा भावित या प्रतिमादित ॥ ६ ॥

३४. प्राणाविष्करणः—प्राणोंके आधारभूत अन्न आदिकी उत्पत्ति और जलकी वृष्टि करनेवाले, ३५. मित्रः—'मित्र' नामक आदिप अथवा सबके सुहृद्, ३६. सुप्रदीपः—भलीभाँति प्रकाशित होनेवाले अथवा सर्वत्र उत्तम प्रकाश बिखरेनेवाले, ३७. मनोजवः—मनके समान या उससे भी अधिक तीव्र गेगवाले, ३८. यज्ञेशः—यज्ञोंके स्वामी नारायणस्वरूप, ३९. गोपतिः—किरणोंके स्वामी अथवा भूमि एवं गौओंके चालक, ४०. श्रीमान्—कान्तिमान्, ४१. भूतज्ञः—सम्पूर्ण भूतोंके ज्ञाता अथवा भूतकालकी बातोंको भी जाननेवाले,

अमित्रहा शिवो हंसो नायकः प्रियदर्शनः ।
शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुः प्रतर्दनः ॥ ८

धर्मरश्मिः पतंगश्च विशालो विश्वमंस्तुतः ।
दुर्विज्जेयगतिः शूरस्तेजोराशिर्महायशः ॥ ९

भ्राजिष्णुर्ज्योतिषामीशो विजिष्णुर्विश्वभावनः ।
प्रभविष्णुः प्रकाशात्मा ज्ञानराशिः प्रभाकरः ॥ १०

आदित्यो विश्वदृग् यज्ञकर्ता नेता यशस्करः ।
विमलो वीर्यवानीशो योगज्ञो योगभावनः ॥ ११

४२. क्लेशनाशनः—सब प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाले ॥ ७ ॥

४३. अमित्रहा—शत्रुनाशक, ४४. शिवः—
कल्याणस्वरूप, ४५. हंसः—आकाशरूपी सरोवरमें
विचरनेवाले एकमात्र राजहंस अथवा सबके आत्मा,
४६. नायकः—नेता अथवा नियन्ता, ४७. प्रियदर्शनः—
सबका प्रिय देखने या चाहनेवाले अथवा जिनका दर्शन
प्राप्तिमात्रको प्रिय है, ऐसे, ४८. शुद्धः—मलिनतासे
रहित, ४९. विरोचनः—अत्यन्त प्रकाशमान,
५०. केशी—किरणरूपी केशोंसे युक्त, ५१. सहस्रांशुः—
असंख्य किरणोंके पूंज, ५२. प्रतर्दनः—अन्धकार आदिका
विशेषरूपसे संहार करनेवाले ॥ ८ ॥

५३. धर्मरश्मिः—धर्ममयी किरणोंसे युक्त अथवा
धर्मके प्रकाशक, ५४. पतंगः—किरणरूपी पंखोंसे उड़नेवाले
आकाशनाभो गतिस्वरूप, ५५. विशालः—महान्
जाकारवाले अथवा विशेषरूपसे शोभायमान, ५६.
विश्वमंस्तुतः—समस्त जगत् जिनकी स्तुति—गुणगा
न करता है, ऐसे, ५७. दुर्विज्जेयगतिः—जिनके स्वरूपको
जानना या समझना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ५८. शूरः—
शौर्यशाली, ५९. तेजोराशिः—तेजके समूह, ६०.
महायशः—महान् यशसे सम्पन्न ॥ ९ ॥

६१. भ्राजिष्णुः—द्योतिमान्, ६२. ज्योतिषामीशः—
तेजोमय यह-वक्षत्रोंके स्वामी, ६३. विजिष्णुः—
विजयशाली, ६४. विश्वभावनः—जगत्के उत्पादक,
६५. प्रभविष्णुः—प्रभावशाली अथवा जगत्को
उत्पन्निके कारण, ६६. प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप,
६७. ज्ञानराशिः—ज्ञाननिधि, ६८. प्रभाकरः—उत्कृष्ट
प्रकाश फैलानेवाले ॥ १० ॥

६९. आदित्यो विश्वदृग्—आदित्यरूपसे जगत्के
दृश या साक्षी अथवा सम्पूर्ण संसारके नेत्ररूप,
७०. यज्ञकर्ता—जगत्को जल एवं जीवन प्रदान करके
दानयत्न सम्पन्न करनेवाले, ७१. नेता—अन्धकारका नयन—
अपसारण कर देनेवाले, ७२. यशस्करः—यशका
विस्तार करनेवाले, ७३. विमलः—निर्मलस्वरूप,
७४. वीर्यवान्—शक्तिशाली, ७५. ईशः—ईश्वर,

अमृतात्मा शिवो नित्यो वरेण्यो वरदः प्रभुः ।
धनदः प्राणदः श्रेष्ठः कामदः कामरूपधृक् ॥ १२

तरणिः शाश्वतः शास्ता शास्त्रज्ञस्तपनः शयः ।
वेदगर्भो विभुर्वीरः शान्तः सावित्रिवज्रधः ॥ १३

ध्येयो विश्वेश्वरो भर्ता लोकनाथो महेश्वरः ।
महेन्द्रो वरुणो धाता विष्णुरग्निर्दिवाकरः ॥ १४

एतैस्तु नामभिः सूर्यः स्तुतस्तेन महात्मना ।
उवाच विश्वकर्माणं प्रसन्नो भगवान् रविः ॥ १५

भूमिमारोप्य मामत्र मण्डलं मम ज्ञातय ।
त्वद्बुद्धिस्थं मया ज्ञातमेवमीष्यं शमं व्रजेत् ॥ १६

७६. योगज्ञः—भगवान् श्रीहरिसे कर्मयोगका ज्ञान प्राप्त करके उसका मनुजों उपदेश करनेवाले।
७७. योगभावनः—योगको प्रकट करनेवाले ॥ ११ ॥

७८. अमृतात्मा शिवः—अमृतस्वरूप शिव।
७९. नित्यः—सनातन, ८०. वरेण्यः—वरेण्य—आश्रय लेनेयोग्य, ८१. वरदः—उपासकको मनोवाञ्छित वर देनेवाले, ८२. प्रभुः—सब कुछ करनेमें समर्थ, ८३. धनदः—धनदान करनेवाले, ८४. प्राणदः—प्राणदान, ८५. श्रेष्ठः—सबमें उत्कृष्ट, ८६. कामदः—मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले, ८७. कामरूपधृक्—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ॥ १२ ॥

८८. तरणिः—संसारसागरसे तारनेवाले,
८९. शाश्वतः—सनातन पुरुष, ९०. शास्ता—शासक या उपदेशक, ९१. शास्त्रज्ञः—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता, तपनः—तपनेवाले या तप देनेवाले, ९२. शयः—सर्पके अधिष्ठान या आश्रय, ९३. वेदगर्भः—धुक्लपदुर्वेदको प्रकट करनेवाले, ९४. विभुः—सर्वत्र व्यापक, ९५. वीरः—शूरावीर, ९६. शान्तः—शमयुक्त, ९७. सावित्रिवज्रधः—गायत्रीमन्त्रके अधिदेवता ॥ १३ ॥

९८. ध्येयः—ध्यान करनेयोग्य, ९९. विश्वेश्वरः—सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, १००. भर्ता—सबका धारण-पोषण करनेवाले, १०१. लोकनाथः—संसारके रक्षक, १०२. महेश्वरः—परमेश्वर, १०३. महेन्द्रः—देवराज इन्द्र स्वल्प, १०४. वरुणः—पश्चिम दिशाके अधिपति 'वरुण' नामक आदित्य, १०५. धाता—जगत्का धारण-पोषण करनेवाले अथवा 'धाता' नामक आदित्य, १०६. विष्णुः—व्याप्त अथवा 'विष्णु' नामक आदित्य, १०७. अग्निः—अग्निस्वरूप, १०८. दिवाकरः—रात्रिका अंशका दूर करके प्रकाशपूर्ण दिवसों प्रकट करनेवाले ॥ १४ ॥

उन महात्मा विश्वकर्माने उपबुद्ध नामोंद्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन किया। इससे भगवान् सूर्यको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे उन विश्वकर्मासे बोले ॥ १५ ॥

प्रजापते! आपको बुद्धिमें जो बात है—आप जिस उद्देश्यको लेकर आये हैं, वह मुझे ज्ञात है। अतः आप मुझे ज्ञानचक्रपर चढ़ाकर मेरे मण्डलकी छँट दें। इससे मेरी उन्नति कुछ कम हो जायगी ॥ १६ ॥

इत्युक्तो विश्वकर्मा च तथा स कृतवान् द्विज ।
शान्तोष्णाः सविता तस्य दुहितुर्विश्वकर्माणः ॥ १७ ॥

संज्ञायाश्चाभवद्विप्र भानुस्त्वष्टारमब्रवीत् ।
त्वया यस्मात् स्तुतोऽहं वै नाम्नामष्टशतेन च ॥ १८ ॥

वरं युणीष्व तस्मात् त्वं वरदोऽहं तवानघ ।
इत्युक्तो भानुना सोऽथ विश्वकर्माब्रवीदिदम् ॥ १९ ॥

वरदो यदि मे देव वरमेतं प्रयच्छ मे ।
एतैस्तु नामभिर्यस्त्वां नरः स्तोष्यति नित्यशः ॥ २० ॥

तस्य पापक्षयं देव कुरु भक्तस्य भास्कर ॥ २१ ॥

तेनैवमुक्तो दिनकृत् तथेति
त्वष्टारमुक्त्वा विस्राम भास्करः ।
संज्ञां विशङ्कां रविमण्डलस्थितां
कृत्वा जगामाथ रविं प्रसाद्य ॥ २२ ॥

इति श्रीनारायणपुराणे पूर्वोक्तोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीनारायणपुराणमें उक्तोक्त अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

॥ ११ ॥

बीसवाँ अध्याय

मारुतोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

साम्प्रतं मारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम । पुरा
देवासुर युद्धे देवैरिन्द्रादिभिर्दितैः ॥ १ ॥ पुत्राः पराभूता
दितिश्च विनष्टपुत्रा महेन्द्रदर्पहरं पुत्रमिच्छन्ती
कश्यपमृषिं स्वपतिमाराधयामास ॥ २ ॥ स च तपसा
संतुष्टो गर्भाधानं चकार तस्याम् ।
पुनस्तापेवमुक्तवान् ॥ ३ ॥ यदि त्वं शुचिः सती

व्रतान्! भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्माने वैसा
ही किया। विष्टार! उस दिनसे प्रकाशस्वरूप सविता
विश्वकर्माको बेटा संज्ञाके लिये जाना हो गये तथा
उनकी उष्णता कम हो गयी। इसके बाद वे त्वष्टासे
बोले ॥ १७ ॥

अनघ! चूँकि आपने एक सौ आठ नामोंके द्वारा मेरी
स्तुति की है, इसलिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देनेके
लिये उद्यत हूँ। कोई वर माँगिये ॥ १८ ॥

भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्मा बोले—देव ।
यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो यह मुझे वर प्रदान
कीजिये—‘देव भास्कर । जो मनुष्य इन नामोंके द्वारा
प्रतिदिन आपकी स्तुति करे, उस भक्तपुरुषके खारे पापोंका
आप नाश कर दें’ ॥ १९—२१ ॥

विश्वकर्माके यों कहनेपर दिन प्रकाश करनेवाले भगवान्
भास्कर उनसे ‘चतुर्ध्वज’ कहकर भूप हो गये,
तपस्वान् सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाली संज्ञाको निर्भय
करके, सूर्यदेवकी संतुष्टिकर विश्वकर्मा अपने स्थानको
चले गये ॥ २२ ॥

श्रीसूतजी बोले—द्विजवंश! अब मैं मारुतोंकी
उत्पत्तिका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें
इन्द्र आदि देवताओंद्वारा दितिके पुत्र दैत्यगण पराजित
हो गये थे। उस समय दिति, जिसके पुत्र नष्ट हो
गये थे, महेन्द्रके अभिभावकको चूर्ण करनेवाले पुत्रकी
इच्छा मनमें लेकर अपने पति कश्यप ऋषिकी
आराधना करने लगे। तपस्यासे संतुष्ट होकर ऋषिने
दितिके भीतर गर्भका आधान किया। फिर ये उससे
इस प्रकार बोले—‘यदि तুম पवित्र रहती हुई

शरच्छतपिमं गर्भं धारयिष्यसि ततश्च महेन्द्रदर्पहन्ता
पुत्रो भविष्यति। इत्येवमुक्ता सा च तं गर्भं
धारयामास ॥ ४ ॥ इन्द्रोऽपि तज्ज्ञात्वा
वृद्धब्राह्मणरूपेणागत्य दितिपार्श्वं स्थितवान्।
किंचिदूनपूर्णं वर्षशते पादशीचमकृत्वा दितिः
शयनमारुह्य निद्रां गता ॥ ५ ॥ सोऽपि लब्ध्वावसरो
वस्त्रपाणिस्तत्कुक्षिं प्रविश्य वज्रेण तं गर्भं समधा
चिच्छेद। सोऽपि तेन प्रच्छिद्यमानो रुरोद ॥ ६ ॥ मा
रोदीरिति वदन्निन्द्रस्तान् सप्तर्धकैकं चिच्छेद ॥ ७ ॥ मा
समधा ते सर्वे मरुतो यतो जातमात्रान्मा
रोदीरित्युक्तवान्। महेन्द्रस्य सहाया अपी मरुतो नाथ
देवा बभूवुः ॥ ८ ॥

एवं मुने सृष्टिरियं तवेरिता
देवासुराणां नरनागरक्षसाम्।
वियन्मुखानामपि यः पठेदिदं
शृण्वंश्च भक्त्या हरित्लोकमेति सः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्सिंहपुराणे विंशतिस्तोत्रध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमत्सिंहपुराणमें 'महालोक' उल्लेखित' नाथक' शीसर्ग अथवाय पुरा हुआ ॥ २० ॥

॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्यवंशका वर्णन

भरद्वाज उवाच

अनुसर्गश्च सर्गश्च त्वया चित्रा कथेरिता।
वंशमन्वन्तरे ब्रूहि वंशानुचरितं च मे ॥ १ ॥

सुत उवाच

राज्ञां वंशः पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तितः।
संक्षेपात् कथयिष्यामि वंशमन्वन्तराणि ते ॥ २ ॥
वंशानुचरितं चैव शृणु विप्र महामते।
शृण्वन्तु मुनयश्चोमे श्रोतुमागत्य ये स्थिताः ॥ ३ ॥

सी वर्षोत्तक इस गर्भको धारण कर सकोगी तो उसके
बद इन्द्रका दर्प पूर्ण करनेवाला पुत्र तुम्हारे गर्भमें उत्पन्न
होगा।' कश्यपजीके यों कहनेपर दितिने उस गर्भको
धारण किया ॥ १-४ ॥ इन्द्रको भी जब यह समाचार ज्ञात
हुआ, तब ये बूढ़े ब्राह्मणके वेपमें दितिके पास आये और
रहने लगे। जब सौ वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ ही कमी रह
गयी, तब एक दिन दिति (भोजनके पश्चात्) पिर धोये
बिना ही शय्यापर आरुढ़ हो, सो गयी। उधर इन्द्रने भी
अवसर प्राप्त हो जानेसे वज्र हथमें ले, दितिके उदरमें प्रविष्ट
हो, वज्रसे उस गर्भको सात टुकड़े कर दिये। उनके द्वारा काटे
जानेपर वह गर्भ रोने लगा। तब इन्द्रने 'मा रोदीः' (मा
रोओ)—यों कहते हुए पुनः एक एकके सात सात टुकड़े
कर डाले। इस तरह सात-सात टुकड़ोंमें बँटे हुए वे सातों
खण्ड 'मरुत' नामसे विख्यात हुए; क्योंकि जन्म होते ही
इन्द्रने उन्हें 'मा रोदीः'—इस प्रकार कहा था। ये सभी
इन्द्रके सहायक 'मरुन्' नामक देवता हुए ॥ ५-८ ॥

मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे दैवता, असुर, नर, नाग,
राक्षस और आकाश आदि भूतोंकी सृष्टिका वर्णन किया।
जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ अध्याज श्रवण करता है, वह
विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! आपने 'सर्ग' और
'अनुसर्ग' का वर्णन किया, विविध कथाएँ सुनायीं; अब
मुझसे राजाओंके वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरिताका वर्णन
करें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—पुराणोंमें राजाओंके वंशका विस्तार-
पूर्णक वर्णन किया गया है; यहाँ मैं राजाओंके वंश,
मन्वन्तर तथा वंशानुचरिताका संक्षेपसे वर्णन
करूँगा। महामते विप्रवर! इसे आप तथा अन्य
मुनि भी, जो कथाश्रवणके लिये यहाँ आकर ठहरे
हूँ हैं, सुनें ॥ २-३ ॥

आदौ तावद्ब्रह्मा ब्रह्मणो मरीचिः । मरीचैः कश्यपः
 कश्यपादादित्यः ॥ ४ ॥ आदित्यान्मनुः । मनो-
 रिश्वाकुः, इक्ष्वाकोर्विकुक्षिः । विकुक्षेद्यौतः,
 द्योताद्येनो वेनात्पृथुः पृथोः पृथाश्च ॥ ५ ॥
 पृथाश्चादसंख्याताश्वः । असंख्याताश्वा-
 मान्धाता ॥ ६ ॥ मान्धातुः पुरुकुत्सः पुरुकुत्सादुषदो
 दुषदादभिषम्भुः ॥ ७ ॥ अभिषम्भोर्दारुणो दारुणात्
 सगरः ॥ ८ ॥ सगराद्द्वयश्चो हयश्चाद्द्वारीतः ॥ ९ ॥
 द्वारीताद्रोहिताश्चो रोहिताश्चादंशुमान् । अंशुमतो
 भगीरथः ॥ १० ॥ भगीरथात् सौदासः सौदासा-
 च्छत्रुंदमः ॥ ११ ॥ शत्रुंदमादनरण्यः ।
 अनरण्यादीर्घबाहुः । दीर्घबाहोरजः ॥ १२ ॥
 अजादशरथः, दशरथाद्रामः, रामाद्भवः,
 लवान् पथः ॥ १३ ॥ पथादनुपर्णः ।
 अनुपर्णाद्वस्त्रपाणिः ॥ १४ ॥ वस्त्रपाणेः शुद्धोदनः ।
 शुद्धोदनाद्बुधः । बुधादादित्यवंशो निवर्तते ॥ १५ ॥
 सूर्यवंशभावा ये ते प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।
 वैरियं पृथिवीं भुक्ता धर्मतः क्षत्रियैः पुरा ॥ १६ ॥
 सूर्यस्य वंशः कथितो मया मुने
 समुद्रता यत्र नरेश्वराः पुरा ।
 मयोच्चमानाञ्छशिनः समाहितः
 शृणुष्व वंशेऽथ नृपाननुत्तमान् ॥ १७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशवर्णनं तमैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

गूढ उपाय

सोमवंशं शृणुष्वथ भरद्वाज महामुने ।
 पुराणे विस्तरेणोक्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना ॥ १ ॥
 आदौ तावद्ब्रह्मा । ब्रह्मणो मानसः पुत्रो
 मरीचिमरीचेर्दाक्षायण्यां कश्यपः ॥ २ ॥ कश्यपा-

सबसे पहले ब्रह्माजी प्रकट हुए; उनसे मरीचि,
 मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे
 इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि, विकुक्षिसे द्योत, द्योतसे
 वेन, वेनसे पृथु और पृथुसे पृथाधको उत्पत्ति हुई।
 पृथाधसे असंख्याताश्च, असंख्याताश्चसे मान्धाता, मान्धातासे
 पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे उषद, उषदसे अभिशम्भु, अभिशम्भुसे
 दारुण, दारुणसे सगर, सगरसे हयश्च, हयश्चसे द्वारीत,
 द्वारीतसे रोहिताश्च, रोहिताश्चसे अंशुमान् तथा अंशुमान्से
 भगीरथ उत्पन्न हुए। भगीरथसे सौदास, सौदाससे शत्रुंदम,
 शत्रुंदमसे अनरण्य, अनरण्यसे दीर्घबाहु, दीर्घबाहुसे
 राज, राजसे दशरथ, दशरथसे श्रीराम, श्रीरामसे लव,
 लवसे पथ, पथसे अनुपर्ण और अनुपर्णसे वस्त्रपाणिका
 जन्म हुआ। वस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध
 (बुद्ध) की उत्पत्ति हुई। बुधसे सूर्यवंश समाप्त हो
 जाता है ॥ २-१५ ॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जो क्षत्रिय हैं, उनमेंसे
 मुख्य-मुख्य लोगोंका यहाँ वर्णन किया गया है, जिन्होंने
 पूर्वकालमें इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया है।
 मुने! यह मैंने सूर्यवंशका वर्णन किया है, जिसमें प्राचीन
 कालमें अनेकानेक नरेश हो गये हैं। अब मेरे द्वारा
 प्रस्तुत जानेवाले चन्द्रवंशीय परम उत्तम राजाओंका
 वर्णन आपलोग सुनें ॥ १६-१७ ॥

सूतजी बोले—महामुने भरद्वाज! अब चन्द्रवंशका
 वर्णन सुनो। (अन्व) पुराणोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन
 किया गया है, अतः इस समय मैं यहाँ संक्षेपसे इसका
 वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजी हुए, उनके मानसपुत्र मरीचि हुए,

ददितेरादित्यः । आदित्यात् सुवर्चलायां मनुः ॥ ३ ॥
 मनोः सुरूपायां सोमः । सोमाद्रोहिण्यां बुधः ।
 बुधादिलायां पुरुरवाः ॥ ४ ॥ पुरुरवस आयुः । आयो
 रूपवत्यां नहुषः ॥ ५ ॥ नहुषात् पितृवत्यां ययातिः ।
 ययातेः शर्मिष्ठायां पूरुः ॥ ६ ॥ पूरुर्वंशदायां सम्पातिः ।
 सम्पातेर्भानुदत्तायां सार्वभौमः । सार्वभौमस्य वैदेह्यां
 भोजः ॥ ७ ॥ भोजस्य लिङ्गायां दुष्यन्तः । दुष्यन्तस्य
 शकुन्तलायां भरतः ॥ ८ ॥ भरतस्य नन्दायामजमीढः ।
 अजमीढस्य सुदेव्यां पृश्निः । पृश्नेरुग्रसेनायां प्रसरः ।
 प्रसरस्य बहुरूपायां शंतनुः । शंतनोर्यौजनगन्ध्यायां
 विचित्रवीर्यः । विचित्रवीर्यस्याम्बिकायां पाण्डुः ॥ ९ ॥
 पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः । अर्जुनात् सुभद्राया-
 मभिमन्युः ॥ १० ॥ अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः ।
 परीक्षितस्य मातृवत्यां जनमेजयः । जनमेजयस्य
 पुण्यवत्यां शतानीकः ॥ ११ ॥ शतानीकस्य पुष्पवत्यां
 सहस्रानीकः । सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः । तस्य
 वासवदत्तायां नरवाहनः ॥ १२ ॥ नरवाहनस्याशु-
 मेधायां क्षेमकः । क्षेमकान्ताः पाण्डवाः सोमवंशो
 निवर्तते ॥ १३ ॥

य इदं शृणुयात्रित्यं राजवंशमनुत्तमम् ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४ ॥
 यश्चेदं पठते नित्यं श्राद्धे वा श्रावयेत् पितृन् ।
 वंशानुकीर्तनं पुण्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ १५ ॥
 राज्ञां हि सोमस्य मया तवेरिता
 वंशानुकीर्तिर्द्विज पापनाशनी ।
 शृणुष्व विप्रेन्द्र मयोच्यमानं
 मन्वन्तरं चापि चतुर्दशाख्यम् ॥ १६ ॥

मरीचिसे दाक्षयणीके गर्भसे कश्यपजी उत्पन्न हुए । कश्यपसे
 अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म हुआ । सूर्यसे सुवर्चला
 (संज्ञा)-के गर्भसे मनुकी उत्पत्ति हुई । मनुके द्वारा सुरूपाके
 गर्भसे सोम और सोमके द्वारा रोहिणीके गर्भसे बुधका
 जन्म हुआ तथा बुधके द्वारा इलाके गर्भसे राजा पुरुरव
 उत्पन्न हुए । पुरुरवासे आयुका जन्म हुआ, आयुद्वारा
 रूपवतीके गर्भसे नहुष हुए । नहुषके द्वारा पितृवतीके
 गर्भसे ययाति हुए और ययातिसे शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरुका
 जन्म हुआ । पूरुके द्वारा यंशदाके गर्भसे सम्पाति और
 उससे भानुदत्तके गर्भसे सार्वभौम हुआ । सार्वभौमसे
 वैदेहीके गर्भसे भोजका जन्म हुआ । भोजके लिङ्गाके
 गर्भसे दुष्यन्त और दुष्यन्तके शकुन्तलासे भरत हुआ ।
 भरतके नन्दासे अजमीढ नामक पुत्र हुआ, अजमीढके
 सुदेवाके गर्भसे पृश्नि हुआ तथा पृश्निके उग्रसेनाके
 गर्भसे प्रसरका अभिर्भाव हुआ । प्रसरके बहुरूपाके गर्भसे
 शंतनु हुए, शंतनुसे यौजनगन्ध्याने विचित्रवीर्यकी जन्म
 दिया । विचित्रवीर्यके अम्बिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म
 हुआ । पाण्डुसे कुन्तीदेवीके गर्भसे अर्जुन हुआ, अर्जुनसे
 सुभद्राने अभिमन्युको उत्पन्न किया । अभिमन्युसे उत्तराके
 गर्भसे परीक्षित हुआ, परीक्षितके मातृवतीसे जनमेजय
 उत्पन्न हुआ और जनमेजयके पुष्पवतीके गर्भसे शतानीकको
 उत्पत्ति हुई । शतानीकके पुष्पवतीसे सहस्रानीक हुआ,
 सहस्रानीकसे मृगवतीसे उदयन उत्पन्न हुआ और उदयनके
 वासवदत्तके गर्भसे नरवाहन हुआ । नरवाहनके अश्वमेधासे
 क्षेमक हुआ । यह क्षेमक ही पाण्डववंशका अन्तिम राजा
 है, इसके बाद सोमवंश निवृत्त हो जाता है ॥ २-१३ ॥

जो पुरुष इस उत्तम राजवंशका सदा श्रवण करता
 है, वह सब पापोंसे मुक्त एवं विशुद्धचित होकर विष्णु-
 लोकको प्राप्त होता है । जो इस पवित्र वंश-वर्णनको
 प्रतिदिन स्वनं पढ़ता अथवा श्राद्धकालमें पितृगणोंको
 सूचना है उसके पितरोंको दिया हुआ दान अक्षय हो
 जाता है । द्विज ! यह मैंने आपसे सोमवंशी राजाओंका
 पाप-नाशक वंशानुकीर्तन सुनाया । विप्रवर ! अब मेरे द्वारा
 बताये जानेवाले चौदह मन्वन्तरोंको सुनिये ॥ १४-१६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सोमवत्सुकीर्तिर्न दत्तं श्रवित्वोऽप्यक्षयः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सोमवत्सुका वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

बीदह मन्वन्तरोका वर्णन

सूत उवाच

प्रथमं तावत् स्वायम्भुवं मन्वन्तरं तत्स्वरूपं
कथितम् । सर्गादीं स्वरोचिषो नाम द्वितीयो
मनुः ॥ १ ॥ तस्मिन् स्वरोचिषे मन्वन्तरे विपश्चित्राग्र
देवेन्द्रः । पारायताः सन्तुषिता देवाः ॥ २ ॥ ऊर्जस्तप्यः
सुप्राणो दनो निरूपधो वरीयानीश्वरः सोमः
सप्तर्षयश्चैवम् किम्पुरुषाद्याः स्वरोचिषस्य मनोः
पुत्रा राजानो भवन्ति ॥ ३ ॥ तृतीय उत्तमो नाम मनुः ।
सुधामानः सत्याः शिवाः प्रतर्दना वंशवर्तिनश्च देवाः ।
पञ्चैते द्वादशगणाः ॥ ४ ॥ तेषां सुशान्तिरिन्द्रः ॥ ५ ॥
वन्धाः सप्तर्षयोऽभवन् । अत्र परशुचित्राद्या मनोः
सुताः ॥ ६ ॥ चतुर्थस्तामसो नाम मनुः । तत्र मन्वन्तरे
सुराः पराः सत्याः सुधियश्च सप्तविंशतिका
गणाः ॥ ७ ॥ तत्र भुशुण्डी नाम देवेन्द्रः । हिरण्यरोमा
देवश्रीरुर्ध्वयाहुर्देवयाहुः सुधामा ह पर्जन्यो मुनिरित्येते
सप्तर्षयः ॥ ८ ॥ ज्योतिर्धामा पृथुः काश्यपोऽग्निर्धनक
इत्येते तामसस्य मनोः पुत्रा राजानः ॥ ९ ॥ पञ्चमो
नाम रैवतो मनुः । तस्यान्तरेऽमिता निरता वैकुण्ठाः
सुमेधस इत्येते देवगणाश्चतुर्दशका गणाः ।
असुरान्तको नाम देवेन्द्रः । समकाद्या मनोः सुता
राजानो वै बभूवुः ॥ १० ॥ शान्तः शान्तभयो
विद्वांस्तपस्वी मेधावी सुतपाः सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ११ ॥
षष्ठश्चाक्षुषो नाम मनुः । पुरुशतद्युम्नप्रमुखास्तस्य सुता
राजानः । सुशान्ता आप्याः प्रसूता भव्याः प्रथिताश्च
महानुभावा लेखाद्याः पञ्चैते द्वादशका गणास्तत्र
देवाः ॥ १२ ॥ तेषामिन्द्रो मनोजवः । मेधाः सुमेधा
विरजा हविष्मानुत्तमो मतिमात्राम्ना सहिष्णुश्चैने
सप्तर्षयः ॥ १३ ॥ सप्तमो वैवस्वतो मनुः साप्पतं वर्तते ।
तस्य पुत्रा इक्ष्वाकुप्रभृतयः क्षत्रिया भूभुजः ॥ १४ ॥

सूतजी बोले—प्रथम 'स्वायम्भुव' मन्वन्तर है, उसका
स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है । सृष्टिके आदिकालमें
'स्वरोचिष' नामक द्वितीय मनु हुए थे । उस स्वरोचिष
मन्वन्तरमें 'विपश्चित्' नामक देवराज इन्द्र थे । उस समयके
देवता 'पारायत' और 'तुषित' नामसे प्रसिद्ध थे । ऊर्जस्तप्य,
सुप्राण, दनो, निरूपध, वरीयान्, ईश्वर और सोम—ये उस
मन्वन्तरमें सप्तर्षि थे । इसी प्रकार 'स्वरोचिष' मनुके
किम्पुरुष आदि पुत्र उन दिनों भूमण्डलके राजा थे । तृतीय
मनु 'उत्तम' नामसे प्रसिद्ध हुए । उनके समयमें सुधामा,
सत्य, शिव, प्रतर्दन और वंशवर्ती (अथवा वंशवर्ती)—ये
चौध देवराज थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें बारह-बारह व्यक्ति
थे । इन देवताओंके इन्द्रका नाम था—'सुशान्ति' । उन दिनों
जो सप्तर्षि थे, उनके 'वन्धा' संज्ञा थी । इस मन्वन्तरमें 'परशु'
और 'चित्र' आदि मनुपुत्र राजा थे । चौथे मनुका नाम था—
'तामस' । उनके मन्वन्तरमें देवताओंके पर, सत्य और सुधी
नामवाले गण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें सत्ताईस-सत्ताईस
देवता थे । इन देवताओंके राजा इन्द्रका नाम था—'भुशुण्डी' ।
उस समय हिरण्यरोमा, देवश्री, ऊर्ध्वयाहु, देवयाहु, सुधामा,
पर्जन्य और मुनि—ये सप्तर्षि थे । ज्योतिर्धाम, पृथु, काश्यप,
अग्नि और धनक—ये तामस मनुके पुत्र इस भूमण्डलके राजा
थे । चौबसे मनुका नाम था—'रैवत' । उनके मन्वन्तरमें
अमिता, निरता, वैकुण्ठ और सुमेधा—ये देवताओंके गण थे ।
इनमेंसे प्रत्येक गणमें बीदह-बीदह व्यक्ति थे । इन देवताओंके
जो इन्द्र थे, उनका नाम था—'असुरान्तक' । उस समय
सक्त आदि मनुपुत्र भूतलके राजा थे । शान्त, शान्तमय,
विद्वान्, तपस्वी, मेधावी और सुतपा—ये सप्तर्षि थे । छठे
मनुका नाम 'चाक्षुष' था । उनके समयमें पुरु और शतद्युम्न
आदि मनुपुत्र राजा थे । उस समय अत्यन्त शान्त रहनेवाले
लेख, आप्य, प्रसूत, भाव्य और प्रथित—ये चौध महानुभाव
देवराज थे । इन चौधों गणोंमें आठ-आठ व्यक्ति थे । इनके
इन्द्रका नाम 'मनोजव' था । उन दिनों मेधा, सुमेधा, विरजा,
हविष्मान्, उत्तम, मतिमान् और सहिष्णु—ये सप्तर्षि थे ।
सातवें मनुको 'वैवस्वत' कहते हैं, जो इस समय वर्तमान
है । इनके इक्ष्वाकु आदि क्षत्रियजातीय पुत्र भूपाल हुए ।

आदित्यविश्वसुरुद्राद्या देवाः पुरंदरोऽत्र
देवेन्द्रः ॥ १५ ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिजंमदग्निर्गौतम-
विश्वामित्रभरद्वाजाः सप्तर्षयो भवन्ति ॥ १६ ॥

भविष्याणि मन्वन्तराणि कथ्यन्ते। तद्यथा
आदित्यात् संज्ञायां जातो यो मनुः
पूर्वोक्तशृङ्गायामुत्पन्नो मनुर्द्वितीयः स तु। पूर्वजस्य
सावर्णस्य मन्वन्तरं सावर्णिकमष्टमं शृणु ॥ १७ ॥
मनुः सावर्णोऽष्टमो भविता तत्र सुतपाद्या
देवगणास्तेषां बलिरिन्द्रो भविता ॥ १८ ॥ दीप्तिमान्
गालवो नामा कृपद्रौणिष्यास्रहृष्यभृङ्गाश्च सप्तर्षयो
भवितारः। विराजोर्वरीयनिर्मोकाद्याः सावर्णस्य मनोः
सुता राजानो भविष्यन्ति ॥ १९ ॥ नवमो दक्ष-
सावर्णिर्मनुर्भविता। धृतिः कीर्तिर्दीप्तिः केतुः पञ्चहस्तो
निरामयः पृथुश्रवाद्या दक्षसावर्णा राजानोऽस्य मनोः
पुत्राः ॥ २० ॥ मरीचिगर्भाः सुधर्माणो हविष्यन्तस्तत्र
देवताः। तेषामिन्द्रोऽद्भुतः ॥ २१ ॥ सवनः कुतिमान्
हव्यो वसुमेधातिथिर्ज्योतिष्मानित्येते सप्तर्षयः ॥ २२ ॥
दशमो ब्रह्मसावर्णिर्मनुर्भविता। विरुद्धादयस्तत्र
देवाः। तेषां शान्तिरिन्द्रः। हविष्यान् सुकृतिः
सत्यस्तपोमूर्तिर्नाभागः प्रतिमोकः समकेतुरित्येते
सप्तर्षयः ॥ २३ ॥ सुश्रेष्ठ उत्तमो भूरिषेणादयो
ब्रह्मसावर्णिपुत्रा राजानो भविष्यन्ति ॥ २४ ॥ एकादशे
मन्वन्तरे धर्मसावर्णिको मनुः ॥ २५ ॥ सिंहसवनादयो
देवगणाः। तेषां दिवस्पतिरिन्द्रः ॥ २६ ॥
निर्मोहस्तत्त्वदर्शी निकम्पो निरुत्साहो धृतिमान् रुच्य
इत्येते सप्तर्षयः। चित्रसेनविचित्राद्या धर्मसावर्णिपुत्रा
भूभृतो भविष्यन्ति ॥ २७ ॥ रुद्रसावर्णिर्भविता द्वादशो
मनुः ॥ २८ ॥ कृतधामा तत्रेन्द्रो हरिता रोहिताः
सुमनसः सुकर्माणः सुतपाश्च देवाः ॥ २९ ॥ तपस्यो
चारुतपास्तपोमूर्तिस्तपोरतिस्तपोभूतिर्ज्योतिस्तप इत्येते
सप्तर्षयः ॥ ३० ॥ देववान् देवश्रेष्ठास्तस्य मनोः
सुता भूपाला भविष्यन्ति ॥ ३१ ॥ त्रयोदशो रुचिर्नाम
मनुः। स्रग्वी बाणः सुधर्मा प्रभृतयो देवगणाः।

इस मन्वन्तरमें आदित्य, विश्वसु और रुद्र आदि देवगण हैं
और 'पुरंदर' इनके इन्द्र हैं। वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि,
गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये इस मन्वन्तरके सप्तर्षि
हैं ॥ १—१६ ॥

अब भविष्य मन्वन्तरोंका वर्णन किया जाता है—
आदित्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए जो 'मनु' हैं, उनकी
चर्चा पहले हो चुकी है और छायाके गर्भसे उत्पन्न दूसरे
'मनु' हैं। इनमें प्रथम उत्पन्न हुए जो 'सावर्ण' मनु हैं,
उनके ही 'सावर्णिक' नामक आठवें मन्वन्तरका वर्णन
सूनिदे। 'सावर्ण' ही आठवें मनु होंगे। उस समय सुतप
आदि देवगण होंगे और 'बलि' उनके इन्द्र होंगे। दीप्तिमान्,
गालव, नामा, कृप, अश्वधामा, व्यास और ऋष्यभृङ्ग—
ये सप्तर्षि होंगे। विराज, उषरीय और निर्वीक आदि
सावर्ण मनुके पुत्र राजा होंगे। पर्वे भावी मनु 'दक्षसावर्णि'
हैं। धृति, कीर्ति, दीप्ति, केतु, पञ्चहस्त, निरामय तथा
पृथुश्रव आदि दक्षसावर्णि मनुके पुत्र उस समय राजा
होंगे। उस मन्वन्तरमें मरीचिगर्भ, सुधर्मा और हविष्यान्—
ये देवता होंगे और उनके इन्द्र 'अद्भुत' नामसे प्रसिद्ध
होंगे। सवन, कुतिमान्, हव्य, वसु, मेधातिथि तथा ज्योतिष्मान्
(और सत्य)—ये सप्तर्षि होंगे। दसवें मनु 'ब्रह्मसावर्णि'
होंगे। उस समय विरुद्ध आदि देवता और उनके 'शान्ति'
नामक इन्द्र होंगे। हविष्यान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग,
प्रतिमोक और समकेतु—ये सप्तर्षि होंगे। सुश्रेष्ठ, उत्तम,
भूरिषेण आदि 'ब्रह्मसावर्णि' के पुत्र राजा होंगे। ग्यारहवें
मन्वन्तरमें 'धर्मसावर्णि' नामक मनु होंगे। उस समय सिंह,
सवन आदि देवगण और उनके 'दिवस्पति' नामक इन्द्र
होंगे। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निकम्प, निरुत्साह, धृतिमान् और
रुच्य—ये सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन और विचित्र आदि धर्मसावर्णि
मनुके पुत्र राजा होंगे। बारहवें मनु 'रुद्रसावर्णि' होंगे। उस
मन्वन्तरमें 'कृतधामा' नामक इन्द्र और हरित, रोहित,
सुमन, सुकर्मा तथा सुतपा नामक देवगण होंगे। तपस्यो,
चारुतप, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोभूति, ज्योति और तप—
ये सप्तर्षि होंगे। रुद्रसावर्णि के पुत्र देववान् और देवश्रेष्ठ
आदि भूमण्डलके राजा होंगे। तेरहवें मनुका नाम 'रुचि'
होगा। उस समय स्रग्वी, बाण और सुधर्मा नामक देवगण

तेषामिन्द्र ऋषभो नाम भविता ॥ ३२ ॥
 निश्चितोऽग्निदेजा वपुष्मान् धृष्टो वारुणिर्हविष्मान्
 नहुषो भव्य इति सप्तर्षयः । सुधर्मा देवानीकादयस्तस्य
 मनोः पुत्राः पृथ्वीश्वरा भविष्यन्ति ॥ ३३ ॥
 भौमश्चतुर्दशो मनुर्भविता । सुरुचिस्तरेन्द्रः चक्षुष्यन्तः
 पवित्राः कनिष्ठाभा देवगणाः ॥ ३४ ॥
 अग्निबाहुश्चिशुकमाधवशिवाभीमजितश्चास इत्येते
 सप्तर्षयः । उरुगम्भीरब्रह्माद्यास्तस्य मनोः सुता
 राजानः ॥ ३५ ॥ एवं ते चतुर्दश मन्वन्तराणि
 कथितानि । राजानश्च यैरियं वसुधा पाल्यते ॥ ३६ ॥
 मनुः सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
 मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रार्क्षवाधिकारिणः ॥ ३७ ॥
 चतुर्दशभिरेतैस्तु गतीर्मन्वन्तरीर्द्विज ।
 सहस्रयुगपर्यन्तः कालो गच्छति वासरः ॥ ३८ ॥
 तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सप्तमः ।
 ब्रह्मरूपधरः शंते सर्वात्मा नृहरिः स्वयम् ॥ ३९ ॥
 त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्ता भगवानादिकृद्भिः ।
 स्वमायामास्थितो विप्र सर्वरूपी जनार्दन ॥ ४० ॥
 अथ प्रयुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
 युगव्यवस्थां कुरुते सृष्टिं च पुरुषोत्तमः ॥ ४१ ॥
 एते तवोक्ता मनवोऽपराश्च
 पुत्राश्च भूपा मुनयश्च सर्वे ।
 विभूतयस्तस्य स्थिती स्थितस्य
 तस्यैव सर्वं त्वमवेहि विप्र ॥ ४२ ॥

तथा उनके 'ऋषभ' नामक इन्द्र होंगे । निश्चित, अग्निदेजा, वपुष्मान्, धृष्ट, वारुणि, हविष्मान् और भव्यमूर्ति नहुष—
 ये सप्तर्षि होंगे । उस मनुके सुधर्मा तथा देवानीक आदि
 पुत्र भूपाल होंगे । चौदहवें भाषी मनुका नाम 'भौम'
 होंगा । उस समय 'सुरुचि' नामक इन्द्र और चक्षुष्मान्,
 पवित्र तथा कनिष्ठाभ नामक देवगण होंगे । अग्निबाहु,
 शुचि, शुक, माधव, शिव, अभीम और जितश्वास—ये
 सप्तर्षि होंगे तथा उस भौम मनुके पुत्र उरु, गम्भीर और
 ब्रह्मा आदि भूतलके राजा होंगे । इस प्रकार मैंने आपसे
 चौदह मन्वन्तरोंका और उन-उन मनुके पुत्र तत्कालीन
 राजाओंका वर्णन किया, जिनके द्वारा इस वसुधाका
 पालन होता है ॥ १७—३६ ॥

ब्रह्मके मन्वन्तरमें मनु, सप्तर्षि, देवता और भूपाल
 मनुपुत्र तथा इन्द्र—ये अधिकारी होते हैं । ब्रह्मन् ! इन
 चौदह मन्वन्तरोंके व्यतीत हो जानेपर एक हजार चतुर्व्युगका
 समय बीत जाता है । यह (ब्रह्माज्योक्ता) एक दिन कहलाता
 है । साधुसिरोमणे ! फिर उठने हो प्रमाणकी उनकी राखि
 होती है । उस समय सब भूतोंके आत्मा साक्षात् भगवान्
 नृसिंह ब्रह्मरूप धारण करके शयन करते हैं । विप्रवर !
 सर्वत्र व्यापक एवं आदिविधाता सर्वरूप भगवान् जनार्दन
 उस समय समस्त त्रिभुवनको अपनेमें लीन करके अपना
 योगमायाका आश्रय ले शयन करते हैं । फिर जाग्रत
 होनेपर वे भगवान् पुरुषोत्तम पूर्वकल्पके अनुसार पुनः
 युग-व्यवस्था तथा सृष्टि करते हैं । ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने
 मनु, देवगण, भूपाल, मनुपुत्र और ऋषि—इन सबका
 आपसे वर्णन किया । आप इन सबको पालनकर्ता भगवान्
 विष्णुकी विभूतियाँ ही समझें ॥ ३७—४२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे अष्टोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक तैत्तिरीय अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश—राजा इक्ष्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवद्दर्शनके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान

श्रीसुत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितं शुभम् ।
शृण्वतामपि पापघ्नं सूर्यसोमनुषात्मकम् ॥ १

सूर्यवंशोद्भवो यो वै मनुपुत्रः पुरोदितः ।
इक्ष्वाकुर्नाम भूपालश्चरितं तस्य मे शृणु ॥ २

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना ।
सरयूतीरमासाद्य अयोध्या नाम नामतः ॥ ३

अमरावत्यतिशया त्रिंशद्योजनजालिनी ।
हस्त्यश्वरथपत्न्योपैर्दुर्गैः कल्पद्रुमप्रभैः ॥ ४

प्राकाराद्दृष्टतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ।
विराजमाना सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पथा ॥ ५

अनेकभूमिप्रासादा बहुभाण्डसुविक्रया ।
पयोत्पलशुभैस्तोयैर्वापीभिरुपशोभिता ॥ ६

देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च शोभिता ।
वीणावेणुमृदङ्गैश्च शब्देरुत्कृष्टैर्युता ॥ ७

शालैस्तालैर्नालिकैरैः पनसामलजम्बुकैः ।
तथैवाप्रकपित्वाद्यैरशोकैरुपशोभिता ॥ ८

आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वत्र फलपादपैः ।
मल्लिकामालतीजातिपाटलानागचम्पकैः ॥ ९

करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता ।
कदलीलवलीजातिमातुलुङ्गमहाफलैः ।
कचिच्चन्दनगन्धाद्यैर्नारङ्गैश्च सुशोभिता ॥ १०

नित्योत्सवप्रमुदिता गीतवाद्यविचक्षणैः ।
नरनारीभिराढ्याभी रूपद्रविणप्रेक्षणैः ॥ ११

श्रीसुतजी कहते हैं—अब मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके 'वंशानुचरित' का वर्णन करूँगा, जो श्रोताओंका भी पाप नष्ट करनेवाला है। मुने! मैंने पहले सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जिन मनुपुत्र 'इक्ष्वाकु' नामक भूपालकी चर्चा की थी, उनके चरित्रका वर्णन आप मुझसे सुनें ॥ १-२ ॥

महाभाग! इस पृथ्वीपर सरयू नदीके किनारे 'अयोध्या' नामसे प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है। यह अमरावती-से भी बढ़कर सुन्दर और तीस योजन लम्बी-चौड़ी थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंके समूह तथा कल्पवृक्षके समान कान्तिमान् वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। चहारदीवारी, अट्टालिका, प्रतोली (गली या राजमार्ग) और सुवर्णकी सी कान्तिवाले फाटकोंसे यह बड़ी शोभा पा रही थी। अलग-अलग बने हुए उसके चौराहे बहुत सुन्दर लगते थे। वहाँके महल कई मंजिल ऊँचे थे। नाना प्रकारके भाण्डों (भीति-भीतिके सामानों)-का सुन्दर ढंगसे ऋष-विक्रय होता था। कमलों और उत्पलोंसे सुशोभित जलसे भरी हुई बावलियाँ उस पुरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। दिव्य देवालय तथा वेदमन्त्रोंके घोष उस नगरकी श्री-वृद्धि करते थे। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिके उत्कृष्ट शब्दोंसे यह पुरी गूँजती रहती थी। शाल (साव), ताल (ताड़), नारियल, कटहल, ओखला, जामुन, आम और कपित्थ (केवड़ा) आदिके वृक्षों तथा असोक-पुष्पोंसे अयोध्यापुरीकी बड़ी शोभा होती थी ॥ ३-८ ॥

वहाँ सब जगह नाना प्रकारके वगीचे और फलवाले वृक्ष पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। मल्लिका (मोतिया या बेला), मालती, चमेली, चाहूर, नागकेसर, चम्पा, कनेर, कनकचम्पा और केतकी (केवड़ा) आदि पुष्पोंसे मानो उस पुरीका भूजाय किया गया था। केला, हरफा, रेवड़ी, जायफल और बिजौरा नीबू, चन्दनकी-सी गन्धवाले तथा दूसरे प्रकारके संतरे आदि बड़े-बड़े फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। गीत और वाद्यमें कुशल पुरुष उस पुरीमें प्रतिदिन आनन्दोत्सव मनाये रहते थे। वहाँकी स्त्री-पुरुष रूप-वैभव तथा सुन्दर नेत्रोंसे सम्पन्न थे ॥ ९-११ ॥

नानाजनपदाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥ १२

सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ।
विप्रैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमप्रभैः ॥ १३

वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षवैर्युता ।
अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥ १४

इति नानाविधैर्भावैरयोध्येन्द्रपुरीसमा ।
तां दृष्ट्वा नारदः श्लोकं सभामध्ये पुरोक्तवान् ॥ १५

स्वर्गं वै सृजमानस्य व्यर्थं स्यात् पञ्चजन्यनः ।
जातायोध्याधिका स्वर्गात् कामभोगसमन्विता ॥ १६

तामावसदयोध्यां तु स्वाभिषिक्तो महीपतिः ।
जितवान् सर्वभूपालान् धर्मेण स महाबलः ॥ १७

पाणिक्वमुकुटैर्युक्तं राजभिर्मण्डलाधिपैः ।
नमद्विभक्तिभीतिभ्यां पादौ तस्य किणीकृतौ ॥ १८

इक्ष्वाकुरक्षतबलः सर्वशास्त्रविशारदः ।
तेजसेन्द्रेण सदृशो मनोः सुनुः प्रतापवान् ॥ १९

धर्मतो न्यायतश्चैव वेदज्ञैर्ब्राह्मणैर्युतः ।
पालयामास धर्मात्मा आसमुद्रां महीमिमाम् ॥ २०

अस्त्रैर्जिगाय सकलान् संयुगे भूपतीन् बली ।
अवजित्य सुतीक्ष्णैस्तु तन्मण्डलमथाहरत् ॥ २१

जितवान् परलोकांश्च क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
दानैश्च विविधैर्ब्रह्मन् राजेक्ष्वाकुः प्रतापवान् ॥ २२

बाहुद्वयेन वसुधां जिह्वाग्रेण सरस्वतीम् ।
बभार पद्मापुरसा भक्तिं चित्तेन माधवे ॥ २३

सन्तिष्ठतो हरे रूपमुपविष्टं च माधवम् ।
शयानमप्यनन्तं तु कारयित्वा पटेऽमलम् ॥ २४

वह पुरी नाना देशोंके मनुष्योंसे भरी-पूरी, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक कान्तिमान् देवोंपम राजकुमारोंसे युक्त थी। वहाँ देवाङ्गनाओंके समान श्रेष्ठ एवं रूपवती यनियाएँ निवास करती थीं। बृहस्पतिके समान तेजस्वी सत्कवि ब्राह्मण उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे। कल्पवृक्षसे भी बढ़कर उदार नागरिकों और वैश्यों, उच्चैःश्रवोंके समान श्रेष्ठ घोड़ों और दिग्गजोंके समान विशालकाय हाथियोंसे वह पुरी बड़ी शोभा पाती थी। इस प्रकार नाना वस्तुओंसे भरी-पूरी अयोध्यापुरी इन्द्रपुरी अमरावतीकी समता करती थी। पूर्वकालमें नारदजीने उस पुरीको देखकर भरी सभामें यह श्लोक कहा था— 'स्वर्गको सृष्टि करनेवाले विधाताका वह सारा प्रयत्न व्यर्थ हो गया; क्योंकि अयोध्यापुरी उससे भी बढ़कर मनोज्ञजित भोगोंसे सम्पन्न हो गयी' ॥ १२—१६ ॥

इक्ष्वाकु इसी अयोध्यामें निवास करते थे। वे राजाके पदपर अभिषिक्त हो, पृथ्वीका पालन करने लगे। उन महान् बलशाली नरोंने धर्ममुद्रके द्वारा समस्त भूपालोंका जीत लिया था। मानिक्यके बने मुकुटोंसे अलंकृत अनेक छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक राजाओंके भक्ति तथा भयपूर्वक प्रणाम करनेसे उनके दोनों चरणोंमें मुकुटोंकी रगड़से चिह्न बन गया था ॥ १७—१८ ॥

मनुपुत्र प्रतापी राजा इक्ष्वाकु अपने राजोचित तेजसे इन्द्रको समाकृता करते थे। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। उनका बल कभी क्षीण नहीं होता था। वे धर्मात्मा भूपाल वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके साथ धर्म और न्याय-पूर्वक इस समुद्रपर्यन्त पृथिवीका पालन करते थे। उन बलशाली नरोंने संग्राममें अपने तीखे शस्त्रोंसे समस्त भूपालोंको जीतकर उनका मण्डल अपने अधिकारमें कर लिया था ॥ १९—२१ ॥

ब्रह्मन्! प्रतापी राजा इक्ष्वाकुने प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ और नाना प्रकारके दान करके परलोकोंपर भी विजय प्राप्त कर ली थी। वे अपनी दोनों भुजाओंद्वारा पृथ्वीका, जिह्वाके अग्रभागसे सरस्वतीका, वक्षःस्थलसे राजलक्ष्मीका और हृदयसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी भक्तिका भार वहन करते थे। एक वस्त्रपर खड़े हुए भगवान् हरिका, बैठे हुए लक्ष्मीपतिका

त्रिकालं त्रयमाराध्य रूपं विष्णोर्महात्मनः ।
 गन्धपुष्पादिभिर्नित्वं रेमे दृष्ट्वा पटे हरिम् ॥ २५

कृष्णं तं कृष्णमेघाभं भुजगेन्द्रनिवासिनम् ।
 पद्माक्षं पीतवासं च स्वप्नेष्वपि स दृष्टवान् ॥ २६

चकार मेघे तद्गुणं बहुमानमतिं नृपः ।
 पक्ष्मपातं च तत्राग्निं मृगे पश्ये च तादृशे ॥ २७

दिव्याकृतिं हरेः साक्षाद् द्रष्टुं तस्य महीभूतः ।
 अतीव तृष्णा संजाता अपूर्वैव हि सत्तम ॥ २८

तृष्णायां तु प्रबुद्धायां मनसैव हि पार्श्विकः ।
 चिन्तयामास मतिमान् राज्यभोगमसारवत् ॥ २९

वैश्वदेवसूतक्षेत्रं संन्यस्तं येन दुःखदम् ।
 वैराग्यज्ञानपूर्वेण लोकेऽस्मिन् नास्ति तत्समः ॥ ३०

इत्येवं चिन्तयित्वा तु तपस्यासक्तचेतनः ।
 वसिष्ठं परिप्रच्छ तत्रोपायं पुरोहितम् ॥ ३१

तपोबलेन देवेशं नारायणमजं मुने ।
 द्रष्टुमिच्छाम्यहं तत्र उपायं तं वदस्व मे ॥ ३२

इत्युक्तः प्राह राजानं तपस्यासक्तमानसम् ।
 वसिष्ठः सर्वधर्मज्ञः सदा तस्य हिते रतः ॥ ३३

यदीच्छसि महाराज द्रष्टुं नारायणं परम् ।
 तपसा सुकृतेनेह आराध्य जनार्दनम् ॥ ३४

केनाप्यतप्ततपसा देवदेवो जनार्दनः ।
 द्रष्टुं न शक्यते जातु तस्मान् तं तपसार्चय ॥ ३५

पूर्वदक्षिणादिग्भागे सरयुतीरगे नृप ।
 गालवप्रमुखानां च ऋषीणामस्ति चाश्रमः ॥ ३६

पञ्चयोजनमध्वानं स्थानमस्मात् पावनम् ।
 नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पसमाकुलम् ॥ ३७

और सोये हुए अनन्तदेवका निर्मल चित्र बनवाकर क्रमशः
 प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें तीनों समय ये
 महात्मा भगवान् विष्णुके उन तीनों रूपोंका गन्ध तथा
 पुष्प आदिके द्वारा पूजन करते और उस पटपर प्रतिदिन
 भगवान् विष्णुका दर्शन करके प्रसन्न रहते थे। उन्हें
 स्वप्नमें भी नागराज अनन्तकी शय्यापर सोये हुए,
 काले मेघके समान श्यामवर्ण, कमललोभन, पीताम्बरधारी
 भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु)-का दर्शन हुआ करता था।
 राजाने भगवान् के समान श्यामवर्णवाले मेघमें अत्यन्त
 सम्मानपूर्ण बुद्धि कर ली थी। भगवान् श्रीकृष्णके
 नामसे युक्त कृष्णसार मृगमें और कृष्णवर्णवाले
 कमलमें वे पक्षपात रखते थे ॥ २२—२७ ॥

स्वपुहितोभवे! उस राजाके मनमें भगवान् विष्णुके
 दिव्य स्वरूपको प्राप्त देखनेकी अत्यन्त उत्कट अभिलाषा
 जागृत हुई; उनको यह दुष्का अपूर्व हो थी। जब उनकी
 तृष्णा बहुत बढ़ गयी, तब वे बुद्धिमान् भूषाल मन-ही-
 मन सारे राज्य-भोगकी निस्सार-ता समझने लगे। उन्होंने
 सोचा—‘जिस पुरुषने गेह, स्त्री, पुत्र और क्षेत्र आदि
 दुःखद भोगोंकी वैराग्य और ज्ञानपूर्वक त्याग दिया है,
 उसके समान बड़भागी इस संसारमें कोई नहीं है।’ इस
 प्रकार सोच-विचारकर, तपस्यामें आसक्तचित्त हो उन्होंने
 उसके लिये अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे उपाय पूछा—
 ‘मुने! मैं तपस्याके बलसे देवेश्वर, अजन्मा भगवान्
 नारायणका दर्शन करना चाहता हूँ; इसके लिये आप मुझे
 कोई उत्तम उपाय बताइये’ ॥ २८—३२ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर राजाके हितमें सदा लगे
 रहनेवाले सर्वधर्मज्ञ मुनिवा वसिष्ठजीने तपमें आसक्तचित्त
 उन नरेशसे कहा—‘महाराज! यदि तुम परमात्मा नारायणका
 साक्षात्कार करना चाहते हो तो तपस्या और शुभकर्मोंके
 द्वारा उन भगवान् जनार्दनको आराधना करो। कोई भी
 पुरुष तपस्या किये बिना देवदेव जनार्दनका दर्शन नहीं पा
 सकता। इसलिये तुम तपस्याके द्वारा उनका पूजन करो।
 यहाँसे चौब पोजन दूर सरयूके तटपर पूर्व और दक्षिण
 भागमें एक चित्र स्थान है, वहाँ गालव आदि ऋषियोंका

स्वमन्त्रिणि महाप्राज्ञे नीतिमत्त्वजुने नृप।
स्वराज्यभारं विन्यस्य कर्मकाण्डमपि द्विज ॥ ३८

स्तुत्वाऽऽराध्य गणाध्यक्षमितो ब्रज विनायकम्।
तपःसिद्धयर्थमन्विच्छंस्तस्मात् तत्र तपः कुरु ॥ ३९

तापसं वेधमास्थाय शाकमूलफलाशनः।
ध्यायन् नारायणं देवमिमं मन्त्रं सदा जप ॥ ४०

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
एष सिद्धिकरो मन्त्रो द्वादशाक्षरसंज्ञितः।
जपत्त्वेनं मुनयः सिद्धिं परां प्राप्ताः पुरातनाः ॥ ४१

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ ४२

बाह्येन्द्रियं हृदि स्थाप्य मनः सूक्ष्मे परात्मनि।
नृप संजप तन्मन्त्रं द्रष्टव्यो मधुसूदनः ॥ ४३

इति ते कथितोपायो हरिप्राप्तेस्तपःकृती।
पृच्छतः साम्प्रतं भूयो यदीच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ४४

इत्येवमुक्तो मुनिना स राजा
राज्यं भूयो मन्त्रिणे समर्प्य।
स्तुत्वा गणेशं सुमनोभिरर्च्य
गतः पुरात् स्वात् तपसे धृतात्मा ॥ ४५ ॥

आश्रम है। वह स्थान नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा विविध भौतिके पुष्पोंसे परिपूर्ण है। राजन्! अपने बुद्धिमान् एवं नीतिज्ञ मन्त्री अर्जुनको राज्यका भार तथा सात कार्य-कलाप सौंप, तत्पश्चात् गणनायक भगवान् विनायककी स्तुति एवं आराधना करके तपस्याकी सिद्धिरूप प्रयोजनकी इच्छा मनमें लेकर यहाँसे उस आश्रमकी यात्रा करते और वहाँ पहुँचकर तपस्यामें संलग्न हो जाओ। तपस्वीका घेघ धारणकर, साग और फल-मूलका आहार करते हुए, भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहकर सदा हो 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'—इस मन्त्रका जप करो। यह 'द्वादशाक्षर'-संज्ञक मन्त्र अभीष्टको सिद्ध करनेवाला है। प्राचीन कालके ऋषियोंने इस मन्त्रका जप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर पुनः लौट आते हैं, परंतु द्वादशाक्षर-मन्त्रका चिन्तन करनेवाले पुरुष आजतक नहीं लौटे—भगवान्को पाकर आवागमनसे मुक्त हो गये। नरेश्वर! बाह्य इन्द्रियोंको हृदयमें स्थापितकर तथा मनको सूक्ष्म परात्मत्वमें स्थिर करके इस मन्त्रका जप करो; इससे तुम्हें भगवान् मधुसूदनका दर्शन होगा। इस प्रकार इस समय तुम्हारे पूछनेपर मैंने तपस्वरूप कार्यसे भगवान्की प्राप्ति का उपाय बतलाया; अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो' ॥ ३३—४४ ॥

मुनिवर किसिष्टके इस प्रकार कहनेपर ये राजा इक्ष्वाकु अपने श्रेष्ठ मन्त्रीको भूमण्डलके राज्यका भार सौंपकर, पुष्पोंद्वारा गणेशजीका पूजन तथा स्तवन करके, तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय मनमें लेकर, अपने नगरसे चल दिये ॥ ४५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्ष्वाकुचरित्रे तत्त्वार्थशोधकाः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'इक्ष्वाकुका चरित्र' विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

११११

पचीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुकी तपस्या और ब्रह्माजीद्वारा विष्णुप्रतिमाकी प्राप्ति

भरद्वाज उवाच

कथं स्तुतो गणाध्यक्षस्तेन राजा महात्मना।
यथा तेन तपस्तप्तं तन्मे वद महामते ॥ १

भरद्वाजजीने पूछा—महामते! उन महात्मा राजाने किस प्रकार गणेशजीका स्तवन किया? तथा उन्होंने जिस प्रकार तपस्या की, उसका आप मुझसे वर्णन करें ॥ १ ॥

सूत उवाच

चतुर्थीदिवसे राजा स्नात्वा त्रिषवर्णं द्विज।
 रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तगन्धानुलेपनः ॥ २
 सुरक्तकुसुमैर्हृद्यैर्विनायकमध्याचयत् ।
 रक्तचन्दनतोयेन स्नानपूर्वं यथाविधि ॥ ३
 विलिप्य रक्तगन्धेन रक्तपुष्पैः प्रपूजयत्।
 ततोऽसौ दत्तवान् धूपमान्ययुक्तं सचन्दनम्।
 नैवेद्यं चैव हारिद्रं गुडखण्डघृतप्लुतम् ॥ ४
 एवं सुविधिना पूज्य विनायकमध्यास्तवीत्।

इक्ष्वाकुकुलनाथ

नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम् ॥ ५
 महागणपतिं शूरमजितं ज्ञानवर्धनम्।
 एकदन्तं द्विदन्तं च चतुर्दन्तं चतुर्भुजम् ॥ ६
 त्र्यक्षं त्रिशूलहस्तं च रक्तनेत्रं वरप्रदम्।
 आम्बिकेयं शूर्पकर्णं प्रचण्डं च विनायकम् ॥ ७
 आरक्तं दण्डिनं चैव बद्धिबलं हुतप्रियम्।
 अनर्चितो विघ्नकरः सर्वकार्येषु यो नृणाम् ॥ ८
 तं नमामि गणाध्यक्षं भीममुग्रपुमासुतम्।
 मदमत्तं विरूपाक्षं भक्तविघ्ननिवारकम् ॥ ९
 सूर्यकोटिप्रतीकाशं भिन्नाञ्जनसमप्रभम्।
 बुद्धं सुनिर्मलं शान्तं नमस्यामि विनायकम् ॥ १०
 नमोऽस्तु गजवक्त्राय गणानां पतये नमः।
 मेरुमन्दररूपाय नमः कैलासवासिने ॥ ११
 विरूपाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
 भक्तस्तुताय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥ १२
 त्वया पुराण पूर्वेषां देवानां कार्यसिद्धये।
 गजरूपं समास्थाय त्रासिताः सर्वदानवाः ॥ १३

सूतजी बोले—द्विज! गणेश-चतुर्थीके दिन राजाने त्रिकाल स्नान करके रक्तवस्त्र धारण किया और लाल चन्दन लगाकर मनोहर लाल फूलों तथा रक्तचन्दनमिश्रित जलसे गणेशजीको स्नान कराके विधिवत् उनका पूजन किया। स्नान करानेके बाद उनके श्रीअङ्गोंमें लाल चन्दन लगाया। फिर रक्तपुष्पोंसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्हें घृत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया। अन्तमें हल्दी, धी और गुडखण्डके मेलसे तैयार किया हुआ मधुर नैवेद्य अर्पण किया। इस प्रकार सुन्दर विधिपूर्वक भगवान् विनायकका पूजन करके राजाने उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ २—४ १/२ ॥

इक्ष्वाकु बोले—मैं महान् देव गणेशजीको प्रणाम करके उन विघ्नराजका स्तवन करता हूँ, जो महान् देवता एवं गणोंके स्वामी हैं, शूरवीर तथा अपराजित हैं और ज्ञानवृद्धि करानेवाले हैं। जो एक, दो तथा चार दौंतीवाले हैं, जिनको चार भुजाएँ हैं, जो तीन नेत्रोंसे युक्त और हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं, जिनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, जो चार देनेवाले हैं, जो माता पार्वतीके पुत्र हैं, जिनके सूप-जैसे कान हैं, जिनका वर्ण कुछ-कुछ लाल है, जो दण्डधारी तथा अग्निमुख हैं एवं जिन्हें होम प्रिय है तथा जो प्रथम पूजित न होनेपर मनुष्योंके सभी कार्योंमें विघ्नकारी होते हैं, उन भोमकाय और उग्र स्वभाववाले पार्वतीनन्दन गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मदसे मत्त रहते हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं और जो भक्तोंके विघ्न दूर करनेवाले हैं, करोड़ों सूर्यके समान जिनकी कान्ति है, खानसे काटकर निकाले हुए कोंयलेकी भाँति जिनकी श्याम व्रथा है तथा जो विमल और शान्त हैं, उन भगवान् विनायकको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरुगिरिके समान रूप और हाथीके मुख-सदृश मुखवाले, कैलासवासी गणपतिको नमस्कार है। विनायक देव! आप विरूपधारी और ब्रह्मचारी हैं, भक्तजन आपकी स्तुति करते हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ५—१२ ॥

पुराणपुरुष! आपने पूर्ववर्ती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हाथीका स्वरूप धारण करके समस्त दानवोंको भयभीत किया था।

श्रुषीणां देवतानां च नायकत्वं प्रकाशितम् ।
 यतस्ततः सूररग्रे पूज्यसे त्वं भवात्मज ॥ १४
 त्वामाराध्य गणाध्यक्षं सर्वज्ञं कामरूपिणम् ।
 कार्यार्थं रक्तकुसुमै रक्तचन्दनवारिभिः ॥ १५
 रक्ताम्बरधरो भूत्वा चतुर्ध्यामर्चयेज्जपेत् ।
 त्रिकालमेककालं वा पूजयेन्नियताशनः ॥ १६
 राजानं राजपुत्रं वा राजमन्त्रिणमेव वा ।
 राज्यं च सर्वविघ्नेश वशं कुर्यात् सराष्टकम् ॥ १७
 अविघ्नं तपसो मष्टं कुरु नीमि विनायक ।
 मयेत्वं संस्तुतो भक्त्या पूजितश्च विशेषतः ॥ १८
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
 तत्फलं पूर्णमाप्नोति स्तुत्वा देवं विनायकम् ॥ १९
 विषमं न भवेत् तस्य न च गच्छेत् पराभवम् ।
 न च विज्णो भवेत् तस्य जातो जातिस्मरो भवेत् ॥ २०
 य इदं पठते स्तोत्रं षड्भिर्मासैर्वरं लभेत् ।
 संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥ २१

सुत उवाच

एवं स्तुत्वा पुरा राजा गणाध्यक्षं द्विजोत्तम ।
 तापसं वेपमास्थाय तपश्शर्तुं गतो वनम् ॥ २२
 उत्सृज्य वस्त्रं नागत्वक्सदृशं बहुमूल्यकम् ।
 कठिनां तु त्वचं वाक्षीं कटपां धत्ते नृपोत्तमः ॥ २३
 तथा रत्नानि दिव्यानि वलयानि निरस्य तु ।
 अक्षसूत्रमलंकारं फलैः पद्मस्य शोभनम् ॥ २४
 तथोत्तमाङ्गे मुकुटं रत्नहाटकशोभितम् ।
 त्यक्त्वा जटाकलापं तु तपोऽर्थं विभूयावृषः ॥ २५
 कृत्वैत्थं स तपोवेष्टं वसिष्ठोक्तं तपोवनम् ।
 प्रविश्य च तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः ॥ २६

शिवपुत्र! आपने श्रुषी और देवताओंपर अपना स्वामित्व प्रकट कर दिया है, इसीसे देवगण आपको प्रथम पूजा करते हैं। सर्वविघ्नेश्वर! यदि मनुष्य रक्तवस्त्र धारणकर नियमित आहार करके अपने कार्यकी सिद्धिके लिये लाल पुष्पों और रक्तचन्दन-युक्त जलसे चतुर्थीके दिन तीनों कल या एक कालमें आप कामरूपी सर्वज्ञ गणपतिका पूजन करे तथा आपका नाम जपे तो वह पुरुष राजा, राजकुमार, राजमन्त्रीको राज्य अथवा समस्त राष्ट्रसहित अपने वशमें कर सकता है ॥ १३—१७ ॥

विनायक। मैं आपको स्तुति करता हूँ। आप मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक स्तवन एवं विशेषरूपसे पूजन किये जानेपर मेरी तपस्याके विघ्नको दूर कर दें। सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त यज्ञोंमें जो फल प्राप्त होता है, उसी फलको मनुष्य भगवान् विनायकका स्तवन करके पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है। उसपर कभी संकट नहीं आता, उसका कभी तिरस्कार नहीं होता और न उसके कार्यमें विघ्न हो सकता है; वह जन्म लेनेके बाद पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला होता है। जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महीनातक निरन्तर पाठ करनेसे गणेशजीसे मनोवाञ्छित वर प्राप्त करता है और एक वर्षमें पूर्णतः सिद्धि प्राप्त कर लेता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १८—२१ ॥

सुतजी बोले—द्विजोत्तमगण। इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु पहले गर्गेशवीका स्तवन करके, फिर तपस्वीका वेप धारणकर तप करनेके लिये वनमें चले गये। सौंपकी त्वपाके समान मुलायम एवं बहुमूल्य वस्त्र त्यागकर वे श्रेष्ठ महाराज कमरमें वृक्षोंकी कठोर छाल पहनने लगे। दिव्य रत्नोंके हार और कड़े निकालकर हाथमें अक्षसूत्र तथा गलेमें कमलगट्टोंकी बनी हुई सुन्दर माला धारण करने लगे। इसी प्रकार वे नरेश मस्तकपरसे रत्न तथा मुष्पर्वसे सुरोभित मुकुट हटाकर वहाँ तपस्याके लिये जटाजूट रखने लगे ॥ २२—२५ ॥

इस प्रकार वसिष्ठजीके कथनानुसार तापस-वेप धारणकर तपोवनमें प्रविष्ट हो, वे शाक और फल-मूलका आहार करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हो गये।

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः ।
वर्षाकाले निरालम्बो हेमन्ते च सरोजले ॥ २७

इन्द्रियाणि समस्तानि नियम्य हृदये पुनः ।
मनो विष्णौ समावेश्य मन्त्रं वै द्वादशाक्षरम् ॥ २८

जपतो वायुभक्षस्य तस्य राज्ञो महात्मनः ।
आविर्बभूव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २९

तमागतमथालोक्य पद्मयोनिं चतुर्मुखम् ।
प्रणम्य भक्तिभावेन स्तुत्या च पर्यतोषयत् ॥ ३०

नमो हिरण्यगर्भाय जगत्त्रष्टे महात्मने ।
वेदशास्त्रार्थविदुषे चतुर्वक्त्राय ते नमः ॥ ३१

इति स्तुतो जगत्त्रष्टा ब्रह्मा प्राह नृपोत्तमम् ।
तपस्यभिरतं शान्तं त्यक्तारान्यं महासुखम् ।

ब्रह्मोवाच

लोकप्रकाशको राजन् सूर्यस्तव पितामहः ॥ ३२

मुनीनामपि सर्वेषां सदा मान्यो मनुः पिता ।
कृतवन्तौ तपः पूर्वं तीव्रं पितृपितामही ॥ ३३

किमर्थं राज्यभोगं तु त्यक्त्वा सर्वं नृपोत्तम ।
तपः करोषि घोरं त्वं समाचक्ष्व महामते ॥ ३४

इत्युक्तो ब्रह्मणा राजा तं प्रणम्याब्रवीद्वचः ।
द्रष्टुमिच्छंस्तपश्चर्याबलेन मधुसूदनम् ॥ ३५

करोम्येवं तपो ब्रह्मन् शङ्खचक्रगदाधरम् ।
इत्युक्तः प्राह राजानं पद्मजन्मा हसन्निव ॥ ३६

न शक्यस्तपसा द्रष्टुं त्वया नारायणो विभुः ।
मादृशैरपि नो दृश्यः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ३७

पुरातनीं पुण्यकथां कथयामि निबोध मे ।
निशान्ते प्रलये लोकान् निर्नीय कमलेक्षणाः ॥ ३८

महातपस्वी राजा इक्ष्वाकु ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्निके बीच स्थित होकर तपस्या करते थे, वर्षाके समय खुले मैदानमें रहते और शीतकालमें सरोवरके जलमें छड़े होकर तप करते थे। इस प्रकार समस्त इन्द्रियोंको मनमें निरुद्ध करके, मनको भगवान् विष्णुमें लीन कर द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते और वायु पीकर रहते हुए उन महात्मा राजाके समक्ष लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन चार मुखोंवाले पद्मयोनि ब्रह्माजीकी आया देख राजाने उन्हें भक्तिभावसे प्रणाम एवं उनकी स्तुति करके संतुष्ट किया ॥ २६—३० ॥

(राजा बोले—) 'संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा वेद-शास्त्रोंके मर्मज्ञ, चार मुखोंवाले महात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीकी नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर जगत्त्रष्टा ब्रह्माजीने राज्य त्यागकर तपस्यामें लगे हुए उन शान्त एवं महान् सुखी श्रेष्ठ नरेशसे कहा ॥ ३१' ॥

ब्रह्माजी बोले—राजन्। समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाले तुम्हारे पितामह सूर्य तथा पिता मनु भी सदा ही सभी मुनियोंके मान्य हैं। तुम्हारे पिता और पितामहने भी पूर्वकालमें तीव्र तपस्या की थी। (उन्हींके समान आज तुम भी तप कर रहे हो।) महामते नृपश्रेष्ठ। सारा राज्य-भोग छोड़कर किसलिये यह घोर तप कर रहे हो? इसका कारण बताओ ॥ ३२—३४ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर राजाने उनको प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्। मैं तपोबलसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा लेकर ही ऐसा तप कर रहा हूँ।' राजाके यों कहनेपर कमलजन्मा ब्रह्माजीने हँसते हुए-से उनसे कहा ॥ ३५—३६ ॥

"राजन्। सर्वत्र व्यापक भगवान् नारायणका दर्शन तुम केवल तपस्यासे नहीं कर सकोगे। (औरोंकी तो बात ही क्या है, हमारे-जैसे लोगोंकी भी क्लेशनाशन भगवान् केशवका दर्शन नहीं हो पाता। महामते! मैं तुम्हें एक पुरातन यवित्र कथा सुनाता हूँ, सुनो—'प्रलयकी रातमें कमललोचन भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंको अपनेमें लीन कर लिया

अनन्तभोगशयने योगनिद्रां गतो हरिः ।
सनन्दनाद्यैर्पुनिभिः स्तूयमानो महामते ॥ ३९

तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्मजायत ।
तस्मिन् पद्मे शुभे राजन् जातोऽहं वेदवित् पुरा ॥ ४०

ततो भूत्वा त्वद्भोदृष्टिर्दृष्टवान् कमलेश्वरम् ।
अनन्तभोगपर्यङ्के भिन्नाञ्जननिभं हरिम् ॥ ४१

अतसीकुसुमाभासं शयानं पीतवाससम् ।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गं मुकुटेन विराजितम् ॥ ४२

कुन्देन्दुसदृशाकारमनलं च महामते ।
सहस्रफणमध्यस्थैर्मणिभिर्दीप्तिमत्तरम् ॥ ४३

क्षणमात्रं तु तं दृष्ट्वा पुनस्तत्र न दृष्टवान् ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो बभूवाहं नृपोत्तम ॥ ४४

ततो न्ववातरं तस्मात् पद्मनालं समाश्रितः ।
कौतूहलेन तं द्रष्टुं नारायणमनामयम् ॥ ४५

ततस्त्वन्विष्य राजेन्द्र सलिलानो न दृष्टवान् ।
श्रीं पुनस्तमेवाहं पद्माश्रित्य चिन्तयन् ॥ ४६

तद्रूपं वासुदेवस्य द्रष्टुं तेपे महत्तपः ।
ततो मामन्तरिक्षस्था वागुवाचाशरीरिणी ॥ ४७

वृथा किं क्लिश्यते ब्रह्मन् साम्प्रतं कुरु मे वचः ।
न दृश्यो भगवान् विष्णुस्तपसा महतापि ते ॥ ४८

सृष्टिं कुरु तदाज्ञसो यदि द्रष्टुमिहेच्छसि ।
शुद्धस्फटिकसंकाशनागपर्यङ्कशायिनम् ॥ ४९

यद्दृष्टं शार्ङ्गिणो रूपं भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ।
प्रतिभानियतं रूपं विमानस्थं महामते ॥ ५०

भज नित्यमनालस्यस्ततो द्रक्ष्यसि माधवम् ।
तथेत्यं चोदितो राजंस्त्यक्त्वा तप्तमनुक्षणम् ॥ ५१

और सनन्दन आदि मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे 'अनन्त' नामक शेषनागकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। राजन्! उन सोये हुए भगवान्की नाभिसे प्रकाशमान एक बहुत बड़ा कमल उत्पन्न हुआ। पूर्वकालमें उस प्रकाशमान कमलपर सर्वप्रथम मुझ वेदवेत्ता ब्रह्मावस्थ ही आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नीचेकी ओर दृष्टि करके मैंने छानसे काटकर निकाले हुए कोयलेके समान श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णुको शेषनागकी शय्यापर सोते देखा। उनके ओअङ्गोंकी कान्ति अलसोके फूलकी भाँति सुन्दर जान पड़ती थी, दिव्य रत्नोंके आभरणोंसे उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी और उनका मस्तक मुकुटसे शोभायमान था ॥ ३७—४२ ॥

'महामते! उस समय मैंने उन अनन्तदेव शेषनागका भी दर्शन किया, जिनका आकार कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत था तथा जो हजारों फणोंकी मणियोंसे अत्यन्त दीप्तिमान हो रहे थे। नृपश्रेष्ठ! क्षणभर ही वहाँ उन्हें देखकर मैं फिर उनका दर्शन न पा सका, इससे अत्यन्त दुःखी हो गया। तब मैं कौतूहलवश निरामय भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये कमलनालका सहारा ले वहाँसे नीचे उतरा; परन्तु राजेन्द्र! उस समय जलके भीतर बहुत खोजनेपर भी मैं उन लक्ष्मीपतिका पुनः दर्शन न पा सका। तब मैं फिर उसी कमलका आश्रय ले वासुदेवके उसी रूपका चिन्तन करता हुआ उनके दर्शनके लिये बड़ी भारी तपस्या करने लगा। तत्पश्चात् अन्तरिक्षके भीतरसे किसी अव्यक्त शरीरवाली याणीने मुझसे कहा ॥ ४३—४७ ॥

"ब्रह्मन्! क्यों व्यर्थ क्लेश उठा रहे हो? इस समय मेरी बात मानो। बहुत बड़ी तपस्यासे भी तुम्हें भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ शुद्ध स्फटिक-मणिके समान श्वेत नाग-शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो उनके आज्ञानुसार सृष्टि करो। महामते! तुमने 'शार्ङ्ग' धनुष धारण करनेवाले उन भगवान्का, जो अञ्जन-पुष्पके समान श्याम सुषमासे युक्त तथा स्वभावतः प्रतिभाशालीरूप विमान (शेषशय्या) - पर स्थित देखा है, उसीका आलस्यरहित होकर भजन-ध्यान करो, तब उन माधवको देख सकोगे ॥ ४८—५० ॥

"राजन्! उस आकाशयाणीद्वारा इस प्रकार प्रेरित हो मैंने निरन्तर की जानेवाली तीव्र तपस्याका अनुष्ठान

सृष्ट्वान् लोकभूतानां सृष्टिं सृष्ट्वा स्थितस्य च ।
आविर्बभूव मनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ५२

अनन्तकृष्णयोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे ।
विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप ॥ ५३

तथैव तं ततो भक्त्या सम्पूज्याहं हरिं स्थितः ।
तत्प्रसादात्तपः श्रेष्ठं मया ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ५४

लब्ध्वा मुक्तिं च पश्यामि अविकारक्रियासुखम् ।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि हितं नृपवरेश्वर ॥ ५५

विसृज्यैतत्तपो घोरं पुरीं व्रज निजां नृप ।
प्रजानां पालनं धर्मस्तपश्चैव महीभूताम् ॥ ५६

विमानं प्रेषयिष्यामि सिद्धद्विजगणान्वितम् ।
तत्राराधय देवेशं ब्राह्मार्थैरखिलैः शुभैः ॥ ५७

नारायणमनन्ताख्ये शयानं कतुभिर्यजन् ।
निष्कामो नृपशार्दूल प्रजा धर्मेण पालय ॥ ५८

प्रसादाद्वासुदेवस्य मुक्तिस्ते भविता नृप ।
इत्युक्त्वा तं जगामाथ ब्रह्मलोकं पितामहः ॥ ५९

इक्ष्वाकुश्चिन्तयन्नास्ते पश्योनिवचो द्विज ।
आविर्बभूव पुरतो विमानं तन्महीभूतः ॥ ६०

ब्रह्मदत्तं द्विजयुतं माधवानन्तयोः शुभम् ।
तं दृष्ट्वा परया भक्त्या नत्वा च पुरुषोत्तमम् ॥ ६१

ऋषीन् प्रणम्य विप्रांश्च तदादाय ययौ पुरीम् ।
पौरैर्जनैश्च नारीभिर्दृष्टः शोभासमन्वितैः ॥ ६२

लाजा विनिक्षिपद्भिश्च नीतो राजा स्वकं गृहम् ।
स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम् ॥ ६३

त्यागकर इस जगत्के प्राणियोंकी सृष्टि की। सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ। उन्होंने 'अनन्त' नामक शेषनाग और भगवान् विष्णुको दो चमकीली प्रतिमाएँ बनायीं। नरेश्वर। मैंने पहले जलके भीतर शेष-शय्यापर जिस रूपमें देख चुका था, उसी रूपमें भगवान् श्रीहरिकी वह प्रतिमा बनायी गयी थी। तब मैं उन श्रीहरिके उस श्रीविग्रहकी भक्तिपूर्वक पूजा करके और उन्होंने प्रसादसे श्रेष्ठ तपरूप परम उत्तम ज्ञान प्राप्त करके विकाररहित नित्यानन्दमय मोक्ष-सुखका अनुभव करने लगा ॥ ५२—५४ ॥

“राजराजेश्वर! इस समय मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ, सुनो—राजन्! इस घोर तपस्याको छोड़कर अब अपनी पुरीको लौट जाओ। प्रजाओंका पालन करना ही राजाओंका धर्म तथा तप है। मैं सिद्धों और ब्राह्मणोंसहित उस विमानको, जिसपर भगवान्की प्रतिमा है, तुम्हारे पास भेजूँगा। उसीमें तुम सुन्दर बाह्य उपचारोंद्वारा उन देवेश्वरकी आराधना करो। नृपश्रेष्ठ। तुम यज्ञोंद्वारा 'अनन्त' नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् नारायणका निष्कामभावसे यज्ञोंद्वारा आराधन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो। नृप! भगवान् वासुदेवकी कृपासे अवश्य ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।” राजासे यह कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी अपने धामको चले गये ॥ ५५—५९ ॥

द्विज! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी बातोंपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समक्ष वह विष्णु और अनन्दकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया। उन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा साथमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरीको गये। वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लावा छीटते हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये। राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव-विमानको स्थापित किया और साथ

संस्थाप्याराधयामास तैर्द्विजैरर्चितं हरिम् ।
महिष्यः शोभना यास्तु पिष्टा तु हरिचन्दनम् ॥ ६४

मालां कृत्वा सुगन्धाब्जं प्रीतिस्तस्य ववर्ध ह ।
पौराः कर्पूरश्रीखण्डं कुङ्कुमाद्यगुरुं तथा ॥ ६५
कृत्स्नं विशेषतो वस्त्रं महिषास्त्रं च गुग्गुलम् ।
पुष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः ॥ ६६

विमानस्थं हरिं पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
त्रिसंध्यं परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः ॥ ६७

गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खवादिप्रनादितैः ।
प्रेक्षणीरपि शास्त्रोक्तैः प्रीतैश्च निशिजाग्रैः ॥ ६८

कारयामास सुचिरमुत्सवं परमं दुरैः ।
यागैश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ६९

निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवाप्तवान् ।
यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् केशवार्चनम् ॥ ७०

उत्पाद्य पुत्रान् पित्रर्थं ध्यानात्पक्त्वा कलेवरम् ।
ध्यायन् वै केवलं ब्रह्म प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥ ७१

अजं विशोकं विमलं विशुद्धं
शान्तं सदानन्दचिदात्मकं ततः ।
विहाय संसारमनन्तदुःखं
जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा ॥ ७२

आये हुए उन ब्राह्मणोंद्वारा पूजित भगवान् विष्णुकी वे
आराधना करने लगे । उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिस-
कर और सुगन्धित फूलोंका हार गुँथकर अर्पण करती
थीं, इससे राजाको यही प्रसन्नता होती थी । इसी प्रकार
नगर-निवासी जन कर्पूर, श्रीखण्ड, कुङ्कुम, अगुरु
आदि सभी उपचार और विशेषतः सस्त्र, गुग्गुल तथा
श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते
थे ॥ ६०—६६ ॥

राजा तीनों संध्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान्
व्रीहरीकी क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बड़ी
भक्तिसे पूजा करते थे । श्रीविष्णुके नामोंका जप, उनके
स्तोत्रोंका पाठ, उनके गुणोंका गान और शङ्ख आदि
वाद्योंका शब्द करते-करते थे । शास्त्रोंक विधिसे प्रेमपूर्वक
सजायी हुई भगवान्की झौंकियों तथा रात्रिमें जागरण
आदिके द्वारा वे सदा ही देरतक भगवत्सम्बन्धी उत्सव
कराया करते थे । निष्कामभावसे किये गये यज्ञ, दान
तथा धर्माचरणोंद्वारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णुको
संतुष्ट करके राजाने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया ।
पशुओंका अनुष्ठान, पुष्पोंका पालन और भगवान् केशवका
पूजन करते हुए राजाने पितृगणोंकी तृप्तिके निमित्त
श्राद्ध आदि कर्म करनेके लिये पुत्रोंको उत्पन्न किया
और केवल ब्रह्मका चिन्तन करते हुए ध्यानके द्वारा
ही शरीरका त्यागकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त
कर लिया । इस प्रकार राजा इत्याकु अनन्त दुःखोंसे
पूर्ण संसारका त्याग करके अज, अशोक, अमल,
विशुद्ध, शान्त एवं सच्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त हो
गये ॥ ६७—७२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इन्द्रकुचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत 'इन्द्रकुचरिते' विषयक पञ्चविंशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुकी संततिका वर्णन

श्रीमृत उक्त्व

इक्ष्वाकोर्विकुक्षिनामपुत्रः । स तु सिद्धे पितरि
महर्षिभिरभिषिक्तो धर्मेण पृथिवीं पालयन्
विमानस्थमनन्तभोगशायिनमच्युतमाराध्य यागीरपि
देवानिष्ट्वा स्वपुत्रं राज्ये सुबाहुमभिषिच्य दिवमारुह ।
सुबाहोर्भाजमानादुद्योतोऽभिगीयते । स तु सप्तद्वीपां
पृथ्वीं धर्मेण पालयित्वा भक्तिं परां नारायणे
पितामहवत् कृत्वा क्रतुभिर्भूरिदक्षिणीर्यत्रेष्टं
निष्कामेन मनसेष्टा नित्यं निरञ्जनं निर्विकल्पं परं
ज्योतिरमृताक्षरं परमात्मरूपं ध्यात्वा हरिमनन्तं च
परमाराध्य स्वर्गलोकं गतः ॥ १ ॥

तस्य युवनाश्वो युवनाश्वस्य च मांधाता
पुत्रोऽभवत् । स चाभिषिक्तो महर्षिभिर्निसर्गादेव
विष्णुभक्तोऽनन्तशयनमच्युतं भक्त्याऽऽराधयन्
यागीश्च विविधैरिष्ट्वा सप्तद्वीपवतीं पृथिवीं परिपाल्य
दिवं गतः ॥ २ ॥

यस्यैव श्लोको गीयते ।

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतिनिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३ ॥

तस्य पुरुकुशोऽभवद् येन देवा आह्वणाश्च
यागदानैः संतुष्टाः ॥ ४ ॥ पुरुकुश्याद् हृषदो

श्रीमृतजी बोले—इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था
विकुक्षि। वह अपने पिताके मुक्त हो जानेपर महर्षियोंद्वारा
राज्यपरपर अभिषिक्त हुआ और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन
करने लगा। राजा विकुक्षिने विमानपर विराजमान शेषशायी
भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए अनेक यज्ञोंद्वारा
देवताओंका भी यजन किया। अन्तमें वे अपने पुत्र
सुबाहुको राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं स्वर्गगामी हो गये।
अब तेजस्वी राजा सुबाहुके पुत्र उद्योतका यशोगान किया
जाता है। उद्योतने सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीका धर्मपूर्वक
पालन किया। उन्होंने अपने पितामह राजा इक्ष्वाकुकी ही
भाँति भगवान् वासवज्यमें परार्पित करके प्रचुर दक्षिणावाले
यज्ञोंद्वारा यज्ञपति विष्णुका निष्कामभावसे यजन किया
तथा नित्य, निरञ्जन, निर्विकल्प, अमृत, अक्षर, परम,
ज्योतिर्मय परमात्मरूपका चिन्तन करते हुए श्रीविष्णु
और अनन्तकी आराधना करके वे परमधामको प्राप्त
हुए ॥ १ ॥

उनके पुत्र युवनाश्व हुए, युवनाश्वके पुत्र मांधाता
मांधाता स्वभावसे ही भगवान् विष्णुके भक्त थे। महर्षियोंने
जब उनका राज्याभिषेक कर दिया, तब शेषशायी भगवान्
विष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना तथा विविध यज्ञोंद्वारा
यजन करते हुए उन्होंने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका
पालन किया और अन्तमें उनका वैकुण्ठवास हुआ ॥ २ ॥

मांधाताके ही विषयमें यह श्लोक अवतक गाया
जाता है—

‘जहाँसे सूर्य उदय होता और जहाँतक जाकर अस्त
होता है, यह सब युवनाश्वके पुत्र मांधाताका ही क्षेत्र
कहलाता है’ ॥ ३ ॥

मांधाताका पुत्र पुरुकुश्य (या पुरुकुत्स) हुआ,
जिसने यज्ञ और दानके द्वारा देवताओं तथा
आह्वणोंको संतुष्ट किया था। पुरुकुश्यसे द्रुपद और

दृषदादभिशम्भुः । अभिशम्भोर्दारुणो
 दारुणात्सगरः ॥ ५ ॥ सगराद्धर्वशो हर्वश्चाद्धारीतो
 हारीताद्रोहिताश्वः । रोहिताश्वादंशुमान् ॥ ६ ॥ अंशुमतो
 भगीरथः । येन महता तपसा पुरा दिवो गङ्गा
 अशेषकल्मषनाशिनी चतुर्विधपुरुषार्थदायिनी
 भुवमानीता । अस्थिशर्कराभूताः कपिलमहर्षि-
 निर्दग्धाश्च गुरवः सगराख्या गङ्गातोयसंस्पृष्टा
 दिवमारोपिताः । भगीरथात् सौदासः
 सौदासात् सत्रसवः ॥ ७ ॥ सत्रसवा-
 दनरण्योऽनरण्यादीर्घबाहुः ॥ ८ ॥ दीर्घबाहो-
 रजोऽजादृशरथः । तस्य गृहे रावणविनाशार्थं
 साक्षान्नारायणोऽवतीर्णो रामः ॥ ९ ॥

स तु पितृयचनाद् भ्रातृभार्यासहितो दण्डकारण्यं
 प्राप्य तपश्चचार । वने रावणापहतभार्यो भ्रात्रा सह
 दुःखितोऽनेककोटिवानरनायकसुग्रीवसहायो
 महोदधी सेतुं निबध्य तैर्गत्वा लङ्कां रावणं देवकण्ठकं
 सबान्धवं हत्वा सीतामादाय पुनर्योध्यां प्राप्य
 भरताभिषिक्तो विभीषणाय लङ्काराज्यं विमानं वा
 दत्त्वा तं प्रेषयामास । स तु परमेश्वरो विमानस्थो
 विभीषणेन नीयमानो लङ्कायामपि राक्षसपुर्यां
 वस्तुमनिच्छन् पुष्पचारण्यं तत्र स्थापितवान् ॥ १० ॥
 तन्नरीक्ष्य तत्रैव महाहिभोगशयने भगवान् शेते ।
 सोऽपि विभीषणस्ततस्तद्विमानं नेतुमसमर्थः,
 तद्वचनात् स्यां पुरीं जगाम ॥ ११ ॥

नारायणसंनिधानामहद्वैष्णवं क्षेत्रमभवदद्यापि
 दृश्यते । रामाङ्गवो लवात्पद्मः पद्माहतुपर्णं

दृपदसे अभिशम्भु हुआ । अभिशम्भुसे दारुण और दारुणसे
 सगरका जन्म हुआ । सगरसे हर्वश्च, हर्वश्चसे हारीत,
 हारीतसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे अंशुमान् और अंशुमान्से
 भगीरथ हुए, जो पूर्वकालमें बहुत बड़ी तपस्या करके
 समस्त प्राणोंका नाश करनेवाली और चारों पुरुषार्थोंके
 देनेवाली गङ्गाको आकाशसे पृथ्वीपर ले आये । उन्होंने
 गङ्गाबालके स्पर्शसे अपने 'सागर' संज्ञक पितरोंको, जो
 महर्षि कपिलके शापसे दग्ध होकर अस्थि-भस्ममात्र
 शेष रह गये थे, स्वर्गलोकको पहुँचा दिया । भगीरथसे
 सौदास और सौदाससे सत्रसवका जन्म हुआ । सत्रसवसे
 अनरण्य और अनरण्यसे दीर्घबाहु हुआ । दीर्घबाहुसे अज
 तथा अजसे दशरथ हुए । इनके घरमें साक्षात् भगवान्
 नारायण रावणका नाश करनेके लिये 'राम' रूपमें अवतीर्ण
 हुए थे ॥ ४-९ ॥

राम अपने पिताके कहनेसे छोटे भाई लक्ष्मण तथा
 पत्नीसहित दण्डकारण्यमें जाकर तपस्या करने लगे । उस
 वनमें रावणने इनकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया ।
 इससे दुःखी होकर वे अपने भाई लक्ष्मणको साथ लेकर
 अनेक करोड़ु वानर-सेनाके अधिपति सुग्रीवको सहायक
 बनाकर चले और महासागरमें पुल बाँधकर उन सबके
 साथ लङ्कामें जा पहुँचे । वहाँ देवताओंके मार्गका काँटा
 वने हुए रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर
 सीताको साथ ले पुनः अयोध्यामें लौट आये । अयोध्यामें
 भरतजीने उनका 'राजा' के पदपर अभिषेक किया ।
 श्रीरामने विभीषणको लङ्काका राज्य तथा
 (विष्णुप्रतिमायुक्त) विमान देकर अयोध्यासे विदा किया ।
 विमानपर विराजमान परमेश्वर विष्णु विभीषणद्वारा ले
 जाये जानेपर भी राक्षसपुरी लङ्कामें निवास करना नहीं
 चाहते थे, अतः विभीषणने वहाँ जिस पवित्र वनको
 स्थापना की थी, उसको देखकर वे उसीमें स्थित हो गये ।
 वहाँ महान् सर्प-शरीरकी शय्यापर भगवान् शयन करते
 हैं । विभीषण भी जब वहाँसे उस विमानको ले जानेमें
 असमर्थ हो गये, तब भगवान्‌के ही कहनेसे वे उन्हें वहीं
 छोड़ अपनी पुरी लङ्काको चले गये ॥ १०-११ ॥

भगवान् नारायणकी उपस्थितिसे वह स्थान महान्
 वैष्णवतीर्थ हो गया, जो आज भी श्रीरङ्गक्षेत्रके नामसे
 प्रसिद्ध देखा जाता है । रामसे लव, लवसे पथ, पथसे

ऋतुपर्णादस्त्रपाणिः । अस्त्रपाणेः शुद्धोदनः
शुद्धोदनाद्बुधः । बुधादंशो निवर्तते ॥ १२ ॥

एते महीपा रविवंशजास्तव
प्राधान्यतस्ते कथिता महाबलाः ।
पुरातनैर्वैवसुधा प्रपालिता
यज्ञक्रियाभिश्च दिवीकसैर्नृपैः ॥ १३ ॥

ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णसे अस्त्रपाणि, अस्त्रपाणिसे शुद्धोदन
और शुद्धोदनसे बुध (बुद्ध)-की उत्पत्ति हुई; बुधसे इस
वंशकी समाप्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

मैंने यहाँ आपके समक्ष पूर्ववर्ती उन प्रधान-प्रधान
महाबली सूर्यवंशी राजाओंका नामोल्लेख किया है,
जिन्होंने भर्मपूर्वक पुण्योंका चालन और यज्ञ-क्रियाओंद्वारा
देवताओंका भी पोषण किया था ॥ १३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशानुक्रमितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इमं प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका अनुचरित' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उवाच

अथ सोमवंशोद्भवानां भूभुजां संक्षेपेण
चरितमुच्यते ॥ १ ॥ आदौ तावत् समस्तं त्रैलोक्यं
कुक्षी कृत्वा एकार्णवे महाभूमि
नागभोगशयने ॥ २ ॥ ऋद्धमयो यजुर्मयः
साममयोऽधर्वमयो भगवान्नारायणो योगनिद्रां
समारोधे । तस्य सुप्तस्य नाभौ महापद्ममजायत । तस्मिन्
पथे चतुर्मुखो ब्रह्माभवत् ॥ ३ ॥ तस्य ब्रह्मणो मानसः
पुत्रोऽत्रिभवत् । अत्रेनसूयायां सोमः । स तु
प्रजापतेर्दक्षस्य त्रयस्त्रिंशत् कन्या रोहिण्याद्या भार्यार्चं
गृहीत्वा प्रियायां ज्येष्ठायां विशेषात् प्रसन्नपत्न्याः
रोहिण्यां बुधं पुत्रमुत्पादयामास ॥ ४ ॥ बुधोऽपि
सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिष्ठाने पुरेऽवसत् । इलायां पुरुरवसं
पुत्रमुत्पादयामास । तस्यातिशयरूपांश्चित्तस्य
स्वर्गभोगान् विहाय उर्वशी बहुकालं भार्या
बभूव ॥ ५ ॥ पुरुरवसः उर्वश्यामायुः पुत्रो जज्ञे । स
तु रान्यं धर्मतः कृत्वा दिवमारुहो ॥ ६ ॥ आयो
रूपवत्यां नहुषः पुत्रोऽभवत् । येनेन्द्रत्वं प्राप्तम् ।

सूतजी बोले—अब संक्षेपसे चन्द्रवंशी राजाओंके
चरित्रका वर्णन किया जाता है । कल्पके आदिकी बात है ।
ऋद्ध, यजुर्, साम और अधर्ववेदस्वरूप भगवान् नारायण
समस्त त्रिभुवनकी अपने उदरमें लीन करके एकार्णवकी
अगाध जलराशिमें शेषनागकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय
ले सो रहे थे । सोये हुए उन भगवान्की नाभिसे एक महान्
कमल प्रकट हुआ । उस कमलमें चतुर्मुख ब्रह्माका अधिर्भाव
हुआ । उन ब्रह्माजीके मानसपुत्र अत्रि हुए । अत्रिसे अनसूयाके
गर्भसे चन्द्रमाका जन्म हुआ । उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी
रोहिणी आदि तैंतीस कन्याओंको पत्नी बनानेके लिये ग्रहण
किया और ज्येष्ठ भार्या रोहिणीसे उसके प्रति अधिक प्रसन्न
रहनेके कारण, 'बुध' नामक पुत्र उत्पन्न किया । बुध भी
समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता होकर प्रतिष्ठानपुरमें निवास करने
लगे । उन्होंने इलाके गर्भसे पुरुरवा नामक पुत्रकी जन्म
दिया । पुरुरवा बहुत ही सुन्दर थे, अतः उर्वशी नामक
अप्सरा बहुत कालतक स्वर्गके भोगोंको त्यागकर इनकी
भार्या बनी रही । पुरुरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे आयु
नामक पुत्रका जन्म हुआ । वह भर्मपूर्वक राज्य करके
अन्तमें स्वर्गलोककी गता गया । आयुके रूपवतीसे नहुष
नामक पुत्र हुआ, जिसने इन्द्रत्व प्राप्त किया था ।

नहुषस्यापि पितृमत्यां ययातिः ॥ ७ ॥ यस्य वंशजा
वृष्णयः । ययातेः शर्मिष्ठायां पूरुषभवत् ॥ ८ ॥
पूरोर्वशदायां संयातिः पुत्रोऽभवत् । यस्य पृथिव्यां
सम्पन्नाः सर्वे कामाः ॥ ९ ॥

संयातेर्भानुदत्तायां सार्वभौमः । स तु सर्वा पृथिवीं
धर्मेण परिपालयन्नरसिंहं भगवन्तमाराध्य यागदानैः
सिद्धिमाप ॥ १० ॥ तस्य सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोजः ।
यस्य वंशे पुरा देवासुरमंग्रामे विष्णुचक्रहतः
कालनेमिः कंसो भूत्या वृष्णिवंशजेन वासुदेवेन
घातितो निधनं गतः ॥ ११ ॥

तस्य भोजस्य कलिहारायां दुष्यन्तः । स तु नरसिंहं
भगवन्तमाराध्य तत्प्रसादात्त्रिष्कण्टकं राज्यं धर्मेण
कृत्वा दिवं प्राप्तवान् । दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां
भरतः । स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् क्रतुभिर्भूरि-
दक्षिणैः सर्वदेवतामयं भगवन्तमाराध्य
निवृत्ताधिकारो ब्रह्मध्यानपरो वैष्णवे परे ज्योतिषि
लयमवाप ॥ १२ ॥

भरतस्य आनन्दायामजमीढः । स च परमवैष्णवो
नरसिंहमाराध्य जातपुत्रो धर्मेण कृतराज्यो
विष्णुपुरमारुहः ॥ १३ ॥ अजमीढस्य सुदेव्यां वृष्णिः
पुत्रोऽभवत् । सोऽपि बहुवर्षं धर्मेण राज्यं कुर्वन्
दुष्टनिग्रहं शिष्टपरिपालनं समद्वीपां पृथ्वीं वशं चक्रे ।
वृष्णोरुग्रसेनायां प्रत्यङ्गः पुत्रो बभूव ॥ १४ ॥ सोऽपि
धर्मेण मेदिनीं पालयन् प्रतिमं वत्सरं ज्योतिष्टोमं

नहुषके भी पितृमतीके गर्भसे ययाति हुए, जिनके
वंशज वृष्णि कहलाते हैं । ययातिके शर्मिष्ठाके गर्भसे
पूरु हुए । पूरुके वंशदासे संयाति नामक पुत्र हुआ,
जिसको इस पृथ्वीपर सभी तरहके मनोवाञ्छित भोग
प्राप्त थे ॥ १-९ ॥

संयातिसे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्र
हुआ । उसने सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते हुए
यज्ञ-दान आदिके द्वारा भगवान् नृसिंहको आराधना
करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर ली । उपर्युक्त सार्वभौमसे
वैदेहीके गर्भसे भोज उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें कालनेमि
नामक राजा, जो पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके
चक्रसे मारा गया था, कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ और
वृष्णिवंशी वासुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा
जाकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १०-११ ॥

भोजकी पत्नी कलिहारासे दुष्यन्तका जन्म हुआ । वह
भगवान् नृसिंहको आराधना करके उनकी प्रसन्नतासे
धर्मपूर्वक त्रिष्कण्टक राज्य भोगकर जीवनके अन्तमें
स्वर्गको प्राप्त हुआ । दुष्यन्तको शकुन्तलाके गर्भसे भरत
नामक पुत्र प्राप्त हुआ । वह धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ
प्रभुर दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी
आराधना करके कर्माधिकारसे निवृत्त एवं ब्रह्मध्यान-
परायण हो परम ज्योतिर्मय वैष्णवधाममें लीन हो
गया ॥ १२ ॥

भरतके उसकी पत्नी आनन्दाके गर्भसे अजमीढ
नामक पुत्र हुआ । वह परम वैष्णव था । राजा अजमीढ
भगवान् नृसिंहकी आराधनासे पुत्रवान् होकर धर्मपूर्वक
राज्य करनेके पश्चात् श्रीविष्णुधामको प्राप्त हुए ।
अजमीढके सुदेवीके गर्भसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ । वह
भी बहुत वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्य करता रहा । दुष्टोंका
दमन और सज्जनोंका पालन करते हुए उसने सार्ध
द्वौंसौसे युक्त पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया था ।
वृष्णिके उग्रसेनाके गर्भसे प्रत्यङ्ग नामक पुत्र हुआ । वह
भी धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करता था । उसने प्रतिवर्ष
ज्योतिष्टोमयागका अनुष्ठान करते हुए आयुका अन्त होनेपर

चकार। निर्वाणमपि लब्धवान्। प्रत्यञ्चस्य बहुरूपायां
शांतनुः ॥ १५ ॥ तस्य देवदत्तस्यन्दनारोहणमशक्यं
बभूव पुरतः शक्यं च ॥ १६ ॥

निर्वाणपद (मोक्ष) प्राप्त कर लिया। प्रत्यञ्चको बहुरूपायें
गर्भसे शांतनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिनमें देवताओंके
दिये हुए रथपर चढ़नेकी पहले शक्ति नहीं थी, परंतु
पीछे उसपर चढ़नेकी शक्ति हो गयी ॥ १३—१६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सौमवंतवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सौमवंतवर्णनं' नामक सप्तविंशवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शांतनुका चरित्र

भरद्वाज उवाच

स्यन्दनारोहणे पूर्वमशक्तिः शांतनोः कथम्।
पश्चाच्छक्तिः कथं चासीत् तस्य वै तद्वदस्व नः ॥ १

सूत उवाच

भरद्वाज शृणुष्वैतत् पुरावृत्तं वदामि ते।
सर्वपापहरं तद्धि चरितं शांतनोर्नृणाम् ॥ २

बभूव शांतनुर्भक्तो नरसिंहतनौ पुरा।
नारदोक्तविधानेन पूजयामास माधवम् ॥ ३

नरसिंहस्य देवस्य निर्मात्यं तेन लङ्घितम्।
राजा शांतनुना विप्र तस्मात् स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ४

देवदत्तं तदारोढुमशक्तस्तत्क्षणादभूत्।
किमियं मे गतिर्भग्ना सहसा वै रथात्ततः ॥ ५

दुःखं चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो नारदः किल।
किं विषण्णः स्थितो राजत्रिति पृष्ठः स शांतनुः ॥ ६

नारदैतन्न जानामि गतिभङ्गस्य कारणम्।
इत्युक्तो नारदो ध्यात्वा ज्ञात्वा तत्कारणं ततः ॥ ७

शांतनुं प्राह राजानं विनयेन यतः स्थितः।
यत्र क्वापि त्वया राजन् नरसिंहस्य वै ध्रुवम् ॥ ८

निर्मात्यो लङ्घितस्तस्माद्रथारोहणकर्मणि।
गतिर्भग्ना महाराज श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ९

भरद्वाजजीने पूछा—शांतनुको पहले देवताओंके रथपर
चढ़नेकी शक्ति क्यों नहीं थी? और फिर उनमें वह शक्ति
कैसे आ गयी? इसे आप हमें बतलायें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी! यह पुराना इतिहास है।
इसे मैं कहता हूँ, सुनिये। शांतनुका चरित्र मनुष्योंके
समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। शांतनु पूर्वकालमें
नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके भक्त थे और नारदजीकी
बतायी हुई विधिसे भगवान् लक्ष्मीपतिको सदा पूजा
किया करते थे। विप्रवर! एक बार राजा शांतनु भूलसे
श्रीनृसिंहदेवके निर्मात्यको लौंच गये, अतः वे उसी क्षण
देवताओंके दिये हुए उत्तम रथपर चढ़नेमें असमर्थ हो
गये। तब वे सोचने लगे—'यह क्या बात है? इस रथपर
चढ़नेमें हमारी गति सहसा कुण्ठित क्यों हो गयी?'
कहते हैं, इस प्रकार दुःखी होकर सोचते हुए उन राजाके
पास नारदजी आये और उन्होंने राजा शांतनुसे पूछा—
'राजन्! तुम क्यों विषादमें डूबे हुए हो?' ॥ २—६ ॥

राजाने कहा—'नारदजी! मेरी गति कुण्ठित कैसे
हुई, इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है, इसीसे मैं
चिन्तित हूँ।' उनके यों कहनेपर नारदजीने ध्यान लगाया
और उसका कारण जानकर राजा शांतनुसे, जो विनीतभावसे
वहाँ खड़े थे, कहा—'राजन्! अवश्य ही तुमने कहीं-
न-कहीं भगवान् नृसिंहके निर्मात्यका लङ्घन किया है।
इसीसे रथपर चढ़नेमें तुम्हारी गति अवरुद्ध हो गयी है।
महाराज! इसका कारण सुनो ॥ ७—९ ॥

अन्तर्वेष्टां पुरा राजशासीत् कश्चिन्महामतिः ।
मालाकारो रविर्नाम्ना तेन वृन्दावनं कृतम् ॥ १०

विविधानि च पुष्पार्थं वनानि सुकृतानि वै ।
मल्लिकामालतीजातिबकुलादीनि सर्वशः ॥ ११

प्राकारमुच्छ्रितं तस्य स्वभूमी चापि विस्तृतम् ।
अलङ्घ्यमप्रवेश्यं च कृत्वा चक्रे स्वकं गृहम् ॥ १२

गृहं प्रविश्य तद्द्वारं भवेन्नान्यत्र सप्तमः ।
एवं कृत्वा नु वसतो मालाकारस्य धीमतः ॥ १३

पुष्पितं तद्वनं त्वासीद् गन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
भार्यया सह पुष्पाणि समाहृत्य दिने दिने ॥ १४

कृत्वा मालां यद्यान्यायं नरसिंहस्य नित्यशः ।
ददी काश्चिद् द्विजेभ्यश्च काश्चिद्विक्रीय पोषणम् ॥ १५

चक्रे समात् प्रजीवी च भार्यादेरात्मनस्तथा ।
अथ स्वर्गादुपागम्य इन्द्रपुत्रो रथेन वै ॥ १६

अप्सरोगणसंयुक्तो निशि पुष्पाणि संहरेत् ।
तद्वन्धलिप्सुः सर्वाणि विचित्राहृत्य गच्छति ॥ १७

दिने दिने हृते पुष्पे मालाकारोऽप्यचिन्तयत् ।
नान्यद् द्वारं वनस्यास्यालङ्घ्यप्राकारमुन्नतम् ॥ १८

समस्तपुष्पजातस्य हरणे निशि वै नृणाम् ।
अहं शक्तिं न पश्यामि किमिदं नु परीक्षये ॥ १९

इति संचिन्त्य मेधावी जाग्रद्रात्री वने स्थितः ।
तथैवागत्य पुष्पाणि संगृहीत्वा गतः पुमान् ॥ २०

तं दृष्ट्वा दुःखितोऽतीव माल्यजीवी वनेऽभवत् ।
ततो नित्रां गतः स्वप्ने दृष्ट्वास्तं नृकेसरिम् ॥ २१

तद्वाक्यं श्रुतवांश्चैवं निर्मात्यं मम पुत्रक ।
आनीय क्षिप्यतां क्षिप्रं पुष्पारामसमीपतः ॥ २२

‘उबन्! पूर्वकालकी बात है, अन्तर्वेदीमें कोई बड़ा बुद्धिमान् माली रहता था। उसका नाम था रवि। उसने तुलसीका बगीचा लगाया था और उसका नाम ‘वृन्दावन’ रख दिया था। उसमें फूलोंके लिये सब ओर मल्लिका, मालती, जाती तथा बकुल (मौलसिरी) आदि नाना प्रकारके वृक्षोंके बाग सुंदर बगसे लगाये थे। उस वनकी चहारदीवारी बहुत ऊँची और चौड़ी बनवाकर, उसे अलङ्घनीय और दुर्गम करके भीतरको भूमिपर उसने अपने रहनेके लिये घर बनाया था। साधुशिरोमणे! उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि घरमें प्रवेश करनेके बाद ही उस घाटिकाका द्वार प्राप्त हो सकता था, दूसरी ओरसे उसका मार्ग नहीं था ॥ १०—१२½ ॥

‘ऐसा व्यवस्था करके निवास करते हुए उस मालीका वह वृन्दावन फूलोंसे भरा रहता था और उसकी सुगन्धसे सारे दिनार्य सुवासित होती रहती थीं। वह प्रतिदिन अपनी पत्नीके साथ फूलोंका संग्रह करके पथोपगत मालाएँ तैयार करता था। उनमेंसे कुछ मालाएँ तो वह भगवान् नृसिंहको अर्पण कर देता था, कुछ ब्राह्मणोंको दे डालता था और कुछको बेचकर उससे अपना तथा पत्नी आदिका खान-पोषण करता था। मालासे जो कुछ प्राप्त होता, उसीके द्वारा वह अपनी जीविका चलाता था ॥ १३—१५½ ॥

‘कुछ कालके बाद वहाँ इन्द्रका पुत्र जयन्त प्रतिदिन रातमें स्वर्गसे अप्सराओंके साथ रथपर चढ़कर आने और फूलोंको चोरी करने लगा। उस वनके पुष्पोंको सुगन्धके लोभसे वह सारे फूल तोड़ लेता और लेकर बल देता था। जब प्रतिदिन फूलोंकी चोरी होने लगी, तब मालीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने मन-ही-मन सोचा—‘इस वनका कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। चहारदीवारी भी इतनी ऊँची है कि वह लौंभी नहीं जा सकती। मनुष्योंकी ऐसी शक्ति मैं नहीं देखता कि इसे लौंभकर वे सारे फूल चुरा ले जानेंमें समर्थ हों। फिर इन फूलोंके लुप्त होनेका क्या कारण है, आज अवश्य ही इसका पता लगानेगा।’ यह सोचकर वह बुद्धिमान् माली उस रातमें जागता हुआ बगीचेमें ही बैठा रहा। अन्य दिनोंकी भाँति उस दिन भी वह पुरुष आया और फूल लेकर चला गया ॥ १६—२० ॥

‘उसे देखकर मालाओंसे ही जीविका चलानेवाला वह माली उस उपवनमें बहुत ही दुःखी हुआ। तदनन्तर रातको नींद आनेपर उसने स्वप्नमें साक्षात् भगवान् नृसिंहको देखा तथा उन नृसिंहदेवका यह वचन भी सुना—‘पुत्र! तूने जोर ही फूलोंके बगीचेके समीप मेरा निर्मात्य

इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम् ।
 इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नरसिंहस्य धीमतः ॥ २३
 युद्ध्वाऽऽनीय तु निर्मात्यं तथा चक्रे यद्योदितम् ।
 सोऽप्यागत्य यथापूर्वं रथेनालक्षितेन तु ॥ २४
 रथादुत्तीर्य पुष्पाणि विचित्र्वस्तद्भुवि स्थितम् ।
 निर्मात्यं लङ्घयामास इन्द्रसूतुरनिष्टकृत् ॥ २५
 ततस्तस्य न शक्तिः स्याद्रथारोहणकर्मणि ।
 उक्तः सारधिना चैव रथस्यारोहणे तब ॥ २६
 नरसिंहस्य निर्मात्यलङ्घने नास्ति योग्यता ।
 गच्छामि दिवमेवाहं त्वं भूम्यां वस माऽऽरुह ॥ २७
 तेनैवमुक्तो मतिमांस्तमाह हरिनन्दनः ।
 पापस्य नोदनं त्वत्र कर्मणा येन मे भवेत् ॥ २८
 तदुक्त्वा गच्छ नाकं त्वं कर्मास्मान् सारधे द्रुतम् ।

सारधिराजः

रामसत्रे कुरुक्षेत्रे द्वादशाब्दे तु नित्यशः ॥ २९
 द्विजोच्छिष्टापनयनं कृत्वा त्वं शुद्धिमेष्यसि ।
 इत्युक्त्वासी गतः स्वर्गं सारधिर्देवसेवितम् ॥ ३०
 इन्द्रसूनुः कुरुक्षेत्रं प्राप्तः सारस्वतं तटम् ।
 रामसत्रे तथा कुर्याद्विजोच्छिष्टस्य मार्जनम् ॥ ३१
 पूर्णं द्वादशमे वर्षे तपूचुः शङ्किता द्विजाः ।
 कस्त्यं यूहि महाभाग नित्यमुच्छिष्टमार्जकः ॥ ३२
 न भुञ्जसे च नः सत्रे शङ्का नो महती भवेत् ।
 इत्युक्तः कथयित्वा तु यथावृत्तमनुक्रमात् ॥ ३३
 जगाम त्रिदिवं क्षिप्रं रथेन तनयो हरैः ।
 तस्मात् त्वमपि भूपाल ब्राह्मणोच्छिष्टमादरात् ॥ ३४
 मार्जनं कुरु रामस्य सत्रे द्वादशवार्षिके ।
 ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति सर्वपापहरं परम् ॥ ३५
 एवं कृते देवदत्तस्यन्दनारोहणे गतिः ।
 भविष्यति महीपाल प्रायश्चित्ते कृते तब ॥ ३६
 अत ऊर्ध्वं च निर्मात्यं मा लङ्घय महामते ।
 नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवीकसाम् ॥ ३७

लाकर छींट दो। उस दुष्ट इन्द्रपुत्रको रोकनेका कोई दूसरा
 उपाय नहीं है' ॥ २१-२२ ॥

'शुद्धिमान् भगवान् नृसिंहका यह यथन सुनकर माली
 जाग उठा और उसने निर्मात्य लाकर उनके कंधेनानुसार
 वहाँ छींट दिया। जयन्त भी पहलेके ही समान अलक्षित
 रथसे आया और उससे उतरकर फूल तोड़ने लगा। उसी
 समय अपना अर्पित करनेवाला इन्द्रपुत्र वहाँ भूमिपर पड़े
 हुए निर्मात्यको लौंच गया। इससे उसमें रथपर चढ़नेकी
 शक्ति नहीं रह गयी। तब सारधिनै उससे कहा—'नृसिंहका
 निर्मात्य लौंच जानेके कारण अब तुममें इस रथपर
 चढ़नेकी योग्यता नहीं रह गयी है। मैं तो स्वर्गलोकको
 लौटता हूँ, किंतु तुम यहाँ भूतलपर ही रहो; रथपर न
 चढ़ो' ॥ २३—२७ ॥

'सारधिके इस प्रकार कहनेपर मतिमान् इन्द्रकुमारने
 उससे कहा—'सारधे! जिस कर्मसे यहाँ मैं पापका निवारण
 ही, उसे बताकर तुम शीघ्र स्वर्गलोकको जाओ' ॥ २८ ॥

सारधि बोला—'कुरुक्षेत्रमें परशुरामजीका एक यज्ञ
 हो रहा है, जो बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला है। उसमें
 जाकर तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंका जूठा साफ करो; इससे
 तुम्हारी शुद्धि होगी।' यों कहकर सारधि देवसेवित
 स्वर्गलोकको चला गया ॥ २९—३० ॥

'इधर इन्द्रपुत्र जयन्त कुरुक्षेत्रमें सरस्वतीके तटपर
 आया और परशुरामजीके यज्ञमें ब्राह्मणोंकी जूठन साफ
 करने लगा। जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण हुआ, तब ब्राह्मणोंने
 तर्जित होकर उससे पूछा—'महाभाग! तुम कौन हो?
 जो नित्य जूठन साफ करते हुए भी हमारे यज्ञमें भोजन
 नहीं करते। इससे हमारे मनमें महान् संदेह हो रहा है।'
 उनके इस प्रकार पूछनेपर इन्द्रकुमार क्रमशः अपना सारा
 कुत्तान्त लोक-लोक बताकर तुरंत रथसे स्वर्गलोकको
 चला गया ॥ ३१—३३ ॥

'इमलिये, हे भूपाल। तुम भी परशुरामजीके
 द्वादशवार्षिक यज्ञमें आदरपूर्वक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ
 करो। ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो
 पापोंका अपहरण कर सके। महीपाल। इस प्रकार प्रायश्चित्त
 कर लेनेपर तुम्हें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी
 शक्ति प्राप्त हो जायगी। महामते! आजसे तुम भी
 श्रीनृसिंहदेवका तथा अन्य देवताओंके भी निर्मात्यका
 उल्लंघन न करना' ॥ ३४—३७ ॥

इत्युक्तः शांतनुस्तेन ब्राह्मणोच्छिष्टमार्जनम् ।
कृतवान् द्वादशाब्दं तु आरुरोह रथं च तम् ॥ ३८
एवं पूर्वमशक्तिः स्याद् रथारोहे महीक्षितः ।
पश्चात् तस्यैव विप्रेन्द्र शक्तिरेवमजायत ॥ ३९
एवं ते कथितो विप्र दोषो निर्माल्यलङ्घने ।
पुण्यं तथा द्विजानां तु प्रोक्तमुच्छिष्टमार्जने ॥ ४०

भक्त्या द्विजोच्छिष्टमिहापमार्जये-
च्छुचिर्नरो यः सुसमाहितात्मा ।
स पापबन्धं प्रविहाय भुङ्क्ते
गवां प्रदानस्य फलं दिवि स्थितः ॥ ४१

इति श्रीनरसिंहपुराणे शांतनुचरितं नामद्वविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुचरित' नामक अष्टाद्विंशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

CHITRA

उन्तीसवाँ अध्याय

शांतनुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उवाच

शांतनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्यः । स तु
हस्तिनापुरे स्थित्वा प्रजाः स्वधर्मेण पालयन् देवांश्च
यागैः पितृंश्च ब्राह्मैः संतप्य संजातपुत्रो
दिवमारुरोह ॥ १ ॥ विचित्रवीर्यस्याम्बालिकायां
पाण्डुः पुत्रो जज्ञे । सोऽपि राज्यं धर्मतः कृत्वा
मुनिशापाच्छरीरं विहाय देवलोकमवाप । तस्य
पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः ॥ २ ॥ स तु महता तपसा
शंकरं तोषयित्वा पाशुपतमस्त्रमवाप्य त्रिविष्टपधिपतेः
शत्रून् निवातकवचान् दानवान् हत्वा खाण्डववन-
मग्रेर्यथारुचि निवेष्ट्य तृसाग्रितो दिव्यान् वरानवाप्य

श्रीसूतजी कहते हैं—शांतनुके योजनगन्धासे
'विचित्रवीर्य' नामक पुत्र हुआ। राजा विचित्रवीर्य
हस्तिनापुरमें रहकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे
और यज्ञोंद्वारा देवताओंकी तथा ब्राह्मणोंके द्वारा पितरोंको
तृप्त करके पुत्र पैदा होनेपर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए।
विचित्रवीर्यके अम्बालिकाके गर्भसे 'पाण्डु' नामक पुत्र
उत्पन्न हुआ। पाण्डु भी धर्मपूर्वक राज्यपालन करके
मुनिके शपथसे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये।
उन राजा पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे 'अर्जुन' नामक
पुत्र हुआ। अर्जुनने बड़ी भारी तपस्या करके शंकरजीको
प्रसन्न किया, उनसे 'पाशुपत' नामक अस्त्र प्राप्त किया
और स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्रके शत्रु 'निवातकवच'
नामक दानवोंका वध करके अग्निदेवको उनकी रथिके
अनुसार खाण्डववन समर्पित किया। खाण्डववनको
जलाकर, तृप्त हुए अग्निदेवसे अनेक दिव्य वर प्राप्त कर,

सुयोधनेन हतरान्यो धर्मभीमनकुलसहदेव-
द्रौपदीसहितो विराटनगरेऽज्ञातवासं चरित्वा गोघ्रे
च भीष्मद्रोणकृपदुर्योधनकर्णादीन् जित्वा
समस्तगोमण्डलं निवर्तयित्वा भ्रातृभिः सह
विराटराजकृतपूजो वासुदेवसहितः कुरुक्षेत्रे
धार्तराष्ट्रैर्बहुबलैर्मुद्गं कुर्वन् भीष्मद्रोणकृपशल्य-
कर्णादिभिर्भूरिपराक्रमैः क्षत्रियैर्नानादेशागतेरनेकैरपि
राजपुत्रैः सह दुर्योधनादीन् धार्तराष्ट्रान् हत्वा स्वराज्यं
प्राप्य धर्मेण राज्यं परिपाल्य भ्रातृभिः सह मुदितो
दिवमारुरोह ॥ ३ ॥

अर्जुनस्य सुभद्रायामभिमन्युः । येन भारतपुद्गे
चक्रव्यूहं प्रविश्यानेकभूपूजो निधने प्रापितः ॥ ४ ॥
अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः । सोऽप्यभिषिक्तो यनं
गच्छता धर्मपुत्रेण राज्यं कृत्वा राजपुत्रो नाकं सम्प्राप्य
रेमे ॥ ५ ॥ परीक्षितान्मातृवत्यां जनमेजयः । येन
ब्रह्महत्याकारणार्थं महाभारतं व्यासशिष्या-
द्वैशम्पायनात् साद्यन्तं श्रुतम् ॥ ६ ॥ राज्यं च धर्मतः
कृत्वा दिवमारुरोह । जनमेजयस्य पुण्यवत्यां
शतानीकः ॥ ७ ॥ स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन्
संसारदुःखाद्विरक्तः शौनकोपदेशेन क्रियायोगेन
सकललोकनाथं विष्णुमाराध्य निष्काधो वैष्णवं
पद्मवाप । तस्य शतानीकस्य फलवत्यां
सहस्रानीकः ॥ ८ ॥ स तु बाल एवाभिषिक्तो
नरसिंहेऽत्यन्तं भक्तिमानभवत् । तस्य चरितमुपरिष्ठाद्
भविष्यति ॥ ९ ॥ सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः ।
सोऽपि राज्यं कृत्वा धर्मतो नारायणमाराध्य
तत्पुरमवाप ॥ १० ॥ उदयनस्य वासवदत्तायां
नरवाहनः । स तु यथान्यायं राज्यं कृत्वा दिवमवाप ।

दुर्योधनद्वारा अपना राज्य छिन जानेपर उन्होंने (अपने भाई)
धर्म (युधिष्ठिर), भीम, नकुल, सहदेव और (पत्नी) द्रौपदीके
साथ विराटनगरमें अज्ञातवास किया। वहाँ जब शत्रुओंने
आक्रमण करके विराटकी गौओंको अपने अधिकारमें कर
लिया, तब अर्जुनने भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन और कण
आदिको हराकर समस्त गौओंको वापस पुमाया। फिर
विराटराजके द्वारा भाइयोंसहित सम्मानित होकर कुरुक्षेत्रमें
भगवान् वासुदेवकी साथ से अत्यन्त बलशाली
धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध किया और भीष्म, द्रोण, कृप,
शल्य, कर्ण आदि महापराक्रमी क्षत्रियों तथा नाना
देशोंसे आये हुए अनेकों राजपुत्रोंसहित दुर्योधनादि
धृतराष्ट्रपुत्रोंका उन्होंने भीम आदिके सहयोगसे यध करके
अपना राज्य प्राप्त कर लिया। फिर भाइयोंसहित वे धर्मके
अनुसार (अपने सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरकी
राज्यके पदपर अभिषेक करके) राज्यका पालन करके अन्तमें
सबके साथ ब्रह्महत्यापूर्वक स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १-३ ॥

अर्जुनकी सुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामक पुत्र प्राप्त
हुआ, जिसने महाभारत-युद्धमें चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश
करके अनेक राजाओंको मृत्युकें घाट उतारा था। अभिमन्युके
उत्तराके गर्भसे परीक्षितका जन्म हुआ। धर्मवन्दन युधिष्ठिर
जब वानप्रस्थ धर्मके अनुसार वनमें जाने लगे, तब उन्होंने
परीक्षितकी राजाके पदपर अभिषेक कर दिया। तब वे भी
धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें वैकुण्ठधाममें जाकर
अध्व सुखके भागी हुए। परीक्षितसे मातृवतीके गर्भसे
जनमेजयका जन्म हुआ, जिन्होंने ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त
होनेके लिये व्यासशिष्य वैशम्पायनके मुखसे सम्पूर्ण महाभारत
आदिसे अन्ततक श्रुत था। वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन
करके अन्तमें स्वर्गवासी हुए। जनमेजयको अपनी पत्नी
पुण्यवतीके गर्भसे 'शतानीक' नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने
धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते हुए संसार-दुःखसे विरक्त
हो, शौनकेके उपदेशसे यगादि कर्मोंके द्वारा समस्त लोकोंके
अपोक्ष भगवान् विष्णुकी निष्कामभावसे आराधना की
और अन्तमें वैष्णवधामको प्राप्त कर लिया। शतानीकके
फलवतीके गर्भसे सहस्रानीककी उत्पत्ति हुई। सहस्रानीक
बाल्यावस्थामें ही राजाके पदपर अभिषेक हो भगवान्
नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखने लगे। उनके
चरित्रका आगे वर्णन किया जायगा। सहस्रानीकके मृगवतीसे
उदयन हुए। वे श्रीकृष्णजीमें धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके
नारायणकी आराधना करते हुए वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए।
उदयनके वासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन नामक पुत्र हुआ।
वह भी न्यायतः राज्यका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुआ।

नरवाहनस्याश्वमेधदत्तायां क्षेमकः ॥ ११ ॥ स च
रान्यस्थः प्रजाः परिपाल्य स्नेच्छाभिभूते जगति
ज्ञानबलात् कलापग्राममाश्रितः ॥ १२ ॥

यः ब्रह्मधानः पठते भृणोति वा
हरी च भक्तिं चरितं महीभृताम् ।
स संततिं प्राप्य विशुद्धकर्मकृद्
दिवं समासाद्य वसेच्चिरं सुखी ॥ १३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीनृसिंहकवचं नाम एकोविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीनृसिंह कवचं' नामक अन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

भूगोल तथा स्वर्गलोकका वर्णन

श्रीसुत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि भूगोलं द्विजसत्तमाः ।
संक्षेपात् पर्वताकीर्णं नदीभिश्च समन्ततः ॥ १ ॥

जम्बुप्लक्षशात्मलकुशकौस्तुभशाकपुष्करसंज्ञाः
सप्त द्वीपाः । लक्षयोजनप्रमाणाजम्बुद्वीपादुत्तरोत्तर-
द्विगुणाः ॥ लवणेश्वरसमुद्रासर्पिर्द्विदुग्धस्वच्छोदक-
संज्ञैः परस्परं द्विगुणैः सप्तसमुद्रैर्वलयाकारैस्ते द्वीपाः
परिधिष्ठिताः ॥ २ ॥ योऽसौ मनुपुत्रः प्रियव्रतो नाम
स सप्तद्वीपाधिपतिर्बभूव । तस्य अग्रौघादयो दश पुत्रा
बभूवुः ॥ ३ ॥ त्रयः प्रव्रजिताः । शिष्टानां सप्तानां
सप्तद्वीपाः पित्रा दत्ताः । तत्र जम्बुद्वीपाधिपतेरग्नीधस्य
नव पुत्रा जाताः ॥ ४ ॥

नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्षं इलावृतः ।
रम्यो हिरण्यमयश्चैव कुरुभद्रश्च केतुमान् ॥ ५ ॥

नरवाहनके अश्वमेधदत्ताके गर्भसे क्षेमक नामक पुत्रका
जन्म हुआ। क्षेमक राजाके पदपर प्रतिष्ठित होनेके पश्चात्
प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करने लगे। उन्हीं दिनों स्नेच्छाका
आक्रमण हुआ और सम्पूर्ण जगत् उनके द्वारा पददलित
होने लगा। तब वे ज्ञानके बलसे कलापग्राममें चले
आये ॥ ४—१२ ॥

जो उपर्युक्त राजाओंकी हरिभक्ति तथा चरित्रका
वृद्धापूर्वक पठ या श्रवण करता है, वह विशुद्ध कर्म
करनेवाला पुरुष संतति प्राप्त करके अन्तर्में स्वर्गलोकमें
पहुँचकर वहाँ सुदीर्घ कालतक सुखी रहता है ॥ १३ ॥

श्रीसुतजी बोले—द्विजवरों! अब मैं सब ओर नदी
तथा पर्वतोंसे व्याप्त भूगोल (भूमिखण्डल)-का संक्षेपसे
वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

इस पृथ्वीपर जम्बू, प्लक्ष, शाक्यमणि, कुश, कौश,
शाक और पुष्कर नामके सात द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप
तो सात योजन लंबा-चौड़ा है और प्लक्ष आदि
जम्बूद्वीपसे उत्तरोत्तर दुगुने बढ़े हैं। ये द्वीप क्रमशः
अपनेसे दूने प्रमाणवत्से लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि,
दुग्ध और शुद्धोदक नामसे विख्यात सात बलयाकार
समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। मनुके जो 'प्रियव्रत' नामक पुत्र
थे, वे ही स्वतः द्वीपोंके अधिपति हुए। उनके अग्रौघ आदि
दस पुत्र हुए। इनमेंसे तीन तो सर्वस्वांगी संन्यासी हो गये
और शेष सत्तोंको उनके पिताने एक-एक द्वीप बाँट
दिए। इनमें जम्बूद्वीपके अधिपति 'अग्रौघ' के नौ पुत्र
हूए। उनके नाम ये हैं—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत,
रम्य, हिरण्यमय, कुरु, भद्र और केतुमान् ॥ २—५ ॥

नववर्षाः विभज्य पुत्रेभ्यः पित्रा दत्ता वनं
प्रविशता । अग्नीधीयं हिमाद्रयम् । यस्याधिपतिर्नाभः
ऋषभः पुत्रो बभूव ॥ ६ ॥

ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण
पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत् । इलावृतस्य मध्ये
मेरुः सुवर्णमयश्चतुरशीतिसहस्राणि योजनानि
तस्योच्छ्रायः । षोडशसहस्रमप्यधस्तादवगाढः ।
तद्विगुणो मूर्ध्नि विस्तारः ॥ ७ ॥ तन्मध्ये ब्रह्मणः
पुरी । ऐन्द्रशमिन्द्रस्य चामरावती । आग्नेय्या-
मग्नेस्तेजोवती । याम्यां यमस्य संयमनी । नैऋत्यां
निऋतेर्भयंकरी । वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती ।
वायव्यां वायोर्गन्धवती । उदीच्यां सोमस्य
विभावरीति । नववर्षान्वितं जम्बूद्वीपं पुण्यपर्वतैः
पुण्यनदीभिरन्वितम् ॥ ८ ॥ किम्पुरुषादीन्यष्टवर्षाणि
पुण्यवतां भोगस्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं
कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्ययुतम् ॥ ९ ॥

तत्रैव कर्मभिः स्वर्गं कृतेः प्राप्स्यन्ति मानवाः ।
मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञानकर्मभिः ।
अधोगतिमितो विप्र यान्ति वै पापकारिणः ॥ १० ॥

ये पापकारिणस्तान् विद्धि पातालतले नरके
कोटिसमन्वितान् ॥ ११ ॥

अथ सप्त कुलपर्वताः कथ्यन्ते । महेन्द्रो मलयः
शुक्तिमान् ऋष्यमूकः सह्यपर्वतो विन्ध्यः पारियात्रः
इत्येते भारते कुलपर्वताः ॥ १२ ॥ नर्मदा सुरसा
ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा खेणी चन्द्रभागा
ताम्रपर्णी इत्येताः सप्त नद्यः । गङ्गा यमुना गोदावरी
तुङ्गभद्रा कावेरी सरयूरित्येता महानद्यः
पापघ्न्यः ॥ १३ ॥

जम्बुनाम्ना च विख्यातं जम्बूद्वीपमिदं शुभम् ।
लक्षयोजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम् ॥ १४ ॥

राजा अग्रोध जय (धर त्यागकर) वनमें जाने लगे
तब उन्होंने जम्बूद्वीपको उसके नी खण्ड करके अपने
पुत्रोंको बाँट दिया । हिमालय पर्वतसे मिला हुआ वर्ष
अग्रोध (नाभि) को मिला था । इसके अधिपति राजा
नाभिसे 'ऋषभ' नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥

ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वारा चिरकालतक
धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका नाम 'भारतवर्ष'
पड़ा । इलावृत वर्षके बीचमें मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत
है । उसको ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । वह सोलह
हजार योजनतक चौड़े जमीनमें गड़ा है और इससे दूनी
(बत्तीस हजार योजन) इसकी मोटीकी चौड़ाई है ।
इसके मध्यभागमें ब्रह्माजीको पुरी है, पूर्वभागमें इन्द्रकी
'अमरावती' है, अग्रिकोणमें अग्रिकी 'तेजोवती' पुरी है,
दक्षिणमें यमराजको 'संयमनी' है, नैऋत्यकोणमें निऋतकी
'भयंकरी' नामक पुरी है, पश्चिममें वरुणकी 'विश्वावती'
है, वायव्यकोणमें वायुको 'गन्धवती' नगरी है और
उत्तरमें चन्द्रनाकी 'विभावरी' पुरी है । नी खण्डोंसे युक्त
यह जम्बूद्वीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियोंसे युक्त है ।
किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यवानोंके भोगस्थान हैं;
केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णोंसे युक्त कर्मक्षेत्र है ।
भारतवर्षमें ही कर्म करनेसे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे और
वहाँ ही ज्ञान-साधकको निष्काम कर्मोंसे मुक्ति भी प्राप्त
होती है । विश्वरूप पाप करनेवाले पुरुष यहाँसे अधोगतिको
प्राप्त होते हैं । जो पापी हैं, उन करोड़ों मनुष्योंको पातालस्थ
नरकमें पड़े हुए समझिये ॥ ७-११ ॥

अब सात कुलपर्वतोंका वर्णन किया जाता है—
महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और
पारियात्र । ये ही भारतवर्षमें कुलपर्वत हैं । नर्मदा, सुरसा,
ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णाखेणी, चन्द्रभागा तथा ताम्रपर्णी—
ये सात नदियाँ हैं तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा,
कावेरी और सरयू—ये छः महानदियाँ सब पार्योंको नष्ट
करनेवाली हैं ॥ १२-१३ ॥

यह सुन्दर जम्बूद्वीप जम्बू (जामुन) के नामसे विख्यात
है । इसका विस्तार एक लाख योजन है ।
इस द्वीपमें यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है ॥ १४ ॥

ऋक्षद्वीपादिपुण्या जनपदाः। निष्कामा ये
स्वधर्मेण नरसिंहं यजन्ति ते तत्र निवसन्ति।
अधिकारक्षयान्मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥ जम्बूवाद्याः
स्वादूदकान्ताः सप्त पयोधयः। ततः परा हिरण्मयी
भूमिः। ततो लोकालोकपर्वतः। एष भूलोकः ॥ १६ ॥

अस्योपरि अन्तरिक्षलोकः। खेचराणां
रम्यस्तदूर्ध्वं स्वर्गलोकः ॥ १७ ॥

स्वर्गस्थानं महापुण्यं प्रोच्यमानं निबोधत।
भारते कृतपुण्यानां देवानामपि चालयम् ॥ १८ ॥

मध्ये पृथिव्यामद्रीन्द्रो भास्वान् मेरुहिरण्मयः।
योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिमुच्चितः ॥ १९ ॥

प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्भरण्यां धरणीधरः।
तावत्प्रमाणा पृथिवी पर्वतस्य समन्ततः ॥ २० ॥

तस्य शृङ्गत्रयं मूर्ध्नि स्वर्गो यत्र प्रतिष्ठितः।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ २१ ॥

मध्यमं पश्चिमं पूर्वं मेरोः शृङ्गाणि त्रीणि वै।
मध्यमं स्फटिकं शृङ्गं वैदूर्यमणिकामयम् ॥ २२ ॥

इन्द्रनीलमयं पूर्वं माणिक्यं पश्चिमं स्मृतम्।
योजनानां सहस्राणि नियुतानि चतुर्दश ॥ २३ ॥

उच्छ्रितं मध्यमं शृङ्गं स्वर्गो यत्र त्रिविष्टपः।
अप्रभान्तरितं शृङ्गं मूर्ध्नि छत्राकृति स्थितम् ॥ २४ ॥

पूर्वमुत्तरशृङ्गाणामन्तरं मध्यमस्य च।
त्रिविष्टपे नाकपृष्ठे ह्यप्सराः सन्ति निर्वृताः ॥ २५ ॥

आनन्दोऽथ प्रमोदश्च स्वर्गशृङ्गे तु मध्यमे।
श्वेतश्च पौष्टिकश्चैव उपशोभनमन्मथौ ॥ २६ ॥

ऋक्षद्वीप आदि पुण्य देश हैं। जो लोग निष्कामभावसे
अपने-अपने वर्णधर्मका आचरण करते हुए भगवान् नृसिंहका
यजन करते हैं, वे ही उन पुण्य देशोंमें निवास करते हैं
तथा कर्माधिकारका क्षय हो जानेपर मोक्ष भी प्राप्त कर
लेते हैं। जम्बूद्वीपसे लेकर 'शुद्धोदक' संज्ञक समुद्रपर्यन्त
सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद स्वर्णमयी भूमि
है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है—यह सब 'भूलोक' का
वर्णन हुआ ॥ १५-१६ ॥

इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जो अन्तरिक्षचारी
प्रणियोंके लिये परम रमणीय है। इसके ऊपर स्वर्गलोक
है। अब महापुण्यमय स्वर्गलोकका वर्णन किया जाता है,
उसे आपलोग मुझसे सुनें। जिन्होंने भारतवर्षमें रहकर
पुण्यकर्म किये हैं, उनका तथा देखताओंका यहाँ निवास
है। भूमण्डलके बीचमें पर्वतोंका राजा मेरु है, जो सुवर्णमय
होनेके कारण अपनी प्रभासे उद्भासित होता रहता है।
वह पर्वत चौरसी हजार योजन ऊँचा है और सोलह
हजार योजनतक पृथ्वीमें गोघेको ओर धँसा हुआ है।
साथ ही उसके चारों ओर उतने ही प्रमाणवाली पृथिवी
है ॥ १७-२० ॥

मेरुशिरिके ऊपरी भागमें तीन शिखर हैं, जहाँ स्वर्गलोक
बसा हुआ है। मेरुके ये स्वर्गीय शिखर नाना प्रकारके
मृक्ष और लताओंसे आवृत तथा भौति-भौतिके पुष्पोंसे
सुशोभित हैं। मध्यम, पश्चिम और पूर्व—ये ही तीन
मेरुके शिखर हैं। इनमें मध्यम शृङ्ग स्फटिक तथा
वैदूर्यमणिमय है, पूर्व शृङ्ग इन्द्रनीलमय और पश्चिम
शिखर माणिक्यमय कहा जाता है। इनमेंसे मध्यम शृङ्ग
चौदह लाख चौदह हजार योजन ऊँचा है, जहाँ 'त्रिविष्टप'
नामका स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। पूर्व शृङ्ग मेरुके ऊपर
छत्राकार स्थित है। मध्यम शृङ्ग और उसके बीच अम्बुकारका
व्यवधान है। वह मध्यम शृङ्ग और उसके बादवाले पश्चिम
शिखरके बीचमें स्थित है। नाकपृष्ठ—त्रिविष्टपमें आनन्दमयी
अप्सरारें निवास करती हैं ॥ २१-२५ ॥

मेरुके मध्यवर्ती शिखरपर विराजमान स्वर्गमें
आनन्द और प्रमोदका वास है। पश्चिम शिखरपर
श्वेत, पौष्टिक, उपशोभन और काम

आह्लादः स्वर्गराजा वै स्वर्गशृङ्गे तु पश्चिमे ।
निर्ममो निरहंकारः सौभाग्यश्रुतिनिर्मलः ॥ २७

स्वर्गाश्रीव द्विजश्रेष्ठ पूर्वशृङ्गे समास्थिताः ।
एकविंशतिः स्वर्गा वै निविष्टा मेरुमूर्धनि ॥ २८

अहिंसादानकर्तारो यज्ञानां तपसां तथा ।
तत्तेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविषर्जिताः ॥ २९

जलप्रवेशे चानन्दं प्रमोदं बहिसाहसे ।
भृगुप्रपाते सीख्यं च रणं चैवास्य निर्मलम् ॥ ३०

अनाशके तु संन्यासे मृतो गच्छेत्त्रिविष्टपम् ।
क्रतुयाजी नाकपृष्ठमग्निहोत्री च निर्वृतिम् ॥ ३१

तडागकूपकर्ता च लभते पौष्टिकं द्विज ।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभन् स्वर्गं तपःफलम् ॥ ३२

शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति यो नरः ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्ससं लभेत् ॥ ३३

हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाप्नुयात् ।
भूमिदानेन शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम् ॥ ३४

रौप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः ।
अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥ ३५

द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः ।
श्वेतं तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचते ॥ ३६

कपिलागोप्रदानेन परमार्थे महीयते ।
गोवृषस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्मथमाप्नुयात् ॥ ३७

माघमासे सरित्त्रायी तिलधेनुप्रदस्तथा ।
छत्रोपानहदाता च स्वर्गं यात्युपशोभनम् ॥ ३८

एवं स्वर्गके राजा आह्लाद निवास करते हैं । द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व शिखरपर निर्मम, निरहंकार, सौभाग्य और अतिनिर्मल नामक स्वर्ग सुशोभित होते हैं । मेरु पर्वतकी चोटोपर कुल इक्कोस स्वर्ग बसे हुए हैं । जो अहिंसाधर्मका पालन करनेवाले और दानो हैं तथा जो यज्ञ और तपका अनुष्ठान करनेवाले हैं, वे क्रोधरहित मनुष्य इन स्वर्गोंमें निवास करते हैं ॥ २६—२९ ॥

जो धर्मपालनके लिये जलमें प्रविष्ट होकर प्राण त्याग करते हैं, वे 'आनन्द' नामक स्वर्गको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार जो धर्मरक्षाके ही लिये अग्निमें जलनेका साहस करते हैं, उन्हें 'प्रमोद' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है और जो धर्मार्थ पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण देते हैं, उन्हें 'सीख्य' संज्ञक स्वर्ग प्राप्त होता है । संग्रामकी मृत्यु-से 'निर्मल' (या अतिनिर्मल) नामक स्वर्गकी उपलब्धि होती है । उपवास-व्रत एवं संन्यासावस्थामें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोग 'त्रिविष्टप' नामक स्वर्गमें जाते हैं । शीत यज्ञ करनेवाला 'नाकपृष्ठ' में और अग्निहोत्री 'निर्वृति' नामक स्वर्गमें जाते हैं । द्विज ! पोखर और कुआँ बनवानेवाला मनुष्य 'पौष्टिक' स्वर्गको पाता है, सोना दान करनेवाला पुरुष तपस्याके फलभूत 'सौभाग्य' नामक स्वर्गको जाता है । जो शीतकालमें सब प्राणियोंके हितके लिये लकड़ियोंके ढेरको जलाकर बड़ी भारी अग्निराशि प्रज्वालित करता और उन्हें गरमो पहुँचाता है, वह 'अप्सरा' संज्ञक स्वर्गको उपलब्ध करता है । सुवर्ण और गोदान करनेपर दाता 'निरहंकार' नामवाले स्वर्गको पाता है और शुद्धभावसे भूमिदान करके मनुष्य 'शान्तिक' नामसे प्रसिद्ध स्वर्गधामको उपलब्ध करता है । चौदो दान करनेसे मनुष्यको 'निर्मल' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है । अश्वदानसे दाता 'पुण्याह'का और कन्यादानसे 'मङ्गल'का लाभ करता है । ब्राह्मणोंको तृप्त करके उन्हें भक्तिपूर्वक वस्त्र दान करनेसे मनुष्य 'श्वेत' नामक स्वर्गको पाता है, जहाँ जाकर वह कभी शोकका भागी नहीं होता ॥ ३०—३६ ॥

कपिला गौका दान करनेसे दाता 'परमार्थ' नामक स्वर्गमें पुजित होता है और उत्तम सौंडुका दान करनेसे उसे 'मन्मथ' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो माघके महीनेमें नित्य नदीमें स्नान करता, तिलमयी धेनु देता

देवतायतनं कृत्वा द्विजशुश्रूषकस्तथा ।
तीर्थयात्रापरश्चैव स्वर्गराजे महीयते ॥ ३९

एकाग्रभोजी यो मर्त्यो नक्तभोजी च नित्यशः ।
उपवासी त्रिरात्राद्यैः शान्तः स्वर्गं शुभं लभेत् ॥ ४० ॥

सरित्स्त्रायी जितक्रोधो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
निर्मलं स्वर्गमाप्नोति यथा भूतहिते रतः ।
विद्यादानेन मेधावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥ ४१

येन येन हि भावेन यद्यहानं प्रयच्छति ।
तत्तत्स्वर्गमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः ॥ ४२

द्यत्वारि अतिदानानि कन्या गौर्भूः सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जयवाहनदोहनात् ॥ ४३

यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सम्प्राप्य न निवर्तेत स्वर्गं शान्तमनामयम् ॥ ४४

शृङ्गे तु पश्चिमे यत्र ब्रह्मा तत्र स्थितः स्वयम् ।
पूर्वशृङ्गे स्वयं विष्णुः मध्ये चैव शिवः स्थितः ॥ ४५

अतः परं तु विप्रेन्द्र स्वर्गाध्वानपिमं शृणु ।
विमलं विपुलं शुद्धमुपर्युपरि संस्थितम् ॥ ४६

प्रथमे तु कुमारस्तु द्वितीये मातरः स्थिताः ।
तृतीये सिद्धगन्धर्वास्तुर्वे विद्याधरा द्विज ॥ ४७

पञ्चमे नागराजश्च षष्ठे तु विनतासुतः ।
सप्तमे दिव्यपितरो धर्मराजस्तथाष्टमे ।
नवमे तु तथा दक्ष आदित्यो दशमे पथि ॥ ४८

भूलोकाच्छतसाहस्रादूर्ध्वं चरति भास्करः ।
योजनानां सहस्रे द्वे विष्टम्भं समन्ततः ॥ ४९

और छत्र तथा जूतेका दान करता है, वह 'उपशोभन' नामक स्वर्गमें जाता है। जिसने देवमन्दिर बनवाया है, जो द्विजोंकी सेवा करता है तथा सदा तीर्थयात्रा करता रहता है, वह 'स्वर्गराज' (आह्लाद)—में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य नित्य एक ही अन्न भोजन करता, जो प्रतिदिन केवल रातमें ही खाता तथा त्रिरात्र आदि व्रतोंके द्वारा उपवास किया करता है, वह 'शुभ' नामक स्वर्गको पाता है। नदीमें स्नान करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला एवं दृढ़व्रतपूर्वक व्रतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी सम्पूर्ण जीवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरुषके समान 'निर्मल' नामक स्वर्गको पाता है। मेधावी पुरुष विद्यादान करके 'निरहंकार' नामक स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३७—४१ ॥

मनुष्य जिस-जिस भावनासे जो-जो दान देता है और उसमें जो-जो फल चाहता है, तदनुसार ही विभिन्न स्वर्गलोकोंको पाता है। कन्या, गौ, भूमि तथा विद्या—इन चारोंके दानको 'अतिदान' कहा गया है। ये चार वस्तुएँ दान की जानेपर दाताका नरकसे उद्धार कर देती हैं। इतना ही नहीं, बैलपर सवारी करने और गायको दुहनेमें जो दोष होता है, उससे भी मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणोंकी सब प्रकारके दान अर्पित करता है, वह शान्त एवं निरामय स्वर्गलोकको प्राप्त होकर फिर वहाँसे नहीं झौटता है। मेरुगिरिके पश्चिम शिखरपर, जहाँ स्वयं ब्रह्माजी विराजमान हैं, वहाँ वह स्वयं भी वास करता है। पूर्वशृङ्गपर साक्षात् भगवान् विष्णु और मध्यम शृङ्गपर शिवजी विराजमान हैं ॥ ४२—४५ ॥

विप्रेन्द्र! इसके बाद आप स्वर्गके इन 'निर्मल' तथा 'विशाल' मार्गका वर्णन सुनें। स्वर्गलोकके दस मार्ग हैं। ये सभी एकके ऊपर दूसरेके क्रमसे स्थित हैं। प्रथम मार्गपर कुमार कार्तिकेय और दूसरेपर मातृकाएँ रहती हैं। द्विज तीसरे मार्गपर सिद्ध-गन्धर्व, चौथेपर विद्याधर, पाँचवेंपर नागराज और छठेपर विनतानन्दन गरुडजी विराजमान हैं। सातवेंपर दिव्य पितृगण, आठवेंपर धर्मराज, नवेंपर दक्ष और दसवें मार्गपर आदित्यकी स्थिति है ॥ ४६—४८ ॥

भूलोकसे एक लाख दो हजार योजनकी ऊँचाईपर सूर्यदेव विचरते हैं। उस ऊँचाईपर सब ओर उनके रुकनेके लिये आधार हैं

त्रिगुणं परिणाहेन सूर्यबिम्बं प्रमाणतः ।
सोमपुर्यां विभावर्या मध्याह्ने चार्यमा यदा ।
महेन्द्रस्यामरावत्यां तदा तिष्ठति भास्करः ॥ ५०

मध्याह्ने त्वमरावत्यां यदा भवति भास्करः ।
तदा संयमने याम्ये तत्रोद्यंस्तु प्रदृश्यते ॥ ५१

मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन् भात्येव सविता सदा ।
ध्रुवाधारस्तथोत्तिष्ठन् बालखिल्यादिभिः स्तुतः ॥ ५२

तथा उस ऊँचाईसे तीन गुने प्रमाणमें सूर्यमण्डलका दीर्घ विस्तार है। जिस समय सूर्य चन्द्रमाकी विभावरीपुरीमें दोपहरके समय रहते हैं, उस समय इन्द्रकी अमरावतीमें उदय होते-से प्रतीत होते हैं। जिस समय अमरावतीपुरीमें मध्याह्नके समय सूर्य रहते हैं, उस समय यमकी संयमनी पुरीमें उदित होते दीख पड़ते हैं। भगवान् सूर्य सदा मेरुगिरिकी पश्चिमा करत हुए ही सुशोभित होते हैं। ये ध्रुवके आधारपर स्थित हैं। उनके उदय होते समय बालखिल्यादि ग्रहों उनको स्तुति करते हैं ॥ ४९—५२ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे भूगोलकण्ठे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें 'भूगोलकण्ठ' विषयक तीसरी अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

ध्रुव-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन

भारद्वाज उवाच

कोऽसी ध्रुवः कस्य सुतः सूर्याधारेऽभवत् कथम् ।
विचिन्त्य कथयाशु त्वं सुत जीव समाः शतम् ॥ १

सुत उवाच

मनोः स्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणः सुतः ।
तस्य क्षितिपतेर्विप्र द्वौ सुतौ सम्बभूवतुः ॥ २

सुरुच्यामुत्तमो ज्येष्ठः सुनीत्यां तु ध्रुवोऽपरः ।
मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चैकदा ॥ ३

सुनीत्या राजसेवायै नियुक्तोऽलङ्कृतः सुतः ।
ध्रुवो धात्रेयिकापुत्रैः समं विनयतत्परः ॥ ४

स गत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनाम ह ।
दृष्टोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य वै ॥ ५

प्राप्य सिंहासनस्थं च नृपतिं बालचापलात् ।
आरुरुक्षुमवेक्ष्यामुं सुरुचिर्ध्रुवमग्नवीत् ॥ ६

भारद्वाजजीने पूछा—सूतजी! ध्रुव कौन है? किसके पुत्र है? तथा ये सूर्यके आधार कैसे हुए? ये सब बातें भलीभाँति सोच-विचारकर बताइये। हमारी यह कामना है कि आप हमें कथा सुनाते हुए सैकड़ों वर्षोंतक जीवित रहें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—विप्रवर! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्र थे राजा उत्तानपाद। उन भूपालके दो पुत्र हुए। एक ती सुरुचिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उत्तम था। वह ज्येष्ठ था और दूसरा पुत्र 'ध्रुव' था, जो सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। एक दिन जब राजा राजसभामें बैठे हुए थे, सुनीतिने अपने पुत्र ध्रुवकी वस्त्राभूषणसे विभूषित करके राजाकी सेवाके लिये भेजा। विनयशील ध्रुवने भयके पुत्रोंके साथ राजसभामें जाकर राजा उत्तानपादको प्रणाम किया। वहाँ उत्तमकी पिताकी गोदमें बैठा देख ध्रुव सिंहासनपर आसोन राजाके पास जा पहुँचा और बालोचित चपलताके कारण राजाकी गोदमें चढ़नेकी इच्छा करने लगा। यह देख सुरुचिने ध्रुवसे कहा ॥ २—६ ॥

सुसचित्वाप

दौर्भाग्ये किमारोदुमिच्छेरङ्गे महीपतेः ।
 बाल बालिशबुद्धित्वादभाग्याजाठरोद्भवः ॥ ७
 अस्मिन् सिंहासने स्थातुं सुकृतं किं त्वया कृतम् ॥ ८
 यदि स्यात् सुकृतं तत्किं दुर्भाग्योदरगोऽभवः ।
 अनेनैवानुमानेन बुध्यस्व स्वल्पपुण्यताम् ॥ ९
 भूत्वा राजकुमारोऽपि नालंकुर्या ममोदरम् ।
 सुकुक्षिजममुं पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम् ॥ १०
 अधिजानु धराजान्योर्मनेन परिवर्द्धितम् ।

सुसचित्वाप

मध्येराजसभं बालस्तपेति परिभर्त्सितः ॥ ११
 निपतन्नेत्रबाष्पाभ्युर्ध्वान् किंचिन्न चोक्तवान् ।
 उचितं नोचितं किंचिन्नोचिवान् सोऽपि पार्थिवः ॥ १२
 नियन्त्रितो महिष्याश्च तस्याः सौभाग्यगौरवान् ।
 विसर्जितसभालोकं शोकं मन्दत्य चेष्टितैः ॥ १३
 शैशवैः स शिशुर्नत्वा नृपं स्वसदनं ययौ ।
 सुनीतिनीतिनित्यमवलोक्यथ बालकम् ॥ १४
 मुखलक्ष्म्यैव चाज्ञासीद् ध्रुवं राज्ञापमानितम् ।
 अथ दृष्ट्वा सुनीतिं तु रहोऽन्तःपुरवासिनीम् ॥ १५
 आलिङ्ग्य दीर्घं निःश्वास्य मुक्तकण्ठं रुरोद ह ।
 सान्त्वयित्वा सुनीतिस्तं वदनं परिमार्ज्य च ॥ १६
 दुकूलाञ्छलसम्पर्कैर्वाङ्मयं तं मृदुपाणिना ।
 पप्रच्छ तनयं माता वद रोदनकारणम् ॥ १७
 विद्यमाने नरपती शिशो केनापमानितः ।

सुसचित्वाप

सम्पृच्छे जननि त्वाहं सम्यक् शंस ममाग्रतः ॥ १८
 भार्यात्वेऽपि च सामान्ये कथं सा सुरुचिः प्रिया ।
 कथं न भवती मातः प्रिया क्षितिपतेरसि ॥ १९

सुरुचि बोली—अभागिनीके बच्चे! क्या तू भी महाराजकी गोदमें बहना चाहता है? बालक! मूर्खतावश ही ऐसी चेष्टा कर रहा है। तू इसके योग्य कदापि नहीं है; क्योंकि तू एक भाग्यहीन स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ है। बता तो सही, तुने इस सिंहासनपर बैठनेके लिये कौन सा पुण्यकर्म किया है? यदि पुण्य ही किया होता तो क्या अभागिनीके गर्भसे जन्म लेता? राजकुमार होनेपर भी तू मेरे उदरको शोभा नहीं बढ़ा सका है। इसी बातसे जान ले कि तेरा पुण्य बहुत कम है। उत्तम कोखसे पैदा हुआ है—कुमार 'उत्तम' जो सर्वश्रेष्ठ है; देखो, वह कितने सम्मानके साथ पुष्पोत्पन्न महाराजके दोनों घुटनोंपर बैठा है ॥ ७—१० ॥

सुतजी कहते हैं—राजसभाके बीच सुरुचिके द्वारा इस प्रकार झिड़के जानेपर बालक ध्रुवकी ओंखोंसे अश्रु-बिन्दु गले लगे; किंतु वह धैर्यपूर्वक कुछ भी न बोला। इधर राजा भी रानीके सौभाग्य-गौरवसे आवद्ध हो, उसका कार्य उचित था या अनुचित, कुछ भी न कह सके। जब सभासदगण बिदा हुए, तब अपनी शैशवोपिप्त चेष्टाओंसे शोकको दबाकर वह बालक राजाको प्रणाम करके अपने घरको गया ॥ ११—१३ ॥

सुनीतिने अपने नीतिके खजाने बालकको देखकर उसके मुखकी कान्तिसे ही जान लिया कि ध्रुवका राजाके द्वारा अपमान किया गया है। माता सुनीतिकी अन्तःपुरके एकान्त स्थानमें देखकर ध्रुव अपने दुःखके आवेगको न रोक सका। वह माताके गलेसे लगकर लम्बी सौंस खोंपता हुआ फूट-फूटकर रोने लगा। सुनीतिने उसे सान्त्वना देकर कोमल हाथसे उसका मुख पोंछा और साढ़ोंके अङ्गलसे हवा करती हुई माता अपने लज्जते पृष्ठसे लगी—'बेटा! अपने रोनेका कारण बताओ। राजाके रहते हुए किसीने तुम्हारा अपमान किया है?' ॥ १४—१७ ॥

ध्रुव बोला—माँ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, मेरे आगे तुम टीक-टोक बताओ। जैसे सुरुचि राजाकी धर्मपत्नी है, वैसे ही तुम भी हो; फिर उन्हें सुरुचि ही क्यों प्यारी है? माता, तुम उन नरेशको क्यों प्रिय नहीं हो?

कथमुत्तमतां प्राप्त उत्तमः सुरुचैः सुतः ।
 कुमारत्वेऽपि सामान्ये कथं चाहमनुत्तमः ॥ २०
 कथं त्वं मन्दभाग्यासि सुकुक्षिः सुरुचिः कथम् ।
 कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथं न मे ॥ २१
 कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम् ।
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुनीतिनीतिमच्छिशोः ॥ २२
 किञ्चिदुच्छस्य शनकैः शिशुशोकोपशान्तये ।
 स्वभावमधुरां वाणीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ २३

सुनीतिसंवाच

अयि तात महाबुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना ।
 निवेद्यामि ते सर्वं मावमाने मतिं कथाः ॥ २४
 तथा यदुक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा ।
 यदि सा महिषी राज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा ॥ २५
 महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्लोत्तमोदरे ।
 उवास तस्याः पुण्याया नृपसिंहासनोचितः ॥ २६
 आतपत्रं च चन्द्रार्धं शुभे चापि हि चामरे ।
 भद्रासनं तथोच्चं च सिन्धुराश्रमदोल्कटाः ॥ २७
 तुरंगमाश्रु तुरगा अनाधिख्याधि जीवितम् ।
 निःसपत्नं शुभं राज्यं प्राप्यं विष्णुप्रसादतः ॥ २८

सुत उवाच

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्मातुर्वाक्यमनिन्दितम् ।
 सीनीतेयो ध्रुवो वाचमाददे वक्तुमुत्तरम् ॥ २९

ध्रुव उवाच

जनयिषि सुनीते मे शृणु वाक्यमनाकुलम् ।
 उत्तानचरणादन्यत्रास्तीति मे मतिः शुभे ॥ ३०
 सिद्धार्थोऽस्म्यम्ब यद्यस्ति कश्चिदाश्रितकामधुक् ।
 अद्यैव सकलाराध्यं तमाराध्य जगत्पतिम् ॥ ३१
 तत्तदासादितं विद्धि पदमन्यैर्दुरासदम् ।
 एकमेव हि साहाय्यं मातर्मे कर्तुमर्हसि ॥ ३२
 अनुज्ञां देहि मे विष्णुं यथा चाराधयाम्यहम् ।

सुतचिका पुत्र उत्तम क्यों श्रेष्ठ है? राजकुमार होनेमें तो हम दोनों एक समान हैं। फिर क्या कारण है कि मैं उत्तम नहीं हूँ? तुम क्यों मन्दभागिनी हो और सुरुचि क्यों उत्तम कोखवाली है? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है? मेरे योग्य क्यों नहीं है? मेरा पुण्य तुच्छ और उत्तमका पुण्य उत्तम कैसे है? ॥ २८—२९ ॥

सुनीति अपने पुत्रके इस नीतिमुक्त वचनको सुनकर धीरेसे थोड़ी लम्बी साँस खींच बालकका दुःख शान्त करनेके लिये स्वभावतः मधुर वाणीमें बोलने लगी ॥ २२—२३ ॥

सुनीति बोली—तात! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब शुद्ध हृदयसे मैं निवेदन करती हूँ; तुम अपमानको बात मगने न लाओ। सुरुचिने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है, अन्यथा नहीं है। यदि वह पटरानी है तो सभी रात्रियोंसे बढ़कर राजाकी प्यारी है ही। राजकुमार उत्तमने बहुत बड़े पुण्योंका संग्रह करके उस पुण्यवती रानीके उत्तम गर्भमें निवास किया था, अतः वही राजसिंहासनपर बैठनेके योग्य है। चन्द्रमाके समान निर्मल श्वेत छत्र, सुन्दर युगल चक्र, उच्च सिंहासन, मन्दमत गजराज, शीघ्रगामी तुल, अभि-
 व्याधियोंसे रहित जीवन, शत्रुरहित सुन्दर राज्य—ये वस्तुएँ भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं ॥ २४—२८ ॥

सुतजी बोले—माता सुनीतिके इस उत्तम वचनको सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवने उन्हें उत्तर देनेके लिये बोलना आरम्भ किया ॥ २९ ॥

ध्रुव बोला—जन्मदायिनी माता सुनीते! आज मेरे शान्तिपूर्वक बड़े हुए वचन सुनी। शुभे! आजतक मैं यही समझता था कि पिता उत्तानपादसे बढ़कर और कुछ नहीं है। परंतु अम्ब! यदि अपने आश्रितजनोंकी कामना पूर्ण करनेवाला कोई और भी है तो यह जानकर आज मैं कृतार्थ हो गया। मैं! तुम ऐसा समझो कि उन सर्वाराध्य जगदीश्वरकी आराधना करके जो-जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वह सब मैंने आज ही प्राप्त कर लिया। माता! तुम्हें मेरी एक ही सहायता करनी चाहिये। केवल आज्ञा दे दो, जिससे मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करूँ ॥ ३०—३२ ॥

सुनीतिरुक्मच

अनुज्ञातुं न शक्नोमि त्वामुत्तानशयाङ्गज ॥ ३३
समाष्टवर्षदेशीयः क्रीडायोग्योऽसि पुत्रक ।
त्वदेकतनया तात त्वदाभरिकजीविता ॥ ३४
लब्धोऽसि कतिभिः कष्टैरिष्टः सम्प्राप्य देवताः ।
यदा यदा बहिर्यासि रन्तुं त्रिचतुरं पदम् ।
तदा तदा मय प्राणस्तात त्वामुपगच्छति ॥ ३५

ध्रुव उवाच

अद्य यावत् पिता माता त्वं चोत्तानपदो विभुः ।
अद्य प्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः ॥ ३६

सुनीतिरुक्मच

विष्णोराधने नाहं चारये त्वां सुपुत्रक ।
जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां चारयामि भोः ॥ ३७
इत्यनुज्ञामिव प्राप्य जननीचरणाम्बुजी ।
परिक्रम्य प्रणम्याथ तपसे च ध्रुवो ययौ ॥ ३८
तथापि धैर्यसूत्रेण सुनीत्या परिगुम्प्य च ।
तत्रेन्द्रीवरजा माला ध्रुवस्योपायनीकृता ॥ ३९
मात्रा तन्मार्गरक्षार्थं तदा तदनुगीकृताः ।
परैरवार्यप्रसराः स्याशीर्वादाः परिश्रुताः ॥ ४०
सर्वत्रायत्तु ते पुत्र शङ्खचक्रगदाधरः ।
नारायणो जगद्गुप्तापी प्रभुः कारुण्यवारिधिः ॥ ४१

सुत उवाच

स्वसौधात् स विनिर्गत्य बालो बालपाक्रमः ।
अनुकूलेन मरुता दर्शिताध्वाविशद्वनम् ॥ ४२
स मातृदैवतोऽभिज्ञः केवलं राजत्वमनि ।
न वेद काननाध्वानं क्षणं दध्यौ नृपात्मजः ॥ ४३
पुरोपवनमासाद्य चिन्तयामास सोऽर्भकः ।
किं करोमि क्व गच्छामि को मे साहाय्यदो भवेत् ॥ ४४
एवमुन्मील्य नयने यावत् पश्यति स ध्रुवः ।
तावद्दर्शं सप्तर्षीन् अतर्कितगतीन् वने ॥ ४५
अथ दृष्ट्वा स सप्तर्षीन् सप्तसप्ततितेजसः ।
भाग्यसूत्रैरिवाकृष्योपनीतान् प्रमुपोद ह ॥ ४६

सुनीति बोली—बेटा! उत्तानपादनन्दन! मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकती। मेरे बच्चे! इस समय तुम्हारी सात-आठ वर्षकी अवस्था है। अभी तो तुम खेलने-कूदनेके योग्य हो। तात! एकमात्र तुम्हीं मेरी संतान हो; मेरा जीवन एक तुम्हारे ही आश्रयपर टिका हुआ है। कितने ही कष्ट उठाकर, अनेक ईष्ट देवों-देवताओंकी प्रार्थना करके मैंने तुम्हें पाया है। तात! तुम जब-जब खेलनेके लिये भी तीन-चार कदम बाहर जाते हो, तब-तब मेरे प्राण तुम्हारे पीछे हो-पीछे लगे रहते हैं ॥ ३३—३५ ॥

ध्रुव बोला—मैं! अबतक तो तुम और राजा उत्तानपाद ही मेरे माता-पिता थे; परंतु आजसे मैंने माता और पिता दोनों भगवान् विष्णु ही हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

सुनीति बोली—मैं सुयोग्य पुत्र! मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे तुम्हें रोकती नहीं। यदि रोकूँ तो मेरी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े हो जायें ॥ ३७ ॥

इस प्रकार आज्ञा-सी पाकर ध्रुव माताके चरणकमलोंकी परिक्रमा और उन्हें प्रणाम करके तपस्याके लिये प्रस्थित हुआ। सुनीतिने धैर्यपूर्वक सूत्रमें नील कमलकी माला गृध्रवर पुत्रको उपहार दिया। मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये मालाएँ अपने शत-शत आलीखंड, जिनका प्रभाव शत्रु भी नहीं रोक सकते थे, उसके पीछे लगा दिये ॥ ३८—४० ॥

[यह बोली—] 'पुत्र! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दशसागर जगद्गुप्तापी भगवान् नारायण सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें' ॥ ४१ ॥

सूतजी बोले—बालोचित पराक्रम करनेवाले बालक ध्रुवने अपने महाराजसे निकलकर अनुकूल वायुके द्वारा दिखायी हुई राह पकड़कर उपवनमें प्रवेश किया। माताकी ही देवता माननेवाला और केवल राजमार्गको ही जाननेवाला वह राजकुमार वनके मार्गको नहीं जानता था, अतः एक क्षणतक आँखें बंद करके कुछ सोचने लगा ॥ ४२-४३ ॥

वनरके उपवनमें आकर बालक ध्रुव इस प्रकार चिन्ता करने लगा—'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कौन मुझे सहायता देनेवाला होगा?' ऐसा विचार करते हुए उसने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उस उपवनमें अत्यन्तशक्तिशाली सप्तर्षि उसे दिखायी दिये। उन सूर्यतुल्य तेजस्वी सप्तर्षियोंको, जो मानो भाग्यसूत्रसे ही शिखरकर ले आये गये थे, देखकर ध्रुव बहुत प्रसन्न

तिलकाङ्कितसद्मालान् कुशोपग्रहिताङ्गुलीन् ।
कृष्णाजिनोपविष्टांश्च ब्रह्मसूत्रैरलंकृतान् ॥ ४७

उपगम्य विनम्रांसः प्रबद्धकरसम्पुटः ।
ध्रुवो विज्ञापयांचक्रे प्रणम्य ललितं वचः ॥ ४८

ध्रुव उवाच

अवैत मां मुनिवराः सुनीत्युदरसम्भवम् ।
उत्तानपादतनयं ध्रुवं निर्विण्णमानसम् ॥ ४९

सुत उवाच

तं दृष्ट्वोर्जस्वलं बालं स्वभावमभुराकृतिम् ।
अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम् ॥ ५०

उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुस्ते विस्मिता भूषाम् ।
तवाद्यापि न जानीमो यत्स निर्वेदकारणम् ॥ ५१

अनवाभाभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम् ।
सप्तद्वीपपते राज्ञः कुमारस्त्वं तथा कथम् ॥ ५२
किमस्माभिरहो कार्यं कस्तवास्ति मनोरथः ।

ध्रुव उवाच

मुनयो मम यो बन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः ॥ ५३

पित्रा प्रदत्तं तस्यास्तु तद्भद्रासनमुत्तमम् ।
भवत्कृतं हि साहाय्यं एतदिच्छामि सुवताः ॥ ५४

अनन्यनृपभुक्तं यद् यदन्येभ्यः समुच्छ्रितम् ।
इन्द्रादिदुरवापं यत् कथं लभ्येत तत्पदम् ॥ ५५

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनयो बालकस्य तु ।
यथार्थमेव प्रत्यूचुर्मरीच्याद्यास्तदा ध्रुवम् ॥ ५६

मरीचिककन

अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरज्जोरसः ।
मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत् फलम् ॥ ५७

हुआ। उनके सुन्दर ललाटमें तिलक लगे थे। उन्होंने
अँगुलियोंमें कुशकी पवित्री पहन रखी थी तथा यज्ञोपवीतोंमें
विभूषित होकर वे काले मृगचर्मपर बैठे हुए थे। उनके
पास जाकर ध्रुवने गर्दन झुका दी, दोनों हाथ जोड़ लिये
और प्रणाम करके मधुर वाणीमें उन्हें अपना अभिप्राय
निवेदित किया ॥ ४४—४८ ॥

ध्रुव बोला—मुनिवरों! आप मुझे सुनीतिके गर्भमें
उत्पन्न राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। इस समय मेरा
चित्त जगत्की ओरसे विरक्त है ॥ ४९ ॥

सुतजी कहते हैं—अमूल्य नीति ही जिसका भूषण
है—ऐसे मधुर और गम्भीर भाषण करनेवाले एवं स्वभावतः
मनोहर आकृतिवाले उस तेजस्वी बालककी देखकर
ऋषियोंने आश्चर्य विस्मित हो उसे अपने पास बिठाया
और कहा—‘वत्स! अभीतक तुम्हारे वैराग्य या निर्वेदका
कारण हम नहीं जान सके। वैराग्य तो उन मनुष्योंकी
होता है, जिसकी मनःकामनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। तुम
तो सातों द्वीपोंके अधीश्वर सम्राट्के पुत्र हो; तुम अपूर्णमनोरथ
कैसे हो सकते हो? हमसे तुम्हें क्या काम है? तुम्हारी
मनोवाञ्छा क्या है?’ ॥ ५०—५२ ॥

ध्रुव बोला—‘मुनिगण! मेरे जो उत्तमोत्तम बन्धु
उत्तमकुमार हैं—उनके ही लिये पिताका दिया हुआ शुभ
सिंहासन रहे। उत्तम वतका पालन करनेवाले मुनीश्वरों!
मैं आपलोगोंसे इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि जिस
स्थानका किसी दूसरे राजाने उपभोग न किया हो, जो
अन्य सभी स्थानोंसे उत्कृष्ट हो और इन्द्रादि देवताओंके
लिये भी दुर्लभ हो, वह स्थान मुझे किस उपायसे प्राप्त
हो सकता है, यह बता दें।’ इस समय उस बालककी
ये बातें सुनकर मरीचि आदि ऋषियोंने उसे यशस्व हो
उत्तर दिया ॥ ५३—५६ ॥

मरीचि बोले—जिसने गोविन्द-चरणारविन्दोंके
परागके रसका आस्वादन नहीं किया, वह मनोरथ-पथसे
अतीत (ध्यानमें भी न आ सकनेवाले) परमोज्ज्वल
फलको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५७ ॥

अत्रि उवाच

अनर्चिताच्युतपदः पदमासादयेत् कथम् ।
इन्द्रादिदुरवापं यन्मानवीः सुदुरासदम् ॥ ५८

अङ्गिरा उवाच

न हि दूरे पदं तस्य सर्वासां सम्पदामिह ।
कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलं यः सुशीलयेत् ॥ ५९

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंततिः ।
परमान्तकमाप्नोति स विष्णुः सर्वदो भुव ॥ ६०

पुलह उवाच

यदाहुः परमं ब्रह्म प्रधानपुरुषात् परम् ।
यन्मायया कृतं सर्वं स विष्णुः कीर्तितोऽर्थदः ॥ ६१

ऋतुमाच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः ।
अन्तरात्मास्य जगतः संतुष्टः किं न यच्छति ॥ ६२

वसिष्ठ उवाच

यद्भूतर्तनवर्तितन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मज ।
तमाराध्य हृषीकेशं चतुर्वर्गो न दुरतः ॥ ६३

भुव उवाच

सत्यमुक्तं द्विजेन्द्रा यो विष्णोराराधनं प्रति ।
कथं स भगवानिन्यः स विधिश्चोपदिश्यताम् ॥ ६४

प्रभूतदो भवेद्यो वै दुराराध्यतमो भवेत् ।
बालोऽहं राजपुत्रोऽहं दुःखं नैव मया क्षमम् ॥ ६५

मुनि उवाच

तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा ।
शयानेनोपविष्टेन वेद्यो नारायणः सदा ॥ ६६

पुत्रान् कलत्रं मित्राणि रान्यं स्वर्गापवर्गकम् ।
वासुदेवं जपन् मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ६७

अत्रि बोले—जिसने अच्युतके चरणोंकी अर्चना नहीं की है, वह पुरुष उस पदको, जो इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ और मनुष्योंके लिये तो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, कैसे पा सकता है ? ॥ ५८ ॥

अङ्गिरा बोले—जो भगवान् कमलाकान्तके कमनीय चरणकमलोंका अनुशीलन (चिन्तन) करता है, उसके लिये त्रिभुवनकी सारी सम्पदाओंका स्थान दूर (दुर्लभ) नहीं है ॥ ५९ ॥

पुलस्त्य बोले—भुव ! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्परा अत्यन्त नाशको प्राप्त हो जाती है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ६० ॥

पुलह बोले—जिनमें प्रधान (प्रकृति) और पुरुष (जीव)—से विलक्षण परमब्रह्म कहते हैं, जिनकी मायासे समस्त प्रपञ्च रचा गया है, उन भगवान् विष्णुका यदि कीर्तन किया जाए तो वे अपने भक्तके अभीष्ट मनोरथको पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

ऋतु बोले—जो यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य हैं तथा जो जगदेव द्वारा समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं, वे प्रसन्न हों तो क्या नहीं दे सकते ? ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ बोले—राजकुमार ! जिनकी भीर्हकि गर्तमात्रमें अवतों सिद्धिर्हीन वर्तमान हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते ॥ ६३ ॥

भुव बोले—द्विजवर ! भगवान् विष्णुकी आराधनाके सम्बन्धमें आपसोंगोंने जो विचार प्रकट किया, वह सत्य है। अब मुझे यह बताइये कि उन भगवान्की पूजा कैसे करनी चाहिये ? उसकी विधिका मुझे उपदेश कीजिये। जो बहुत कुछ दे सकते हैं, उनकी आराधना भी कठिन ही होगी। मैं राजकुमार हूँ और बालक हूँ; मुझसे विशेष क्या नहीं सहा जा सकता ॥ ६४-६५ ॥

मुनिगण बोले—खड़े-टोले-बलते, सोते-जागते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण भगवान् नारायणका स्मरण करना चाहिये। भगवान् वासुदेवके नामका जप करनेवाला मनुष्य पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष—सब कुछ पा लेता है—इसमें संशय नहीं है।

द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च।
ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः ॥ ६८
पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज ॥ ६९
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरो भव।
यथाभिलषितामृद्धिं क्षिप्रं प्राप्स्यसि सत्तम ॥ ७०

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे महात्मानो मुनीश्वराः।
वासुदेवमना भूत्वा ध्रुवोऽपि तपसे ययौ ॥ ७१
ध्रुवः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन वर्त्मना ॥ ७२
श्रद्धान्वितेन जपता च तपःप्रभावात्
साक्षादिवाब्जनयनं ददृशे हृदीशम्।
दिव्याकृतिं सपदि तेन ततः स एव
हर्षात् पुनः स प्रजजाप नृपात्मभूतः ॥ ७३
क्षुत्तर्षवर्षघनवातमहोष्णतादि-

शारीरदुःखकुलमस्य न किञ्चनाभूत्।
मगने मनस्यनुपमेयसुखाम्बुराशौ
राज्ञः शिशुर्न च विवेद शरीरवार्ताम् ॥ ७४
विघ्नाश्च तस्य किल शङ्कितदेवसृष्टा
बालस्य तीव्रतपसो विफला बभूवुः।
शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्ते ॥ ७५

अथ भक्तजनप्रियः प्रभुः
शिशुना ध्यानबलेन तोषितः।
वरदः पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजनं तपीक्षितुम् ॥ ७६

मणिपिण्डकमौलिराजितो
विलसद्रत्नमहाधनच्छविः।
स बभावदुदाद्रिमत्सरा-
द्धृतबालार्क इवासिताचलः ॥ ७७

वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)-के द्वारा चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान और जप करके किसने सिद्धि नहीं प्राप्त कर ली? राजकुमार! पितामह (ब्रह्माजी)-ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी। विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामना। इस मन्त्रद्वारा भगवान्की आराधना की थी। सत्पुरुषशिरोमणे। तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाञ्छित समृद्धि प्राप्त कर लीगे ॥ ६६-७० ॥

सूतजी कहते हैं-यों कहकर वे सभी महात्मा मुनीश्वर यहाँ अन्तर्हित हो गये और ध्रुव भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया। द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। ध्रुव मधुवनमें यमुनाके तटपर मुनियोंकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करने लगा। श्रद्धापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार ध्रुवने तपके प्रभावसे तत्काल ही हृदयमें भगवान् कमलनयनको प्रकट प्रत्यक्षवत् देखा। उनकी आकृति बड़ी दिव्य थी। भगवान्के दर्शनसे उसका हर्ष बढ़ गया। अब तो वह राजपुत्र पुनः बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा। उस समय भूख, प्यास, क्वाँ, औंधी और अधिक गर्मी आदि दैहिक दुःखोंमेंसे कोई भी उसे नहीं व्यापा। उस राजकुमारका मन अनुपम आनन्द महासागरमें गोता लगा रहा था। अतः उस समय उसे अपने शरीरकी भी सुभ नहीं रह गयी थी। कहते हैं, उसकी तपस्यासे शङ्कित हुए देवताओंने कितने ही विघ्न खड़े किये; परंतु उस तीव्र तपस्यी बालकके लिये ये सभी निष्फल हो सिद्ध हुए। शीत और धूप आदिकी ही तरह ये एकदेशीय विघ्न भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१-७५ ॥

कुछ समयके बाद भक्तजनकी प्रियतम वरदाता भगवान् विष्णु बालक ध्रुवके ध्यान बलसे संतुष्ट होकर पक्षिराज गरुडपर सवार हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये। मणिसमूहद्वारा निर्मित मुकुटसे मण्डित और शोभाशाली कौस्तुभरत्नसे समलंकृत, महामेघके समान श्यामकान्तिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके प्रति डह रखनेके कारण अपने शृङ्गपर बालरविको धारण किये साक्षात् कज्जलगिरि प्रकाशित हो रहा हो।

स राजसूनुं तपसि स्थितं तं
ध्रुवं ध्रुवस्निग्धदृगित्युवाच ।
दन्तांशुसंज्ञैरमितप्रवाहैः

प्रक्षालयन् रेणुमिवास्य गात्रे ॥ ७८

वरं वरं यत्स वृणांष्व यस्ते
मनोगतस्त्वत्तपसास्मि तुष्टः ।
ध्यानेन ते चेन्द्रियनिग्रहेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण ॥ ७९

भृष्वन् यच्चस्तत्सकलं गभीर-
मुनीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
स्ये चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्तं
पुरःस्थितं यद्य चतुर्भुजं सः ॥ ८०

दृष्ट्वा क्षणं राजसुतः सुपूज्यं
पुरस्त्रयीशं किमिह द्रवीमि ।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाव्रवीत् किञ्चन नो चकार ॥ ८१

हर्षांशुपूर्णः पुलकाश्रिताङ्ग-
स्थिलोकनाथेति यदब्रवीच्छ्रुत्वा ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमी
प्रवेपमानभु हरिः पुरः सः हि ॥ ८२

दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च ।
रुरोद हर्षेण चिरं दृष्ट्वा तं जगतो गुरुम् ॥ ८३
नारदेन सनन्देन सनकेन च संश्रुतम् ।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥ ८४

कारुण्यव्याघ्रनीराट्रं पुण्डरीकविलोचनम् ।
ध्रुवमुत्थापयांचक्रे चक्री धृत्वा करेण तम् ॥ ८५
हरिस्तु परिपश्यंशं तदङ्गं धूलिधूसरम् ।
कराभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥ ८६

वरं वरय भो बाल यस्ते मनसि वर्तते ।
तद्दामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥ ८७

निश्चल और स्नेहपूर्ण दृष्टिकाले वे भगवान् अपने दोनोंकी किरकलन जलके अमित प्रवाहद्वारा तपस्यामें लगे हुए राजकुमार ध्रुवके शरीरकी धूलिको धोते हुए-से उससे इस प्रकार बोले ॥ ७८-७९ ॥

'वत्स! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और दुस्साध्य मनःसंग्रमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो' ॥ ७९ ॥

भगवान्को वह सम्पूर्ण गम्भीर बाणी सुनते ही ध्रुवने सहसा आँखें खोल दीं। उस समय उन्हीं चतुर्भुज जड़को, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥ ८० ॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिकी सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ? क्या कहूँ?' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका। उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भरे थे, शरीरके रीरे खड़े हो गये थे। वह भगवान्के सामने उन्मत्तवरी 'हे त्रिभुवननाथ!' यों कहता हुआ दण्डवत्-प्रणाम करनेके लिये पुष्पोपर पड़ गया। उस समय उसकी भीड़ काँप रही थी। दण्डकी भीति प्रणाम करके जगद्गुरु भगवान्की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरिक्तसे चारों ओर लोट-पोट होकर दैरतक रोता रहा। नारद, सनन्दन, सनक और सनातकुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका अवल-कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भोगे हुए थे, उन्हीं कमललोचन भगवान्को आज ध्रुवने प्रत्यक्ष देखा। उस समय चक्रधर भगवान्ने अपने हाथसे पकड़कर ध्रुवकी उठा लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरकी सब ओरसे घोंछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१-८६ ॥

'वत्स! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वह माँग लो। मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा। तुम्हारे लिये कोई भी जलु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्ययाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव ।
तं मूर्तिविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्शं शङ्केन मुखेऽमलेन ॥ ८८
अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
विमलितमिव चित्तं पूर्णमेव ध्रुवस्य ।

त्रिभुवनगुरुशङ्खस्पर्शजज्ञानभाना-

नुदयति नितरान्तः साधु तुष्टाव हृष्टः ॥ ८९

ध्रुव उवाच

अखिलमुनिजननिवहणमितचरणः । खरकदन-
करः । चपलचरितः । देवाराधितपादजलः ।
मजलजलधरश्यामः शमितसीभपतिशास्त्वधामा ।
अभिरामरामातिविनयकृतनवरसरसापहृतेन्द्रिय-
सुरमणीविहितान्तःकरणानन्दः । अनादिनिधनः ।
अधननिजद्विजमित्रोद्धरणधीरः । अवधीरितसुरनाथ-
नाथितविपक्षपक्षः । ऋक्षराजविलप्रवेशापहृत-
स्यमन्तकापमार्जितनिजापथाददुरितहृतत्रैलोक्यभारः ।
द्वारकावासनिरतः । स्वरितमधुरवेणुवादनश्रवणामृत-
प्रकटितातीन्द्रियज्ञानः । यमुनातटचरः । द्विजधेनुभृङ्ग-
गणैस्त्यक्तनिजनिजाहारः । संसारदुस्तरपारावार-
समुत्तारणाद्भिषोतः । स्वप्रतापानलहुतकालयवनः । नाना-
प्रसिद्धाभिधानः । निगमविविधमुनिजनवचन-
मनोऽगोचरः । कनकपिशङ्गकौशेयवासोभगवान्
भृगुपदकीस्तुभविभूषितोरःस्थलः । स्वदयिता-

तव राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि
'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो।' यह सुनकर
भगवान्ने मूर्तिभान् विज्ञानके समान निर्मल शङ्खसे ध्रुवके
मुखको छुआ दिया। मरीचि आदि देवर्षियोंने दिये हुए
ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे कालित होकर ध्रुवका चित्त
पूर्णतया निर्मल हो गया था। फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्के
शङ्ख-स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय
हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया। इससे वह आनन्दित
होकर भगवान्की सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव बोला—समस्त मुनिगण जिनके चरणकमलोंकी
चन्दना करते हैं, जो खर राक्षस अथवा गर्दभरूपधारी
धेनुकासुरका संहार करनेवाले हैं, जिनकी बाललीलाएँ
चपलतासे पूर्ण हैं, देवगण जिनके चरणोदक (गङ्गाजी)-
की आराधना करते हैं, सज्जल मेघके समान जिनका
श्याम वर्ण है, सीधे विमानके अधिपति शास्त्रके धाम
(तेज)-की जिन्होंने सदाके लिये शान्त कर दिया है,
जिन्होंने सुन्दर गोपवनिताओंके अस्यन्त विनयवश नूतन
प्रेमसमय रासलीलाको प्रकट किया और उससे मोहित
होनेवाली देवकानिताओंके अन्तःकरणमें भी आनन्दका
संचार किया, जिनका आदि और अन्त नहीं है, जिन्होंने
अपने विध्वंस मित्र सुदामा नामक ब्राह्मणका भीरुतापूर्वक
दैन्यदुःखसे उद्धार किया, देवराज इन्द्रकी प्रार्थनासे जिन्होंने
उनके शत्रुपक्षको पराजित किया, ऋक्षराज जायवसान्की
गुहामें प्रवेश करके खोपी हुई स्यमन्तक मणिको लाकर
जिन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलङ्करूप दुरितको दूर
करके त्रिभुवनका भार हल्का किया है, जो द्वारकापुरीमें
नित्य निवास करते हैं, जो अपना मधुर मुरली बजाकर
शुक्तिमधुर अतीन्द्रिय-ज्ञानको प्रकट करते तथा यमुनातटपर
विचरते हैं, जिनके यक्षीनादकी सुननेके लिये पक्षी, गौ
और भृङ्गगण अपना-अपना आहार त्याग देते हैं, जिनके
चरणकमल दुस्तर संसार-सागरसे पार करनेके लिये
जहाजरूप हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापाग्निमें कालयवनको
होम दिया है, जो वनमालाधारी हैं, जिनके श्रवण
सुन्दर मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, जिनके अनेक
प्रसिद्ध नाम हैं, जो वेदवाणी तथा देवता और मुनियोंके
भी मन आर्तोंके अगोचर हैं, जो भगवान् सुखर्षके समान
पौत रेशमी वस्त्र धारण करते हैं, जिनका वस्त्रःस्थल
भृगुजीके चरण-चिह्न तथा श्रीस्तुभमणिसे अलंकृत है,

कूरनिजजननीगोकुलपालकचतुर्भुजशङ्खचक्र-
गदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटा-
लंकृतः । सुनन्दनादिभागवतोपासितविश्वरूपः ।
पुराणपुरुषोत्तमः । उत्तमश्लोकः । लोकावासो
वासुदेवः । श्रीदेवकीजठरसम्भूतः । भूतपतिविरञ्चि-
नतचरणारविन्दः । वृन्दावनकृतकेलिगोपिकाजन-
श्रमापहः । सततं सम्पादितसुजनकामः । कुन्दनिभ-
शङ्खधरमिन्दुनिभवक्त्रं सुन्दरसुदर्शनमुदारतरहासं
विद्वज्जनवन्दितमिदं ते रूपमतिदृढमखिलेश्वरं
नतोऽस्मि ।

स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं
त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्रगुह्यम् ।
काचं विचित्रवस्त्रिव दिव्यरत्नं
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरात्र याचे ॥ ९०

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे
दृष्ट्वा द्रवं नाथ नहि त्यजामि ।
कामान् न याचे स हि कोऽपि मूढो
यः कल्पवृक्षात् तुषमात्रमिच्छेत् ॥ ९१

त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपन्नः
शक्नोमि भोक्तुं न बहिःसुखानि ।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे
विभूषणं काचमयं न युक्तम् ॥ ९२

अतो न याचे वरमीश युष्मत्-
पादाब्जभक्तिं सततं ममास्तु ।
इमं वरं देववर प्रयच्छ
पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥ ९३

श्रीसूत उवाच

इत्यात्मसंदर्शनलब्धदिव्य-

ज्ञानं गदन्तं भगवाञ्जगाद ॥ ९४

जो अपने प्रिय भक्त अक्रूर, माता देवकी और गोकुलके
पालक हैं तथा जो अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र,
गदा, पद्म धारण किये नूतन तुलसीदलकी माला, मुक्ताहार,
केयूर, कड़ा और मुकुट आदिसे विभूषित हैं, सुनन्दन
आदि भगवद्रक्त जिन विश्वरूप हरिकी उपासना करते
हैं, जो पुराण-पुरुषोत्तम हैं, पुण्ययशवाले हैं तथा समस्त
लोकोंके आवास-स्थान वासुदेव हैं, जो देवकीके उदरसे
प्रकट हुए हैं, भूनाथ शिव तथा ब्रह्मजीने जिनके चरणारविन्दोंपर
मस्तक झुकाया है, जो वृन्दावनमें की गयी लीलासे द्रव्य
हुई गोपियोंके श्रमको दूर करनेवाले हैं, सबजनोंके मनोरथोंको
जो सर्वदा पूर्ण किया करते हैं, ऐसी महिमावाले हे सर्वेश्वर !
जो कुन्दके समान उज्ज्वल शङ्ख धारण करते हैं, जिसका
चन्द्रपाके समान सुन्दर मुख है, सुन्दर नेत्र हैं तथा अल्पना
मनोहर मुसकान हैं, ऐसे अल्पना हृदयहारी आपके इस
रूपको, जो जिनियोंद्वारा वन्दित है, मैं प्रणाम करता हूँ ।

मैं उत्तम स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्यामें प्रवृत्त
हुआ और बड़े बड़े मुनीश्वरोंके लिये भी जिनका दर्शन
पाना असम्भव है, उन्होंने आप परमेश्वरका दर्शन पा गया—
लोक उसी तरह, जैसे कौचकी खोज करनेवाला कोई
मनुष्य भाग्यवश दिव्य रत्न हासगत कर ले । स्वामिन् ! मैं
कृतार्थ हो गया, अब मैं कोई वर नहीं माँगता । हे नाथ !
जिनका दर्शन अपूर्व है—पहले कभी उपलब्ध नहीं हुआ
है, उन आपके चरणकमलोंका दर्शन पाकर अब मैं इन्हें
छोड़ नहीं सकता । मैं अब भोगोंको याचना नहीं करूँगा;
ऐसा कोई मूर्ख ही होगा, जो कल्पवृक्षसे केवल भूसी पाना
चाहेगा ? देव । आज मैं मोक्षके कारणभूत आप परमेश्वरकी
शरणमें आ पड़ा हूँ, अब बाह्य विषय-सुखोंको मैं नहीं
भोग सकता । जब रत्नोंकी खान समुद्र अपना मालिक हो
जाय, तब कौचका भूषण पहनना कभी उचित नहीं हो
सकता । अतः ईश ! अब मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता;
आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा भक्ति बनी रहे,
देववर ! मुझे यही वर दीजिये । मैं बारंबार आपसे यही
प्रार्थना करता हूँ ॥ ९०—९३ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपने दर्शनमात्रसे
दिव्य ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करते हुए भुवको देखकर
भगवान्ने उससे कहा ॥ ९४ ॥

श्रीभगवानुवाच

आराध्य विष्णुं किमनेन तथ्यं
मा भूजनेऽपीत्यमसाधुवादः ।
स्थानं परं प्राप्नुहि यन्मतं ते
कालेन मां प्राप्स्यसि शुद्धभावः ॥ ९५
आधारभूतः सकलग्रहाणां
कल्पद्रुमः सर्वजनैश्च वन्द्यः ।
मम प्रसादान्नव सा च माता
ममान्तिके या च सुनीतिरायां ॥ ९६

वीरवत् उवाच

ते साधयित्वेति वीरमुकुन्दः
स्वभालयं दृश्यवपुर्जगाम ।
त्यक्त्वा शनैर्दिव्यवपुः स्वभक्तं
मुहुः परावृत्त्य समीक्षमाणः ॥ ९७
तावच्च सद्यः सुरसिद्धसंघः
श्रीविष्णुतद्भक्तसमागमं तम् ।
दृष्ट्वाथ वर्धन् सुरपुण्यवृष्टिं
तुष्टाव हर्षाद् ध्रुवमव्ययं च ॥ ९८
श्रियाभिमत्या च सुनीतिसु-
विभाति देवैरपि वन्द्यमानः ।
योऽयं नृणां कीर्तनदर्शनाभ्या-
मासुर्यशो वर्धयति श्रियं च ॥ ९९
इत्थं ध्रुवः प्राप पदं दुरार्यं
हरेः प्रसादान्न च चित्रमेतत् ।
तस्मिन् प्रसन्ने द्विजराजपत्रे
न दुर्लभं भक्तजनेषु किञ्चित् ॥ १००
सूर्यमण्डलमानात्तु द्विगुणं सोममण्डलम् ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे तस्माद्रक्षत्रमण्डलम् ॥ १०१
द्वे लक्षेऽपि बुधस्यापि स्थानं नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥ १०२
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तावन्माने व्यवस्थितः ।
लक्षद्वयं तु भीमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ १०३
सौरिवृहस्पतेशोर्ध्वं द्विलक्षे तु व्यर्वास्थितः ।
तस्माच्छनैश्चरादूर्ध्वं लक्षे सप्तर्षिमण्डलम् ॥ १०४
सप्तर्षिमण्डलादूर्ध्वमेकं लक्षं ध्रुवः स्थितः ।
मेढीभूतः सप्तस्तस्य ज्योतिश्शुक्रस्य सप्तमः ॥ १०५

श्रीभगवान् बोले—'ध्रुवने विष्णुकी आराधना करके क्या पा लिया?' इस तरहका अपवाद लोगोंमें न फैल जाय। इसके लिये तुम अपने अभीष्ट सर्वोत्तम स्थानको ग्रहण करो, पुनः समय आनेपर शुद्धभाव हो तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। मेरे प्रसादसे सम्स्त ग्रहोंके आधारभूत, कल्पद्रुम और सब लोगोंके वन्दनीय होकर तुम और तुम्हारे माता आयां सुनीति मेरे निकट निवास करोगे ॥ ९५-९६ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकट हो, उपयुक्त वरदानोंसे ध्रुवका मनोरथ पूर्ण करके, भगवान् मुकुन्द धीरेसे अपना वह दिव्य रूप छिपा, धारंवार घूमकर उस भक्तकी ओर देखते हुए अपने वैकुण्ठधामको चले गये। इसी बीचमें देवताओंका समुदाय भगवान् विष्णु और उनके भक्तके उस समागमको देख हर्षके मग्न तत्काल दिव्य पुष्प वरमाने और उस अधिनाशो दुष्टका खावन भी करने लगा। सुनीतिकुमार ध्रुव आज भी और सम्मान—दोनोंसे सम्पन्न होकर देवताओंका भी वन्दनीय हो, सोभा पा रहा है। वह अपने दर्शन तथा गुणकीर्तनसे मनुष्योंको आयु, यश तथा लक्ष्मीकी भी वृद्धि करता रहेगा ॥ ९७—९९ ॥

इस प्रकार ध्रुव भगवान् विष्णुके प्रसादसे दुर्लभ पद पा गया—वह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उन गरुडव्याहन भगवान्के प्रसन्न हो जानेपर भक्तोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। सूर्यमण्डलका जितना मान है, उससे दूना चन्द्रमण्डलका मान है। चन्द्रमण्डलसे पूरे दो लाख योजन दूर ऊपर नक्षत्रमण्डल है, नक्षत्रमण्डलसे भी दो लाख योजन ऊँचे बुधका स्थान है और बुधके भी स्थानसे उतनी ही दूरीपर शुक्रको स्थिति है। शुक्रसे भी दो लाख योजन दूर मङ्गल है और मङ्गलसे दो लाख योजनपर देवपुरोहित बृहस्पतिव्य निवास है। बृहस्पतिसे भी दो लाख योजन ऊपर रविकरका स्थान है। उन रविकरसे दो लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है। सप्तर्षि-मण्डलसे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। साधुशिरोमणे! यह समस्त ज्योतिर्मण्डलका केन्द्र है ॥ १००—१०५ ॥

स्वभावात् तपति विप्रेन्द्र अधश्चोर्ध्वं च तिस्रभिः ।
 कालसंख्ययां त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे ॥ १०६ ॥
 जनस्तपस्तथा सत्यमेतांश्लोकान् द्विजोत्तम ।
 ब्रह्मणा मुनिशार्दूल विष्णुभक्तिविवर्धितः ॥ १०७ ॥
 ऊर्ध्वगतैर्द्विजश्रेष्ठ रश्मिभिस्तपते रविः ।
 अधोगतैश्च भूर्लोकं द्योतते दीर्घदीपितः ॥ १०८ ॥
 सर्वपापहरः सूर्यः कर्ता त्रिभुवनस्य च ।
 छत्रवत् प्रतिपश्येत मण्डलान्मण्डलं परम् ॥ १०९ ॥
 आदित्यमण्डलाधस्ताद् भुवर्लोकं प्रतिष्ठितम् ।
 त्रैलोक्यस्येश्वरत्वं च विष्णुदत्तं शतक्रतोः ॥ ११० ॥
 लोकपालैः स सहितो लोकान् रक्षति धर्मतः ।
 वसेत् स्वर्गे महाभाग देवेन्द्रः स तु कीर्तिमान् ॥ १११ ॥
 ततोऽधस्तान्मुने बंदं पातालं विद्धि सप्रभम् ।
 न तत्र तपते सूर्यो न रात्रिर्न निशाकरः ॥ ११२ ॥
 दिव्यस्वरूपमास्थाय तपन्ति सततं जनाः ।
 पातालस्था द्विजश्रेष्ठ दीप्यमानाः स्वतेजसा ॥ ११३ ॥
 स्वर्लोकान् महर्लोकः कोटिमात्रे व्यवस्थितः ।
 ततो योजनमात्रेण द्विगुणो मण्डलेन तु ॥ ११४ ॥
 जनलोकः स्थितो विप्र पञ्चमो मुनिसेवितः ।
 तत्रोपरि तपोलोकश्चतुर्भिः कोटिभिः स्थितः ॥ ११५ ॥
 सत्यलोकोऽष्टकोटीभिस्तपोलोकोपरिस्थितः ।
 सर्वे छत्राकृतिज्ञेया भुवनोपरिसंस्थिताः ॥ ११६ ॥
 ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणश्च व्यवस्थितः ।
 वाराहे तस्य माहात्म्यं कथितं लोकचिन्तकैः ॥ ११७ ॥
 ततः परं द्विजश्रेष्ठ स्थितः परमपुरुषः ।
 ब्रह्माण्डात् परमः साक्षाश्रिलेपः पुरुषः स्थितः ॥ ११८ ॥
 पशुपाशैर्विमुच्येत तपोज्ञानसमन्वितः ।
 इति ते संस्थितिः प्रोक्ता भूगोलस्य मयानघ ।
 यस्तु सम्यगिमां वेत्ति स याति परमां गतिम् ॥ ११९ ॥
 लोकस्य संस्थानकरोऽग्रमेयो
 विष्णुर्नृसिंहो नरदेवपूजितः ।
 युगे युगे विष्णुरनादिमूर्तिमा-
 नास्थाय विश्वं परिपाति दुष्टहा ॥ १२० ॥

विप्रवर! सूर्यदेव स्वभावात् अपनी किरणोंद्वारा नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें ताप पहुँचाते हैं। वे ही प्रत्येक युगमें त्रिभुवनको कालसंख्या निश्चित करते हैं। द्विजोत्तम! मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्मजीके द्वारा विष्णुभक्तिसे अभ्युदयको प्राप्त होकर सूर्य अपनी ऊर्ध्वगत किरणोंसे ऊपरके जन, तप तथा सत्य लोकोंमें गर्मी पहुँचाते हैं और अधोगत किरणोंसे भूलोकको प्रकाशित करते हैं ॥ १०६—१०८ ॥

समस्त पापोंको हरनेवाले सूर्यदेव त्रिभुवनकी सृष्टि करते हैं। वे छत्रकी भाँति स्थित हो एक मण्डलसे दूसरे मण्डलको दर्शन देते और प्रकाशित करते हैं। सूर्यमण्डलके नीचे भुवर्लोक प्रतिष्ठित है। तीनों भुवर्लोक आधिपत्य भगवान् विष्णुने शतव्रत इन्द्रको दे रखा है। वे समस्त लोकपालोंके साथ धर्मपूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं। महाभाग! वे वरसर्प देवेन्द्र स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। मुने! इन सप्त लोकोंमें नीचे यह अधःपूज्य पाताल लोक स्थित है, ऐसा अणु जगत्। यहाँ न सूर्यका ताप है, न चन्द्रमाका प्रकाश, [न दिन है] न रात। द्विजश्रेष्ठ! पातालवासी जन दिव्यरूप धारण करके सदा अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए तपते हैं। स्वर्गलोकासे करोड़ योजन ऊपर महर्लोक स्थित है। हे विप्र! उससे दूरे दो करोड़ योजनपर मुनिसेवित जनलोक, जो चौपचा लोक है, स्थित है। उससे चार करोड़ योजन ऊपर तपोलोककी स्थिति है। तपोलोकसे ऊपर आठ करोड़ योजनपर सत्यलोक (ब्रह्मलोक) स्थित है। ये सभी भुवन एक दूसरेके ऊपर छत्रकी भाँति स्थित हैं। ब्रह्मलोकसे सोलह करोड़ योजनपर विष्णुलोककी स्थिति है। लोकचिन्तकोंने वायव्यभुवनमें उसके माहात्म्यका वर्णन किया है। द्विजश्रेष्ठ! इसके आगे परम पुरुषकी स्थिति है, जो ब्रह्माण्डसे विलक्षण साक्षात् परमात्मा है। इस प्रकार जाननेवाला मनुष्य तप और ज्ञानसे युक्त होकर पशुपाश (जबिवा बन्धन) से मुक्त हो जाता है ॥ १०९—११८ ॥

अनघ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूगोलकी स्थिति बतलायी। जो पुरुष सम्यक् प्रकारसे इसका ज्ञान रखता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्यों और देवताओंसे पूजित नृसिंहस्वरूप अग्रमेय भगवान् विष्णु लोककी रक्षा करनेवाले हैं। वे अनादि मूर्तिमान् परमेश्वर प्रत्येक युगमें शरीर धारणकर दुष्टोंका वध करके विश्वका पालन करते हैं ॥ ११९—१२० ॥

इति श्रीनारसिंहपुराण एकविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें एकविंशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सहस्रनाम-चरित्र; श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य

भरद्वाज उवाच

सहस्रनामकस्य हरेरवतारांश्च शार्ङ्गिणः ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते ॥ १

सुत उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि चरितं तस्य धीमतः ।
सहस्रनामकस्य हरेरवतारांश्च मे शृणु ॥ २
सहस्रनामकोऽभिषिक्तो निजराज्ये द्विजोत्तमैः ।
पालयामास धर्मेण राज्यं स तु नृपात्मजः ॥ ३
तस्य पालयतो राज्यं राजपुत्रस्य धीमतः ।
भक्तिर्वभूव देवेशे नरसिंहे सुरोत्तमे ॥ ४
तं द्रष्टुमागतः साक्षाद्विष्णुभक्तं भृगुः पुरा ।
अर्घ्यपाद्यासनं राजा तमभ्यर्च्यब्रवीदिदम् ॥ ५
गवितोऽहं मुनिश्रेष्ठ साम्प्रतं तव दर्शनात् ।
त्वद्दर्शनमपुण्यानां कलावस्मिन् सुदुर्लभम् ॥ ६
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य देवदेवं सनातनम् ।
आराधयितुमिच्छामि विधानं तत्र मे वद ॥ ७
अवतारानशेषांश्च देवदेवस्य चक्रिणः ।
श्रोतुमिच्छामि सकलांस्तान् पुण्यानपि मे वद ॥ ८

भृगु उवाच

शृणु भूपालपुत्र त्वं न हि कश्चित् कलौ युगे ।
हरीं भक्तिं करोत्यत्र नृसिंहे चानिभक्तिमान् ॥ ९
स्वभावाद्यस्य भक्तिः स्यान्नरसिंहे सुरोत्तमे ।
तस्यारवः प्रणश्यन्ति कार्यसिद्धिश्च जायते ॥ १०
त्वमतीव हरेर्भक्तः पाण्डुरवंशेऽपि सत्तमः ।
तेन ते निखिलं वक्ष्ये शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ११
यः कुर्याच्छोभनं वेश्म नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ १२
प्रतिमां लक्षणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ १३

भरद्वाजजी बोले—सुतजी! अब मैं सहस्रनामकका

चरित्र और भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा सुनना चाहता हूँ; महामते! कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥

सुतजीने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा, अब मैं बुद्धिमान् सहस्रनामकके चरित्रका और भगवान्के अवतारोंका वर्णन करूँगा, सुनिये ॥ २ ॥

राजकुमार सहस्रनामकको जब उत्तम ब्राह्मणोंने उसके राज्यपर अधिकार कर दिया, तब वे धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे। राज्यके पालनमें लगे हुए बुद्धिमान् राजकुमारकी देवेश्वर, देवश्रेष्ठ भगवान् नृसिंहमें भक्ति हो गयी। पूर्वकालमें एक बार उन विष्णुभक्त नरेशका दर्शन करनेके लिये स्वयं भृगुजी आये। राजाने अर्घ्य, पाद्य और आसनादिके द्वारा भृगुजीका सम्मान करके उनसे यह कहा—'मुनिश्रेष्ठ! इस समय मैं आपके दर्शनमें पवित्र हो गया। जिनोंने पुण्य नहीं किया है, ऐसे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें आपका दर्शन परम दुर्लभ है। मैं सनातन देवदेव नरसिंहकी स्थापना करके उनकी आराधना करना चाहता हूँ, आप कृपया मुझे इसका विधान बतायें। तथा मैं देवदेव श्रीहरिके सम्पूर्ण अवतारोंकी भी सुनना चाहता हूँ; अतः आप उन सभी पुण्यावतारोंकी कथा मुझसे कहिये' ॥ ३—८ ॥

भृगुजी बोले—राजकुमार! सुनो; इस कलियुगमें कोई भी भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखकर उनकी आराधना नहीं कर रहा है। देववर भगवान् नृसिंहमें जिसकी स्थापना भक्ति हो जाती है, उसके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं और उसे प्रत्येक कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है। इस पाण्डुरवंशमें तुम ही श्रेष्ठ पुरुष और भगवान्के अत्यन्त भक्त हो; अतः तुमसे मैं तुम्हारी पूछी हुई सब बातें बतलूँगा; एकाग्रचित होकर सुनो ॥ ९—११ ॥

जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेवका सुन्दर मन्दिर निर्माण कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। जो भगवान् नृसिंहकी सुन्दर लक्ष्मणोंसे युक्त प्रतिमा बनवाता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पाकर विष्णुलोकको जाता है।

प्रतिष्ठां नरसिंहस्य यः करोति यथाविधि।
 निष्कामो नरशार्दूल देहबाधात् प्रमुच्यते ॥ १४
 नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य यः पूजामाचरोत्तरः।
 तस्य कामाः प्रसिध्यन्ति परमं पदमाप्नुयात् ॥ १५
 ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुपाराध्य ते पुरा।
 स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः ॥ १६
 ये ये नृपवरा राजन् मां धातुप्रमुखा नृपाः।
 ते ते विष्णुं समाराध्य स्वर्गलोकमितो गताः ॥ १७
 यस्तु पूजयते नित्यं नरसिंहं सुरेश्वरम्।
 स स्वर्गमोक्षभागी स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १८
 तस्मादेकमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ज्ञया।
 अर्चनाञ्जनसिंहस्य प्राप्स्यसे स्वाभिव्यक्तिम् ॥ १९
 विधिवत्स्थापयेद्यस्तु कारयित्वा जनार्दनम्।
 न तु निर्गमनं तस्य विष्णुलोकाद् भवेन्नृप ॥ २०
 नरो नृसिंहं तमनन्तविक्रमं
 सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजम् ।
 संस्थाप्य भक्त्या विधिवच्च पूजयेत्
 प्रयाति साक्षात् परमेश्वरं हरिम् ॥ २१

इति श्रीनरसिंहपुराणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकाश श्रीनरसिंहपुराणमें अष्टमस्कंध-परिच्छेद-अनन्तरीय सर्गसर्ग अर्थात् पुरा हुआ ॥ ३३ ॥

॥ ३३ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और उसको लीपनेका महान् फल—राजा जयध्वजकी कथा

राजाजय

हरेरर्चाविधिं पुण्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
 त्वत्प्रसादाद्दिशेषेण भगवन् प्रब्रवीहि मे ॥ १
 सम्पार्जनकरो यश्च नरसिंहस्य मन्दिरे।
 यत्पुण्यं लभते तद्दुपलेपनकृत्तरः ॥ २
 शुद्धोदकेन यत्पुण्यं स्थापिते केशवे भवेत्।

नरेश्वर! जो निष्कामभावसे नृसिंहदेवकी विधिवत् प्रतिष्ठा करता है, वह दैहिक दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान् नृसिंहको स्थापना करके सदा उनको पूजा करता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा वह परम पदको प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मादि सभी देवता पूर्वकालमें भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनके प्रसादसे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए थे। राजन्! मां धातु आदि जो-जो प्रधान नरेश हो गये हैं, वे सभी भगवान् विष्णुकी आराधना करके यहाँसे स्वर्गलोकको चले गये। जो सुरेश्वर नृसिंहका प्रतिदिन पूजन करता है, वह स्वर्ग और मोक्षका भागी होता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसीलिये तुम भी प्रतिज्ञापूर्वक दृढचित्त होकर जीवनपर्यन्त भगवान् नृसिंहकी पूजा करते हुए अपना मनोरथ प्राप्त करोगे। नृप! जो भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा बनवाकर विधिवत् उसकी स्थापना करता है, इसका विष्णुलोकसे कभी निष्क्रमण नहीं होता। यदि मनुष्य उन अनन्त विक्रमशाली भगवान् नरसिंहको, जिनके चरण-कमलोंकी देवता तथा असुर, दोनों ही पूजा करते हैं, विधिवत् स्थापना करके भक्तिपूर्वक पूजा करे तो वह साक्षात् परमेश्वर भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ ३२—३३ ॥

राजा बोले—भगवन्! मैं आपके प्रसादसे भगवान्‌के पूजनकी पावन विधिको विशेषरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे विस्तारसे बतायें। भगवान् नृसिंहके मन्दिरमें जो झाड़ू देता है वह, तथा जो उसे लीपता-पोता है, वह पुरुष किस पुण्यको प्राप्त करता है? केशवके लुट जलसे स्नान करनेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है?

क्षीरस्नानेन यत्पुण्यं दद्यात् च मधुना तथा ।
घृतस्नानेन यत्पुण्यं पञ्चगव्येन यद्भवेत् ॥ ३
क्षालिते चोष्णतोयेन प्रतिमायां च भक्तितः ।
कर्पूरागुरुतोयेन मिश्रेण स्नापितेन च ॥ ४
अर्घ्यदानेन यत्पुण्यं पाद्याचमनदानके ।
मन्त्रेण स्नापिते यच्च वस्त्रदानेन यद्भवेत् ॥ ५
श्रीखण्डकुङ्कुमाभ्यां तु अर्चिते किं फलं भवेत् ।
पुष्पैरभ्यर्चिते यच्च यत्फलं धूपदीपयोः ॥ ६
नैवेद्यैर्यत्फलं प्रोक्तं प्रदक्षिणाकृते तु यत् ।
नमस्कारकृते यच्च फलं यत्ततोऽब्रवीतयोः ॥ ७
तालवृन्तप्रदानेन चामरस्य च यद्भवेत् ।
ध्वजप्रदाने यद्विष्णोः शङ्खदानेन यद्भवेत् ॥ ८
एतच्चान्यच्च यत्किञ्चिदज्ञानात् प्रजोदितम् ।
तत्सर्वं कथय ब्रह्मन् भक्तस्य मम केशवे ॥ ९

सूत उवाच

इति सम्प्रेरितो विप्रस्तेन राजा भृगुस्तदा ।
मार्कण्डेयं नियुज्याथ कथने स गतो मुनिः ॥ १०
सोऽपि तस्मिन् मुदायुक्तो हरिभक्त्या विशेषतः ।
राज्ञे प्रवक्तुमारभे भृगुणा चोदितो मुनिः ॥ ११

मार्कण्डेय उवाच

राजपुत्र शृणुष्वेदं हरिपूजाविधिं क्रमात् ।
विष्णुभक्तस्य वक्ष्यामि तवाहं पाण्डुर्वंशज ॥ १२
नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्पार्जनमारभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १३
गोमयेन मुदा तोयैर्यः करोत्युपलेपनम् ।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४
अत्रार्थं यत्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
यच्चकृत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तिर्भवति सत्तम ॥ १५
पुरा युधिष्ठिरो राजा पञ्चभिर्भ्रातृभिर्भुतः ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र काननं विचचार ह ॥ १६

तथा दूध, दही, मधु, शी एवं पञ्चगव्यद्वारा स्नान करानेसे क्या पुण्य होता है? भगवान्‌की प्रतिमाको गर्म जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करानेपर तथा कर्पूर और अगुरु मिले हुए जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? भगवान्‌को अर्घ्य देनेसे, पाद्य और आचमन अर्पण करनेसे, मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलानेसे और वस्त्र-दान करनेसे क्या पुण्य होता है? ॥ १-५ ॥

चन्दन और केसरद्वारा पूजा करनेपर तथा फूलोंसे पूजा करनेपर क्या फल होता है? तथा धूप और दीप देनेका क्या फल है? नैवेद्य निवेदन करनेका और प्रदक्षिणा करनेका क्या फल है? इसी प्रकार नमस्कार करनेसे एवं स्तुति और यशोगान करनेसे कौन सा फल प्राप्त होता है? भगवान्‌ विष्णुके लिये पंखा दान करने, चैत्र प्रदान करने, ध्वजाका दान करने और शङ्ख-दान करनेसे क्या फल होता है? ब्रह्मन्! मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अज्ञानवश मैंने जो नहीं पूछा है, वह सब भी मुझसे कहिये; क्योंकि भगवान्‌ केशवके प्रति मेरी तार्किक भक्ति है ॥ ६-९ ॥

सूतजी बोले—राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे ब्रह्मर्षि भृगु मुनि मार्कण्डेयजीको उतर देनेके लिये नियुक्त करके स्वयं चले गये। भृगुजीकी प्रेरणासे मुनिवर मार्कण्डेयजीने राजावर उनकी हरिभक्तिसे विशेष प्रसन्न होकर उनके प्रति इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १०-११ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—पाण्डुकुलनन्दन राजकुमार! भगवान्‌ विष्णुकी इस पूजा-विधिकी क्रमशः सुनो; तुम विष्णुके भक्त हो, अतः मैं तुम्हें यह सब बताऊँगा। जो भगवान्‌ नरसिंहके मन्दिरमें नित्य झाड़ू लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें आनन्दित होता है। जो गोबर, भिट्टी तथा जलसे वहाँकी भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्तम! इस विषयमें एक प्राचीन सत्य इतिहास है, जिसे सुनकर सब पापोंसे मुक्ति मिल जाती है ॥ १२-१५ ॥

राजेन्द्र! पूर्वकालमें राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा अपने पाँच भाइयोंके साथ वनमें विचरते थे।

शूलकण्टकनिष्क्रान्तास्ततस्ते पञ्च पाण्डवाः ।
 नारदोऽपि गतो नाकं जुष्टेदं तीर्थमुत्तमम् ॥ १७
 ततो युधिष्ठिरो राजा प्रस्थितस्तीर्थमुत्तमम् ।
 दर्शनं पुनिमुख्यस्य तीर्थधर्मोपदेशिनः ॥ १८
 चिन्तयति च धर्मात्मा क्रोधपैशुन्यवर्जितः ।
 दानवो बहुरोमा च तथा स्थूलशिरा नृप ॥ १९
 पाण्डवान् गच्छतो वीक्ष्य दानवो द्रौपदीच्छया ।
 कृत्वा भूप मुने रूपं बहुरोमाऽऽगतस्तदा ॥ २०
 प्रणिधानं विधायाथ आसीनः कुशविष्टरे ।
 विभ्रत् कमण्डलुं पार्श्वे धर्मसूचीं तथा करे ॥ २१
 अक्षमालां जपन्मन्त्रं स्वनासाग्रं निरोक्षयन् ।
 स दृष्टः पाण्डवैस्तत्र रेवायां वनचारिभिः ॥ २२
 ततो युधिष्ठिरो राजा तं प्रणम्य सहानुजः ।
 जगाद वचनं दृष्ट्वा भाग्येनासि महामुने ॥ २३
 तीर्थानि रुद्रदेहायाः सुगोप्यानि निवेदय ।
 मूनीनां दर्शनं नाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम् ॥ २४
 यावन्मुनिमुवाचेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
 तावत्स्थूलशिराः प्राप्तो मुनिरूपधरोऽपरः ॥ २५
 जल्पन्नित्यातुरं वाक्यं को नामास्त्यत्र रक्षकः ।
 भयातुरं नरो जीवं यो रक्षेच्छरणागतम् ॥ २६
 तस्यानन्तफलं स्याद्वै किं पुनर्मां द्विजोत्तमम् ।
 एकतो मेदिनीदानं मेरुभूधरदक्षिणम् ॥ २७
 अन्यतो ह्यार्तजीवानां प्राणसंशयवारणम् ।
 द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः ॥ २८
 उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रौरवम् ।
 अथ मां हृतसर्वस्वं प्राणत्यागपरायणम् ॥ २९
 को रक्षति नरो वीरः पराभूतं हि दानवैः ।
 गृहीत्वा चाक्षमालां मे तथा शुभकमण्डलम् ॥ ३०
 निहतोऽहं कराघातैस्तथा खाटो मनोहरम् ।
 गृहीतं मय सर्वस्वं दानवेन दुरात्मना ॥ ३१

घूमते-घूमते वे चौकों पाण्डव शूल और कण्टकमय भर्गको पार करके एक उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थित हुए । उसके पहले भगवान् नारदजी भी उस उत्तम तीर्थका सेवन करके स्वर्गलोकको लौट गये थे । क्रोध और पशुनतासे रहित धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थान करके तीर्थधर्मका उपदेश करनेवाले किसी मुनिवारके दर्शनकी बात सोच रहे थे, इसी बीचमें बहुरोमा तथा स्थूलशिरा नामक दानव वहाँ आये । भूपाल ! पाण्डवोंको जाने देछ द्रौपदीका अपहरण करनेकी इच्छासे बहुरोमा नामक दानव मुनिका रूप धारण करके वहाँ आया । वह कुशके आसनपर बैठकर ध्यानमग्न हो गया । उसके पार्श्वमें कमण्डलु था और हाथमें उसने कुशकी पवित्री पहन रखी थी । वह नासिकाके अग्रभागका अग्रलोकन करता हुआ रुद्राक्षकी मालासे मन्त्र जप कर रहा था । नयेंदा करवाती वनमें धमण करते हुए पाण्डवोंने वहाँ उसे देखा ॥ १६—२२ ॥

तदनन्तर उसे देखकर राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित प्रणाम करके उससे यह बात कही—महामुने ! भाग्यसे आप वहाँ विद्यमान हैं । इस रुद्रदेहा (देहा)-के समीपवर्ती परम गोपनीय तीर्थोंको हमें बताइये । नाथ ! हमने सुना है कि मुनियोंका दर्शन धर्मका उपदेश करनेवाला होता है ॥ २३—२४ ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर जबतक उस मायावी मुनिसे बात कर ही रहे थे, वज्ररूप हो स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव मुनिरूप धारण किये वहाँ आ पहुँचा । वह बड़े ही अतुरभावसे इस प्रकार पुकार रहा था—अहो ! यहाँ कौन हमारी रक्षा करनेवाला है ? जो मनुष्य शरणमें आये हुए किसी भी भयपीड़ितकी रक्षा करता है, वह अनन्त पुण्यफलका भागी होता है; फिर जो मुझ उत्तम ब्राह्मणकी रक्षा करेगा, उसके पुण्यफलका तो कहना ही क्या है । एक ओर मेरुपर्वतकी दक्षिणापूर्वक सम्पूर्ण पृथिवीका दान और दूसरी ओर पीड़ित प्राणियोंके प्राण-संकटका निवारण—दोनों बराबर हैं । जो पुरुष दुष्टोंद्वारा सताये जाते हुए ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालकोंकी उपेक्षा करता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है । मेरा सर्वस्व लूट लिया गया है । मैं दानवोंसे अपमानित होकर प्राण त्याग देनेको उद्यत हूँ । इस समय कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो मेरी रक्षा कर सके ? दुष्ट दानवने मेरी रुद्राक्षकी माला, सुन्दर कमण्डलु और मनोहर खाट छीनकर मुझे तथ्यइसे मारा है और सर्वस्व लूट लिया है ॥ २५—३१ ॥

इत्याकर्ण्य वचः क्लीबं पाण्डवा जातसम्भवाः ।
 यान्ति रोमाञ्चिता भूयो विधायाग्रिं च तं मुनिम् ॥ ३२

विमुच्य त्रीपदीं तत्र मुनेः पार्श्वे महात्मनः ।
 ततो दूरतरं प्राप्ताः संरम्भात्ते च पाण्डवाः ॥ ३३

ततो युधिष्ठिरोऽवोचत् किं च नो नञ् दृश्यते ।
 कृष्णासंरक्षणार्थाय ब्रज व्यावर्त्य चार्जुन ॥ ३४

ततोऽर्जुनो विनिष्क्रान्तो बन्धुवाक्यप्रणोदितः ।
 ततो युधिष्ठिरो राजा सत्यां वाचमकल्पयत् ॥ ३५

निरीक्ष्य मण्डलं भानोस्तदा सुगहने वने ।
 मम सत्याख्य सुकृताद् धर्मसम्भाषणान् प्रभो ॥ ३६

तथ्यं शंसन्तु त्रिदशा मम संशयभाजिनः ।
 ततोऽम्बरेऽभवद्वाणी तदा भूपाशरीरिणी ॥ ३७

दानवोऽयं महाराज मुनिः स्थूलशिराः स्थितः ।
 नासावुपहृतः केन मार्यपास्य दुरात्मनः ॥ ३८

ततो भीमः कराघातेनश्यमानं हि दानवम् ।
 संरम्भात्कुपितोऽत्यर्थं मौलिदेशे जघान तम् ॥ ३९

सोऽपि रूपं निजं प्राप्य रौद्रे भीममताडयत् ।
 तत्र युद्धं प्रववृते दारुणं भीमदैत्ययोः ॥ ४०

कष्टाद्बभूव भीमोऽपि तस्य स्थूलं शिरो वने ।
 अर्जुनोऽपि समायातो नैव पश्यति तं मुनिम् ॥ ४१

तथा च त्रीपदीं भूयः सार्धं कान्तां च बल्लभाम् ।
 ततो वृक्षं समारुह्य यावत्पश्यति चार्जुनः ॥ ४२

तावद्विधाय तां स्कन्धे शीघ्रं धावति दानवः ।
 संहृता याति दुष्टेन रुदती कुररी यथा ॥ ४३

कुर्यती भीमभीमेति धर्मपुत्रेति यादिनी ।
 तां दृष्ट्वा स यवी वीरः शब्दः संनादयन् दिशः ॥ ४४

इस प्रकारके कातर वचन सुनकर पाण्डव हड़बड़ा गये। ये रोमाञ्चित हो, आग जलाकर उस मुनिके पीछे चले। द्रौपदीको उन लोगोंने पहलेवाले महात्मा मुनिके पास ही छोड़ दिया और स्वयं रोपसे भरकर वहाँसे बहुत दूर निकल गये ॥ ३२-३३ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने कहा—हमें तो यहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता। अर्जुन! तुम द्रौपदीको रक्षाके लिये यहाँसे लौट जाओ। तब भाईके वचनसे प्रेरित होकर अर्जुन वहाँमें बल दिये। राजन्! फिर राजा युधिष्ठिरने उस गहन वनके भीतर सूर्यमण्डलकी ओर देखकर यह सत्य वचन कहा—मेरी सत्यवादिता, पुण्यकर्म तथा धर्मपूर्वक भाषण करनेसे संतुष्ट होकर देवगण संशयमें पड़े हुए मुझको सत्य बात बतला दें ॥ ३४—३६/॥

राजन्! युधिष्ठिरके चीं कहनेपर आकाशमें इस प्रकारका शब्द हुआ, यद्यपि यहाँ घोलनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था—महाराज! यह (जो आपके पास खड़ा है, वह मुनि नहीं) दानव है। स्थूलशिरा नामक मुनि तो सुखपूर्वक है, उनपर किसीके द्वारा कोई उपद्रव नहीं है। वह तो इस दुष्टकी माया है ॥ ३७-३८ ॥

तब भीमने अत्यन्त क्रोधसे युक्त हो उस भागते हुए दानवके मस्तकपर बड़े वेगसे मुष्टिप्रहार किया। फिर तो दानवने भी अपना रौद्ररूप धारण किया और भीमको मुका मारा। इस प्रकार भीम और दानवमें वहाँ दारुण संग्राम छिड़ गया। भीमने उस वनमें बड़े काटसे उसकी स्थूल मस्तकका छेदन किया ॥ ३९-४०/॥

इधर अर्जुन भी जब मुनिके आश्रयपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें न तो वह मुनि दिखायी दिया और न प्राणत्रिणा साथी भाया द्रौपदी ही दोख पड़ी। तब अर्जुनने वृक्षपर चढ़कर ज्यों ही इधर-उधर दृष्टि डाली, त्यों ही देखा कि एक दानव द्रौपदीको अपने कंधेपर बिठाकर बड़ी शीघ्रतासे भागा जा रहा है और उस दुष्टके द्वारा हरी गयी द्रौपदी कुररीकी भाँति 'हा धर्मपुत्र! हा भीम!' इत्यादि रटती हुई विलाप कर रही है। द्रौपदीको उस अवस्थामें देखकर शोक अर्जुन अपनी आवाजसे दिशाओंको गुँजाते हुए चले।

पादन्यासोरुवेगेन प्रभगाः पादपा भृशम् ।
ततो दैत्योऽपि तां तन्वीं विहायाशु प्लावितः ॥ ४५
तथापि चार्जुनो तस्य कोपान्मुञ्चति नासुरम् ।
पतितो मेदिनीपुष्टे तावदेव चतुर्भुजः ॥ ४६
पीते च वाससी बिभ्रत् शङ्खचक्रायुधानि च ।
ततः स विस्मयाक्रान्तो नत्वा पाथौ बबोऽबधत् ॥ ४७

अर्जुन उवाच

कथं कृतेषां भगवन्स्त्वया मायात्र वैष्णवी ।
मयाप्यपकृतं नाथ तत् क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥ ४८
नूनमज्ञानभावेन कर्मैतदारुणं मया ।
तत्क्षान्तव्यं जगन्नाथ चैतन्यं मानवे कुतः ॥ ४९

चतुर्भुज उवाच

नाहं कुण्ठो महाबाहो बहुरोमास्मि दानवः ।
उपयातो हरेर्देहं पूर्वकर्मप्रभावतः ॥ ५०

अर्जुन उवाच

बहुरोमन् पूर्वजातिं कर्म मे शंस तत्त्वतः ।
केन कर्मविपाकेन विष्णोः सारूप्यमाप्तवान् ॥ ५१

चतुर्भुज उवाच

भृषवर्जुन महाभाग सहितो भ्रातृभिर्मम ।
चरितं चित्रमत्यर्थं भृषवतां मुदवर्धनम् ॥ ५२

अहमासं पुरा राजा सोमवंशसमुद्भवः ।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥ ५३

विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः ।
उपलेपरतश्चैव दीपदाने समुद्यतः ॥ ५४

वीतिहोत्र इति ख्यात आसीत् साधुपुरोहितः ।
मम तच्चरितं दृष्ट्वा विप्रो विस्मयमागतः ॥ ५५

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम् ।
अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तं वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५६

राजन् परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण ।
विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि पुरुषर्षभ ॥ ५७

सम्मार्जनपरो नित्यं उपलेपरतस्तथा ।
तन्मे वद महाभाग त्वया किं विदितं फलम् ॥ ५८

उस समय उनके बड़े वेगसे पैर रखनेके कारण अनेकानेक वृक्ष गिर गये। तब वह दैत्य भी उस तन्वज्ञको छोड़कर अकेला ही वेगसे भागा; तथापि अर्जुनने क्रोधके कारण उस असुरका पीछा न छोड़ा। भागते भागते वह दानव एक जगह पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरते ही चार भुजाओंसे मुक्त हो, शङ्ख तथा चक्र आदि कारण किये पीतम्बरधारी विष्णुके रूपमें दीप्त पड़ा। तब कुन्तीनन्दन अर्जुन बड़े ही विस्मित हुए और प्रणाम करके बोले ॥ ४१—४७ ॥

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपने यहाँ वैष्णवी माया क्यों फैला रखी थी? मैंने भी जो आपका अपकार किया है, उसके लिये हे नाथ! मेरे अपराधको क्षमा करें; आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ! अज्ञानके कारण ही मैंने यह दारुण कर्म किया है; इसलिए इसे क्षमा कर दें। भला, एक साधारण मनुष्यमें इतनी समझ कहाँ हो सकती है, जिससे आपको अन्य वेपमें भी पहचान ले ॥ ४८—४९ ॥

चतुर्भुज बोला—महाबाहो! मैं विष्णु नहीं, बहुरोमा नामक दानव हूँ। मैंने अपने पूर्वकर्मके प्रभावसे भागवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है ॥ ५० ॥

अर्जुन बोले—बहुरोमन्! तुम अपने पूर्वजन्म और कर्मका ठीक-ठीक वर्णन करो। तुमने किस कर्मके परिणामसे विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है? ॥ ५१ ॥

चतुर्भुज बोला—महाभाग अर्जुन! आप अपने भाइयोंके साथ मेरे आपन्न विचित्र परिवारको सुनिये; यह कालांतके अन्तर्द्वारों का वर्णनकाल है। मैं पूर्वजन्ममें धन्वंतरिमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विख्यात राजा था। उस समय सदा ही मैं भगवान् नारायणके भजनमें लगा रहता और उनके मन्दिरमें ब्राह्मण लगाया करता था। प्रतिदिन उस मन्दिरको लोपका और [सत्रिमें] वहाँ दीप जलाया करता था। उन दिनों वीतिहोत्र नामक एक साधु ब्राह्मण मेरे यहाँ पुरोहित थे। प्रभो! वे मेरे इस कार्यको देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ५२—५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन वेद-वेदाङ्गोंके पूर्ण विद्वान् पुरोहित वीतिहोत्रजीने बैठे हुए उन विष्णुभक्त राजासे इस प्रकार प्रश्न किया—परम भर्तृ भूपाल! हरिभक्तिपरायण नरश्रेष्ठ! आप विष्णुभक्त पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; क्योंकि आप भगवान्के मन्दिरमें प्रतिदिन ब्राह्मण तथा दीप दिया करते हैं। अतः महाभाग! आप मुझे बताइये कि भगवान्के मन्दिरमें ब्राह्मण देने और वहाँ लोपने-पोतनेका कौन-सा उत्तम फल आप जानते हैं।

कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रियतराणि वै ।
तथापि त्वं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥ ५९
सर्वात्मना महापुण्यं जनेश विदितं तव ।
तद्ब्रूहि यद्यगुह्यं च प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥ ६०

जयध्वज श्रोते

शृणुष्व विप्रशार्दूल ममैव चरितं पुरा ॥ ६१

जातिस्मरत्वाज्ञानामि श्रोतॄणां विस्मयावहम् ।
पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र रैवतो नाम बाडवः ॥ ६२

अयाज्ययाजकोऽहं वै सदैव ग्रामयाजकः ।
पिशुनो निष्ठुरश्चैव अपण्यानां च विक्रयो ॥ ६३

निषिद्धकर्मचरणात् परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥ ६४

परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसकः ।
मद्यपानरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥ ६५

एवं पापरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत् ।
कदाचित् कामचारोऽहं गृहीत्वा ब्राह्मणस्त्रियः ॥ ६६

शून्यं पूजादिभिर्विष्णोर्मन्दिरं प्राप्तवाग्रिशि ।
स्ववस्त्रप्रान्ततो ब्रह्मन् कियदंशः स मार्जितः ॥ ६७

प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थाद् द्विजोत्तम ।
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् ॥ ६८

एवं स्थितं विष्णुगृहे मया भोगेच्छया द्विज ।
तदैव दीपकं दृष्ट्वा आगताः पुरपालकाः ॥ ६९

चौर्यार्थं परदूतोऽयमित्युक्त्वा मामपातयन् ।
खड्गेन तीक्ष्णधारेण शिरश्छित्त्वा च ते गताः ॥ ७०

दिव्यं विमानमारुह्य प्रभुदाससमन्वितम् ।
गन्धर्वगीयमानोऽहं स्वर्गलोकं तदा गतः ॥ ७१

यद्यपि भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले अन्य कर्म भी हैं ही, तथापि महाभाग! आप इन्हीं दो कर्मोंमें सदा संवंधा लगे रहते हैं। नरेश! यदि आपको इनसे होनेवाला महान् पुण्यरूप फल ज्ञात हो और यह छिपानेयोग्य न हो तथा यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो अवश्य ही उस फलको मुझे बताइये ॥ ५९—६० ॥

जयध्वज श्रोते—विप्रवर! इस विषयमें आप मेरा ही पूर्वजन्मका चरित्र सुनें। मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, इससे मैं सब जानता हूँ। मेरा चरित्र श्रोताओंको आश्चर्यमें डालनेवाला है। विप्रेन्द्र! पूर्वजन्ममें मैं रैवत नामका ब्राह्मण था। जिनकी यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, उनसे भी मैं सदा ही यज्ञ कराता था और अनेकों गाँवोंका पुरोहित था। इतना ही नहीं, मैं दूसरोंकी चुगली छानेवाला, निर्दय और नहीं रोखने योग्य वस्तुओंका विक्रय करनेवाला था। निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करनेके कारण मेरे बान्धवोंने मुझे त्याग दिया था। मैं महान् पापी और सदा ही ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला था। परायी स्त्री और पराये धनका लोभी था, प्राणियोंकी हिंसा किया करता था। सदा ही मांस पीता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता था। इस प्रकार मैं प्रतिदिन पापमें लगा रहता और बहुधा लूटपाट भी करता था ॥ ६१—६५ ॥

एक दिन रातमें स्वेच्छान्धारितके कारण मैं कुछ ब्राह्मण-श्रमियोंको पकड़कर एक सुने ठाकुर-मन्दिरमें ले गया। उस मन्दिरमें कभी पूजा नहीं होती थी। [यों हो खण्डहार-सा पड़ा रहता था।] वहाँ श्रमियोंके साथ रमण करनेकी इच्छासे मैंने अपने वस्त्रोंके किनारेसे उस मन्दिरका कुछ भाग बुहारकर साफ किया और हे द्विजोत्तम! [प्रकाशके लिये] दीप जलाकर रख दिया। [यद्यपि मैंने अपनी पाप वासना पूर्ण करनेके लिये ही मन्दिरमें झाड़ू लगायी और दीप जलाया था, तथापि] उससे भी मेरा सारा पापकर्म नष्ट हो गया। ब्राह्मण! इस प्रकार जब मैं उस विष्णुमन्दिरमें भोगकी इच्छासे ठहरा हुआ था, उसी समय वहाँ दीपक देखकर नगरके रक्षक आ पहुँचे और यह कहकर कि 'यह किसी शत्रुका दूत है, यहाँ चोरी करने आया है,' उन्होंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा तीखी भारवाली तलवारसे मेरा मस्तक काटकर वे चले गये। तब मैं भगवान्‌के चारोंदोसे युक्त दिव्य विमानपर आरोहण हो, गन्धर्वोंद्वारा अपना यशोगान सुनता हुआ स्वर्गलोकको चला गया ॥ ६६—७१ ॥

चतुर्भुज उवाच

तत्र स्थित्वा ब्रह्मकल्पं शतं साग्रं द्विजोत्तमाः ।
 दिव्यभोगसमायुक्तो दिव्यरूपसमन्वितः ॥ ७२
 जातोऽहं पुण्ययोगाद्वि सोमवंशसमुद्भवः ।
 जयध्वज इति ख्यातो राजा राजीवलोचनः ॥ ७३
 तत्रापि कालवशतो मृतः स्वर्गमवाप्तवान् ।
 इन्द्रलोकमनुप्राप्य रुद्रलोकं ततो गतः ॥ ७४
 रुद्रलोकाद्ब्रह्मलोकं गच्छता नारदो मुनिः ।
 दृष्ट्वा नमितो नैव गर्वायं हसितश्च सः ॥ ७५
 कुपितः शप्तवान् मां स राक्षसो भव भूपते ।
 इति शापं समाकण्ठ्य दत्तं तेन द्विजन्मना ॥ ७६
 प्रसादितो मया भूय प्रसादं कृतवान् मुनिः ।
 यदा रेवामठे राजन् धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥ ७७
 भार्यापहारं नयतः शापमोक्षो भविष्यति ।
 सोऽहमर्जुन भूपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ७८
 विष्णोः सारूप्यमगमं यामि वैकुण्ठमद्य वै ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढो धर्मपुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९
 गतवान् विष्णुभवनं यत्र विष्णुः श्रिया सह ।
 सम्मार्जनोपलेपाभ्यां महिमा तेन वर्णितः ॥ ८०
 अवशेनापि यत्कर्म कृत्वैषां श्रियमागतः ।
 भक्तिमद्भिः प्रशान्तैश्च किं पुनः सम्यगर्चनात् ॥ ८१

सूत्र उवाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा पाण्डुवंशसमुद्भवः ।
 सहस्रानीकभूपालो हरिपूजारतोऽभवत् ॥ ८२
 तस्माच्छृणुत विप्रेन्द्रा देवो नारायणोऽव्ययः ।
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥ ८३
 अर्चयध्वं जगन्नाथं भूयो भूयो वदाम्यहम् ।
 तर्तुं यदीच्छथ द्विजा दुस्तरं भवसागरम् ॥ ८४
 येऽर्चयन्ति हरिं भक्ताः प्रणतातिहरं हरिम् ।
 ते वन्द्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्याश्च विशेषतः ॥ ८५

चतुर्भुज बोला— इस प्रकार मैंने दिव्यरूप धारणकर, दिव्य भोगोंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास किया। फिर उसी पुण्यके भोगसे चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विख्यात कमलके समान नेत्रोंवाला राजा हुआ। उस जन्ममें भी कालवश मृत्युको प्राप्त होनेपर मैं स्वर्गलोकमें आया। फिर वहाँसे रुद्रलोकको प्राप्त हुआ। एक बार रुद्रलोकसे ब्रह्मलोकको जाते समय मैंने नारदमुनिको देखा, भरतु देखनेपर भी उन्हें प्रणाम नहीं किया और उनको हँसो उड़ाने लगा। इससे कुपित होकर उन्होंने शाप दिया—'राजन्! नू राक्षस हो जा।' उन ब्राह्मणके दिये हुए इस शापको सुनकर मैंने क्षमा माँगकर (किसी तरह) उन्हें प्रसन्न किया। तब मुनिने मुझपर शापानुग्रहके रूपमें कृपा की। [उन्होंने कहा—] राजन्! जिस समय बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी भार्याका हरण करके तुम रेवा-तटवर्ती मठमें चले जाओगे, उस समय तुम्हें शापसे मुक्ति मिल जायगी। भूपाल! धर्मपुत्र युधिष्ठिर! अर्जुन! मैं बही राजा जयध्वज हूँ। इस समय भगवान् विष्णुके सारूप्यको प्राप्त हुआ हूँ। अय मैं निश्चय ही वैकुण्ठभामको जाऊँगा ॥ ७२—७८१, ॥

मार्कण्डेयजी बोले— यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरके देखते-ही-देखते ये राजा जयध्वज गरुडपर आरुढ़ हो विष्णुभामको चले गये, जहाँ लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं। इसीसे विष्णुमन्दिरके चूहारने और लीपनेमें बड़ी महत्ता प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है। [राजा जयध्वजने पूर्वजन्ममें] कामके यशोभूत होकर भी जिस कर्मको करनेसे ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर ली, उसीको यदि भक्तिमान् और शान्त पुरुष को तथा भलीभाँति भगवान्का पूजन करे तो उनको प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें क्या कहना है? ॥ ७९—८१ ॥

सूत्रजी बोले—मार्कण्डेयजीके उपर्युक्त वचन सुनकर पाण्डुरूपमें उत्पन्न राजा सहस्रानीक भगवान्के पूजनमें संलग्न हो गये। इसलिये विप्रवृन्द! आपलोग यह सुन लें कि अविनाशी भगवान् नारायण जानकर अथवा अनजानमें भी पूजा करनेवाले अपने भक्तोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। द्विजो! मैं यह आश्चर्य कहना हूँ कि यदि आपलोग दुस्तर भयसागरके पार जाना चाहते हैं तो भगवान् जगन्नाथकी पूजा करें। जो भक्त प्रणतजनकी कष्ट दूर करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, वे चन्दनीय, पूजनीय और विशेषरूपसे नमस्कार करनेयोग्य हैं ॥ ८२—८५ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे सहस्रानीकजीते मार्कण्डेयेनोपदिष्टसम्यगर्चयोगफलं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-वर्षके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयमुनिद्वारा उपादिष्ट 'मन्दिरमें प्रादुर्भवे और उसके लीपनेकी महिमामय वर्णन' नामक विंशत्यो अध्याय पूरा हुआ है ३३ ॥

चाँतीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके पूजनका फल

श्रीसहस्रनामक उवाच

पुनरेव द्विजश्रेष्ठ मार्कण्डेय महामते।
निर्मात्यापनयाद्विष्णोर्यत्पुण्यं तद्ब्रह्म मे ॥ १

मार्कण्डेय उवाच

निर्मात्यमपनीयाथ तोयेन स्नाप्य केशवम्।
नरसिंहाकृतिं राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २

सर्वतीर्थफलं प्राप्य यानारूढो दिवं व्रजेत्।
श्रीविष्णोः सदनं प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥ ३

आगच्छ नरसिंहेति आवाह्याक्षतपुष्पकैः।
एतावतापि राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४

दत्त्वाऽऽसनमधार्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम्।
देवदेवस्य विधिना सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५

स्नाप्य तोयेन पयसा नरसिंहं नराधिप।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ६

स्नाप्य दध्ना सकृद्यस्तु निर्मलः प्रियदर्शनः।
विष्णुलोकमवाप्नोति पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥ ७

यः करोति हरेरर्चा मधुना स्नापयन्नरः।
अग्निलोके स मोदित्वा पुनर्विष्णुपुरे वसेत् ॥ ८

घृतेन स्नपनं यस्तु स्नानकाले विशेषतः।
नरसिंहाकृतेः कुर्याच्छङ्खभेरीनादितम् ॥ ९

पापकञ्चुकमुन्मुच्य यथा जीर्णमहिस्त्वचम्।
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते ॥ १०

पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तितः।
मन्त्रपूर्वं महाराज तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ११

यश्च गोधूमकैशूर्णीरुद्वर्त्योष्णो न वारिणा।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥ १२

श्रीसहस्रनामकेने पूछा—महामते द्विजवर
मार्कण्डेयजी! अब पुनः यह बताइये कि भगवान्
विष्णुके निर्मात्य (चन्दन-पुष्प आदि) को हटानेसे कौन-
सा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! नृसिंहस्वरूप भगवान्
केशवको निर्मात्य हटाकर जलसे स्नान करानेसे मनुष्य
सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके
सेवनका फल प्राप्तकर, विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गको
चला जाता है और वहाँसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होकर
अक्षयकालपर्यन्त आनन्दका उपभोग करता है। 'भगवन्
नरसिंह! आप यहाँ पधारें'—इस प्रकार अक्षत और
पुष्पोंके द्वारा यदि भगवान्का आवाहन करे तो राजेन्द्र!
इतनेसे भी वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।
देवदेव नृसिंहको विधिपूर्वक आसन, पाद्य (पैर धोनेके
लिये जल), अध्व (हाथ धोनेके लिये जल) और
आचमनीय (कुल्ला करनेके लिये जल) अर्पण करनेसे
भी सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। नराधिप!
भगवान् नृसिंहको दूध और जलसे स्नान कराकर मनुष्य
सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो
एक बार भी भगवान्को दहीसे स्नान कराता है, वह
निर्मल एवं सुन्दर शरीर धारणकर सुखरोंसे पूजित होता
हुआ विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य मधुसे भगवान्को
बहलाता हुआ उनको पूजा करता है, वह अग्निलोकमें
आनन्दोपभोग करके पुनः विष्णुपुर (वैकुण्ठधाम) में
निवास करता है। जो स्नानकालमें श्रीनरसिंहके विग्रहको
शङ्ख और नगारेका शब्द कराते हुए विशेषरूपसे श्रीसे
स्नान कराता है, वह पुरुष पुरानी केंचुलको छोड़नेवाले
सौँपकी भाँति पाप-कन्दुकको त्यागकर दिव्य विमानपर
आरूढ़ हो, विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २—१० ॥

महाराज! जो देवेश्वर भगवान्को भक्तिपूर्वक मन्त्रपाठ
करते हुए पञ्चगव्यसे स्नान कराता है, उसका पुण्य
अक्षय होता है। जो गेहूँके आटेसे देवदेवेश्वर
भगवान्को उषटन लगाकर गरम जलसे उन्हें
बहलाता है, वह लङ्गालोकको प्राप्त होता है।

पादपांठं तु यो भक्त्या विल्वपर्त्रिर्निर्घषितम् ।
 उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १३
 कुशपुष्पोदकैः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
 रत्नोदकेन सावित्रं कौबरे हेमवारिणा ।
 नरसिंहं तु संस्त्राप्य कर्पूरागुरुवारिणा ॥ १४
 इन्द्रलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरं वसेत् ।
 पुण्योदकेन गोविन्दं स्त्राप्य भक्त्या नरोत्तम ॥ १५
 सावित्रं लोकमासाद्य विष्णुलोके महीयते ।
 वस्त्राभ्यामर्चनं भक्त्या परिधाप्य हरिं हरेः ॥ १६
 सोमलोके रमित्वा च विष्णुलोके महीयते ।
 कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकदंभैरच्युताकृतिम् ॥ १७
 आलिप्य भक्त्या राजेन्द्र कल्पकोटिं वमेश्वरि ।
 मल्लिकामालतीजातिकेतक्यशोकचम्पकैः ॥ १८
 पूर्वागनागवकुलैः पर्वरुत्पलजातिभिः ।
 तुलसीकरवीरैश्च पालाशैः सानुकुम्भकैः ॥ १९
 एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तेरच्युतं नरः ।
 अर्चयेद्दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ २०
 मालां कृत्वा यथात्ताभमेतेषां विष्णुमर्चयेत् ।
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ २१
 दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके स मोदते ।
 नरसिंहं तु यो भक्त्या विल्वपर्त्रैरखण्डितैः ॥ २२
 निश्छिद्रैः पूजयेद्यस्तु तुलसीभिः समन्वितम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ॥ २३
 काञ्चनेन विमानेन विष्णुलोके महीयते ।
 माहिषाख्यं गुग्गुलं च आन्ययुक्तं सशर्करम् ॥ २४
 धूपं ददाति राजेन्द्र नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
 धूपितैः सर्वदिग्ध्यस्तु सर्वपापविर्वाजितः ॥ २५
 अप्सरोगणसंकीर्णविमानेन विराजते ।
 वायुलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ २६

जो भगवान्के पादपांठ (पैर रखनेके पीड़े, चीको या चरणपादुका) को भक्तिपूर्वक विल्वपर्त्रसे रगड़कर गाम्ब जलसे धोता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । कुश और पुष्पनिर्मित जलसे भगवान्को स्नान कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, रत्नयुक्त जलसे स्नान करानेपर सूर्यलोकको और सुवर्णयुक्त जलसे नहलानेपर कुबेरलोकको प्राप्त करता है । जो कपूर और अगुरुमिश्रित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाता है, वह पहले इन्द्रलोकमें सुखेपभोग करके फिर विष्णुधाममें निवास करता है । जो तुल्यवेष्ट तीर्थके पवित्र जलसे गोविन्दको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह आदित्यलोकको प्राप्त करके पुनः विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो भक्तिपूर्वक भगवान्को मुगल वत्त पादपात्र दानकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें सुखभोग करके पुनः विष्णुधाममें सम्मानित होता है ॥ ११-१६ १/२ ॥

राजेन्द्र । जो कुङ्कुम (केसर), अगुरु और चन्दनके अनुलेपनसे भगवान्के विग्रहको भक्तिपूर्वक अनुलित करता है, वह कनोड़ों कल्पितक स्वर्गलोकमें निवास करता है । जो मनुष्य मालिका, मालती, जाती, केतासी, अशोक, चम्पा, पुनाग, नागकेसर, जकुल (मौलसिरी), उत्पल जातिके कमल, तुलसी, कनेर, पल्लव—इनसे तथा अन्य उत्तम पुष्पोंसे भगवान्की पूजा करता है, वह प्रत्येक पुष्पके बदले दस सुवर्ण मुद्रा दान करनेका फल प्राप्त करता है । जो यथाशक्त उपयुक्त पुष्पोंकी माला बनाकर उससे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह सैकड़ों और हजारों करोड़ कल्पवृक्षक दिव्य विमानपर आरुढ़ हो विष्णुलोकमें अर्चन्दित होता है । जो छिद्रहीन अखण्डित विल्वपर्त्रों और तुलसीदल्लोंसे भक्तिपूर्वक श्रीनृसिंहका पूजन करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा मुक्त हो, सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित होकर सोनेके विमानपर आरुढ़ हो विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १७-२३ १/२ ॥

राजेन्द्र । जो माहिष गुग्गुल, पी और शर्करासे तैयार की हुई धूपसे भगवान् नरसिंहके लिये भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह सब दिग्ध्यमें धूप करनेसे सब पापोंसे रक्षित हो अप्सराओंसे पूर्ण विमानद्वारा वायुलोकमें विराजमान होता है और वहाँ आनन्दोपभोगके पदवात् पुनः विष्णुधाममें जाता है ।

घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः।
विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं भृशम् ॥ २७
विहाय पापकलिलं सहस्रादित्यसप्रभः।
ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २८
हविः शाल्योदनं विद्वानान्ययुक्तं मशकंरम्।
निवेद्य नरसिंहाय यावकं पापसं तथा ॥ २९
समास्तन्दुलसंख्याया यावतीस्तावतीर्नृप।
विष्णुलोके महाभोगान् भुञ्जन्नास्ते स वैष्णवः ॥ ३०
बलिना वैष्णवेनाथ नृणाः सन्तो दिवीकसः।
शान्तिं तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यमेव च ॥ ३१
प्रदक्षिणेन चैकेन देवदेवस्य भक्तितः।
कृतेन यत्फलं नृणां तच्छृणुष्व नृपात्मज ॥ ३२
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं प्राप्य विष्णुपुरे वसेत्।
नमस्कारः कृतो येन भक्त्या वै माधवस्य च ॥ ३३
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं फलं तेनात्ममञ्जसा।
स्तोत्रैर्जपैश्च देवाग्रे यः स्तोति मधुसूदनम् ॥ ३४
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते।
गीतयाद्यादिकं नाट्यं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ३५
यः कारयति वै विष्णोः स याति मन्दिरं नरः।
पर्वकाले विशेषेण कामगः कामरूपवान् ॥ ३६
सुसंगीतविदंश्चैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
महार्हमणिचित्रेण विमानेन विराजता ॥ ३७
स्वर्गात् स्वर्गमनुप्राप्य विष्णुलोके महीयते।
ध्वजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम् ॥ ३८
दद्यात्सोऽपि ध्वजाकीर्णविमानेन विराजता।
विष्णुलोकमवाप्नोति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ३९
सुवर्णाभरणैर्दिव्यैर्हारैर्यूरकुण्डलैः।
मुकुटाभरणाद्यैश्च यो विष्णुं पूजयेत्तृप ॥ ४०
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः।
इन्द्रलोके वसेद्धीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४१

जो मनुष्य विधिपूर्वक भक्तिके साथ धी अथवा तेलसे भगवान् विष्णुके लिये दीप प्रज्वालित करता है, उस पुण्यका फल सुनिये। वह पाप-पट्टसे मुक्त होकर हजारों सूर्यके समान बह्नि धरणकर ज्योतिर्मय विमानसे विष्णुलोकको जाता है। जो विद्वान् हविष्य, धी-शकरसे युक्त अगहनीक चावल, जौकी लपसी और खीर भगवान् नरसिंहको निवेदन करता है, वह वैष्णव चावलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें महान् भोगोंका उपभोग करता है। भगवान् विष्णुसम्बन्धी बलिसे सम्पूर्ण देवता तृप्त होकर पूजा करनेवालोंको शान्ति, लक्ष्मी तथा आरोग्य प्रदान करते हैं ॥ २७-३१ ॥

उत्तकुमार। भक्तिपूर्वक देवदेव विष्णुकी एक बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, उसे सुनिये। वह सारी पृथ्वीको परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करके वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जिसने कभी भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीपतिको नमस्कार किया है, उसने अनायास ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्राप्त कर लिया। जो स्तोत्र और जपके द्वारा मधुसूदनकी उनके समझ होकर स्तुति करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पुजित होता है। जो भगवान्के मन्दिरमें शङ्ख, तुरही आदि बाजोंके शब्दसे युक्त गाना-बजना और नाटक करता है, वह मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त होता है। विशेषतः पर्वके समय उत्त उतसव करनेसे मनुष्य कामरूप होकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और सुन्दर संगीत जाननेवाली अप्सराओंसे शोभायमान बहुमूल्य मणियोंसे जड़े हुए देदीप्यमान विमानके द्वारा एक स्वर्गसे दूसरे स्वर्गको प्राप्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् विष्णुके लिये गरुडध्वजसे युक्त ध्वज अर्पण करता है, वह भी ध्वजार्पणदत्त जगन्नाथ हुए विमाननर आरुढ़ हो, अप्सराओंसे सेवित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ३२-३९ ॥

नरेश्वर। जो सुवर्णके बने हुए दिव्य हार, केयूर, कुण्डल और मुकुट आदि आभरणोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह दुर्द्धमान् सब पापोंसे मुक्त और सब आभूषणोंसे भूषित होकर जयन्तक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं, लघ्वतक (अर्थात् पूरे एक वर्षतक) इन्द्रलोकमें निवास करता है।

यो गां प्रयस्विनीं विष्णोः कपिलां सम्प्रयच्छति ।
 आराध्य तमथाग्रे तु यत्किञ्चिद्दुग्धमुत्तमम् ॥ ४२
 तदृत्वा नरसिंहाय विष्णुलोके महीयते ।
 पितरस्तस्य मोदन्ते श्वेतद्वीपे चिरं नृप ॥ ४३
 एवं यः पूजयेद्राजन् नरसिंहं नरोत्तमः ।
 तस्य स्वर्गापवर्गा तु भवतो नात्र संशयः ॥ ४४
 यत्रैवं पूज्यते विष्णुर्नरसिंहो नरनृप ।
 न तत्र व्याधिदुर्भिक्षराजचौरादिकं भयम् ॥ ४५
 नरसिंहं सपाराध्य विधिनानेन माधवम् ।
 नानास्वर्गसुखं भुक्त्वा न भूयः स्तनपे भवेत् ॥ ४६
 नित्यं सर्पिस्तिलहोमो ग्रामे यस्मिन् प्रवर्तते ।
 न भवेत्तस्य ग्रामस्य भयं वा तत्र कुत्रचित् ॥ ४७
 अनावृष्टिर्महामारी दोषा नो दाहका नृप ।
 नरसिंहं सपाराध्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ४८
 कारयेत्तक्षहोमं तु ग्रामे यत्र पुराधिपः ।
 कृते तस्मिन्मयोक्ते तु आगच्छति न तद्भयम् ॥ ४९
 दृष्टोपसर्गमरणं प्रजानामात्मनश्च हि ।
 सम्यगाराधनीयं तु नरसिंहस्य मन्दिरे ॥ ५०
 शङ्करायतने चापि कोटिहोमं नराधिप ।
 कारयेत् संयतेर्विष्टैः सभोजनसदक्षिणैः ॥ ५१
 कृते तस्मिन्नुपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।
 उपसर्गादिमरणं प्रजानामुपशाम्यति ॥ ५२
 दुःस्वप्नदर्शने घोरं ग्रहपीडासु चात्मनः ।
 होमं च भोजनं चैव तस्य दोषः प्रणश्यति ॥ ५३
 अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
 नरसिंहं सपाराध्य तक्षहोमं तु कारयेत् ॥ ५४
 शान्तिर्भवति राजेन्द्र तस्य तत्स्थानवासिनाम् ।
 एवमादिफलोपेतं नरसिंहार्चनं नृप ॥ ५५
 कुरु त्वं भूपतेः पुत्र यदि वाञ्छसि सद्गतिम् ।
 अतः परतरं नास्ति स्वर्गप्रेक्षफलप्रदम् ॥ ५६

जो विष्णुको आराधना करके उनके लिये दुग्ध कपिला
 गौ दान करता है और उन भगवान् नरसिंहके समक्ष
 उसका उत्तम दूध शोड़ा-सा भी अर्पण करता है, वह
 विष्णुलोकमें सम्मानित होता है तथा राजन्! उसके पितर
 चिरकालतक श्वेतद्वीपमें आनन्द भोगते हैं। भूपाल! इस
 प्रकार जो नरश्रेष्ठ नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन
 करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं,
 इसमें संशय नहीं है ॥ ४०—४४ ॥

नृप! जहाँ मनुष्योंद्वारा इस प्रकार भगवान् नरसिंहका पूजन
 होता है, वहाँ रोग, अकाल और राजा तथा चोर आदिका भय
 नहीं होता। इस विधिसे लक्ष्मीपति नरसिंहकी आराधना करके
 मनुष्य राजा प्रकारके स्वर्ग-सुख भोगता है और पुनः उसे
 [संसारमें जन्म लेकर] माताका दूध नहीं पीना पड़ता [यह
 मुक्त हो जाता है]। जिस गौधमें [भगवान् के मन्दिरके निकट]
 प्रतिदिन भी और तिलसे होम होता है, उस गौधमें अनावृष्टि,
 महामारी आदि दोष तथा अग्निदाह आदि किसी प्रकारका भय
 नहीं होता। जिस गौधमें गौधका मलिनक पेदवेता ब्राह्मणोंद्वारा
 नरसिंहकी आराधना करके एक लक्ष होम कराता है, वहाँ
 भी कथनानुसार या कार्य सम्पन्न होनेपर महामारी
 आदि प्रायश्च उपद्रवसे बलाका तथा उस गौधमें रहनेवाली
 प्रजाका अकालमरण नहीं होता। इसलिये भगवान् नरसिंहके
 मन्दिरमें भली प्रकारसे आराधना करनी चाहिये ॥ ४५—५० ॥

नरेन्द्र! इसी प्रकार शङ्करजीके मन्दिरमें भी संयमशील
 ब्राह्मणोंके द्वारा उन्हें भोजन और दक्षिणा देकर एक
 करोड़की संख्यामें हवन कराना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! उसके
 करनेपर भगवान् नरसिंहके प्रसादसे प्रजावर्गका आकास्मिक
 उपद्रव तथा मनुष्यभय शान्त हो जाता है। घोर दुःस्वप्न
 देखनेपर और अपने ऊपर ग्रहजन्य कष्ट आनेपर होम
 और ब्राह्मणभोजन करानेसे उसका दोष मिट जाता है।
 दक्षिणायन या उत्तरायण आरम्भ होनेपर, विषुवकालमें,
 अथवा शक्रमा तथा सूर्यका ग्रहण होनेपर भगवान् नरसिंहकी
 आराधना करके तक्षहोम कराना चाहिये। राजेन्द्र! यों
 करनेसे उस स्थानके निवासियोंके विघ्नकी शान्ति हो
 जाती है। नरेन्द्र! भगवान् नरसिंहको पूजाके ऐसे अनेकों
 फल हैं। भूपालनन्दन! यदि तुम सद्गति चाहते हो तो
 नरसिंहका पूजन करो। इससे बह्मकर कोई भी कार्य ऐसा
 नहीं है, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाला हो।

नरेन्द्रैः सुकरं कर्तुं देवदेवस्य पूजनम् ।
सन्त्यरण्ये ह्यमूल्यानि पत्रपुष्पाणि शाखिनाम् ॥ ५३
तोयं नदीतडागेषु देवः साधारणः स्थितः ।
मनो नियमयेदेकं विद्यासाधनकर्मणि ॥ ५४
मनो नियमितं येन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ ५९

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवमुक्तं भृगुबोदिनेन
मया तत्रेहार्चनमव्युतस्य ।
दिने दिने त्वं कुरु विष्णुपूजां
वदस्य चान्यत्कथयामि किं ते ॥ ६०

इति श्रीनारसिंहपुराणे सप्तशतीकपरिने श्रीविष्णोः पूजविधिर्नाम शतमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणके अन्त्यर्ण्डे सप्तशतीक-परिचरके प्रसन्नर्चने श्रीविष्णुके पूजनकी विधि कथक परिसमाप्त अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

लक्षहोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल

राजवाच

अहो महत्त्वया प्रोक्तं विष्ण्वाराधनजं फलम् ।
सुमास्ते मुनिशार्दूल ये विष्णुं नार्चयन्ति वै ॥ १
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं होतव्रसिंहार्चनक्रमम् ।
भक्त्या तं पूजयिष्यामि कोटिहोमफलं वद ॥ २

मार्कण्डेय उवाच

इममर्थं पुरा पृष्टः शौनको गुरुणा नृप ।
यत्तस्मै कथयामास शौनकस्तद्वदामि ते ॥ ३
शौनकं तु सुखासीनं पर्यपृच्छद् बृहस्पतिः ।

बृहस्पतिरुवाच

लक्षहोमस्य या भूमिः कोटिहोमस्य या शुभा ॥ ४
तां मे कथय विप्रेन्द्र होमस्य चरितं विधिम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो गुरुणा सोऽथ लक्षहोमादिकं विधिम् ॥ ५
शौनको वक्तुमारेभे यथावत्प्रपसत्तम ।

देवदेव नृसिंहका पूजन राजाओंके लिये तो बहुत ही सुकर है। परंतु जो अरण्यमें रहते हैं, उन्हें भी भगवान्की पूजाके लिये वृक्षोंके पत्र-पुष्प बिना मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। जल नदी और तडाग आदिमें सुलभ है ही और भगवान् नृसिंह भी सबके लिये समान हैं; केवल उन उपासनाके साधनभूत कर्ममें मनकी एकाग्रता चाहिये। जिसने मनका नियमन कर लिया है, मुक्ति उसके हाथमें ही है ॥ ५१—५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार भृगुजीको आज्ञामें मैंने तुमसे यहाँ भगवान् विष्णुके पूजनका वर्णन किया है। तुम प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन करो और बोलो, अब मैं तुम्हें और क्या बताऊँ? ॥ ६० ॥

राजा बोले—अहो! आपने श्रीविष्णुकी आराधनामें होनेवाले बहुत बड़े फलका वर्णन किया। मुनिश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, वे अवश्य ही [मोहनिग्रमं] सोते हुए हैं। मैंने आपकी कृपासे भगवान् नृसिंहके पूजनका यह क्रम सुना; अब मैं भक्तिपूर्वक उनको पूजा करूँगा। आप कृपा करके (लक्षहोम तथा) कोटिहोमका फल बताइये ॥ १—२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृप! पूर्वकालमें इसी विषयको बृहस्पतिजीने शौनक श्रौधमें पूछा था, इसके उत्तरमें उनमें शौनकजीने जो कुछ बताया, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ। सुखपूर्वक बैठे हुए शौनकजीसे बृहस्पतिजीने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ३ ॥

बृहस्पतिजी बोले—विप्रेन्द्र! लक्षहोम और कोटिहोम-के लिये जो भूमि प्रशस्त हो, उसकी मुझे बताइये और होमकर्मकी विधिका भी वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृपवर! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर शौनकजीने लक्षहोम आदिकी विधिका यथावत् वर्णन आरम्भ किया ॥ ५ ॥

श्रीनरकजी बोले—

प्रवक्ष्यामि यथावत्ते शृणु देवपुरोहित ॥ ६

लक्षहोममहाभूमिं तद्विशुद्धिं विशेषतः ।
यज्ञकर्मणि शस्ताया भूमेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ७

सुसंस्कृतां समां स्त्रिधां पूर्वपूर्वमद्योत्तमाम् ।
ऊरुमात्रं खनित्वा च शोधयेत्तां विशेषतः ॥ ८

बहिरच्छतया तत्र मुदाच्छाद्य प्रलेपयेत् ।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु सर्वतः कुण्डलक्षणम् ॥ ९

चतुरस्रं चतुष्कोणं तुल्यमूत्रेण कारयेत् ।
उपरि मेखलां कुर्याच्चतुरस्रां सुविस्तराम् ॥ १०

चतुरङ्गुलमात्रं तु उच्चितां मूत्रसूत्रिताम् ।
ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नान् ब्राह्मकर्मसम्पन्नितान् ॥ ११

आमन्त्रयेद् यथान्यायं यजमानो विशेषतः ।
ब्राह्मचर्यव्रतं कुर्युस्त्रिरात्रं ते द्विजातयः ॥ १२

अहोरात्रमुपोष्याद्य गायत्रीमयुतं जपेत् ।
ते शुक्लवाससः स्नाता गन्धस्त्रक्पुष्पधारिणः ॥ १३

शुचयश्च निराहाराः संतुष्टाः संयतन्त्रियाः ।
कौशमासनमासीना एकाग्रमनसः पुनः ॥ १४

आरभेयुश्च ते यत्रात्ततो होममतन्त्रिताः ।
भूमिमालिख्य चाभ्युक्ष्य यज्ञादग्निं निधापयेत् ॥ १५

गृहोक्तेन विधानेन होमं तत्र च होमयेत् ।
आधारावान्यभागौ च जुहुयात्पूर्वमेव तु ॥ १६

यवधान्यतिलैर्मिश्रां गायत्र्या प्रथमाहुतिम् ।
जुहुयादेकचित्तेन स्वाहाकारान्वितां युधः ॥ १७

गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रतिष्ठिता ।
सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा ऋषिः ॥ १८

विस्तृत भूमि और उसको शुद्धि का विशेषरूपसे यथावत् वर्णन करेगा, आप सुनें। यज्ञकर्म के लिये प्रशस्त भूमिका उत्तम लक्षण (संस्कार) इस प्रकार है ॥ ६-७ ॥

जो भूमि अच्छी तरह संस्कार की हुई हो, बराबर हो और चिकनी हो [ये सभी बातें हों तो परम उत्तम भूमि है; सभी बातें न संघटित हों तो] पूर्व-पूर्वकी भूमि उत्तम है। [अर्थात् चिकनीको अपेक्षा बराबर भूमि अच्छी है और उससे भी सुसंस्कृत भूमि उत्तम है।] ऐसे उत्तम भूमिको ऊरु (ऊपर)-पर्यन्त छोड़कर उसका विशेषरूपसे [गङ्गाजल एवं चङ्गण्य्यादि छिड़ककर] शोधन करें और कुण्डके बाहर स्वच्छताके लिये मिट्टी [तथा गोबर] डालकर लिपाये। कुण्ड सब ओरसे एक हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा होना चाहिये—यही कुण्डका लक्षण है। एक हाथका सूत लेकर उसीसे माप करके चारों ओरसे बराबर और चौकोर कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके ऊपर सब ओरसे बराबर और सुब बिल्कुल मेखला बनकाये। उसकी ऊँचाई भी चार अंगुलकी ही हो और यह सूतसे परीक्षित हो ॥ ८—१० ॥

इसके बाद यजमानको चाहिये कि वह ब्राह्मणोंपर कर्मका पालन करनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे आमन्त्रित करे। यजमान और उन ब्राह्मणोंको तीन रात्रितक विशेषरूपसे ब्राह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये ॥ ११—१२ ॥

यजमान एक दिन और एक रात्रि उपवास करके दस हजार गायत्रीका जप करे। [हवन आरम्भ होनेके दिन] विज्रगण भी स्नान करके शुद्ध एवं श्रेष्ठ वस्त्र धारण करें। फिर गन्ध, पुष्प और माला धारण करके पवित्र, संतुष्ट और जितेन्द्रिय होकर, भोजन किये बिना ही कुण्डके खन हुए आसनपर एकाग्रचित्तसे बैठें। तदनन्तर ये यज्ञपूर्वक निराहृत्यभावसे हवन आरम्भ करें। पहले गृह्यसूत्रोक्त विधिसे भूमिपर [कुत्तोंसे] देखा करके उसे सींचे और वहाँ यज्ञसे अग्नि-स्थापन करे। फिर उस अग्निमें हवनीय पदार्थोंका होम करे। सर्वप्रथम आधार और आग्नेयभाग—ये दो होम करने चाहिये। विद्वान् पुरुष जी, चावल और तिल [एवं घृत आदिसे] मिश्रित प्रथम आहुतिका गायत्री-मन्त्रद्वारा [अन्तमें] स्वाहाके उच्चारणपूर्वक एकाग्रचित्तसे हवन करे। गायत्री छन्दोंकी माता और ब्रह्म (वेद)-की योनिरूपसे प्रतिष्ठिता है। उसके देवता सविता हैं और ऋषि विश्वामित्रजी हैं। (इस प्रकार गायत्रीका विनियोग बताया गया है) ॥ १३—१८ ॥

ततो व्यावृत्तिभिः पञ्चाङ्गहयाच्च तिलान्वितम् ।
 यावत्प्रपूर्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा ॥ १९
 तावद्धोमं तिलैः कुर्यादच्युतार्चनपूर्वकम् ।
 दीनानाद्यजनेभ्यस्तु यजमानः प्रयत्नतः ॥ २०
 तावच्च भोजनं दद्याद् यावद्धोमं समाचरेत् ।
 समाप्ते दक्षिणां दद्याद् ऋत्विग्भ्यः श्रद्धयान्वितः ॥ २१
 यद्याहंता न लोभेन ततः शान्त्युदकेन च ।
 प्रोक्षयेद् ग्राममध्ये तु व्याधितास्तु विशेषतः ॥ २२
 एवं कृते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च ।
 राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च ।
 सर्वबाधाप्रशमनी शान्तिर्भवति सर्वदा ॥ २३

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतच्छीनकप्रोक्तं कथितं नृपनन्दन ।
 लक्षहोमादिकविधिं कार्यं राष्ट्रे सुशान्तिदम् ॥ २४
 ग्रामे गृहे वा पुरबाह्यदेशे
 द्विजैरयं यत्नकृतः पुरोविधिः ।
 तत्रापि शान्तिर्भवति नराणां
 गवां च भृत्यैः सह भूपतेः ॥ २५

इति श्रीमत्सिंहपुराणे लक्षहोमविधिनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'लक्षहोमविधिनाम' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अवतार-कथाका उपक्रम

मार्कण्डेय उवाच

अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः ।
 ताञ्छृणुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान् ॥ १
 यथा मत्स्येन रूपेण दत्ता वेदाः स्वयम्भुवे ।
 मधुकैटभी च निधनं प्रापितौ च महात्मना ॥ २
 यथा कर्मिण रूपेण विष्णुना मन्दरो धृतः ।
 तथा पृथ्वी धृता राजन् वाराहेण महात्मना ॥ ३

केवल गायत्रीसे हवन कर लेनेके परचात् ['भूर्भुवः स्वः'—इन] तीन व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रसे केवल तिलका हवन करे। जबतक हवनकी संख्या एक लाख या एक करोड़ न हो जाय, तबतक भगवान् विष्णुके पूजनपूर्वक तिलद्वारा हवन करते रहना चाहिये और जबतक हवन करे, तबतक यजमानको चाहिये कि यह यज्ञपूर्वक दोनों और जनार्थको भोजन दे। हवन समाप्त होनेपर ऋत्विजोंको श्रद्धापूर्वक लोभ त्यागकर यथोचित दक्षिणा दे। तत्पश्चात् [प्रथम स्थापित किये हुए] शान्ति-कलाशके जलसे उस ग्राममें रहनेवाले सभी मनुष्यों—विशेषतः रोगियोंको अभिषेक करे। महाभाग! इस प्रकार विधिबत् होमका अनुष्ठान करनेपर पुर (गाँव), नगर, जनपद (प्रान्त) और समस्त राष्ट्रकी सारी बाधाएँ दूर करनेवाली शान्ति निरन्तर बनी रहती है ॥ १९—२३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृपनन्दन। इस प्रकार शीनक मुनिका बताया हुआ लक्षहोम-विधि का अनुष्ठान जो खसत राष्ट्रमें शुभ शान्ति प्रदान करनेवाला है, मैंने तुम्हें बताया। यदि ब्राह्मणोंद्वारा यह पूर्वोक्त होम-विधि ग्राममें, घरमें अथवा पुरके बाहर प्रयत्नपूर्वक करायी जाय तो वहाँ भी मनुष्योंको, गौओंको और अनुश्रुतोंसहित राजाको पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥ २४—२५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महीपाल! अब मैं देवदेव भगवान् विष्णुके पवित्र एवं पापनाशक अवतारोंका वर्णन करूँगा; उन्हें सुनो ॥ १ ॥

महात्मा भगवान् विष्णुने जिस प्रकार मत्स्यरूप धारणकर [प्रलयकालीन समुद्रमें खोये हुए] वेद लाकर ब्रह्मणोंको अर्पित किये और मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंको मौतके धात उठाये; फिर उन भगवान् विष्णुने जिस प्रकार कूर्मरूपसे मन्दराक्षत पर्वत धारण किया और महाकाय वाराह-

तेनैव निधनं प्राप्नो यथा राजन् महाबलः ।
हिरण्याक्षो महावीर्यो दितिपुत्रो महातनुः ॥ ४

यथा हिरण्यकशिपुस्त्रिदशानामरिः पुरा ।
नरसिंहेन देवेन प्रापितो निधनं नृप ॥ ५

यथा बद्धो बलिः पूर्वं वामनेन महात्मना ।
इन्द्रस्त्रिभुवनध्यक्षः कृतस्तेन नृपात्मज ॥ ६

रामेण भूत्वा च यथा विष्णुना रावणो हतः ।
सगणाश्चाद्भुता राजन् राक्षसा देवकण्ठकाः ॥ ७

यथा परशुरामेण क्षत्रमुत्सादितं पुरा ।
बलभद्रेण रामेण यथा दैत्यः पुरा हतः ॥ ८

यथा कृष्णेन कंसाद्या हता दैत्याः सुरद्विषः ।
कलीं प्राप्ते यथा बुद्धो भवेन्नारायणः प्रभुः ॥ ९

कालिकरूपं समास्थाय यथा म्लेच्छा निपातिताः ।
समाप्ते तु कलीं भूयस्तथा ते कथयाम्यहम् ॥ १०

हरैरनन्तस्य पराक्रमं यः
भृणोति भूपाल समाहितात्मा ।
प्रयोच्यमानं स विमुच्य पापं
प्रयाति विष्णोः पदमत्युदारम् ॥ ११

इति श्रीनरसिंहपुराणं हरैः प्रदुर्भीकानुक्रमेण कर्तव्यं ॥ अध्यायः ३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'बीरसिंहे अवतारोक्तौ अनुक्रमणिका' (५१५) विषयक सतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

ॐ नमः शिवाय

सैंतीसवाँ अध्याय

मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध

मार्कण्डेय उवाच

नानात्वादवताराणामच्युतस्य महात्मनः ।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तान् द्रवीमि समासतः ॥ १
पुरा किल जगत्प्रवृत्ता भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अनन्तभोगशयने योगनिद्रां समागतः ॥ २

अवतार लेकर [अपनी दाढ़ोंपर] इस पृथ्वीको उठाया तथा राजन् ! उन्होंने हाथसे जिस प्रकार महाबली, महापराक्रमी और महाकाय दितिकुमार हिरण्याक्ष मारा गया; राजन् ! फिर उन भगवान् ने तृसिंहरूप धारणकर पूर्वकालमें जिस प्रकार देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुका यध किया; और राजकुमार ! जिस प्रकार उन महत्प्रमाने वामनरूप होकर पूर्वकालमें राजा बलिको यौधा तथा इन्द्रको (फिरसे) त्रिभुवनका अधीश्वर बना दिया; और राजन् ! भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रका अवतार धारणकर जिस प्रकार रावणको माया एवं देवताओंके लिये कण्ठकरूप अद्भुत राक्षसोंका उनके गणोंसहित संग्रह कर दिया; फिर पूर्वकालमें परशुराम-अवतार ले, जिस प्रकार क्षत्रियकुलका उच्छेद किया तथा बलभद्ररूपमें जिस प्रकार प्रलम्बादि दैत्योंका यध किया; कृष्णरूप होकर कंस आदि देवशत्रु दैत्योंका जिस तरह संग्रह किया; इसी प्रकार कलियुग प्राप्त होनेपर जिस प्रकार भगवान् नारायण बुद्धरूप धारण करेंगे; फिर कलियुग समाप्त होनेपर जिस प्रकार वे कालिकरूप धारणकर म्लेच्छोंका नाश करेंगे, वह सब धनान्त उसी प्रकार मैं तुमसे कहूँगा ॥ २-१० ॥

भूपाल ! जो एकाग्रचित्त होकर मीढ़द्वारा बतने जानेवाले अचल भगवान् विष्णुके इन पराक्रमोंका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् के अत्यन्त उदार परमपदको प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महात्मा भगवान् अच्युतके बहुत से अवतार हैं, सुनने उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इसलिये मैं उन्हें संक्षेपसे ही कहता हूँ। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें जगत्की सृष्टि करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम 'अनन्त' नामक शेषनगणके शरीरको जग्यापर

अथ तस्य प्रसुप्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
श्रोत्राभ्यामपतत् तोये स्वेदबिन्दुद्वयं नृप ॥ ३

मधुकैटभनामानौ तस्माज्जातौ महाबलौ ।
महाकायौ महावीर्यौ महाबलपराक्रमौ ॥ ४

अच्युतस्य प्रसुप्तस्य महत्पद्मजायत ।
नाभिमध्ये नृपश्रेष्ठ तस्मिन् ब्रह्माभ्यजायत ॥ ५

स चोक्तो विष्णुना राजन् प्रजाः सृज महामते ।
तथेत्युक्त्वा जगन्नाथं ब्रह्मापि कमलोद्भवः ॥ ६

वेदशास्त्रवशाद्यावत् प्रजाः स्रष्टुं समुद्यतः ।
तावत्तत्र समायातौ तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ७

आगत्य वेदशास्त्रार्थविज्ञानं ब्रह्मणः क्षणात् ।
अपहृत्य गतौ घोरी दानवी बलदर्पिता ॥ ८

ततः पणोद्भवो राजन् ज्ञानहीनोऽभवत् क्षणात् ।
दुःखितक्षिन्तयापास कथं स्वक्ष्यामि वै प्रजाः ॥ ९

चोदितस्त्वं सृजस्वेति प्रजा देवेन तत्कथम् ।
स्वक्ष्येऽहं ज्ञानहीनस्तु अहो कष्टमुपस्थितम् ॥ १०

इति संचिन्त्य दुःखार्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यत्नतो वेदशास्त्राणि स्मरन्नपि न दृष्टवान् ॥ ११

ततो विषण्णचित्तस्तु तं देवं पुरुषोत्तमम् ।
एकाग्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुमारभत् ॥ १२

ब्रह्मावतार

ॐ नमो वेदनिधये शास्त्राणां निधये नमः ।
विज्ञाननिधये नित्यं कर्मणां निधये नमः ॥ १३

विद्याधराय देवाय वागीशाय नमो नमः ।
अचिन्त्याय नमो नित्यं सर्वज्ञाय नमो नमः ॥ १४

अमूर्तिस्त्वं महाबाहो यज्ञमूर्तिरधोक्षज ।
साम्नां मूर्तिस्त्वमेवाद्य सर्वदा सर्वरूपवान् ॥ १५

सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं हृदि ज्ञानमयोऽच्युत ।
देहि मे त्वं सर्वज्ञानं देवदेव नमो नमः ॥ १६

योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए थे। नृप! कुछ कालके बाद उन गहरी नींदमें सोये हुए देवदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके कानोंसे पसीनेकी दो बूँदें निकलकर जलमें गिरीं। उन दोनों बूँदोंसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो महाबली, महान् शक्तिशाली, महापराक्रमी और महाकाय थे। नृपश्रेष्ठ! इसी समय उन सोये हुए भगवान्की नाभिके बीचमें महान् कमल प्रकट हुआ और उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १—५ ॥

राजन्! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—‘महामते! तुम प्रजाजनोंकी सृष्टि करो।’ यह सुन उन कमलोद्भव ब्रह्माजीने ‘तथास्तु’ कहकर भगवान् जगन्नाथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा वेदों और शास्त्रोंकी सहायतासे वे क्यों ही सृष्टि-रचनाके लिये उद्यत हुए, क्यों ही उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये। आते ही वे बलविमानों घोर दानव क्षणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र-ज्ञानकी लेकर चले गये। राजन्! तब ब्रह्माजी एक ही क्षणमें ज्ञानशून्य हो दुःखी हो गये और सोचने लगे—‘हाय! अब मैं कैसे प्रजाकी सृष्टि करूँगा? भगवान्ने मुझे आज्ञा दी कि ‘तुम प्रजाकी सृष्टि करो।’ परंतु अब तो मैं सृष्टिरचनासे रहित हो गया, अतः किस प्रकार सृष्टिरचना करूँगा? अहो! मुझपर यह बहुत बड़ा कष्ट आ पहुँचा।’ लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते-करते शीकसे कातर हो गये। वे प्रयत्नपूर्वक वेद-शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई। तब वे मन-हो-मन अत्यन्त दुःखी हो एकाग्रचित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमकी शास्त्रानुकूल विधिसे स्तुति करने लगे ॥ ६—१२ ॥

ब्रह्माजी बोले—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी निधि हैं, उन ॐकार-प्रतिपाद्य परमेश्वरको मेरा बार बार नमस्कार है। समस्त विद्याओंकी धारण करनेवाले वाणीपति भगवान्को प्रणाम है। अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको नित्य बारंबार नमस्कार है। महाबाहो! अधोक्षज! आप निराकार एवं यज्ञस्वरूप हैं। आप ही साममूर्ति एवं सदा सर्वरूपधारी हैं। अच्युत! आप सर्वज्ञानमय हैं; आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं। देवदेव! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है ॥ १३—१६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः।
ब्रह्माणमाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुत्तमम् ॥ १७

इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुश्चिन्तयामास पार्थिव।
केनास्य नीतं विज्ञानं केन रूपेण चादधे ॥ १८

मधुकैटभकृतं सर्वमिति ज्ञात्वा जनार्दनः।
मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम्।
बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप ॥ १९

स प्रविश्य जलं नृणं शोभयामास तद्भरिः।
प्रविश्य च स पातालं दृष्ट्वान्मधुकैटभी ॥ २०

तीं मोहयित्वा तुमुलं तन्ज्ञानं जगुहे हरिः।
वेदशास्त्राणि मुनिभिः संस्तुतो मधुसूदनः ॥ २१

आनीय ब्रह्मणे दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप।
जगद्धिताय स पुनर्योगनिद्रावशं गतः ॥ २२

ततः प्रबुद्धीं संकृद्धीं तावुभी मधुकैटभी।
आगत्य ददृशाते तु शयानं देवमव्ययम् ॥ २३

अयं स पुरुषो धूर्त आवां सम्मोह्य मायया।
आनीय वेदशास्त्राणि दत्त्वा शेतेऽत्र साधुवत् ॥ २४

इत्युक्त्वा तीं महाघोरी दानवीं मधुकैटभी।
बोधयामासतुस्तूर्णं शयानं केशवं नृप ॥ २५

युद्धार्थमागतावत्र त्वया सह महामते।
आवयोर्देहि संग्रामं युध्यस्वोत्थाय साम्प्रतम् ॥ २६

इत्युक्तो भगवांस्ताभ्यां देवदेवो नृपोत्तम।
तथेति चोक्त्वा तीं देवः शार्ङ्गं सन्धमधाकरोत् ॥ २७

न्याघोषतलघोषेण शङ्खशब्देन माधवः।
खं दिशः प्रदिशश्चैव पूरयामास सौलया ॥ २८

तीं च राजन् महावीर्यी न्याघोषं चक्रतुस्तदा।
युयुधाते महाघोरी हरिणा मधुकैटभी ॥ २९

कृष्णश्च युयुधे ताभ्यां लीलया जगतः पतिः।
समं युद्धमभूदेवं तेषामस्त्राणि मुञ्चताम् ॥ ३०

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेश विष्णुने उनसे कहा—‘मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्रदान करूँगा।’ राजन्! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सोचने लगे—‘कौन इसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे इसने उसे धारण कर रखा है?’ भूपति! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और कैटभको करतूत है, भगवान् जनार्दने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पुनर्ज्ञानमय मत्स्यरूप धारण किया। फिर मत्स्यरूपधारी हरिने तुरंत ही जलमें प्रविष्ट होकर उसे श्रुत्य कर डाला और भीतर-ही-भीतर पाताललोकमें पहुँचकर मधु तथा कैटभको देखा। तब मुनियोंद्वारा साधन किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने मधु और कैटभ—दोनोंको मोहितकर वह वेदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ले आकर ब्रह्माजीको दे दिया। राजन्! तत्पश्चात् वे भगवान् उस मत्स्यरूपको त्यागकर जगत्के हितके लिये पुनः योगनिद्रामें स्थित हो गये ॥ १७—२२ ॥

उदनन्तर मोह विवृत्त होनेपर [वेद शास्त्रको ले देख] मधु तथा कैटभ—दोनों ही बहुत कुपित हुए और बहोसे आकर उन्होंने अविनाशी भगवान् विष्णुको सोते देखा। तब वे परस्पर कहने लगे—‘यह बही धूर्त पुरुष है, जिसने हम दोनोंको मायासे मोहित करके वेद-शास्त्रोंको ले आकर ब्रह्माको दे दिया और अब यहाँ साधुकी भाँति सो रहा है।’ राजन्! यों कहकर उन महाघोर दानव मधु और कैटभने वहाँ सोये हुए भगवान् केशवको तत्काल जगता और कहा—‘महामते! हम दोनों यहाँ तुम्हारे साथ युद्ध करने आये हैं; तुम हमें संग्रामकी शिक्षा दो और अभी उठकर हमसे युद्ध करो’ ॥ २३—२६ ॥

नृपति! उनके इस प्रकार कहनेपर देवदेव भगवान्ने ‘बहुत अच्छा’ कहकर अपने शार्ङ्ग धनुषपर प्रत्यक्षा चढ़ाये। उस समय भगवान् माधवने लीलापूर्वक मनुषकी टंकार और शङ्खनादसे आकाश, दिशाओं और अवान्तर-दिशाओं (कोनों) को भर दिया ॥ २७—२८ ॥

राजन्! फिर उन महापराक्रमी महाभयानक मधु और कैटभने भी उस समय अपनी प्रत्यक्षाकी टंकार दी और वे भगवान् विष्णुके साथ युद्ध करने लगे। जगत्पति भगवान् विष्णु भी लीलासे ही उनके साथ युद्ध करने लगे।

केशवः शार्ङ्गनिर्मुक्तः शरैराशीविषोपमैः ।
 तानि शस्त्राणि सर्वाणि चिच्छेद तिलशस्तदा ॥ ३१
 तौ युद्धवा सुचिरं तेन दानवी मधुकटभौ ।
 हतौ शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैः कृष्णो न दुर्पदौ ॥ ३२
 तयोस्तु मेदसा राजन् विष्णुना कल्पिता मही ।
 मेदिनीति ततः संज्ञामवापेयं वसुंधरा ॥ ३३
 एवं कृष्णप्रसादेन वेदोल्लिख्या प्रजापतिः ।
 प्रजाः ससर्ज भूपाल वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ३४
 य इदं शृणुयान्नित्यं प्रादुर्भावं हरेर्नृप ।
 उपित्वा चन्द्रसदने वेदविद्ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३५
 मात्स्यं वपुस्तन्महदत्रितुल्यं
 विद्यामयं लोकहिताय विष्णुः ।
 आस्थाय भीमं जनलोकसंस्थैः
 स्तुतोऽथ यस्तं स्मर भूमिपाल ॥ ३६

इति श्रीमहादेवपुराणे मत्स्यब्रह्मसंहितायाः प्रथमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहादेवपुराणे 'मत्स्यब्रह्मसंहिता' नामक सौतिसर्ग अष्टमोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

॥ ३८ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

कूर्मावतारः समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार

मार्कण्डेय उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे देवा दैत्यैः पराजिताः ।
 सर्वे ते शरणं जग्मुः क्षीराब्धितनयापतिम् ॥ १
 स्तोत्रेण तुष्टुवुः सर्वे समाराध्य जगत्पतिम् ।
 कृताञ्जलिपुटा राजन् ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ २

देव उवाच

नमस्ते पद्मनाभाय लोकनाथाय शार्ङ्गिणे ।
 नमस्ते पद्मनाभाय सर्वदुःखापहारिणे ॥ ३

इस प्रकार परस्पर अस्त्र-शस्त्रका प्रहार करते हुए उन दोनों पक्षोंमें समानरूपसे युद्ध हुआ। भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े हुए सफेक समान तीखे बाणोंसे उन दैत्योंके समस्त अस्त्र-शस्त्र तिलकी भाँति टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वे दोनों उन्मत्त दानव—मयु और कैटभ चिरकालतक भगवान्के साथ लड़कर अन्तमें उनके शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे गये। राजन्! तब श्रीविष्णुभगवान्ने उन दोनों दैत्योंके मेदेसे इस पृथ्वीका निर्माण किया। इसीसे इस वसुंधराका नाम 'मेदिनी' हुआ ॥ २१—३३ ॥

भूपाल! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी कृपासे वेदोंको प्राप्तकर प्रजापति ब्रह्माजीने वेदोक्त विधिसे प्रजाकी सृष्टि की। नृप! जो भगवान्को इस अवतार-कथाका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह [शरीर-त्यागके बाद] चन्द्रलोकमें निवास करके [पुनः इस लोकमें] वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। भूमिपाल! जो भगवान् विष्णु लोकहितके लिये पर्वतके समान भीमकाय मत्स्यरूप धारणकर जनलोक निवासियोंद्वारा स्तुत हुए थे, उनका ही तुम सदा स्मरण करो ॥ ३४—३६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जब देवगण दैत्योंद्वारा पराजित हो गये, तब वे सभी मिलकर क्षीरसागरमन्दिनी श्रीलक्ष्मीजीके प्रति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। राजन्! वहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता जगदीश्वरकी आराधना करके हाथ जोड़ निप्राङ्गित स्तोत्रसे उनको स्तुति करने लगे ॥ १-२ ॥

देवगण बोले—

जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन शार्ङ्ग धनुषधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है।

नमस्ते विश्वरूपाय सर्वदेवमयाय च ।
मधुकैटभनाशाय केशवाय नमो नमः ॥ ४
दैत्यैः पराजिता देव वयं युद्धे बलान्वितैः ।
जयोपायं हि नो ब्रूहि करुणाकर ते नमः ॥ ५

मधुकैटभ उवाच

इति स्तुतो तदा देवदेवदेवो जनार्दनः ।
तानब्रवीद्धरिर्देवांस्तेषामेवाग्रतः स्थितः ॥ ६

श्रीभगवानुवाच

गत्वा तत्र सुराः सर्वे संधिं कुरुत दानवैः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७
सर्वोपधीः सपानीय प्रक्षिप्याब्धौ त्वरान्विताः ।
दानवैः सहिता भूत्वा मन्थन्ध्वं क्षीरसागरम् ॥ ८
अहं च तत्र साहाय्यं करिष्यामि दिवीकसः ।
भविष्यत्यमृतं तत्र तत्पानाद्बलवत्तराः ॥ ९

भविष्यन्ति क्षणादेवा अमृतस्य प्रभावतः ।
यूयं सर्वे महाभागास्तेजिष्ठा रणविक्रमाः ॥ १०
इन्द्राद्यास्तु महोत्साहास्तद्ब्रूवामृतमुत्तमम् ।
ततो हि दानवाञ्जेतुं समर्था नात्र संशयः ॥ ११
इत्युक्ता देवदेवेन देवाः सर्वे जगत्पतिम् ।
प्रणम्यागत्य निलयं संधिं कृत्वाथ दानवैः ॥ १२

क्षीराब्धेर्पन्थने सर्वे चक्रुर्द्योगमुत्तमम् ।
बलिना चोद्धृतो राजन् मन्दराख्यो महागिरिः ॥ १३
क्षीराब्धौ क्षेपितश्चैव तेनैकेन नृपोत्तम ।
सर्वोपधींश्च प्रक्षिप्य देवदैत्यैः पयोनिधीं ॥ १४
वासुकिश्चागतस्तत्र राजन्नारायणाज्ञया ।
सर्वदेवहितार्थाय विष्णुश्च स्वयमागतः ॥ १५

तत्र विष्णुं समासाद्य ततः सर्वे सुरासुराः ।
सर्वे ते मैत्रभावेन क्षीराब्धेस्तटमार्श्रिताः ॥ १६
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाथ वासुकिम् ।
ततो मथितुमारब्धं नृपते तरसामृतम् ॥ १७

समूर्ण विश्व और सारे देवता जिनके स्वरूप हैं, उन मधुकैटभनाशक केशवको बारंबार प्रणाम है। करुणाकर! भगवान्। हम सभी देवता बलवान् दैत्योंद्वारा युद्धमें हरा दिये गये हैं, हमें विजय प्राप्त करनेका कोई उपाय बतलाइये: आपको नमस्कार है ॥ ३—५ ॥

पार्कण्डेयजी बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर देवदेव भगवान् जनार्दनने उनके समक्ष एकट होकर कहा ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुम सब लोग वहाँ (समुद्र तटपर) जाकर दानवोंके साथ संधि कर लो और मन्दराचलको मथानो बनाकर वासुकि नागसे रस्सीका काम लो। फिर शीघ्रतापूर्वक समस्त ओषधियोंको लकड़कर समुद्रमें डालो और दानवोंके साथ मिलकर ही क्षीरसागरका मन्थन करो। देवताओ! इस कार्यमें मैं भी तुम लोगोंको सहायता करूँगा। समुद्रसे अमृत प्रकट होगा, जिसको पान करके उसके प्रभावसे देवता क्षणभरमें ही अत्यन्त बलशाली हो जायेंगे। महाभागों! उस उत्तम अमृतको प्राप्तकर इन्द्रादि तुम सभी देवता आत्यन्त तेजस्वी, रथमें पराक्रम दिखानेवाले और महान् उत्साहसे सम्पन्न हो जाओगे। तदनन्तर तुम लोग दानवोंको जीतनेमें समर्थ हो सकोगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ७—११ ॥

देवदेव भगवान्के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सभी देवता उन जगदीश्वरको प्रणाम करके अपने स्थानपर आये और दानवोंके साथ संधि करके क्षीरसागरके मन्थनके लिये उत्तम उद्योग करने लगे। राजन्! बलिने अकेले ही 'मन्दर' नामक महान् पर्वतको उखाड़कर समुद्रमें डाल दिया तथा नृपोत्तम! देवता और दैत्योंने समस्त ओषधियोंको लकड़कर समुद्रमें डाला। राजन्! भगवान् वाराणसी के आज़ासे वासुकि नाग वहाँ आये और समस्त देवताओंका हित-साधन करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे ॥ १२—१५ ॥

तदनन्तर सभी देवता और असुरगण वहाँ भगवान् विष्णुके पास आये और सब लोग मित्रभावसे एकत्र होकर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए। नृप! उस समय मन्दराचलको मथानो और वासुकि नागको रस्सी बनाकर अमृत निकालनेके उद्देश्यसे अत्यन्त वेगपूर्वक समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ।

विष्णुना मुखभागे तु योजिता दानवास्तदा ।
देयताः पुच्छभागे तु मथनाय नियोजिताः ॥ १८

एवं च मथनात्तत्र मन्दरोऽधः प्रविश्य च ।
आधारेण विना राजन् तं दृष्ट्वा सहसा हरिः ॥ १९

सर्वलोकहितार्थाय कूर्परूपमधारयत् ।
आत्मानं सम्प्रवेश्याथ मन्दरस्य गिरेरधः ॥ २०

प्रविश्य धृतवान् शैलं मन्दरं मधुसूदनः ।
उपर्याक्रान्तवाञ्छीलं पृथग्रूपेण केशवः ॥ २१

चकर्थ नागराजं च देवैः सार्धं जनार्दनः ।
ततस्ते त्वरया युक्ता ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥ २२

यावच्छक्त्या नृपश्रेष्ठ बलवन्तः सुरासुराः ।
मध्यमानात्ततस्तस्मात् क्षीराब्धेरभववृष ॥ २३

कालकूटमिति ख्यातं विषमत्यन्तदुस्महम् ।
नागा जगूहुः सर्वे तच्छेषं शङ्करोऽग्राहीत् ॥ २४

नारायणाज्ञया तेन नीलकण्ठत्वपातवान् ।
ऐरावतश्च नागेन्द्रो हरिशोर्ध्वैः भवाः पुनः ॥ २५

द्वितीयावर्तनाद्राजज्वत्पत्राविति नः श्रुतम् ।
तृतीयावर्तनाद् राजत्रप्यराश्च सुशोभनाः ॥ २६

चतुर्धात् पारिजातश्च उत्पन्नः स महाद्रुमः ।
पञ्चमाद्दि हिमांशुस्तु प्रोत्थितः क्षीरसागरात् ॥ २७

तं भवः शिरसा धत्ते नारोवत् स्वस्तिकं नृप ।
नानाविधानि दिव्यानि रत्नाभरणानि च ॥ २८

क्षीरोदधेरुत्थिताश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
एतान् दृष्ट्वा तथोत्पन्नानत्याश्चर्यममन्वितान् ॥ २९

अभयञ्जातहर्षास्ते तत्र सर्वे सुरासुराः ।
देवपक्षे ततो मेघाः स्वल्पं वर्षन्ति संस्थिताः ॥ ३०

कृष्णाज्ञया च वायुश्च सुखं वाति सुरान् प्रति ।
विपनिः श्वासवातेन वासुकेक्षणं हताः ॥ ३१

भगवान् विष्णुने उस समय समुद्रमन्थनके लिये दानवोंको वासुकिके मुखकी ओर और देवताओंको पुच्छ भागकी ओर निपुक्त किया। राजन्! इस प्रकार मन्थन आरम्भ होनेपर नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल जलके भीतर प्रविष्ट होकर डूब गया। पर्वतको डूब देख भगवान् मधुसूदन विष्णुने समस्त लोकोंके हितके लिये सहस्र कूर्परूप धारण किया और उस रूपमें अपनेको मन्दराचलके नीचे प्रविष्ट करके, आधाररूप हो, उस मन्दर पर्वतको धारण किया तथा दूसरे रूपसे वे भगवान् केशव पर्वतको ऊपरसे भी दबाये रहे और एक अन्यरूपसे वे भगवान् जगदीन देवताओंके साथ रहकर नगराज वासुकिको खींचते भी रहे। तब वे भगवान् देवता तथा असुर पूर्णशक्ति लगाकर बड़े वेगसे क्षीरसागरको मन्थन करने लगे ॥ १९—२२ १/२ ॥

नृपश्रेष्ठ! उदयनार उस मधे जाते हुए क्षीरसागरसे अत्यन्त दूरतक 'कालकूट' नामक विष प्रकट हुआ। उस विषको सभी मर्षोंने ग्रहण कर लिया। उनसे बचे हुए विषको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे शङ्कुराजोंने भी लिया। इससे कण्ठमें काला दान पड़ जानेके कारण उनकी 'नीलकण्ठ' संज्ञा हुई। इसके बाद द्वितीय चारके मन्थनसे ऐरावत गजराज और उर्वीःश्रवा घोड़ा—ये दोनों प्रकट हुए, यह सब हमारे मूत्रनेत्रों आदी है। तृतीय आवृत्तिसे परासुन्दरों अमरा (उर्वरी)-का आविर्भाव हुआ और चौथी बार महान् वृक्ष पारिजात प्रकट हुआ। पाँचवीं आवृत्तिमें क्षीरसागरसे चन्द्रमा प्रकट हुए। नरेधर! चन्द्रमाको भगवान् शिव अपने मस्तकपर धारण करते हैं; लोक तसो तब जैसे नारी ललाटमें स्नानिक (मैदी व आभूषण) धारण करती है। इसी प्रकार क्षीरसागरसे नाना प्रकारके दिव्य वस्त्र, आभूषण और हजारों गन्धर्व प्रकट हुए। इन अत्यन्त विम्वरमय वस्तुओंको उस प्रकार उत्पन्न देख सभी देवता और असुर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३—२९ १/२ ॥

उदयनार भगवान् विष्णुकी आज्ञासे भेषाग देवताओंके शरीरमें स्थित हो मन्द मन्द बरस करने लगे और देव मन्दको सुख देनेवाली वायु बहने लगी। [इस कारण दिव्य धने गतों ॥] किन्तु महामते! वासुकिके विषमिश्रित श्वाससे वायुमें कितने ही देव मर गये और जो बचे

निस्तेजसोऽभवन् दैत्या निर्वीर्याश्च महामते ।
 ततः श्रीरुत्थिता तस्मात् क्षीरोदाद्भुतपङ्कजा ॥ ३२
 विभ्राजमाना राजेन्द्र दिशः सर्वाः स्वतेजसा ।
 ततस्तीर्थोदकैः स्नाता दिव्यवस्त्रैरलंकृता ॥ ३३
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गी सुमनोभिः सुभूषणैः ।
 देवपक्षं समासाद्य स्थित्वा क्षणमरिंदम ॥ ३४
 हरिवक्षःस्थलं प्राप्ता ततः सा कमलालया ।
 ततोऽमृतघटं पूर्णं दुग्ध्वा तु पयसो निधेः ॥ ३५
 धन्वन्तरिः समुत्तस्थौ ततः प्रीताः सुरा नृप ।
 दैत्याः श्रिया परित्यक्ता दुःखितास्तेऽभवन्नुप ॥ ३६
 नीत्वामृतघटं पूर्णं ते च जग्मुर्व्यासुखम् ।
 ततः स्वीरूपमकरोद् विष्णुर्देवहिताय वै ॥ ३७
 आत्मानं नृपशार्दूल सर्वलक्षणसंयुतम् ।
 ततो जगाम भगवान् स्वीरूपेणासुरान् प्रति ॥ ३८
 दिव्यरूपां तु तां दृष्ट्वा मोहितास्ते सुरद्विषः ।
 सुधापूर्णघटं ते तु मोहैः संस्थाप्य सन्तम ॥ ३९
 कामेन पीडिता ह्यासन्नसुरास्तत्र तत्क्षणात् ।
 मोहयित्वा तु तानेवमसुरानवनीपते ॥ ४०
 अमृतं तु समादाय देवेभ्यः प्रददौ हरिः ।
 तत्पीत्वा तु ततो देवा देवदेवप्रसादतः ॥ ४१
 बलवन्तो महावीर्या रणे जग्मुस्ततोऽसुरान् ।
 जित्वा रणेऽसुरान् देवाः स्वानि राज्यानि चक्रिरे ॥ ४२
 एतत्ते कथितं राजन् प्रादुर्भावो हरेरयम् ।
 कूर्माख्यः पुण्यदो नृणां शृण्वतां पठतामपि ॥ ४३
 आविष्कृतं कौर्ममनन्तवच्रंसं
 नारायणेनाद्भुतकर्मकारिणा ।
 दिवीकसानां तु हिताय केवलं
 रूपं परं पावनमेव कीर्तितम् ॥ ४४

ये भी तेज एवं पराक्रमसे हीन हो गये ॥ ३०-३१ ॥
 तत्पश्चात् उस समुद्रसे हाथमें कमल धारण किये हुए
 श्रोतस्मीजो प्रकट हुई। राजेन्द्र! ये अपने तेजसे सम्पूर्ण
 दिशओंको प्रकाशमान कर रही थीं। शत्रुसुदन! उन्होंने
 तीर्थके जलसे स्नान किया, शरीरमें दिव्य गन्धका अनुलेप
 लगाया और वे कमलालया लक्ष्मी दिव्य वस्त्र, पुष्पहार
 और सुन्दर भूषणोंसे विभूषित हो देवपक्षमें जाकर क्षणभर
 खड़े रहों। फिर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान
 हुई ॥ ३२-३४ ॥
 नरेन्द्र! इसके बाद क्षीरसागरसे अमृतपूर्ण घटका
 दोहन करके हाथमें लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।
 उनके प्राकट्यसे देवता बहुत प्रसन्न हुए। किंतु राजन्!
 लक्ष्मीद्वारा त्याग दिये जानेके कारण असुरगण बहुत दुःखी
 हुए और उस भरे हुए अमृतघटको लेकर इच्छानुसार चल
 दिये। नृपवर! तब भगवान् विष्णुने देवताओंका हित
 करनेके लिये अपनेको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त स्वीरूपमें
 प्रकट किया। इसके बाद भगवान् उस नारीरूपसे हो
 असुरोंकी ओर गये। उस दिव्य रूपवाली नारीको देख
 दैत्यगण मोहित हो गये। साधुशिरोमणि! ये असुर तत्काल
 मोहके वशोभूत हो कामपीडित हो गये और उन्होंने
 मोहवश यह अमृतका घड़ा भूमिपर रख दिया। अवनीपते।
 इस प्रकार असुरोंको मोहित करके भगवान्ने यह अमृत
 ले देवताओंको दे दिया। देवदेव भगवान्की कृपासे अमृत
 पीकर बलवान् और महावीर्यावान् हो देवता संग्राममें आ डरे
 और असुरोंको युद्धमें जीतकर उन्होंने अपने राज्यपर
 अधिकार कर लिया। राजन्! भगवान्के इस 'कूर्म' नामक
 अवतारको कथा मैंने तुमसे कह दी। यह कहने और
 सुननेवाले मनुष्योंको पुण्य देनेवाली है ॥ ३५-४३ ॥
 अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् नारायणने केवल
 देवताओंके हितके लिये अनन्त तेजस्वी परमपावन कूर्मरूप
 प्रकट किया था, सो इस प्रसङ्गका वर्णन मैंने तुमसे कर
 दिया ॥ ४४ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कूर्मप्रभुर्जी कण्ठस्थितोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कूर्मवचन' नामक अष्टावर्तक अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

वाराह-अवतारः हिरण्याक्षवध

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं हरेः पुण्यं प्रादुर्भावं नराधिप ।
वाराहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ १

अवान्तरलये प्राप्ते ब्रह्मणस्तु दिनक्षये ।
त्रैलोक्यमखिलं व्याप्य तिष्ठन्त्यम्भांसि सप्तम ॥ २

त्रैलोक्येऽखिलसत्त्वानि यानि राजेन्द्र तानि वै ।
ग्रस्त्वा विष्णुस्ततः शेते तस्मिन्नेकार्णवे जले ॥ ३

अनन्तभोगशयने सहस्रफणशोभिते ।
पत्रिं युगसहस्रान्तां ब्रह्मरूपी जगत्पतिः ॥ ४

दितेः पुत्री महानासीत् कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्याक्ष इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ५

पाताले निवसन् दैत्यो देवानुपहरोध सः ।
यन्विनामपकाराय यतते स तु भूतले ॥ ६

अथ भूम्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवताः ।
तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति ॥ ७

इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सग्रे तु ब्रह्मणा ।
भूमेर्या धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुरः ॥ ८

विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप ।
विना शक्त्या च जगतां प्रविवेश रसातलम् ॥ ९

निद्रावसाने सर्वात्मा क्व स्थिता मेदिनीति वै ।
संचिन्त्य ज्ञात्वा योगेन रसातलतलं गताम् ॥ १०

अथ वेदमयं रूपं वाराहं वपुरास्थितम् ।
वेदपादं यूपदंष्ट्रं चितिवक्त्रं नराधिप ॥ ११

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नरेश्वर! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुके 'वाराह' नामक पावन अवतारका वर्णन करूँगा—तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

सप्तम। ब्रह्माजीका दिन बीत जानेपर जब अवान्तर प्रलय होता है, तब सम्पूर्ण त्रिलोकीको व्याप्त करके केवल जल हो-जल रह जाता है। राजेन्द्र! उस समय त्रिभुवनमें जो भी प्राणी हैं, उन सबका प्रास करके ब्रह्मस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु उस एकार्णव जलके भीतर महरखों कणोंसे सुशोभित शेषनागकी शय्यापर सहस्र युगोंतक चलनेवाली रात्रिमें शयन करते हैं। पूर्वकालमें कश्यपजीसे दितिके पुत्ररूपमें 'हिरण्याक्ष' नामक महान् दैत्य उत्पन्न हुआ था, ऐसी बात हमने सुनी है। वह महान् बलवान् और पराक्रमी था। वह दैत्य पातालमें निवास करता था और स्वर्गके देवताओंपर आक्रमण करके उनकी पुत्रीपर बला जाल देता था। इतना ही नहीं, वह पृथ्वीपर यह करनेवाले मनुष्योंका भी अपकार करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था ॥ २—६ ॥

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यालोकमें रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओंका यजन करेंगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ़ जायगा।' यह सोचकर महा-असुर हिरण्याक्षने ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेके लिये भूमिकी जो धारणा-शक्ति थी, उसे लेकर जलके भीतर ही-भीतर रसातलमें चला गया। आधारशक्तिसे रीति होकर यह पृथ्वी भी रसातलमें ही चली गयी ॥ ७—९ ॥

योगविद्वान्का अन्त होनेपर जब सर्वात्मा ब्रह्मरूपे विचार किया कि 'पृथ्वी कहाँ है?', तब उन्होंने योगबलसे यह जान लिया कि 'वह रसातलकी चली गयी है'। नराधिप! तब उन्होंने वेदमय लम्बा चौड़ा दिव्य वाराह शरीर धारण किया, जिसके चारों छेद ही चरण थे, यूप (यज्ञ-बन्धनके लिये बना हुआ काष्ठस्तम्भ) ही दाढ़ था और चित्ति (श्वेनचित् आदि) मुख।

व्यूढोरस्कं महाबाहुं पृथुवक्त्रं नराधिप ।
 अग्निजिह्वं स्त्रुचं तुण्डं चन्द्रार्कनयनं महत् ॥ १२
 पूर्तेष्टिधर्मश्रवणं दिव्यं तं सामनिःस्वनम् ।
 प्राग्वंशकायं हविनांसं कुशदर्भतनूरुहम् ॥ १३
 सर्वं वेदमयं तच्च पुण्यसूक्तमहामदम् ।
 नक्षत्रताराहारं च प्रलयावर्तभूषणम् ॥ १४
 इत्थं कृत्वा तु वाराहं प्रविवेश वृषाकपिः ।
 रसातलं नृपश्रेष्ठ सनकाद्यैरभिदूतः ॥ १५
 प्रविश्य च हिरण्याक्षं युद्धे जित्वा वृषाकपिः ।
 दंष्ट्राग्रेण ततः पृथ्वीं समुद्धृत्य रसातलात् ॥ १६
 स्तूयमानोऽमरगणैः स्थापयामास पूर्ववत् ।
 संस्थाप्य पर्वतान् सर्वान् यथास्थानमकल्पयत् ॥ १७
 विहाय रूपं वाराहं तीर्थे कोकेतिविश्रुते ।
 वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तदगुप्तमुनमम् ॥ १८
 ब्रह्मरूपं समास्थाय पुनः सृष्टिं चकार सः ।
 विष्णुः पाति जगत्सर्वमेवम्भूतो युगे युगे ।
 हन्ति चान्ते जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ १९
 वेदान्तवेद्यस्य हरेर्वृषाकपेः
 कथामिमां यश्च शृणोति मानवः ।
 दृढां मतिं यजतनौ विवेश्य वै
 विहाय पापं च नरो हरिं व्रजेत् ॥ २०

इति श्रीनारायणपुराणे वाराहव्यूहोक्ते कथामिमांसाध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीनारायणपुराणमें 'वाराहव्यूह' नामक अष्टादशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

नृसिंहावतारः हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

नारदगोत्र उवाच

वाराहः कथितो ह्येवं प्रादुर्भावो हरेस्तव ।
 साम्प्रतं नारासिंहं तु प्रवक्ष्यामि निबोध मे ॥ १

मुखमण्डल स्थूल और छातो चौड़ी थी, भुजाएँ बड़ी बड़ी थीं, अग्नि ही जिह्वा और स्त्रुक् (सुन्ध) ही धूधन थी। चन्द्रमा और सूर्य विशाल नेत्र थे, पूर्त (चमरलौ आदि खुदधाना) और इष्ट-धर्म (यत्त यागादि) उनके कान थे, साम ही स्वर था। प्राग्वंश। पर्वतशाला या यजमान गृह। ही शरीर था, हरि ही नामिका थी, कुश दर्भ ही रोमानलियों थे। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण शरीर वेदमय था, पवित्र वैदिक सूक्त ही उनके बड़े-बड़े अंगान थे। नक्षत्र और तारे उनके हार थे तथा प्रलयकालीन आवर्त (भँवरें) ही उनके लिये भूषणका काम दे रहे थे ॥ १०—१४ ॥

नृपश्रेष्ठ! भगवान् विष्णुने ऐसे वाराहरूपको धारणकर रसातलमें प्रवेश किया। उस समय सनकादि योगीजन उनकी स्तुति करते थे। वहाँ जाकर भगवान्‌ने युद्धमें हिरण्याक्षको मारकर उसपर विजय पायी और अपनी दाढ़ीके अग्रभागसे पृथ्वीको उठाकर वे रसातलसे ऊपर ले आए। फिर देखवण उनकी स्तुति करने लगे और उन्होंने पूर्ववत् पृथ्वीको स्थापित किया। पृथ्वीको स्थिर करनेके पश्चात् उसपर यथास्थान पर्वतोंका संनिवेश किया। तदनन्तर वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें वाराहरूपका स्थाप किया। वह वाराह-क्षेत्र उत्तम एव गुप्त तीर्थ है। फिर ब्रह्मजीका रूप धारणकर उन्होंने सृष्टि-रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेकर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हैं। फिर वे जनार्दन रुद्ररूप धारणकर अन्तकालमें समस्त लौकोंका संहर करते हैं ॥ १५—१९ ॥

जो मनुष्य वेदान्तवेद्य भगवान् विष्णुकी इस कथाको श्रवण करता है, वह भगवान् यज्ञमूर्तिमें अपनी सुदृढ़ बुद्धि लगाकर समस्त पापोंसे मुक्त हो, उन भगवान् हरिको ही प्राप्त करता है ॥ २० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके वाराह अवतारका वर्णन किया। अब 'नृसिंहावतार' का वर्णन करूँगा: सुनो ॥ १ ॥

दितेः पुत्रो महानासीद्विरण्यकशिपुः पुरा ।
तपस्तेपे निराहारो बहुवर्षसहस्रकम् ॥ २
तपतस्तस्य संतुष्टो ब्रह्मा तं प्राह दानवम् ।
वरं वरय दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३
इत्युक्तो ब्रह्मणा दैत्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
उवाच नत्वा देवेशं ब्रह्माणं विनयान्वितः ॥ ४

हिरण्यकशिपुस्त्वाय

यदि त्वं वरदानाय प्रवृत्तो भगवन्मम ।
यद्यद्वृणोम्यहं ब्रह्मस्तत्तन्मे दातुमर्हसि ॥ ५
न शुष्केण न चार्द्रेण न जलेन न वह्निना ।
न काष्ठेन न कीटेन पापाणेन न वायुना ॥ ६
नायुधेन न शूलेन न शैलेन न मानुषैः ।
न सूरसूरवापि न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ॥ ७
न किन्नरैर्न यक्षैस्तु विद्याधरभुजंगमैः ।
न वानरैर्मृगैवापि नैव मातृगणैरपि ॥ ८
नाभ्यन्तरे न बाह्ये तु नान्यैर्मरणहेतुभिः ।
न दिने न च रात्रौ मे त्वत्प्रसादाद् भवेन्मृतिः ॥ ९
इति वै देवदेवेशं वरं त्वत्तो वृणोम्यहम् ।

यक्षीण्ड्रेण उवाच

इत्युक्तो दैत्यराजेन ब्रह्मा तं प्राह पार्थिव ॥ १०
तपसा तव तुष्टोऽहं महता तु वरानिमान् ।
दुर्लभानपि दैत्येन्द्र ददामि परमाद्भुतान् ॥ ११
अन्येषां नेदृशं दत्तं न तैरित्थं तपः कृतम् ।
त्वत्प्रार्थितं मया दत्तं सर्वं ते ब्रह्मस्तु दैत्यप ॥ १२
गच्छ भुङ्क्ष्व महाबाहो तपसामूर्जितं फलम् ।
इत्येवं दैत्यराजस्य हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ १३
दत्त्वा वरान् ययौ ब्रह्मा ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ।
सोऽपि सन्ध्यावरो दैत्यो बलवान् बलदर्पितः ॥ १४
देवान् सिंघान् रणेजित्वा दिवः प्राच्यावयद् भुवि ।
दिवि राज्यं स्वयं चक्रे सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ १५

पूर्वकालमें दितिका पुत्र हिरण्यकशिपु महान् प्रतापी हुआ। उसने अनेक सहस्र वर्षोंतक निराहार रहते हुए तपस्या की। उसको तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माजीने उस दानवसे कहा—‘दैत्येन्द्र! तुम्हारे मनको जो प्रिय लगे वही वर माँग लो।’ दैत्य हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर उन देवेंद्वरसे विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ २—४ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—ब्रह्मन्! भगवन्! यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो मैं जो-जो माँगता हूँ, वह सब देनेको कृपा करें। मैं न सुखी वस्तुसे भर्तूँ न गोलोंसे; न जलसे न आगमें; न काठसे न कीड़ेसे और न पत्थर या हथौसे ही भेरी मृत्यु हो। न शूल अथवा किसी और हस्त्रसे न पर्वतसे; न मनुष्योंसे न देवता, आसुर, गन्धर्व अथवा राक्षसोंसे ही भर्तूँ। न किन्नरोंसे न गन्ध, विद्याधर अथवा भुजंगोंसे; न वानर तथा अन्य चतुर्जातोंसे और न दुर्गा आदि मातृगणोंसे ही भेरी मृत्यु हो। मैं न घरके भीतर भर्तूँ न बाहर; न दिनमें भर्तूँ न रातमें तथा आपकी कृपासे मृत्युके हेतुभूत अन्य कारणोंसे भी भेरी मृत्यु न हो। देवदेवेश्वर! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ ॥ ५—९ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके ये कहनेपर ब्रह्माजीने उससे कहा—‘दैत्येन्द्र! तुम्हारे महान् तपसे संतुष्ट होकर मैं इन परम अद्भुत वरोंको दुर्लभ होनेपर भी तुम्हें दे रहा हूँ। दूसरे किसीको मैंने ऐसा वर नहीं दिया है और न दूसरोंने ऐसे तपस्या की की है। दैत्यजने! तुम्हारे माँगे हुए सभी वर मैंने तुम्हें दे दिये; वे सब तुम्हें प्राप्त हों। महाबाहो! अब जाओ और अपने तपके फलें हुए उत्कृष्ट फलको भोगो।’ इस प्रकार पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी अष्टोष्ट वर देकर ब्रह्माजी अपने परम उत्तम लोकको चले गये। इस बलवान् दैत्यने भी वर पाकर बलसे उन्मत्त हो कुछ देवताओंको युद्धमें जीतकर उन्हें स्वर्गमें पृथ्वीपर गिरा दिया तथा वह स्वयं स्वर्गलोकमें रहकर वहाँका सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य भोगने लगा ॥ १०—१५ ॥

देवा अपि भयात्तस्य रुद्राश्चैवर्षयो नृप।
 विचेरुरवनी सर्वे विभ्राणा मानुषीं तनुम् ॥ १६
 ग्रामत्रैलोक्यराज्योऽसी हिरण्यकशिपुः प्रजाः।
 आहूय सर्वा राजेन्द्र वाक्यं चेदमभाषत ॥ १७
 न यष्टव्यं न ह्येतव्यं न दातव्यं सुरान् प्रति।
 युष्माभिरहमेवाद्य त्रैलोक्याधिपतिः प्रजाः ॥ १८
 ममैव पूजां कुरुत पत्रदानादिकर्मणा।
 ताश्च सर्वास्तथा चक्रुर्दत्तेन्द्रस्य भयान् नृप ॥ १९
 यत्रैवं क्रियमाणेषु त्रैलोक्यं सचराचरम्।
 अधर्मयुक्तं सकलं बभूव नृपसत्तम ॥ २०
 स्वधर्मलोपात् सर्वेषां पापे मतिरजायत।
 गते काले तु महति देवाः सेन्द्रा बृहस्पतिम् ॥ २१
 नीतिज्ञं सर्वशास्त्रज्ञं पप्रच्छुर्विनयान्विताः।
 हिरण्यकशिपोरस्य विनाशं मुनिसत्तम ॥ २२
 त्रैलोक्यहारिणः शीघ्रं यधोपायं वदस्व नः।

नृपसत्तम उवाच

शृणुध्वं मम वाक्यानि स्वपदप्राप्तये सुराः ॥ २३
 प्रायो हिरण्यकशिपुः क्षीणभागो महामुरः।
 शोको नाशयति प्रजां शोको नाशयति श्रुतम् ॥ २४
 शोको मतिं नाशयति नास्ति शोकसमो रिपुः।
 सोढुं शक्योऽग्निस्त्वन्धः शस्त्रस्पर्शश्च दारुणः ॥ २५
 न तु शोकभवं दुःखं संसोढुं नृप शक्यते।
 कालात्रिमिताद्य वयं लक्ष्यामस्तत्क्षयं सुराः ॥ २६
 युधाश्च सर्वे सर्वत्र स्थिता वक्ष्यन्ति नित्यशः।
 अचिरादेव दृष्टोऽसी नश्यत्येव परस्परम् ॥ २७
 देवानां तु परापृद्धिं स्वपदप्राप्तिलक्षणात्।
 हिरण्यकशिपोर्नाशं शकुनानि वदन्ति मे ॥ २८
 यत एवमतो देवाः सर्वे गच्छत माचिरम्।
 क्षीरोदस्योत्तरं तीरं प्रसूतो यत्र केशवः ॥ २९
 युष्माभिः संस्तुतो देवः प्रसन्नो भवति क्षणात्।
 स हि प्रसन्नो दैत्यस्य कथोपायं वदिष्यति ॥ ३०

नरेश्वर! इन्द्रादि देवता, रुद्र तथा ऋषिगण भी उसके भयसे मनुष्यरूप धारणकर पृथ्वीपर विचरते थे। राजेन्द्र! त्रिभुवनका राज्य प्राप्त कर लेनेपर हिरण्यकशिपुने समस्त प्रजाओंको बुलाकर उनसे यह वाक्य कहा—'प्रजागण! तुम लोग देवताओंके लिये यज्ञ, दौम और दात न करो अब मैं ही त्रिभुवनका अधीश्वर हूँ; अतः यज्ञ और दानादि कर्मोंद्वारा मेरो ही पूजा करो।' राजन्! यह सुनकर वे सभी प्रजाएँ उसके भयसे वैसा ही करने लगीं। नृपश्रेष्ठ! यहाँ ऐसा व्यवहार चालू होनेपर चराचर प्राणिजोंसहित समस्त त्रिभुवन अधर्मपरायण हो गया। स्वधर्मका लोप हो जानेसे सबकी बुद्धि पापमें प्रवृत्त हो गयी। इस तरह बहुत समय बीतनेपर इन्द्रसहित सब देवताओंने मिलकर समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता तथा नीतिवेत्ता बृहस्पतिजीसे विनयपूर्वक पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकीका राज्य छीननेकाले इस हिरण्यकशिपुके विनाशका समय और उसका उपाय हमें शीघ्र बताइये' ॥ १६—२२ ॥

बृहस्पतिजी बोले—देवताओ! तुम लोग अपने स्थानकी प्रातिके लिये मेरे से वाक्य सुनो—'इस महान् असुर हिरण्यकशिपुके पुण्यका अंश प्रायः क्षीण हो चुका है। [इसे अपने भाई हिरण्यधक्की मृत्युसे बहुत शोक हुआ है।] यह शोक बुद्धिको नष्ट और शास्त्रज्ञानको भीषण कर देता है, विचारशक्तिको भी क्षीण कर डालता है; अतः शोकके ममान कोई शत्रु नहीं है। नरेश्वर! अपने शरीरपर अंगिका स्पर्श और दाहक शस्त्र-प्रहार भी सहन जा सकता है, परंतु शोकजन्य दुःखका सहन नहीं किया जा सकता। देवताओ! इस शोकसे और कालरूप निमित्तसे हम हिरण्यकशिपुका नाश निकट देख रहे हैं। इसके अतिरिक्त सभी विद्वान् सर्वत्र परस्पर यही कहा करते हैं कि दुष्ट हिरण्यकशिपु अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है। मेरे शकुन भी यही बताते हैं कि देवताओंको अपने पद—स्वर्ग-सम्राज्यकी प्राप्तिपर पहली समृद्धि मिलनेवाली है और हिरण्यकशिपुका नाश होना चाहता है। चूँकि ऐसा ही होनेवाला है, इसलिये तुम सभी देवता क्षीरसागरके उत्तराटपर, यहाँ भगवान् विष्णु स्नान करते हैं, शीघ्र हो जाओ। तुम लोगोंके भलीभाँति स्तवन करनेपर वे भगवान् क्षणभरमें ही प्रसन्न हो जायेंगे और प्रसन्न होनेपर वे ही इस दैत्यके वधका उपाय बतायेंगे ॥ २३—३० ॥

इत्युक्तास्तेन देवास्ते साधु साध्वित्यद्यायुवन् ।
 प्रीत्या च परया युक्ता गन्तुं चक्रुरद्योद्यमम् ॥ ३१
 पुण्ये तिथौ शुभे लम्ने पुण्ये स्वस्ति च मङ्गलम् ।
 कारयित्वा मुनिवैरः प्रस्थितास्ते दिवौकसः ॥ ३२
 नाशाय दुष्टदेवस्य स्वभूत्यै च नृपोत्तम ।
 ते शर्वमग्रतः कृत्वा क्षीराब्धेरुत्तरं तटम् ॥ ३३
 तत्र गत्वा सुराः सर्वे विष्णुं जिष्णुं जनार्दनम् ।
 अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैः पूजयन्तः प्रतस्थिरे ॥ ३४
 भवोऽपि भगवान् भक्त्या भगवन्तं जनार्दनम् ।
 अस्तुवन्नामभिः पुण्यैकाग्रमनसा हरिम् ॥ ३५

श्रीमहादेव उवाच

विष्णुजिष्णुर्विभुर्देवो यज्ञेशो यज्ञपालकः ।
 प्रभविष्णुर्गसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः ॥ ३६
 केशवः केशिहा कल्पः सर्वकारणकारणम् ।
 कर्मकृद् वामनाधीशो वामदेवः पुरुषोत्तमः ॥ ३७
 आदिकर्ता वराहश्च माधवो मधुसूदनः ।
 नारायणो नरो हंसो विष्णुर्मेनो हुताशनः ॥ ३८
 स्तोत्रिष्मन् द्युतिष्मन् श्रीमान्नायुष्मन् पुरुषोत्तमः ।
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः ॥ ३९
 नरसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ।
 आदिदेवो जगत्कर्ता योगेशो गरुडध्वजः ॥ ४०
 गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ।
 पद्मनाभो हृषीकेशो विभुर्दामोदरो हरिः ॥ ४१
 त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ।
 वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपव्याघ्रभः ॥ ४२
 भक्तिप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्ध्रुवः शुचिः ।
 कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शान्तिवर्धनः ॥ ४३
 संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दारगिरिकेतनः ।
 बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः ॥ ४४
 भूतावासो गुहावासः श्रान्निवासः श्रियःपतिः ।
 तपोवासो दमो वामः सत्यवासः सनातनः ॥ ४५
 पुरुषः पुष्कलः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ।
 पूर्णः पूर्तिः पूराणञ्जः पुण्यज्ञः पुण्यवर्द्धनः ॥ ४६
 शङ्खी चक्री गदी शङ्खी लाङ्गली मुशली हली ।
 किरीटी कुण्डली हारी मेखली कवची ध्वजी ॥ ४७
 जिष्णुर्जेता महावीरः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
 शान्तः शान्तिकरः शास्ता शङ्करः शंतनुस्तुतः ॥ ४८

श्रीवृहस्पतिर्बोके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता
 कहने लगे—'भगवन्! आपने बहुत अच्छा कहा, बहुत
 अच्छा कहा।' और वे अपनी प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जानेका
 उद्योग करने लगे। नृपवर! वे देवगण किसी पुण्यतिथिबो
 शुभ लग्नमें मुनिवरोद्धार पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन
 और मङ्गलकृत करकर दुष्ट देव (हिरण्यकशिपु) के विनाश
 और अपने ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये महादेवजीको
 आगे करके क्षीरसागरके उत्तर तटकी ओर प्रस्थित हुए।
 वहाँ पहुँचकर सभी देवता विजयशोल जनार्दन भावना
 विष्णुका नाम प्रकारके स्तोत्रोद्घात स्तवन-पूजन करने
 हुए वहाँ रुकें रहे। भगवान् शङ्कर भी भक्तिपूर्वक
 एकाग्रचित्तसे भगवान् जनार्दनके शक्तिव नामोद्घात उनकी
 स्तुति करने लगे ॥ ३१—३५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—विष्णु, जिष्णु, विभु, देव,
 यज्ञेश, यज्ञपालक, प्रभविष्णु, गसिष्णु, लोकात्मा,
 लोकपालक, केशव, केशिहा, कल्प, सर्वकारणकारण,
 कर्मकृद्, वामनाधीश, वामदेव, पुरुषोत्तम, आदिकर्ता, वराह,
 माधव, मधुसूदन, नारायण, नर, हंस, विष्णुर्मेनो, हुताशन,
 स्तोत्रिष्मन्, द्युतिष्मन्, श्रीमान्, आयुष्मन्, पुरुषोत्तम, वैकुण्ठ,
 पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नरसिंह, महाभीम,
 वज्रदंष्ट्र, नखायुध, आदिदेव, जगत्कर्ता, योगेश, गरुडध्वज,
 गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर, पद्मनाभ, हृषीकेश,
 विभु, दामोदर, हरी, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीतिवर्धन,
 वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपव्याघ्रभ, भक्तिप्रिय, अच्युत,
 सत्य, सत्यकीर्ति, ध्रुव, शुचि, कारुण्य, करुण, व्यास,
 पापहा, शान्तिवर्धन, संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दारगिरिकेतन,
 बदरीनिलय, शान्त, तपस्वी, वैद्युतप्रभ, भूतावास, गुहावास,
 श्रान्निवास, श्रियःपति, तपोवास, दम, वाम, सत्यवास,
 सनातन, पुरुष, पुष्कल, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर, पूर्ण,
 पूर्ति, पूराणञ्ज, पुण्यज्ञ, पुण्यवर्द्धन, शङ्खी, चक्री, गदी,
 शङ्खी, लाङ्गली, मुशली, हली, किरीटी, कुण्डली, हारी,
 मेखली, कवची, ध्वजी, जिष्णु, जेता, महावीर, शत्रुघ्न,
 शत्रुतापन, शान्त, शान्तिकर, शास्ता, शङ्कर, शंतनुस्तुतः

सारथिः सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ।
 सावनः साहसी सत्त्वः सम्पूर्णाशः समृद्धिमान् ॥ ४९
 स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिनाशनः ।
 मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकेतनः ॥ ५०
 स्तुतः सुरासुरैरीश प्रेरकः पापनाशनः ।
 त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वर्धोकारस्त्वमग्रयः ॥ ५१
 त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देव त्वं सुधा पुरुषोत्तम ।
 नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥ ५२
 अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मधुसूदनः ॥ ५३
 उवाच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वांनिदं वचः ।

श्रीभगवानुवाच

युष्माभिः संस्तुतो देवा नामभिः केवलैः शुभैः ॥ ५४
 अत एव प्रसन्नोऽस्मि किमर्थं कारवाणि यः ।

देवा उचुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥ ५५
 त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि ।

श्रीभगवानुवाच

युष्मादागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ॥ ५६
 हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्करेण तु ।
 पुण्यनामशतेनैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥ ५७
 एतेन यस्तु मां नित्यं त्वयोक्तेन महामते ।
 तेनाहं पूजितो नित्यं भवामीह त्वया यदा ॥ ५८
 प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखरं शुभम् ।
 त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥ ५९
 गच्छध्वमधुना देवाः कालं कंचित् प्रतीक्षताम् ।
 यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥ ६०
 तस्य द्रोहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरांस्तदा ।
 हनिष्यामि वरगुणमजेयं देवदानवैः ।
 इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं ययुर्नृप ॥ ६१

सारथि, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम, सावन, साहसी, सत्त्व, सम्पूर्णाश, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिनाशन, मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराब्धिकृतकेतन, सुरासुरैःस्तुत, प्रेरक और पापनाशन आदि नामोंसे कहे जानेवाले परमेश्वर! आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार तथा आहवनीयादि अग्निरूप हैं। पुरुषोत्तम! देव! आप ही स्वाहा, स्वधा और सुधा हैं, आप सनातन देवदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। गरुडध्वज! आप प्रमाणोंके अविषय तथा अनन्त हैं ॥ ३६—५२ १/२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इन दिव्य नामोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने प्रायश्च प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा ॥ ५३ १/२ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुम लोगोंने केवल कल्याणकारी नामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; कहो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करी ॥ ५४ १/२ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे हृषीकेश! हे कमलनयन! हे लक्ष्मीपते! हे हरे! आप तो सब कुछ जानते हैं; फिर हमसे क्यों पूछ रहे हैं? ॥ ५५ १/२ ॥

श्रीभगवान् बोले—असुरनाशक देवताओ! तुम लोगोंके आनेका सारा कारण मुझे ज्ञात है। जगत्का कल्याण करनेवाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका नाश करानेके लिये मेरे एक सौ पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है। महामते शिव! तुम्हारे कहे हुए इन सौ नामोंसे जो मेरा नित्य स्तवन करेगा, उस पुरुषद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिदिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारे द्वारा हुआ है। देव शम्भो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ। तुमने मेरी स्तुति की है, अतः तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करूँगा। देवताओ! अब तुम भी जाओ और कुछ कास्तक प्रतीक्षा करो। जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक बुद्धिमान् विष्णुभक्त पुत्र होगा और जिस समय यह दैत्य प्रह्लादसे द्रोह करेगा, उस समय वहाँसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरका मैं अवश्य वध कर डालूँगा। राजन्! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाम करके चले गये ॥ ५६—६१ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोर्नमस्तोत्रं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका नामनय स्तोत्र' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि-भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्दिष्टता

सहस्रनाम उपाख

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
प्रादुर्भावं नृसिंहस्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १
वद प्रह्लादचरितं विस्तरेण ममानघ ।
धन्या वयं महायोगिंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ २
सुधां पिबामो दुर्लभ्यां धन्याः श्रीशकथाभिधाम् ।

श्रीमार्कण्डेय उपाख

पुरा हिरण्यकशिपोस्तपोऽर्थं गच्छतो वनम् ॥ ३
दिग्दाहो भूमिकम्पश्च जातस्तस्य महात्मनः ।
वारितो बन्धुभिर्भृत्यैर्मित्रैश्च हितकारिभिः ॥ ४
शकुना विगुणा राजझातास्तच्च न शोभनम् ।
त्रैलोक्याधिपतिस्त्वं हि सर्वे देवाः पराजिताः ॥ ५
तवास्ति न भयं सौम्य किमर्थं तप्यते तपः ।
प्रयोजनं न पश्यामो वयं युद्धया सपन्विताः ॥ ६
यो भवेन्नूनकामो हि तपश्चर्या करोति सः ।
एवं तैर्वार्यमाणोऽपि दुर्मदो मदमोहितः ॥ ७
यातः कैलासशिखरं द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ।
तस्य संतप्यमानस्य तपः परमदुष्करम् ॥ ८
चिन्ता जाता महीपाल विरिञ्चोः पञ्चजन्मनः ।
किं करोमि कथं दैत्यस्तपसो विनिवर्तते ॥ ९
इति चिन्ताकुलस्यैव ब्रह्मणोऽङ्गसमुद्भवः ।
प्रणम्य प्राह भूपाल नारदो मुनिसत्तमः ॥ १०

नारद उपाख

किमर्थं खिद्यते तात नारायणपरायण ।
येषां मनसि गोविन्दस्ते वै नार्हन्ति शोचितुम् ॥ ११
अहं तं वारयिष्यामि तप्यन्तं दितिनन्दनम् ।
नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति ॥ १२

सहस्रनामिकने कहा— सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजी! आप भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा यथोचितरूपसे कहें। अनघ! भक्तवर प्रह्लादजीका चरित्र मुझे विस्तारपूर्वक सुनायें। महायोगिन्! महामुने! हम लोग धन्य हैं; क्योंकि आपकी कृपासे हमें भगवान् विष्णुकी कथारूप दुर्लभ सुधाका पान करनेका अवसर मिला है ॥ १-२१/॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले— पूर्वकालमें एक समय वह महाकाय हिरण्यकशिपु जब तपस्या करनेके लिये वनमें जानेको उद्यत हुआ, उस समय समस्त दिशाओंमें दाह और भूकम्प होने लगा। यह देखकर उसके हितकारी बन्धुओं, मित्रों और भृत्योंने उसे मना किया—‘राजन्! इस समय बुरे शकुन हो रहे हैं। इनका फल अच्छा नहीं है। मौन्य। आप त्रिभुवनके एकच्छत्र स्वामी हैं, समस्त देवताओंपर आपने विजय प्राप्त की है, आपको किसीसे भय भी नहीं है; फिर किसलिये तप करना चाहते हैं? हम सभी लोग जब अपनी बुद्धिसे विचारते हैं, तब कोई भी प्रयोजन नहीं दिखायो देता [जिसके लिये आपको तप करनेकी आवश्यकता हो]; क्योंकि जिसकी कामना अपूर्ण होती है, वही तपस्या करता है’ ॥ ३-६१/॥

अपने बन्धुजनोंके इस प्रकार मना करनेपर भी वह दुर्मद एवं मदमत्त दैत्य अपने दो-तीन मित्रोंको साथ लेकर (तपके लिये) कैलास-शिखरको चला ही गया। महोपास! वहाँ जाकर जब वह परम दुष्कर तपस्या करने लगा, तब पद्मयोगी ब्रह्मजीको उसके कारण बड़ी चिन्ता हो गयी। ये सोचने लगे—‘अहो! अब क्या करूँ? यह दैत्य कैसे तपसे निवृत्त हो?’ भूपाल! इस चिन्तासे ब्रह्मजी जब व्याकुल हो रहे थे, उसी समय उनके अङ्गसे उत्पन्न मुनिवर नारदजीने उन्हें प्रणाम करके कहा— ॥ ७-१० ॥

नारदजी बोले— पिताजी! आप तो भगवान् नारायणके आश्रित हैं, फिर आप क्यों खेद कर रहे हैं? जिनके हृदयमें भगवान् गोविन्द विराजमान हैं, उन्हें इस प्रकार सोच नहीं करना चाहिये। तपस्यामें प्रवृत्त हुए उस दैत्य हिरण्यकशिपुकी मैं उससे निवृत्त करूँगा। जगदीश्वर भगवान् नारायण मुझे इसके लिये सुबुद्धि देंगे ॥ ११-१२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाऽऽनम्य पितरं वासुदेवं हृदि स्मरन् ।
 प्रयातः पर्वतेनैव सार्धं स मुनिपुङ्गवः ॥ १३
 कलविङ्करी तु तौ भूत्वा कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
 यत्रास्ते दितिजश्रेष्ठो द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ॥ १४
 कृतस्नानो मुनिस्तत्र वृक्षशाखासमाश्रितः ।
 शृण्वतस्तस्य दैत्यस्य ग्राह गम्भीरया गिरा ॥ १५
 नमो नारायणायेति पुनः पुनरुदारधीः ।
 त्रिवारं प्रजपित्वा वै नारदो मीनमाश्रितः ॥ १६
 तच्चकृत्वा वचनं तस्य कलविङ्कस्य सादरम् ।
 हिरण्यकशिपुर्दैत्यः क्रुद्धश्चापं समाददे ॥ १७
 याणं धनुषि संधाय यावन्मुञ्चति तौ प्रति ।
 तावदुद्धृडीय तौ भूप गती नारदपर्वतौ ॥ १८
 सोऽपि क्रोधपरीताङ्गो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
 त्यक्त्वा तमाश्रमं भूयो नगरं स्वं गहीपते ॥ १९
 तस्यापि भार्या सुश्रोणी कयाधूर्नाम नामतः ।
 तदा रजस्वला भूत्वा स्नाताभूरिवयोगतः ॥ २०
 रात्रावेकान्तसमये तया पृष्टः स दैत्यराट् ।
 स्वामिन् यदा तपश्चर्यां कर्तुं गेहाद्वनं गतः ॥ २१
 तदा त्वयोक्तं वर्षाणामयुतं मे तपस्त्वित्तम् ।
 तत्किमर्थं महाराज साम्प्रतं त्यक्तवान् व्रतम् ॥ २२
 तथ्यं कथय मे नाथ स्नेहात्पृच्छामि दैत्यप ।

हिरण्यकशिपुस्त्वाच

शृणु चार्वङ्गि मे तथ्यां वाचं व्रतविनाशिनीम् ॥ २३
 क्रोधस्यातीव जननीं देवानां मुदवर्द्धनीम् ।
 कैलासशिखरे देवि महदानन्दकानने ॥ २४
 व्याहरन्ती शुभां वाणीं नमो नारायणेति च ।
 वारद्वयं त्रयं चेति व्याहृतं वचनं शुभे ॥ २५

मार्कण्डेयजी बोले—अपने पितासे इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और मन-हो-मन भगवान् वासुदेवका स्मरण करते हुए वे पर्वतमुनिके साथ वहाँसे चल दिये। वे दोनों मुनि कलविङ्क पक्षीका रूप धारणकर उस उत्तम कैलास पर्वतपर आये, जहाँ दैत्यश्रेष्ठ हिरण्यकशिपु अपने दो-तीन मित्रोंके साथ रहता था। वहाँ स्नान करके नारदमुनि वृक्षको साक्षात्पर बैठ गये और उस दैत्यके सुनने-सुनते गम्भीर वाणीमें भगवन्नामका उच्चारण करने लगे। उदारबुद्धि नारद लगातार तीन बार 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका उच्च स्वरसे उच्चारण कर मीन हो गये। भूपाल! कलविङ्कके द्वारा किये गये उस आदरयुक्त नामकोटनको सुनकर हिरण्यकशिपुने क्रुपित हो धनुष उठाया और उसपर बाणका संधान करके ज्यों ही उन दोनों पक्षियोंके प्रति छोड़ने लगा, त्यों ही नारद और पर्वतमुनि उड़कर अन्यत्र चले गये। महोपा! तब हिरण्यकशिपु भी क्रोधसे भर गया और उसी समय वह उस आश्रमको त्यागकर अपने नगरको वाला आया ॥ १३—१९ ॥

वहाँ उसी समय उसकी कयाधू नामकी सुन्दरी पत्नी देवयोगसे रजस्वला होकर स्नान-स्नाता हुई थी। शत्रिमै एकान्तवासके समय कयाधूने दैत्यराजसे पूछा—'स्वामिन्! आप जिस समय तप करनेके लिये घरसे वनको गये थे, उस समय तो आपने यह कहा था कि 'मेरी यह तपस्या दस हजार वर्षोंतक चलेगी।' फिर महाराज! आपने अभी क्यों उस व्रतको त्याग दिया? स्वामिन्! दैत्यराज! मैं प्रेमपूर्वक आपसे यह प्रश्न करती हूँ, कृपया मुझे सच-सच बताइये' ॥ २०—२२ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—सुन्दरि! सुनो, मैं वह बात तुम्हें सच-सच सुनाता हूँ, जिसके कारण मेरे व्रतका भङ्ग हुआ है। वह बात मेरे क्रोधको अत्यन्त बढ़ानेवाली और देवताओंको आनन्द देनेवाली थी। देवि! कैलासशिखरपर जो महान् आनन्द-कानन है, उसमें दो पक्षी 'ॐ नमो नारायणाय'—इस शुभवाणीका उच्चारण करते हुए आ गये। शुभे! उन्होंने [मुझे सुना-सुनाकर] दो बार, तीन बार उक्त वचनको दुहराया।

तेन मे मनसि क्रोधो जातोऽतीव वरानने।
कोदण्डे शरमाधाय यावन्मुञ्चामि भामिनि ॥ २६
तावत्तौ पक्षिणौ भीतौ गतौ देशान्तरं त्वहम्।
त्यक्त्वा व्रतं समायातो भाविकार्यवलेन वै ॥ २७

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्यमाने वचने वीर्यव्रान्तोऽभवत्तदा।
श्रुतुकाले तु सम्प्राप्ते जातो गर्भस्तदैव हि ॥ २८
पुनः प्रवर्धमानस्य गर्भे गर्भस्य धीमतः।
नारदस्योपदेशेन वैष्णवः समजायत ॥ २९
तदग्रे कथयिष्यामि भूप श्रद्धापरो भव।
तस्य सूनुरभूद्भक्तः प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ॥ ३०
सोऽवर्धतासुरकुले निर्मलो मलिनाश्रये।
यथा कलौ हरेर्भक्तिः पाशसंसारमोचनी ॥ ३१
स वर्द्धमानो विरराज बालैः
सह त्रयीनाथपदेषु भक्त्या।
बालोऽल्पदेहो महतीं महात्मा
विस्तारयन् भाति स विष्णु भक्तिम् ॥ ३२
यथा चतुर्थं युगमाप्तधर्म-
कामार्थमोक्षं किल कीर्तिदं हि।
स बाललीलासु सहान्यङ्गिर्भः
प्रेहलिकाक्रीडनकेषु नित्यम् ॥ ३३
कथाप्रसङ्गेषु च कृष्णमेव
प्रोवाच यस्मात् स हि तत्त्वभावः।
इत्थं शिशुत्वेऽपि विचित्रकारी
व्यवर्द्धतेशस्मरणामृताशः ॥ ३४

तं पश्यवक्त्रं दैत्येन्द्रः कदाचित्स्त्रीवृतः खलः।
बालं गुरुगृहायातं ददर्श स्वायतेक्षणम् ॥ ३५

वगनने! पक्षियोंके उस शब्दको सुनकर मैं मनमें बड़ा क्रोध हुआ और भामिनि! उन्हें मारनेके लिये धनुषपर बाण चढ़ाकर ज्यों ही मैंने छोड़ना चाहा, त्यों ही वे दोनों पक्षी भयभीत हो उड़कर अन्यत्र चले गये। तब मैं भी भावीकी प्रवृत्ततासे अपना व्रत त्यागकर वहाँ चला आया ॥ २३—२७ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—[हिरण्यकशिपु अपनी पत्नीके साथ] जब इस प्रकार बातें कर रहा था, उसी समय उसका शीर्ष स्थलित हुआ; पत्नीका श्रुतुकाल तो प्राप्त था ही, तत्काल गर्भ स्थापित हो गया। माताके उदरमें बढ़ते हुए उस गर्भसे बुद्धिमान् नारदजीके उपदेशके कारण विष्णुभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। भूप! इस प्रसङ्गको आगे कहूँगा; इस समय जो प्रसङ्ग चल रहा है, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। हिरण्यकशिपुका वह भक्त पुत्र प्रह्लाद जन्मसे ही वैष्णव हुआ। जैसे पापपूर्ण कलियुगमें संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भगवान् श्रीहरिकी भक्ति बढ़ती रहती है, उसी प्रकार उस मलिन कर्म करनेवाले अमुर-वंशमें भी प्रह्लाद निर्मल भावसे रहकर दिनोदिन बढ़ने लगा। वह बालक त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुके चरणोंमें बढ़ती हुई भक्तिके साथ ही स्वयं भी बढ़ता हुआ शोभा पा रहा था। शरीर छोटा होनेपर भी उस बालकका हृदय महान् था; वह विष्णुभक्तिका प्रसार करता हुआ उसी तरह शोभा पाता था, जैसे चौथा युग (कलियुग) [महत्त्वमें सब युगोंसे छोटा होकर भी] भगवद्भजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला तथा यज्ञका विस्तार करनेवाला होता है। प्रह्लाद अन्य बालकोंके साथ खेलते, पहली बुझते और खिलौने आदिसे मनोरञ्जन करते समय तथा बातचीतके प्रसङ्गमें भी सदा भगवान् विष्णुकी ही चर्चा करता था; क्योंकि उसका स्वभाव भगवन्मय हो गया था। इस प्रकार शैशव-कालमें भी विचित्र कार्य करनेवाला वह प्रह्लाद भगवत्स्मरणरूपी अमृतका पान करता हुआ दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ २८—३४ ॥

एक दिन बहुत-सी स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए दुष्ट दैत्यराज हिरण्यकशिपुने गुरुजीके घरसे आये हुए कमल-से मुखवाले अपने बालक पुत्र प्रह्लादको देखा; उसकी

गृहीत्वा तु करे पुत्रं पट्टिका या सुशोभना ।
मूर्ध्नि चक्राङ्किता पट्टी कृष्णनामाङ्किताऽऽदरात् ॥ ३६

तमाहूय मुदाविष्टो लालयन् प्राह पुत्रकम् ।
पुत्र ते जननी नित्यं सुधीर्मे त्वा प्रशंसति ॥ ३७

अथ तद्बुद यत्किंचिद् गुरुवेश्मनि शिक्षितम् ।
विचार्यानन्दजननं सम्यगायाति तद्बुद ॥ ३८

अथाह पितरं हर्षात् प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ।
गोविन्दं त्रिजगद्गन्धं प्रभुं नत्वा ब्रवीमि ते ॥ ३९

इति शत्रोः स्तवं श्रुत्वा पुत्रोक्तं स्वीकृतः खलः ।
कुब्जोऽपि तं वञ्चयितुं जहासोष्णीः प्रहृष्टवत् ॥ ४०

आलिङ्ग्य तनयं प्राह शृणु बाल हितं वचः ।
राम गोविन्द कृष्णोति विष्णो माधव श्रीपते ॥ ४१

एवं वदन्ति ये सर्वे ते पुत्र मम वीरिणः ।
शासितास्तु मयेदानीं त्वयेदं कृ श्रुतं वचः ॥ ४२

पितुर्वचनमाकर्ण्य धीमानभयसंयुतः ।
प्रह्लादः प्राह हे आर्य मैवं ब्रूयाः कदाचन ॥ ४३

सर्वैर्धुर्यप्रदं मन्यं धर्मादिपरिवर्धनम् ।
कृष्णोति यो नरो ब्रूयात् सोऽभयं विन्दते पदम् ॥ ४४

कृष्णानिन्दासमुत्थस्य अपम्यान्तो न विद्यते ।
राम माधव कृष्णोति स्मर भक्त्याऽऽत्मशुद्धये ॥ ४५

गुरुवेऽपि ब्रवीम्येतद्यतो हितकरं परम् ।
शरणं व्रज सर्वेशं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ४६

अच्छे बड़ी-बड़ी और सुन्दर थी तब वह हाथमें पट्टी लिये हुए था। उसकी पट्टी बड़ी सुन्दर थी, उसके सिरेपर चक्रका चिह्न बना हुआ था और पट्टीपर आदरपूर्वक श्रेङ्कणका नाम लिखा गया था। उसे देख हिरण्यकशिपुको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुत्रको पास बुलाकर उसे प्यार करते हुए कहा—‘बेटा! तुम्हारी बुद्धिमत्ता माता मुझसे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करती है। अतः तुमने गुरुजीके घर जो कुछ सीखा है, वह मुझसे कहो। पहले सोच लो, जो तुम्हें बहुत अनन्ददायी प्रतीत होता हो और भलीभाँति याद हो, वही पाठ सुनाओ’ ॥ ३५—३८ ॥

यह सुनकर जन्मसे ही विष्णुकी भक्ति करनेवाले प्रह्लादने प्रसन्नतापूर्वक पितासे कहा—‘त्रिभुवनके वन्दनीय भगवान् गोविन्दको प्रणाम करके मैं अपना पढ़ा हुआ पाठ आपको सुनाता हूँ।’ अपने पुत्रके मुखसे इस प्रकार शत्रुकी स्तुति सुनकर त्रिपयोसे पिरा हुआ वह दुष्ट दैत्य यद्यपि बहुत क्रुद्ध हुआ, तथापि प्रह्लादसे उस जोषको छिपानेके लिये वह प्रसन्न पुरुषकी भाँति जोर-जोरसे हँसने लगा। फिर पुत्रको गलेसे लगाकर बोला—‘बच्चा! मेरा हितकर वचन सुनो—बेटा! जो लोग ‘राम, कृष्ण, गोविन्द, विष्णो, माधव, श्रीपते!’ इस प्रकार कहा करते हैं, वे सभी मेरे शत्रु हैं; ऐसे लोग मेरे द्वारा शासित—दण्डित हुए हैं। तुमने यह हरिनामकोर्तन इस अवस्थामें कहाँ सुन लिया?’ ॥ ३९—४२ ॥

पिताकी बात सुनकर बुद्धिमान् प्रह्लाद निर्भय होकर बोला—आर्य! आपको कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। जो मनुष्य सम्पूर्ण श्रेष्ठियोंको देनेवाले तथा धर्म आदिकी वृद्धि करनेवाले ‘कृष्ण’ इस मन्त्रका उच्चारण करता है, वह अभय पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान् कृष्णकी निन्दारो होनेवाले पापका कहीं अन्त नहीं है; अतः अब आप अपनी शुद्धिके लिये भक्तिपूर्वक ‘राम, माधव और कृष्ण’ इत्यादि नाम लेते हुए भगवान्का स्मरण करें। जो बात मैं आपसे कह रहा हूँ, वह सचसे बढ़कर हितसाधक है, इसीलिये मेरे गुरुजन होनेपर भी आपसे मैं निवेदन करता हूँ कि आप समस्त पापोंका शय्य करनेवाले सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जावें ॥ ४३—४६ ॥

अथाह प्रकटक्रोधः सुरारिर्भर्त्सयन् सुतम् ।
केनायं बालको नीतो दशमेतां सुमध्यमाम् ॥ ४३

धिग् धिग्धाहेति दुष्पुत्र किं मे कृतमघं महत् ।
याहि याहि दुराचार पापिष्ठ पुरुषाधम ।
उक्त्वेति परितो वीक्ष्य पुनराह शिशोर्गुरुम् ॥ ४८
बद्ध्वा चानीयतां दैत्यैः क्रूरैः क्रूरपराक्रमैः ।

इति श्रुत्वा ततो दैत्यास्तमानीय न्यवेदयन् ।
धीमानूचे खलं भूपं देवान्तक परीक्षताम् ॥ ४९

लीलयैव जितं देव त्रिलोक्यं निखिलं त्वया ।
असकृन्न हि रोषेण किं क्रुद्धस्यात्पके मयि ॥ ५०

इति सामबचः श्रुत्वा द्विजोक्तं प्राह दैत्यराट् ।
विष्णुस्तवं मम सुतं पाप बालमपीपठः ॥ ५१

उक्त्वेति तनयं प्राह राजा साम्नामलं सुतम् ।
ममात्मजस्य किं जाड्यं तव चैतद्विजैः कृतम् ॥ ५२

विष्णुपक्षैर्भुवं धूर्तैर्मूढ नित्यं परित्यज ।
त्यज द्विजप्रसङ्गं हि द्विजसङ्गो ह्यशोभनः ॥ ५३

अस्मत्कुलोचितं तेजो यद्विजैस्तु तिरोहितम् ।
यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत्स्यात्स तद्गुणः ॥ ५४

स्वकुलद्धयं ततो धीमान् स्वयूथानेव संश्रयेत् ।
मत्सुतस्योचितं त्यक्त्वा विष्णुपक्षीयनाशनम् ॥ ५५

स्वयमेव भजन् विष्णुं मन्द किं त्वं न लज्यसे ।
विश्वनाथस्य मे सूनुर्भूत्वान्यं नाथमिच्छसि ॥ ५६

शृणु वत्स जगत्तत्त्वं कश्चिन्नास्ति निजः प्रभुः ।
यः शूरः स श्रियं भुङ्क्ते स प्रभुः स महेश्वरः ॥ ५७

प्रह्लादके यों कहनेपर देवशत्रु हिरण्यकशिपु अपने क्रोधको रोक न सका, उसने रोषको प्रकट करके पुत्रको फटकारते हुए कहा—'हाय! हाय! किसने इस बालकको अत्यन्त मध्यम कोटिकी अवस्थाको पहुँचा दिया? रे दुष्ट पुत्र! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। तूने क्यों मेरा महान् अपराध किया? ओ दुराचारी नीच पुरुष! ओ पापिष्ठ! तू यहाँसे चला जा, चला जा।' यों कहकर उसने अपने चारों ओर निहारकर फिर कहा—'नृत्स पराक्रमी क्रूर दैत्य जायें और इसके गुरुको बाँधकर यहाँ से आँसे' ॥ ४३-४८ ॥

यह सुन दैत्योंने प्रह्लादके गुरुको वहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। बुद्धिमान् गुरुने उस दुष्ट दैत्यराजसे धिनयपूर्वक कहा—देवान्तक! छोड़ा विचार तो कीजिये। आपने समस्त त्रिभुवनको अनायास ही अनेकों बार पराजित किया है, खेल-खेलमें ही सबको जीता है, रोषसे कभी काम नहीं लिया। फिर मुझ-जैसे तुच्छ प्राणीपर क्रोध करनेसे क्या लाभ होगा? ॥ ४९-५० ॥

ब्राह्मणके इस शान्त वचनको सुनकर दैत्यराज बोला—'ओ पापी! तूने मेरे बालक पुत्रको विष्णुका स्तोत्र पढ़ा दिया है।' गुरुसे यों कहकर राजा हिरण्यकशिपुने अपने निर्दोष पुत्रके प्रति सान्त्वनापूर्वक कहा—'बेटा! तू मेरा आत्मज है, तुझमें यह जड़-बुद्धि कैसे आ सकती है? यह तो इन ब्राह्मणोंकी ही करतूत है। मूर्ख बालक! आजसे तू सदा विष्णुके पक्षमें रहनेवाले धूर्त ब्राह्मणोंका स्वयं छोड़ दे, ब्राह्मणमात्रका सङ्ग त्याग दे; ब्राह्मणोंकी संगति अच्छी नहीं होती; क्योंकि इन ब्राह्मणोंने ही तेरे उस तेजको छिपा दिया, जो हमारे कुलके लिये सर्वथा उचित था। जिस पुरुषको जिसकी संगति मिल जाती है, उसमें उसीके गुण आने लगते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मणि कौचड़में पड़ी हो तो उसमें उसके दुर्गन्ध आदि दोष आ जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपने कुलकी समृद्धिके लिये आत्मीय जनोंका ही आश्रय ले। बुद्धिहीन बालक! मेरे पुत्रके लिये तो उचित कर्तव्य यह है कि वह विष्णुके पक्षमें रहनेवाले लोगोंका नाश करे; परंतु तू इस उचित कार्यको त्यागकर इसके विपरीत स्वयं ही विष्णुका भजन कर रहा है! क्या तो सही, क्या यों करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? ओरे! मुझ सम्पूर्ण जगत्के सम्राट्का पुत्र होकर तू दूसरेको अपना स्वामी बनाना चाहता है? बेटा! मैं तुझे संसारका तत्त्व बताता हूँ, सुन; यहाँ कोई भी अपना स्वामी नहीं है। जो शूरवीर है, वही लक्ष्मीका उपभोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है ॥ ५१-५७ ॥

स देवः सकलाद्यक्षो यथाहं त्रिजगज्जयी ।
त्यज जाड्यमतः शौर्यं भजस्व स्वकुलोचितम् ॥ ५८

अन्येऽपि त्वां हनिष्यन्ति वदिष्यन्ति जनास्त्रिदम् ।
असुरोऽयं सुरान् स्तौति मार्जार इव भूषकान् ॥ ५९

द्वेष्यान् शिखीव फणिनो दुर्निमित्तमिदं ध्रुवम् ।
लब्ध्वापि महर्दश्वर्यं लाघवं यान्त्यबुद्धयः ॥ ६०

यथायं मत्सुतः स्तुत्यः स्तावकान् स्तौति नीचवत् ।
रे मूढ दृष्ट्वायैश्वर्यं मम दूषे पुरो हरिम् ॥ ६१

असदृशस्य तु हरेः स्तुतिरेषा विडम्बना ।
इत्युक्त्वा तनयं भूप जातक्रोधो भयानकः ॥ ६२

जिह्वं निरीक्ष्य च प्राह तद्गुरुं कम्पयन् रुषा ।
याहि याहि द्विजपशो साधु शाधि सुतं मम ॥ ६३

प्रसाद इत्येष वदन् स विप्रो
जगाम गेहं खलराजसेवी ।
विष्णुं विसृज्यान्वसरच्च दैत्यं
किं या न कुर्युर्भरणाय तुब्धाः ॥ ६४

इति श्रीनरसिंहपुराणे दुर्निमित्तप्रबन्धोऽष्टमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहावतार' नामक द्वाकालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका यथ करनेके लिये उसके द्वारा किये गये अनेक प्रयत्न

मार्कण्डेय उवाच

सोऽप्याशु नीतो गुरुवेश्म दैत्यै-
दैत्येन्द्रसुनुर्हरिभक्तिभूषणः ।
अशेषविशानिवहेन साकं
कालेन कौमारमवाप योगी ॥ १

"यही सप्तका अध्यक्ष देवता है, जैसा कि तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला मैं हूँ। इसलिये तू अपनी यह जड़ता त्याग दे और अपने कुलके लिये उचित वीरताका आग्रह ले। तेरे यह कायरता देखकर दूसरे लोग भी तुझे माँसे और कहेंगे कि 'अरे! यह असुर होकर भी देवताओंकी उसी प्रकार स्तुति करता है, जैसे विभीषणकी स्तुति करे और मोर अपने द्वेषपात्र सर्पोंकी प्रार्थना करे। ऐसा करना अवश्य ही अनिष्टका सूचक है। मूर्ख ज्ञानी महान् ऐश्वर्य पाकर भी [अपने छोटे कर्मोंके द्वारा] नोचे गिर जाते हैं, जैसे मेरा पुत्र प्रह्लाद, जो स्वयं स्तुतिके योग्य था, आज नोच जनोंकी भीति उन लोगोंकी स्तुति कर रहा है, जो स्वयं हमारी स्तुति करनेवाले हैं। रे मूर्ख! तू मेरा ऐश्वर्य देखकर भी मेरे सामने ही हरिका नाम ले रहा है? यह हरि इस सम्मानके योग्य नहीं है, उसकी स्तुति विडम्बनामात्र है" ॥ ५८—६१ ॥

भूप! अपने पुत्रसे इस प्रकार कहकर वह इतना क्रुपित हुआ कि उसका स्वरूप भयानक हो गया; फिर प्रह्लादके गुरूको देखी नजरसे देखकर उन्हें अपने रोषसे कंपता हुआ बोला—'मूर्ख ब्राह्मण! यहाँसे चला जा, चला जा। अबकी बार मेरे पुत्रको अच्छी शिक्षा देना।' दुष्ट राजाकी सेवा करनेवाला वह ब्राह्मण 'बड़ी कृपा हुई' यों कहता हुआ घर चला गया और विष्णुका भजन त्यागकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) का अनुसरण करने लगा। सब है, सोभी चण्ड्य अपना पेट पालनेके लिये क्या नहीं कर सकते? ॥ ६२—६४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही जिनका भूषण है, वे दैत्यराजकुमार योगी प्रह्लादजी शीघ्र ही सारथिके साथ गुरूके घर भेजे गये। वहाँ वे कालक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञानके साथ कुमारावस्थाको प्राप्त हुए।

प्रायेण कीमारमवाप्य लोकः
पुष्पाति नास्तिक्यमसदृतिं च ।
तस्मिन् वयःस्थस्य वह्निर्विरक्ति-
र्भवत्यभूच्चित्रमजे च भक्तिः ॥ २

अथ सम्पूर्णविद्यं तं कदाचिद्विजेधुरः ।
आनाव्य प्रणतं प्राह प्रह्लादं विदितेश्वरम् ॥ ३

साध्वज्ञाननिधेर्बाल्यान्मुक्तोऽसि सुरमूदन ।
इदानीं भ्राजसे भास्वान् नौहारादिव निर्गतः ॥ ४

बाल्ये वयं च त्वमिव द्विजैर्जाड्याय मोहिताः ।
वयसा वर्धमानेन पुत्रकैवं सुशिक्षिताः ॥ ५

तदद्य त्वमि धुर्येऽहं संसकण्टकताधुरम् ।
विन्यस्य स्यां चिरधृतां सुखी पश्यन् श्रियं तव ॥ ६

यदा यदा हि नैपुण्यं पिता पुत्रस्य पश्यति ।
तदा तदाऽऽभिं त्यक्त्वा नु महतीः खमवाप्नुयात् ॥ ७

गुरुश्चातीव नैपुण्यं ममाग्रेऽवर्णयन्तव ।
न चित्रं पुत्र तच्छ्रोतुं किं नु मे याज्जतः श्रुती ॥ ८

नेत्रयोः शत्रुदारिद्र्यं श्रोत्रयोः सुतमूक्तयः ।
युद्धव्रणं च गात्रेषु मायिनां च महोत्सवः ॥ ९

श्रुत्वेति निकृतिप्रज्ञं दैत्याधिपवचस्ततः ।
जगाद योगी निश्शङ्कं प्रह्लादः प्रणतो गुरुम् ॥ १०

सूक्तयः श्रोत्रयोः सत्यं महाराज महोत्सवः ।
किंतु ता वृष्णावीर्वाद्यो मुक्त्वा नान्या विचारयेत् ॥ ११

नीतिः सूक्तिः कथाः श्राव्याः श्राव्यं काव्यं च तद्वचः ।
यत्र संसृतिदुःखौघकक्षाग्रिणीयते हरिः ॥ १२

संसारके अन्य लोग कीमार अवस्थाको पाकर प्रायः नास्तिक विचार और बुरे आचार व्यवहारके पोषक बन जाते हैं, परंतु उसी उम्रमें प्रह्लादको बाह्य विषयोंसे वैराग्य हुआ और भगवान्‌में उनकी भक्ति हो गयी—यह अद्भुत बात है। तदनन्तर जब प्रह्लादने गुरुके यहाँ अपनी पढ़ाई समाप्त कर ली, तब एक दिन दैत्यराजने उन्हें अपने पास बुलावाया और ईश्वर-तत्त्वके ज्ञाता प्रह्लादको अपने सामने प्रणाम करके खड़े देख उनसे कहा— ॥ १—३ ॥

सुरमूदन! तुम अज्ञानकी निधिरूप बाल्यावस्थासे मुक्त हो गये—यह बहुत अच्छा हुआ। इस समय तुम कुहिरसे निकले हुए सूँघकी भाँति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हो। पुत्र! सचपनमें तुम्हारी ही तरह हमें भी जड़बुद्धि सिखानेके लिये ब्राह्मणोंने मोहित कर रखा था; किंतु अवस्था बदलेपर जब हम समझदर हुए, तब इस प्रकार अपने कुलके अनुरूप सुन्दर शिक्षा ग्रहण कर सके थे। अतः कष्टरूपी कौटोंसे मुक्त इस राज्य-शासनके भाग्यो, जिते मैंने बहुत दिनोंसे धारण कर रखा है, अब तुम सारगर्भिकान् पुत्रपर रखकर मैं तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखते हुए सुखी होना चाहता हूँ। पिता जब-जब अपने पुत्रकी निपुणता देखता है, तब-तब अपनी मानसिक चिन्ता त्यागकर महान् सुखका अनुभव करता है। तुम्हारे गुरुने भी मेरे समक्ष तुम्हारी योग्यताका जड़ा ज्ञान किया है। यह तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आज मेरे कान तुम्हारी कुछ बातें सुनना चाहते हैं। नेत्रोंके सामने शत्रुको दृष्टित देखना, कानोंमें पुत्रकी सुन्दर घालीका पड़ना और अङ्गोंमें सुन्दर आघातसे घाव होना—यह सब ऐश्वर्यवान्‌की ही अथवा पायावी दैत्योंके लिये महान् इत्थारके समान है ॥ ४—९ ॥

उस समय दैत्यराजके ये शठतापूर्ण वचन सुनकर योगी प्रह्लादने पिताको प्रणाम करके निर्भीकतापूर्वक कहा— ॥ १० ॥

‘महाराज! आपका यह कथन सत्य है कि अच्छे बर्तों सुनना जानोंके लिये महान् उत्सवके समान है; किंतु ये बर्तों भगवान्‌ विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली हों, तभी ऐसा होता है। उनको छोड़कर दूसरे बर्तों सुननेका विचार भी नहीं करना चाहिये। जो संसारके दुःखसमुदायरूपी तृणोंकी भ्रम करनेके लिये अश्रिकेसमान है, उन भगवान्‌विष्णुका जिसमें गुणगान किया जाऊ हो, वही वचन नीतियुक्त है, वही सूक्ति (सुन्दर वचन) है, वही सुनने योग्य कथा और श्रवण करने योग्य कथ्य है।

अचिन्त्यः स्तूयते यत्र भक्त्या भक्तेर्मितप्रदः ।
 अर्धशास्त्रेण किं तात यत्र संसृतिमंततिः ॥ १३
 शास्त्रश्रमेण किं तात येनात्मैव विहंस्यते ।
 वैष्णवं बाह्मयं तस्माच्छाव्यं सेव्यं च सर्वदा ॥ १४
 मुमुक्षुभिर्भवक्लेशाग्रो चेन्नैव सुखी भवेत् ।
 इति तस्य वचः शृण्वन् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ १५
 जज्वाल दैत्यराट् तमसर्पिरिन्द्रिवाधिकम् ।
 प्रह्लादस्य गिरं पुण्यां जनसंसृतिनाशिनीम् ॥ १६
 नामूष्यतासुरः क्षुद्रो घृको भानुप्रभापिव ।
 परितो वीक्ष्य सम्प्राह कुद्रो दैत्यभटानिदम् ॥ १७
 हन्यतामेव कुटिलः शस्त्रपातैः सुभीषणैः ।
 उत्कृत्प्योत्कृत्प्य मर्माणि रक्षितास्तु हरिः स्वयम् ॥ १८
 पश्यत्विदानीमेवैष हरिसंस्तवजं फलम् ।
 काकोलकङ्कग्रेभ्यो ह्यस्याङ्गं संविभज्यताम् ॥ १९
 अधोद्धृतास्त्रा दैतेयास्तर्जयन्तः प्रगर्जितैः ।
 अच्युतस्य प्रियं भक्तं तं जघ्नुः पतिनोदिताः ॥ २०
 प्रह्लादोऽपि प्रभुं नत्वा ध्यानवन्नं समाददे ।
 अकुशिमरसं भक्तं तमित्थं ध्याननिश्चलम् ॥ २१
 ररक्ष भगवान् विष्णुः प्रह्लादं भक्तदुःखदत् ।
 अथालब्धपदान्यस्य गात्रे शस्त्राणि रक्षसाम् ॥ २२
 नीलाब्जशकलानीव पेतुश्छिन्नान्यनेकधा ।
 किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये ॥ २३
 तापत्रयमहास्त्रीषः सर्वोऽप्यस्माद् विभेति वै ।
 पीडयन्ति जनांस्तावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहाः ॥ २४
 यावद् गुहाशयं विष्णुं सूक्ष्मं चेतो न विन्दति ।
 ते तु भग्नास्त्रशकलैः प्रतीपोत्थैरितस्ततः ॥ २५
 हन्यमाना न्यवर्तन्त सद्यः फलददैरिव ।
 न चित्रं विद्युधानां तदज्ञानां विस्मयावहम् ॥ २६

जिसमें भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाले अचिन्त्य परमेश्वरका भक्तिपूर्वक स्तवन किया जाता हो, वही शास्त्र है। तात। उस अर्धशास्त्रसे क्या लाभ, जिसमें संसार-चक्रमें डालनेवाली ही बातें कही गयी हैं। पिताजी। उस शास्त्रमें परिश्रम करनेसे क्या सिद्ध होगा, जिससे आत्माका ही हनन होता है; इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको सदा वैष्णव शास्त्रोंका ही श्रवण और सेवन करना चाहिये। अन्यथा सांसारिक कष्टसे छुटकारा नहीं मिलता और न मनुष्य सुखी हो हो पाता है ॥ ११-१४ ॥

जिस प्रकार तपाया हुआ घी जलके छँटे पड़नेसे और अधिक प्रज्वलित हो उठता है, वैसे ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रह्लादकी उपपुङ्क्त बातें सुनकर क्रोधसे जल उठा। जैसे उम्र सूर्यकी प्रभा नहीं देख सकता, उसी प्रकार वह क्षुद्र असुर जीवके संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाली प्रह्लादकी पवित्र बातों न सह सका। उस क्रोधीने चारों ओर देखकर दैत्य स्रोतोंसे कहा— ॥ १५-१७ ॥

‘अरे। इस कुटिलको शस्त्रोंके भयंकर आघातसे मार डालो, इसके मर्मस्थानोंके टुकड़े-टुकड़े कर दो; आज इसका भगवान् स्वयं आकर इसकी रक्षा करे। विष्णुकी स्तुति करनेका फल यह आज इसी समय अपनी औद्योग्यसे देखे। इसका अङ्ग-अङ्ग काटकर कौओं, कौकों और गिद्धोंको खीट दो’ ॥ १८-१९ ॥

तब अपने स्वामी हिरण्यकशिपुद्वारा प्रेरित दैत्यराज अपनी विकट गर्जनासे डगते हुए, हाथमें शस्त्र लेकर भगवान्के प्रिय भक्त उन प्रह्लादजीको मारने लगे। प्रह्लादने भी भगवान्को नमस्कार करके ध्यानरूपी यज्ञ ग्रहण किया। तब भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वभावतः प्रेम करनेवाले भक्त प्रह्लादको इस प्रकार ध्यानमें स्थिर देख उसकी रक्षा करने लगे। फिर तो राक्षसोंके चलापे हुए अस्त्र-शस्त्र प्रह्लादके शरीरमें स्पष्ट किये बिना ही नील-कमलके टुकड़ोंकी भाँति खण्ड-खण्ड होकर गिर खने लगे। भला, ये प्राकृत शस्त्र भगवान्के प्रिय भक्तका क्या कर सकते हैं। उससे तो सम्पूर्ण वितापरूपी महान् अस्त्रसमूह भी भय मानता है। व्यापि, राक्षस और ग्रह—ये तभीतक मनुष्योंको पीड़ा पहुँचाते हैं, जबतक उनका वित्त हृदय-गुहामें सूक्ष्मरूपसे स्थित भगवान् विष्णुको नहीं प्राप्त कर लेता। भक्तके अपमानका मानो तत्काल फल देनेवाले ये भय अस्त्रखण्ड उलट चलाकर दैत्योंका संहार करने लगे। इनसे पीड़ित होनेके कारण ये दैत्य इधर-उधर भाग गये। विद्वानोंकी दृष्टिमें ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, अज्ञानियोंको ही इस घटनासे विस्मय हो सकता है ॥ २०-२६ ॥

वैष्णवं बलमालोक्य राजा नूनं भयं दधौ।
 पुनस्तस्य वधोपायं चिन्तयन् स सुदुर्मतिः ॥ २७
 समादिशत् समाहूय दंष्ट्रशूकान् सुदुर्विषान्।
 अशस्त्रवधयोग्योऽयमस्मयो हरितोषकृत् ॥ २८
 तस्माद् भवद्विरचिराद् हन्यतां गरलायुधाः।
 हिरण्यकशिपोः श्रुत्वा वचनं ते भुजंगमाः।
 तस्याज्ञां जगुर्मुष्णां प्रहृषद्दिशवर्तिनः ॥ २९
 अथ ज्वलद्दशनकरालदंष्ट्रिण

स्फुटस्फुरद्दशनसहस्रभीषणाः ।
 अकर्षका हरिमहिस्वकर्षका
 हरिप्रियं द्रुततरमापतनुषा ॥ ३०
 गरायुधास्त्वचमपि धेनुमत्पिकां
 यपुण्यजस्मृतिबलदुर्भिदाकृतेः ।
 अलं न ते हरिवपुषं तु केवलं
 विदश्य तं निजदशनैर्विना कृताः ॥ ३१
 ततः स्रवत्क्षतजविषण्णमूर्त्यो
 द्विधाकृताद्भुतदशनां भुजंगमाः।
 समेत्य ते दितिजपतिं व्यजिज्ञपन्
 विनिःश्वसत्प्रचलफणा भुजंगमाः ॥ ३२
 प्रभो महीध्यानपि भस्मशेषां-
 स्तस्मिन्नशक्तास्तु तदैव वध्याः।
 महानुभावस्य तवात्मजस्य
 वधे नियुक्त्वा दशनैर्विना कृताः ॥ ३३
 इत्थं द्विजिह्वाः कठिनं निवेद्य
 ययुर्विसृष्टाः प्रभुणाकृतार्थाः।
 विचिन्तयनाः पृथुविस्मयेन
 प्रह्लादसामर्थ्यनिदानमेव ॥ ३४

मार्कण्डेय उवाच

अथासुरेशः सचिवैर्विचार्य
 निश्चित्य सूनुं तपदण्डसाध्यम्।
 आहूय साम्ना प्रणतं जगाद
 वाक्यं सदा निर्मलपुण्यचित्तम्।
 प्रह्लाद दुष्टोऽपि निजाङ्गजातो
 न वध्य इत्यद्य कृपा ममाभूत् ॥ ३५

वैष्णवोंका बल देखकर राजा हिरण्यकशिपुको अवश्य ही महान् भय हुआ; किंतु उस दुर्बुद्धिने पुनः प्रह्लादके वधका उपाय सोचते हुए, अल्पतः भयंकर विषवासे सर्पोंको बुलाकर उन्हें आदेश दिया—'गरलायुधो*! विष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह निश्चङ्क बालक किसी शस्त्रसे नहीं मारा जा सकता; अतः तुम सभी मिलकर इसे अति शीघ्र मार डालो।' हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसकी आज्ञा माननेवाले सभी सर्पोंने उसके आदेशको हर्षपूर्वक शिरोधार्य किया ॥ २७—२९ ॥

तदनन्तर जिनके दाँत विषसे जल रहे हैं तथा जिनकी दाँतें विकराल हैं, जो स्फुट दिखाने देनेवाले हजारों चमकीले दाँतोंके कारण भयानक जान पड़ते हैं, ऐसे सर्पोंमें क्रोधसे फुफ्फुसाले हुए बड़े वेगसे उस हरिभक्तके ऊपर दूट पड़े। भगवान्‌के स्मरणके बलसे जिनका आकार दुर्भेद्य हो गया था, उन प्रह्लादजीके शरीरका मोड़ा-सा चमड़ा भी कटनेमें वे विषधर सर्प समर्थ न हो सके। इससे वे नहीं, जिनका शरीर भगवन्मय हो गया था, उन प्रह्लादजीको केवल डँसनेमात्रसे वे सर्प अपने सारे दाँत खो बैठे। तदनन्तर रक्तकी धारा बहनेसे जिनका आकार विषदण्ड हो रहा है, जिनके अद्भुत दाँतोंके दो-दो टुकड़े हो गये हैं तथा बार-बार उच्छ्वास लेनेके कारण जिनके फन चञ्चल हो रहे हैं, उन भुजंगमोंने परस्पर मिलकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको सूचित किया— ॥ ३०—३२ ॥

'अबो! हम सबोंको भी भस्म करनेमें समर्थ है, यदि उनमें हमारी शक्ति न चले तो आप तत्काल हमारा वध कर सकते हैं। परंतु आपके महानुभाव पुत्रका वध करनेमें लगाने जाकर तो हम अपने दाँतोंसे भी हाथ धो बैठे।' इस प्रकार बड़ी कठिनाईसे निवेदन करके स्वामी हिरण्यकशिपुके आदेश देनेपर भी अपने कर्णमें असफल हुए वे सर्प अल्पतः आश्चर्यके साथ प्रह्लादके अद्भुत सामर्थ्यका क्या कारण है, इसका विचार करते हुए चले गये ॥ ३३—३४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके बाद असुरराज हिरण्यकशिपुने मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपने पुत्रको दण्डसे अजेय मानकर उसे शान्तिपूर्वक अपने पास बुलाया और जब वह आकर प्रणाम करके खड़ा हो गया, तब उस निर्मल एवं पवित्र हृदयवाले अपने पुत्रसे कहा—'प्रह्लाद! अपने शरीरसे यदि दुष्ट पुत्र भी उत्पन्न हो जाय तो वह वधके योग्य नहीं है, यह सोचकर अब तुझपर मुझे दया आ गयी है' ॥ ३५ ॥

ततस्तूर्णं समागत्य दैत्यराजपुरोहिताः ।
 मूढाः प्राञ्जलयः प्राहुर्द्विजाः शास्त्रविशारदाः ॥ ३६
 त्रैलोक्यं कम्पते देव भृशं त्वय्यभिकाङ्क्षिणि ।
 प्रह्लादस्त्वां न जानाति कुद्धं स्वल्पो महाबलम् ॥ ३७
 तदलं देव रोषेण दयां कर्तुं त्वमर्हसि ।
 पुत्रः कुपुत्रतामेति न मातापितरौ कदा ॥ ३८
 उक्त्वेति कुटिलप्रज्ञं दैत्यं दैत्यपुरोहिताः ।
 आदाय तदनुज्ञातं प्रह्लादं धीधनं ययुः ॥ ३९

इति श्रीनारसिंहपुराणे नरसिंहपुराणस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें 'नरसिंहपुराणविषयक' ब्रह्मसंहिता अन्वय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीका दैत्यपुरोको उपदेश देना; हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना
 तथा वहाँ उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना

मार्कण्डेय उवाच

अथ स गुरुगृहेऽपि वर्तमानः
 सकलविद्वद्युतसक्तपुण्यचेताः ।
 जड इव विचचार बाह्यकृत्ये
 सततमनन्तमयं जगत्प्रपश्यन् ॥ १
 सहगुरुकुलवासिनः कदाचि-
 च्छ्रुतिधिरता ह्यवदन् समेत्य बालाः ।
 तव चरितमहो विचित्रमेतत्
 क्षितिपतिपुत्र यतोऽस्य भोगलुब्धः ।
 हृदि किमपि विचिन्त्य हृष्टरोमा
 भवसि सदा च वदाङ्ग यद्यगुह्यम् ॥ २
 इति गदितवतः स मन्त्रिपुत्रा-
 नवददिदं नृप सर्ववत्सलत्वात् ।
 शृणुत सुमनसः सुरारिपुत्रा
 यदहमनन्यरतिर्वदापि पृष्ठः ॥ ३

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर सकल शास्त्रोंके ज्ञाता प्रह्लादजी गुरुके घरमें रहकर भी अपने पवित्र मनको भगवान् विष्णुमें लगाये रहनेके कारण सम्पूर्ण जगत्‌को नारायणका स्वरूप समझकर बाह्य—लौकिक कर्मोंमें जड़की भाँति व्यवहार करते हुए विचरते थे। एक दिन, उनके साथ ही गुरुकुलमें निवास करनेवाले छात्र-बालक पाठ-श्रवण बंद करके, एकत्र हो, प्रह्लादसे कहने लगे—'राजकुमार! अहो! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है; क्योंकि आपने विषय-भोगोंका लोभ त्याग दिया है। श्रिय! आप अपने हृदयमें किसी अतिर्वचनीय वस्तुका चिन्तन करके सदा पुलकित रहते हैं। यदि वह वस्तु छिपानेयोग्य न हो तो हमें भी बताइये' ॥ १-२ ॥

नृप! प्रह्लादजी सबपर स्नेह करनेवाले थे, अतः इस प्रकार पूछते हुए मन्त्रिकुमारोंसे ये शब्द बोले—'हे दैत्यपुत्रो! एकमात्र भगवान्‌में अनुराग रखनेवाला मैं तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ भी बता रहा हूँ, उसे तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर

धनजनतरुणीविलासरम्यो

भवविभवः किल भाति यस्तमेनम् ।

विमृशत सुबुधैरुतैश्च सेव्यो
वृत्तमथ वा परिवर्त्य एव दूरात् ॥ ४

प्रथममिह विचार्यतां यदम्बा-
जठरगतैरनुभूयते सुदुःखम् ।

सुकुटिलतनुभिस्तदग्नितप्तै-
विविधपुराजननानि संस्मरद्भिः ॥ ५

कारागृहे दस्युरिवास्मि बद्धो
जरायुणा विदकुमिमूत्रगेहे ।
पश्यामि गर्भेऽपि सकृन्मुकुन्द-
पादाब्जयोरस्मरणेन कष्टम् ॥ ६

तस्मात्सुखं गर्भशयस्य नास्ति
बाल्ये तथा यौवनवाङ्मये वा ।
एवं भवो दुःखमयः सदैव
सेव्यः कथं दैत्यसुताः प्रबुद्धैः ।
एवं भवेऽस्मिन् परिमृग्यमाणा
वीक्षामहे नैव सुखांशलेशम् ॥ ७

यथा यथा साधु विचारयाम-
स्तथा तथा दुःखतरं च विचः ।
तस्माद्भवेऽस्मिन् किल चारुरूपे
दुःखाकरे नैव पतन्ति सन्तः ॥ ८

पतन्त्यधोऽतत्त्वविदः समूहा
वह्नी पतंगा इव दर्शनीये ।
यद्यस्ति नान्यच्छरणं सुखाय
युक्तं तदैतत्पतनं सुखाभे ॥ ९

अविन्दतामन्नमहो कुशानां
युक्तं हि पिण्याकतुषादिभक्षणम् ।
अस्ति त्वजं श्रीपतिपादपद्म-
द्वन्द्वार्चनप्राप्यमनन्तमाद्यम् ॥ १०

सुनो। यह जो धन, जन और स्त्री-विलास आदिसे
अत्यन्त रमणीय प्रतीत होनेवाला सांसारिक वैभव दृष्टिगोचर
हो रहा है, इसपर विचार करो। क्या यह लोक-वैभव
विद्वानोंके संयम करने योग्य है या जल्दी-जल्दी दूरसे ही
त्याग देनेयोग्य? अहो! जिनके अङ्ग गर्भाशयमें टेढ़े-मेढ़े
पड़े हैं, जो जठरानलको ज्वालासे संतप्त हो रहे हैं तथा
जिन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मोंका स्मरण हो रहा है, वे
मायाके गर्भमें पड़े हुए जीव जिस महान् कष्टका अनुभव
करते हैं, पहले उसपर तो विचार करो ॥ ३-५ ॥

‘गर्भमें पड़ा हुआ दुःखी जीव कहता है—’हाय!
कारागारमें बँधे हुए चोरकी भाँति मैं पिशा, कुमियों और
मूत्रसे भरे हुए इस [देहरूपी] घरमें जरायु (जिल्ली)-
से बँधा पड़ा हूँ। मैंने जो एक बार भी भगवान् मुकुन्दके
चरणारविन्दोंका स्मरण नहीं किया, उसीके कारण होनेवाले
कष्टको आज मैं इस गर्भमें भोग रहा हूँ।’ अतः गर्भमें
सोनेवाले जीवको बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें भी सुख
नहीं है। दैत्यकुमारो! जब इस प्रकार यह संसार सदा
दुःखमय है, तब विश्व पुरुष इसका संयम कैसे कर
सकते हैं? इस तरह इस संसारमें दुँढ़नेपर हमें सुखका
लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता। हम जैसे-जैसे इसपर
ठीक विचार करते हैं, कैसे-ही-कैसे इस जगत्को अत्यन्त
दुःखमय समझते हैं। इसलिये ऊपरसे सुन्दर दिखायी
देनेवाले इस दुःखपूर्ण संसारमें साधु पुरुष आसक्त नहीं
होते। जो तत्त्वज्ञानसे रहित अत्यन्त मूढ़ लोग हैं, वे ही
देखनेमें सुन्दर दीपकपर गिरकर नष्ट होनेवाले पतंगोंकी
भाँति सांसारिक भोगोंमें आसक्त होते हैं। यदि सुखके
लिने कोई दूसरा सहारा न होता, तब तो सुखमय-से
प्रतीत होनेवाले इस जगत्में आसक्त होना उचित था—
जैसे अन्न न खानेके कारण जो अत्यन्त दुबले हो रहे
हैं, उनके लिये खली-भूसी आदि खा लेना ठीक हो
सकता है; परन्तु भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी
सेवासे प्राप्त होनेवाला आदि, अविनाशी, अजन्मा एवं
नित्य सुख (परमात्मा) तो है ही, फिर इस क्षणिक
संसारका आश्रय क्यों लिया जाय? ॥ ६-१० ॥

अक्लेशतः प्राप्यमिदं विमुन्य
महासुखं योऽन्यसुखानि वाञ्छेत् ।
राज्यं करस्थं स्वमसी विमुन्य
भिक्षामटेहीनमनाः समुद्रः ॥ ११

तच्चार्यते श्रीपतिपादपद्म-
द्वन्द्वं न वस्त्रं धनैः श्रमेन ।
अनन्यचित्तेन नरेण किन्तु
उच्चार्यते केशव माधवेति ॥ १२

एवं भवं दुःखमयं विदित्वा
दैत्यात्मजाः साधु हरिं भजध्वम् ।
एवं जनो जन्मफलं लभेत
नो चेद्भवाद्यां प्रपतेदधोऽधः ॥ १३

तस्माद्भवेऽस्मिन् हृदि शङ्खचक्र-
गदाधरं देवमनन्तपीडयम् ।
स्मरन् नित्यं वरदं मुकुन्दं
सद्भक्तियोगेन निवृत्तकामाः ॥ १४

अनास्तिकत्वात् कृपया भवद्भ्यो
यदामि गुह्यं भवसिन्धुसंस्थाः ।
सर्वेषु भूतेषु च मित्रभावं
भजन्त्ययं सर्वगतो हि विष्णुः ॥ १५

दैत्यपुत्रः कणुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि बालभावात्महामते ।
षण्णामर्कात्परं मित्रं गुह्यं चान्यं न विदामहे ॥ १६

त्वयैतच्छिक्षितं कुत्र तथ्यं नो यद निस्तुषम् ।

प्रह्लाद उवाच

यदा तातः प्रयातो मे तयोऽर्धं काननं महत् ॥ १७

तदा चेन्द्रः समागत्य पुरं तस्य रुरोध ह ।
मृतं विज्ञाय दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं तदा ॥ १८

इन्द्रो मे जननीं गृह्य प्रयातो मन्मथाग्निना ।
दह्यमानो महाभागां मार्गे गच्छति सत्वरम् ॥ १९

तदा मां गर्भिणं ज्ञात्वा नारदो देवदर्शनः ।
आगत्येन्द्रं जगादोच्चैर्मूढं मुञ्च पतिवताम् ॥ २०

“जो बिना कहके हो प्राप्त होनेयोग्य इस महान् सुख (परमेश्वर) को त्यागकर अन्य सुख सुखोंकी इच्छा करता है, वह दीनहृदय भूल पुरुष मानो हाथमें आये हुए अपने राज्यको त्यागकर भीख माँगता है। भगवान् लक्ष्मीपतिवैदुशत-धराविविन्दोका यथार्थ पूजन वस्त्र, धन और श्रमसे नहीं होता; किन्तु मनुष्य यदि अनन्यचित्त होकर ‘केशव’, ‘माधव’ अदि भगवत्नामोंका उच्चारण करे तो वही उनकी कारुणिक पूजा है। दैत्यकुमारो! इस प्रकार संसारको दुःखमय जानकर भगवान्का ही भलोभीति भजन करो। इस प्रकार करनेसे ही मनुष्यका जन्म सफल हो सक्ता है; नहीं तो (भगवद्भजन न करनेके कारण) अज्ञानी पुरुष भवसागरमें ही नीचेसे और नीचे स्तरमें ही गिरता रहता है। इसलिये इस संसारमें समस्त कामनाओंसे रहित हो तुम खो लो अपने हृदयके भीतर विराजमान शङ्ख-चक्र गदाधरी, वरदता, उर्विन्नाल्ले सखनीय भगवान् मुकुन्दका सच्चे भक्तिभावसे सदा चिन्तन करो। भवसागरमें पड़े हुए दैत्यपुत्रो! तुम लोग नास्तिक नहीं हो, इसलिये दयावश मैं तुमसे यह गोपनीय बात बतलाता हूँ—समस्त प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रखो; क्योंकि सबके भीतर भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं” ॥ ११—१५ ॥

दैत्यपुत्र बोले—महाबुद्धिमान् प्रह्लादजी! बचपनसे लेकर आजतक आप और हम भी षण्णामर्कके सिवा दूसरे किसी गुरु तथा मित्रको नहीं जान सके। फिर आपने यह ज्ञान कहाँ सीखा? हमसे पर्दा न रखकर सच्ची बात बताइये ॥ १६ ॥

प्रह्लादजी बोले—कहते हैं, जिस समय मेरे पिताजी तपस्व्य करनेके लिये महान् वनमें चले गये, उसी समय इन्दने यहाँ आकर पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मरा हुआ समझकर उनके इस नगरको घेर लिया। इन्द्र कामाग्निसे पीड़ित हो मेरे महाभागा माताजीको पकड़कर यहाँसे बल दिये। वे मार्गमें बढ़ी तेजीसे दूर बढ़ते हुए चले जा रहे थे। इसी समय देवदर्शन नारदजी मुझे माताके गर्भमें स्थित जान सहसा वहाँ पहुँचे और चिन्तक इन्द्रसे बोले—‘मूर्ख! इस पतिव्रताको छोड़ दो।

अस्या गर्भे स्थितो योऽसौ स वै भागवतोत्तमः ।
 तच्छ्रुत्वा नारदवचो मातरं प्रणिपत्य मे ॥ २१
 विष्णुभक्त्या प्रमुच्याध गतः स्वं भुवनं हरिः ।
 नारदस्तां समानीय आश्रमं स्वं शुभव्रतः ॥ २२
 मामुद्दिश्य महाभागामेतद्वै कथितं तदा ।
 तथा मे विस्मृतं नैव बालाभ्यासाह्नोः सुताः ॥ २३
 विष्णोश्चानुग्रहेणैव नारदस्योपदेशतः ।

मार्कण्डेय उवाच

एकदा गुप्तचर्यायां गतोऽसौ राक्षसाधिपः ॥ २४
 शृणोति राज्ञी नगरे जय रामेति कीर्तनम् ।
 अवैत्पुत्रकृतं सर्वं बलवान् दानवेश्वरः ॥ २५
 अथाहूयाह दैत्येन्द्रः क्रोधान्धः स पुरोहितान् ।
 रे रे क्षुद्रद्विजा यूयमतिमुर्म्यतां गताः ॥ २६
 प्रह्लादोऽयं पृथालापान् वक्तव्यन्यान् पाठयत्यपि ।
 इति निर्भर्त्य तान् विप्रान् हसन् राजाविशद् गृहम् ॥ २७
 न च पुत्रवधे चिन्तां जहौ स्ववधकारिणीम् ।
 आसन्नमरणोऽमर्षात्कृत्यमेकं धिमुश्य सः ॥ २८
 अकृत्यमेव दैत्यादीनाहूयोपादिशग्रहः ।
 अद्य क्षपायां प्रह्लादं प्रसुप्तं दुष्टमुत्बजिः ॥ २९
 नागपाशैर्दृढं बद्ध्वा मध्ये निक्षिपताम्बुधेः ।
 तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय ददृशुस्तमुपेत्य ते ॥ ३०
 रात्रिप्रियं समाधिस्थं प्रबुद्धं सुसवत् स्थितम् ।
 संछिन्नरागलोभादिमहाबन्धं क्षपाचराः ॥ ३१
 बध्नन्सुप्तं महात्मानं फल्गुभिः सर्परज्जुभिः ।
 गरुडध्वजभक्तं तं बद्ध्वाहिभिरबुद्धयः ॥ ३२
 जलशायिप्रियं नीत्वा जलराशौ निचिक्षिपुः ।
 बलिनस्तेऽचलान् दैत्या तस्योपरि निधाय च ॥ ३३
 शशंसुस्तं प्रियं राज्ञे हृतं तान् सोऽप्यमानयत् ।

इसके गर्भमें जो बालक है, वह भागवद्गतोंमें श्रेष्ठ है।' नारदजीका कथन सुनकर इन्द्रने विष्णुभक्तिके कारण मेरी माताको प्रणाम करके छोड़ दिया और वे अपने लोकको चले गये। फिर शुभ सकलत्ववाले नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले आये और मेरे उद्देश्यसे मेरी महाभागा माताके प्रति इस पूर्वोक्त ज्ञानका वर्णन किया। दानवी! बाल्यकालके अभ्यास, भगवान्की कृपा तथा नारदजीका उपदेश होनेसे वह ज्ञान मुझे भूला नहीं है ॥ १७—२३ १/२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन राक्षसराज हिरण्य-कशिपु रात्रिके समय गुरुरूपसे नगरमें घूम रहा था। उस समय उसे 'जय राम' का कीर्तन सुनायी देने लगा। तब बलवान् दानवराजने वह सब अपने पुत्रकी ही करतुत समझी। तब उस दैत्यराजने क्रोधान्ध होकर पुरोहितोंको बुलाया और कहा—'नीच ब्राह्मणों! जान पड़ता है, तुमलोग मरनेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो गये हो। तुम्हारे देखते-देखते यह प्रह्लाद स्वयं तो व्यर्थकी बातें बकता हो है, दूसरोंको भी यही सिखाता है।' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंको फटकारकर राजा हिरण्यकशिपु लम्बी सौंसें बाँधता हुआ घरमें आया। उस समय भी वह पुत्रवधके विषयमें होनेवाली चिन्ताको, जो उसका ही नाश करनेवाली थी, नहीं छोड़ सका। उसकी मृत्यु निकट थी; अतः उसने अमर्षवश एक ऐसा काम सोचा, जो वास्तवमें न करने योग्य ही था। हिरण्यकशिपुने दैत्यादिकोंको बुलाया और उनसे एकान्तमें कहा—'देखो, आज रातमें प्रह्लाद जब गहरी नींदमें सो जाय, उस समय उस दुष्टको भयंकर नागपाशोंद्वारा खूब कसकर बाँध दो और बीच समुद्रमें फेंक आओ' ॥ २४—२९ १/२ ॥

उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन दैत्योंने प्रह्लादजीके पास जाकर उन्हें देखा। वे रात्रिके ही प्रेमी थे (क्योंकि रातमें ही उन्हें ध्यान लगानेकी सुविधा रहती थी)। प्रह्लादजी समाधिमें स्थित होकर जाग रहे थे, फिर भी खूब सोये हुएके समान स्थित थे। उन्होंने राग और लोभ आदिके महान् बन्धनोंको काट डाला था, तो भी उन महात्मा प्रह्लादको निशाचरोंने तुच्छ नागपाशोंसे बाँध दिया। जिनकी ध्वजामें साक्षात् गरुडजी विराजमान हैं, उन भगवान्के भक्त प्रह्लादको उन मूर्खोंने सर्पोंद्वारा बाँधा और जलशायीके प्रियजनको ले जाकर जलराशि समुद्रमें डाला। तदनन्तर उन बली दैत्योंने प्रह्लादके ऊपर पर्वतकी चट्टानें रख दीं और तुरंत ही जाकर राजा हिरण्यकशिपुको यह प्रिय संवाद कह सुनाया। उसे सुनकर उस दैत्यराजने भी उन सबका सम्मान किया ॥ ३०—३३ १/२ ॥

प्रह्लादं चाब्धिमध्यस्थं तमौवांशिप्रियापरम् ॥ ३४
 प्लवतं तेजसा विष्णोर्ग्राहा भूरिभियात्यजन् ।
 स चाभिप्रचिदानन्दसिन्धुमध्ये समाहितः ॥ ३५
 न वेद बद्धमात्मानं लवणाम्बुधिमध्यगम् ।
 अथ ब्रह्मामृताम्भोधिमये स्वस्मिन् स्थिते मुनी ॥ ३६
 ययी क्षोभं द्वितीयाब्धिप्रवेशादिव सागरः ।
 क्लेशात् क्लेशानिवोद्भूय प्रह्लादमथ वीचयः ॥ ३७
 निन्धुस्तीरेऽप्लवाम्भोधेः गुरुक्तय इवाम्बुधेः ।
 ध्यानेन विष्णुभूतं तं भगवान् वरुणालयः ॥ ३८
 विन्यस्य तीरे रत्नानि गृहीत्वा द्रष्टुमापयी ।
 तावद् भगवताऽऽदिष्टः प्रहृष्टः पत्रगाशनः ॥ ३९
 बन्धनाहीन् समध्येत्य भक्षयित्वा पुनर्ययी ।
 अथावभाषे प्रह्लादं गम्भीरध्वनिरर्णयः ॥ ४०
 प्रणम्य दिव्यरूपः सन् समाधिस्थं हरेः प्रियम् ।
 प्रह्लाद भगवद्भक्त पुण्यात्मव्रणयोऽस्म्यहम् ॥ ४१
 चक्षुर्ध्यामथ मां दृष्ट्वा पावयार्थिनमागतम् ।
 इत्यम्बुधिगिरः श्रुत्वा स महात्मा हरेः प्रियः ॥ ४२
 उद्दीक्ष्य सहसा देवं तं नत्वाऽऽहासुरात्मजः ।
 कदाऽऽगतं भगवता तमवाम्बुधिरवधीत् ॥ ४३
 योगिप्रज्ञातवृत्तस्त्वमपराद्धं तवासुरैः ।
 बद्धस्त्वमहिभिर्दैत्यैर्मयि क्षितोऽद्य वैष्णव ॥ ४४
 ततस्तूर्णं मया तीरे व्यस्तस्त्वं फणिनश्च तान् ।
 इदानीमेव गरुडो भक्षयित्वा गतो महान् ॥ ४५
 महात्मन्ननुगृहीष्व त्वं मां सत्संगमार्थिनम् ।
 गृहाणेमानि रत्नानि पूज्यस्त्वं मे हरिर्यथा ॥ ४६
 यद्यप्येतैनं ते कृत्यं रत्नैर्दास्याम्यवाप्यहम् ।
 दीपात्रिवेदयत्येव भास्करस्यापि भक्तिमान् ॥ ४७

सोच समुद्रमें पड़े हुए प्रह्लादको भगवान् के तेजसे दूसरे बड़वानलको भीति प्रचलित देख अत्यन्त भयके कारण ग्राहोंने उन्हें दूरसे ही त्याग दिया। प्रह्लाद भी अपनेसे अभिन्न चिदानन्दमय समुद्र (परमेश्वर) में समाहित होनेके कारण यह न जान सके कि 'मैं बाँधकर खाँ पानीके सागरमें डाल दिया गया हूँ।' मुनि (प्रह्लाद) जब ब्रह्मानन्दामृतके समुद्ररूप अपने आत्मा में स्थित हो गये, उस समय समुद्र इस प्रकार क्षुब्ध हो उठा, मानो उसमें दूसरे महासागरका प्रवेश हो गया हो। फिर समुद्रकी लहरे प्रह्लादको धीरे-धीरे कठिनाईसे डेलकर उस नीकारहित सागरके तटकी ओर ले गयीं—ठीक उसी प्रकार, जैसे ज्ञानी गुरुके वचन क्लेशोंका द्रव्यूलन करके शिष्यको भवसागरसे पार पहुँचा देते हैं। ध्यानके द्वारा विष्णुस्वरूप हुए उन प्रह्लादजीको तीरपर पहुँचाकर भगवान् वरुणालय (समुद्र) बहुत-से रत्न ले उनका दर्शन करनेके लिये आये। इतनेमें ही भगवान् की आज्ञा पाकर सर्वभक्षी गरुडजी वहाँ आ पहुँचे और बन्धनभूत सर्पोंको अत्यन्त तर्पपूर्वक खाकर चले गये ॥ ३४—३९ ॥

तत्पश्चात् गम्भीर धीपचाला दिव्यरूपधारी समुद्र समईनिहित भगवद्भक्त प्रह्लादको प्रणाम करके गेँ बोला—'भगवद्भक्त प्रह्लाद! पुण्यात्मन्! मैं समुद्र हूँ। अपने पास आये हुए मुझ प्राणोंको अपने नेत्रोंद्वारा देखकर पवित्र कीजिये।' समुद्रके ये वचन सुनकर भगवान् के प्रिय भक्त महात्मा असुर वन्दन प्रह्लादने सहसा उनकी ओर देखकर प्रणाम किया और कहा—'श्रीमान् कब पधारे?' तब उनसे समुद्रने कहा— ॥ ४०—४३ ॥

'योगिन्! आपको यह बात ज्ञात नहीं है, असुरोंने आपका बड़ा अपराध किया है। वैष्णव! आपको सर्पोंसे बाँधकर दैत्योंने आज मेरे भीतर फेंक दिया; तब मैंने तुरन्त ही आपको किनारे लगाया और उन सर्पोंको अभी अभी महात्मा गरुडजी भक्षण करके गये हैं। महात्मन्! मैं सत्सङ्गका अभिलाषी हूँ, आप मुझपर अनुग्रह करें और इन रत्नोंको भेंटरूपमें स्वीकार करें। मेरे लिये आप भगवान् विष्णुके समान ही पूज्य हैं। यद्यपि आपको इन रत्नोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मैं तो उन्हें आपको दूँगा ही; क्योंकि भगवान् सूर्यका भक्त उन्हें दीप निवेदन करता ही है।

त्वमापत्स्वपि घोरासु विष्णुनैव हि रक्षितः ।
 त्वादृशा निर्मलात्मानो न सन्ति बहवोऽर्कवत् ॥ ४८
 बहुना किं कृतार्थोऽस्मि यत्तिष्ठामि त्वया सह ।
 आलपामि क्षणमपि नेक्षे ह्येतत्फलोपमाम् ॥ ४९
 इत्यथिना स्तुतः श्रीशमाहात्म्यवचनैः स्वयम् ।
 ययौ लज्जां प्रहर्षं च प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ ५०
 प्रतिगृह्य स रत्नानि वत्सलः प्राह वारिधिम् ।
 महात्मन् सुतरां धन्यः श्रोते त्वयि हि स प्रभुः ॥ ५१
 कल्पान्तेऽपि जगत्कृत्स्नं ग्रसित्वा स जगन्मयः ।
 त्वय्येवैकार्णवीभूते श्रोते किल महात्मनि ॥ ५२
 लोचनाभ्यां जगन्नाथं द्रष्टुमिच्छामि वारिधे ।
 त्वं पश्यसि सदा धन्यस्तत्रोपायं प्रयच्छ मे ॥ ५३
 उक्त्वेति पादावनतं तूर्णमुत्थाप्य सागरः ।
 प्रह्लादं प्राह योगीन्द्र त्वं पश्यसि सदा हृदि ॥ ५४
 द्रष्टुमिच्छस्यथाक्षिभ्यां स्तुहि तं भक्तवत्सलम् ।
 उक्त्वेति सिन्धुः प्रह्लादमात्मनः स जलेऽविशत् ॥ ५५
 गते नदीन्त्रे स्थित्वैको हरिं रात्रौ स दैत्यजः ।
 भक्त्यास्तीदिति भन्वानस्तद्दर्शनमसम्भवं ॥ ५६
 प्रह्लाद उवाच
 वेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्ध-
 वैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तम् ।
 संशोधयन्ति यद्वेक्षणयोग्यतायै
 धीरः सदैव स कवं मम गोचरः स्यात् ॥ ५७
 मात्सर्यरोषस्मरलोभमोह-
 मदादिभिर्वा सुदृढैः सुषड्भिः ।
 उपर्युपर्यावरणैः सुबद्ध-
 मन्धं मनो मे क्व हरिः क्व वाहम् ॥ ५८
 यं धातुमुख्या विबुधा भयेषु
 शान्त्यर्थिनः क्षौरनिधेरुपान्तम् ।
 गत्वोत्तमस्तोत्रकृतः कथंचित्
 पश्यन्ति तं द्रष्टुमहो ममाशा ॥ ५९

घोर आपत्तियोंमें भी भगवान् विष्णुने ही आपकी रक्षा की है। सूर्यकी भाँति आप-जैसे शुद्धचित्त महारत्ना संसारमें अधिक नहीं हैं। बहुत क्या कहूँ? आज मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके साथ स्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय क्षणभर भी जो आपके साथ बातचीत कर रहा हूँ, इससे प्राप्त होनेवाला फलको उपमा मैं कहाँ नहीं देखता' ॥ ४८—४९ ॥

इस प्रकार समुद्रने साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिके माहात्म्यसूचक वचनोंद्वारा जब उनकी स्तुति की, तब भगवान्के प्रिय भक्त प्रह्लादजीको बड़ी लज्जा हुई और हर्ष भी। सोही प्रह्लादने समुद्रके दिये हुए रत्न ग्रहणकर उनसे कहा—'महात्मन्! आप विशेष धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि भगवान् आपके ही भीतर शयन करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि जगन्मय प्रभु प्रलयकालमें भी सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके एकार्णवकल्पमें स्थित आप महात्मा महासागरमें ही शयन करते हैं। समुद्र! मैं इन स्थूल नेत्रोंसे भगवान् जगन्नाथका दर्शन करना चाहता हूँ। आप धन्य हैं; क्योंकि सदा भगवान्के दर्शन करते रहते हैं। कृपया मुझे भी उनके दर्शनका उपाय बताइये' ॥ ५०—५३ ॥

यों कहकर प्रह्लादजी समुद्रके चरणोंपर गिर पड़े। तब समुद्रने उनको शीघ्र ही उठाकर कहा—'योगीन्द्र! आप तो सदा ही अपने हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं; तथापि यदि इन नेत्रोंसे भी देखना चाहते हैं तो उन भक्तवत्सल भगवान्का स्तवन कीजिये।' यों कहकर समुद्रदेव अपने जलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ५४—५५ ॥

समुद्रके बने जानेपर दैत्यनन्दन प्रह्लादजी रात्रिमें वहाँ अकेले ही रहकर भगवान्के दर्शनको एक अश्वम्भव कार्य मानते हुए भक्तिपूर्वक क्षौरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥

प्रह्लादजी बोले—धीर पुरुष जिनके दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा ही सैकड़ों वेदान्त-वाक्यरूप वायुद्वारा अत्यन्त बड़ी हुई वैराग्यरूप अग्निकी ज्वालासे अपने चित्तको तपाकर भलीभाँति शुद्ध किया करते हैं, वे भगवान् विष्णु, भक्ता, मेरे दृष्टिपथमें कैसे आ सकते हैं। एकके ऊपर एकके क्रमसे ऊपर-ऊपर जिनका आवरण पड़ा हुआ है—ऐसे मात्सर्य, क्रोध, काम, लोभ, मोह, मद आदि छः सुदृढ़ बन्धनोंसे भलीभाँति बँधा हुआ मेरा मन अंधा (विवेकहीन) हो रहा है। कहाँ भगवान् क्षौरिक और कहाँ मैं! भय उपस्थित होनेपर उसकी शान्तिके लिये क्षौरसागरके तटपर जाकर ब्रह्मादि देवता उत्तम रीतिसे स्तवन करते हुए किसी प्रकार जिनका दर्शन कर पाते हैं, उन्हीं भगवान्के दर्शनकी मुझ-जैसा दैत्य आशा करे—यह कैसे आश्वर्ह है! ॥ ५७—५९ ॥

अयोग्यमात्मानमितीशदर्शने

स मन्यमानस्तदनासिकातरः ।

उद्वेगदुःखार्णवमग्रमानसः

स्रुताभुधरो नृप मूर्च्छितोऽपतत् ॥ ६०

अथ क्षणात्सर्वगतश्चतुर्भुजः

शुभाकृतिर्भक्तजनैकवल्लभः ।

दुःस्थं तमाश्लिष्य सुधामयैर्भुजै-

स्तत्रैव भूपाविरभूह्यानिधिः ॥ ६१

स लब्धसंज्ञोऽथ तदङ्गसङ्गा-

दुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।

प्रसन्नवक्त्रं कमलायताक्षं

सुदीर्घबाहुं यमुनासवर्णम् ॥ ६२

उदारतेजोमयमप्रमेयं

गदारिशङ्खाम्बुजचारुचिह्नितम् ।

स्थितं समालिङ्ग्य विभुं स दृष्ट्वा

प्रकाम्पितो विस्मयभीतिहर्षैः ॥ ६३

तत् स्वप्नमेवाथ स मन्यमानः

स्वप्नेऽपि पश्यामि हरिं कृतार्थम् ।

इति प्रहर्षार्णवमग्रचेताः

स्वानन्दमूर्च्छां स पुनश्च भेजे ॥ ६४

ततः क्षितावेव निविश्य नाथः

कृत्वा तमङ्गे स्वजनैकबन्धुः ।

शनैर्विधुन्वन् करपल्लवेन

स्पर्शन् मुहुर्मातृवदालिलिङ्गम् ॥ ६५

ततश्चिरेण प्रह्लादः सम्मुखोन्मीलितेक्षणः ।

आलुलोके जगन्नाथं विस्मयाविष्टचेतसा ॥ ६६

ततश्चिरात्तं सम्भाव्य धीरः श्रीशङ्खशायिनम् ।

आत्मानं सहसोत्तस्थीं सद्यः सभयसम्भ्रमः ॥ ६७

प्रणामायापतच्चोर्व्यां प्रसीदेति वदन्मुहुः ।

सम्भ्रमात् स बहुजोऽपि नान्यां पूजोक्तिमस्मरत् ॥ ६८

तमथाभयहस्तेन गदाशङ्खारिधृक् प्रभुः ।

गृहीत्वा स्थापयामास प्रह्लादं स दयानिधिः ॥ ६९

कराब्जस्पर्शनाह्लादगलदश्रुं सवेपथुम् ।

भूयोऽथाह्लादयन् स्वामी तं जगादेति सान्त्वयन् ॥ ७०

राजन्! इस प्रकार अपनेको भगवान्का दर्शन पानेके योग्य न मानते हुए प्रह्लादजी उनकी अप्राप्तिके दुःखसे कलर हो उठे। उनका चित्त उद्वेग और अनुतापके समुद्रमें डूब गया। वे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भूप! फिर तो क्षणभरमें ही भक्तजनोक्ति एकमात्र प्रियतम सर्वव्यापी कृपानिधान भगवान् विष्णु सुन्दर चतुर्भुज रूप धारणकर दुःखी प्रह्लादको अमृतके समान सुखद स्पर्शवाली अपनी भुजाओंसे उठाकर गोदमें लगाते हुए वहाँ प्रकट हो गये ॥ ६०-६१ ॥

उनके अङ्गस्पर्शसे होशमें आनेपर प्रह्लादने सहसा नेत्र खोलकर भगवान्को देखा। उनका मुख प्रसन्न था। नेत्र कमलके समान सुन्दर और विशाल थे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और सारी यमुनाजलके समान श्याम थी। वे परम तेजस्वी और अपरिमित ऐश्वर्यशाली थे। गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म आदि सुन्दर पिछोंसे पहचाने जा रहे थे। इस प्रकार अपनेको अङ्गमें लगाये हुए भगवान्को खड़ा देख प्रह्लाद भय, विस्मय और हर्षसे जीप उठे, वे इस घटनाको स्पष्ट हो समझते हुए सोचने लगे—'अहा! स्वप्नमें भी मुझे पूर्णकाम भगवान्का दर्शन तो मिल गया।' यह सोचकर उनका चित्त हर्षके महासागरमें गोता लगाने लगा और वे पुनः स्वरूपानन्दमयी मूर्च्छाके प्राप्ति हो गये। तब अपने भक्तोंके एकमात्र बन्धु भगवान् पृथ्वीपर ही बैठ गये और पाणिपल्लवसे धीरे-धीरे उन्हें हिलाने लगे। ज्येष्ठमयी माताकी भाँति प्रह्लादके गात्रका स्पर्श करते हुए उन्हें बार-बार छातीसे लगाने लगे ॥ ६२-६५ ॥

कुछ देरके बाद प्रह्लादने भगवान्के सामने आँख खोलकर विस्मयचित्तसे उन जगदीश्वरको देखा। फिर बहुत देरके बाद अपनेको भगवान् लक्ष्मीपतिकी गोदमें सोया हुआ अनुभवकर वे भय और आवेगसे युक्त हो सहसा उठ गये तथा 'भगवन्! प्रसन्न होइये' यों बार-बार कहते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर पड़े। बहुत होनेपर भी उन्हें उस समय घबराहटके कारण अन्य स्तुतिवाक्योंका स्मरण न हुआ। तब गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले दयानिधि भगवान्ने प्रह्लादको अपने भक्तभयहारी हाथसे पकड़कर छाड़ा किया। भगवान्के कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अत्यन्त आनन्दके आँसू बहाते और कौपते हुए प्रह्लादको और अधिक आनन्द देनेके लिये प्रभुने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ ६६-७० ॥

सभयं सम्भ्रमं वत्स मद्वीरवकृतं त्यज ।
नैवं प्रियो मे भक्तेषु स्वाधीनप्रणयी भव ॥ ७१

नित्यं सम्पूर्णकामस्य जन्मानि विविधानि मे ।
भक्तसर्वेष्टदानाय तस्मात् किं ते प्रियं वद ॥ ७२

अथ व्यजिज्ञपद्विष्णुं प्रह्लादः प्राञ्जलिर्नमन् ।
सलील्यमुत्फुल्लदृशा पश्यन्नेवं च तन्मुखम् ॥ ७३

नाप्ययं वरदानाय कालो नैव प्रसीद मे ।
त्वदर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तुष्यति ॥ ७४

ब्रह्मादिदेवैर्दुर्लभ्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो ।
तुमिं नेष्यति मे चित्तं कल्यायुतशतरपि ॥ ७५

नैवमेतद्भयतुसस्य त्वां दृष्ट्वान्यद् वृणोति किम् ।
ततः स्मितसुधापूरः पूरयन् स प्रियं प्रियात् ॥ ७६

योजयन् मोक्षलक्ष्म्यैव तं जगाद जगत्पतिः ।
सत्यं महर्शनादन्यद् वत्स नैवास्ति ते प्रियम् ॥ ७७

किञ्चित्ते दातुमिष्टं मे मतिप्रयार्थं वृणीष्व तत् ।
प्रह्लादोऽथाब्रवीद्धीमान् देव जन्मान्तरेष्वपि ॥ ७८

दासस्तवाहं भूयासं गरुत्मानिव भक्तिमान् ।
अथाह नाथः प्रह्लादं संकटं खल्विदं कृतम् ॥ ७९

अहं तवात्मदानेच्छुस्त्वं तु भृत्यत्वमिच्छामि ।
वरानन्यांश्च वरय धीमन् दैत्येश्वरात्मज ॥ ८०

प्रह्लादोऽपि पुनः प्राह भक्तकामप्रदं हरिम् ।
प्रसीद सास्तु मे नाथ त्वद्भक्तिः सात्त्विकी स्थिरा ॥ ८१

‘वत्स! मेरे प्रति गौरव-बुद्धिसे होनेवाले इस भय और घबराहटको त्याग दो। मेरे भक्तोंमें तुम्हारे समान कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, तुम स्वाधीनप्रणयी हो जाओ [अर्थात् यह समझो कि तुम्हारा प्रेमी मैं तुम्हारे वशमें हूँ]। मैं नित्य पूर्णकाम हूँ, तथापि भक्तोंकी समस्या कामनाओंकी पूर्ण करनेके लिये मैं अनेक अवतार हुआ करते हूँ; अतः तुम भी बताओ, तुम्हें कौन-सी वस्तु प्रिय है?’ ॥ ७१-७२ ॥

तदनन्तर खिले हुए नेत्रोंसे भगवान्के मुखको सतृष्णभावसे देखते हुए प्रह्लादने हाथ जोड़ नमस्कारपूर्वक उनसे यों निवेदन किया—‘भगवन्! यह वरदानका समय नहीं है, केवल मुझपर प्रसन्न होइये। इस समय मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तृप्त नहीं हो रहा है। प्रभो! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन घना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तृप्त न होगा। इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका पित्त आपके दर्शनके बाद और क्या मीठा सकता है?’ ॥ ७३-७५ ॥

तब मुस्कानमयी मुधाका स्रोत बहाते हुए उन जगदीश्वरने अपने परम प्रिय भक्त प्रह्लादको मोक्ष-सन्धीसे संयुक्त-सा करते हुए उससे कहा—‘वत्स! यह सत्य है कि तुम्हें मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है; किंतु मेरी इच्छा तुम्हें कुछ देनेकी है। अतः तुम मेरा प्रिय जाननेके लिये ही मुझसे कुछ माँग लो’ ॥ ७६-७७ ॥

तब बुद्धिमान् प्रह्लादने कहा—‘देव! मैं जन्मान्तरोंमें भी गरुडजीकी भाँति आपमें ही भक्ति रखनेवाला आपका दास होऊँ।’ यह सुनकर भगवान्ने कहा—‘यह तो तुमने मेरे लिये कठिन समस्या रख दी—मैं तो तुम्हें स्वयं अपने आपको दे देना चाहता हूँ और तुम मेरी दासता चाहते हो! बुद्धिमान् दैत्यराजकुमार! दूसरे-दूसरे पर माँगो’ ॥ ७८-८० ॥

तब प्रह्लादने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुसे पुनः कहा—‘नाथ! आप प्रसन्न हों; मुझे तो यही चाहिये कि आपमें मेरी सात्त्विक भक्ति सदा स्थिर रहे।

अनयाथ च त्वां नमि नृत्यामि त्वत्परः सदा ।
अथाभितुष्टो भगवान् प्रियमाह प्रियंवदम् ॥ ८२

वत्स यद्यदभीष्टं ते तत्तदस्तु सुखी भव ।
अन्तर्हिते च मय्यत्र मा खिद त्वं महामते ॥ ८३

त्वच्चित्ताप्रापयास्यामि क्षीराब्धेरिव सुप्रियात् ।
पुनर्द्वित्रिदिनैस्त्वं मां द्रष्टुं दुष्टवधोद्यतम् ॥ ८४

अपूर्वाविष्कृताकारं नृसिंहं पापभीषणम् ।
तत्त्वेत्यतः प्रणमतः पश्यतश्चातिलालसम् ॥ ८५

अतुष्टस्यैव तस्येशो माययान्तर्दधे हरिः ।
ततो हठाददृष्ट्वा तं सर्वतो भक्तवत्सलम् ॥ ८६

हाहेत्यभ्युत्थुतः प्रोच्य वन्दे स चिरादिति ।
श्रूयमाणेऽथ परितः प्रतियुद्धजनस्वने ॥ ८७

उत्थायाश्रितटाड्योमान् प्रह्लादः स्वपुरं ययौ ॥ ८८

अथ दितिजसुतश्चिरं प्रहृष्टः
स्मृतिविलतः परितस्तमेव पश्यन् ।
हरिमनुजगतिं त्वलं च पश्यन्
गुरुगृहमुत्पुलकः शनैरवाप ॥ ८९

यही नहीं, इस भक्तिसे युक्त होकर मैं आपका स्तवन किया करूँ और आपके ही परायण रहकर सदा नाचा करूँ ॥ ८२ १/२ ॥

भगवान्ने संतुष्ट होकर प्रिय भाषण करनेवाले प्रिय भक्त प्रह्लादसे तब कहा—'वत्स! तुम्हें जो-जो अभीष्ट हो, वह सब प्राप्त हो; तुम सुखी रहो। एक बात और है—महामते! यहाँसे मेरे अन्तर्धान हो जानेपर भी तुम खेद न करना। मैं अपने परमप्रिय स्थान क्षीरसागरकी भीति तुम्हारे शुद्धचित्तसे कभी अलग न होऊँगा। तुम दो-ही-तीन दिनोंके बाद मुझे दुष्ट हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उद्यत अपूर्व शरीर धारण किये नृसिंहरूपमें, जो पापियोंके लिये भयानक है, पुनः प्रकट देखोगे।' यों कहकर भगवान् हरि, अपनेको प्रणाम करके अत्यन्त ललाचायी हुई दृष्टिसे देखते रहनेपर भी तब न होनेवाले उस भक्त प्रह्लादके सामने ही मायासे अन्तर्धान हो गये ॥ ८२—८५ १/२ ॥

तत्पश्चात् ये सहस्र स्रज और दृष्टि डालनेपर भी जब भक्तवत्सल भगवान्को न देख सके, तब औंसु बहाते हुए उच्चस्वरसे हाहाकार करके बड़ी देरतक भगवान्की वन्दना करते रहे। फिर जब प्रातःकाल जगे हुए जन्तुओंकी वाणी स्रज और सुनायी देने लगी, तब बुद्धिमान् प्रह्लाद समुद्र-तटसे उठकर अपने नगरको चले गये। इसके बाद दैत्यनन्दन प्रह्लादजी परम प्रसन्न होकर अपने स्मरणबलसे संसारमें स्रज और भगवान्का ही दर्शन करने हुए तथा भगवान् एवं मनुष्यकी गतिकी भलीभीति समझते हुए रोमाञ्चित होकर धीरे-धीरे गुरुके घर गये ॥ ८६—८९ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे पारंगिमद्रुर्ध्वे त्रिचण्डीमहोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इमं प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहकण्ठविषयक' ईशान्येसर्वो अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

ॐ नमः शिवाय

चौवालीसवाँ अध्याय

नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध

मार्कण्डेय उवाच

अथागतं ते प्रह्लादं दृष्ट्वा दैत्याः सुविस्मिताः ।
शशंसुर्दैत्यपतये यैः क्षिप्तः स महार्णवे ॥ १

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर प्रह्लादको [कुशलपूर्वक समुद्रसे] लौट देखकर, जिन्होंने उन्हें महासागरमें डाला था, वे दैत्य बड़े विस्मित हुए और उन्होंने तुरंत यह

स्वस्थं तमागतं श्रुत्वा दैत्यराड्विस्मयाकुलः ।
 आहूयतां च इत्याह क्रोधान्मृत्युवशे स्थितः ॥ २
 तथासुरैर्दुरानीतः समासीनं स दिव्यदृक् ।
 आसन्नमृत्युं दैत्येन्द्रं ददर्शात्पूजितश्रियम् ॥ ३
 नीलांशुमिश्रमाणिक्यद्युतिच्छत्रविभूषणम् ।
 सधूमाग्निमिव व्यासमुच्चासनचरितस्थितम् ॥ ४
 दंष्ट्रोत्कटैर्घोरतौर्यनच्छविभिरुद्धटैः ।
 कुमारगदर्शिभिर्दैत्यैर्यमदूतैरिवावृतम् ॥ ५
 दूरात् प्रणम्य पितरं प्राञ्जलिस्तु ख्यवस्थितः ।
 अथाहाकारणक्रोधः स खलो भर्त्सयन् सुतम् ॥ ६
 भगवत्प्रियमत्युच्चैर्मृत्युमेवाश्रयप्रिय ।
 मूढ रे शृणु महाकथमेतदेवान्तिमं ध्रुवम् ॥ ७
 इतो न त्वां प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ।
 उक्त्वैति हुतमाकृष्य चन्द्रहासासिमद्भुतम् ॥ ८
 सम्भ्रमाद्वीक्षितः सर्वैश्चालयग्राह तं पुनः ।
 क्व चास्ति मूढ ते विष्णुः स त्वामद्य प्ररक्षतु ॥ ९
 त्वयोक्तं स हि सर्वत्र कस्मात्तत्तम्भे न दृश्यते ।
 यदि पश्यामि तं विष्णुमधुना स्तम्भमध्यगम् ॥ १०
 तर्हि त्वां न वधिष्यामि भविष्यसि द्विधान्यया ।
 प्रह्लादोऽपि तथा दृष्ट्वा दध्यौ तं परमेश्वरम् ॥ ११
 पुरोक्तं तद्वचः स्मृत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः ।
 तावत्प्रस्फुटितस्तम्भो वीक्षितो दैत्यसूनुना ॥ १२
 आदर्शरूपो दैत्यस्य खड्गतो यः प्रतिष्ठितः ।
 तन्मध्ये दृश्यते रूपं बहुयोजनमायतम् ॥ १३
 अतिरीद्रे महाकार्यं दानवानां भयंकरम् ।
 महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् ॥ १४
 महानखं महापादं कालाग्रिसदृशाननम् ।
 कर्णान्तकृतविस्तारवदनं चातिभीषणम् ॥ १५

समाचार दैत्यराज हिरण्यकशिपुको दिया। उन्हें स्वस्थ लौट्य सुन दैत्यराज विस्मयसे व्याकुल हो उठ्य और क्रोधवश मृत्युके अधीन होकर बोला—'तुम यहाँ बुला लाओ।' असुरोंके द्वारा घुरे तरहसे पकड़कर लाये जानेपर दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादने सिंहासनपर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको देखा। उसकी मृत्पु निकट थी, उसका तेज बहुत बड़ा हुआ था। उसके आभूषण नीलप्रभापुष्प माणिक्योंको कानिसे आच्छन्न थे, अतएव वह धूमयुक्त फैले हुए अग्निके समान शोभित हो रहा था। वह ऊँचे सिंहासन-मध्यपर विराजमान था और उसे मेघके समान काले दाढ़ोंके कारण विकराल, अत्यन्त भयानक, कुमारगदर्शी एवं यमदूतोंके समान क्रूर दैत्य घेरे हुए थे ॥ १-५ ॥

प्रह्लादजीने दूरसे ही हाथ जोड़कर पिताको प्रणाम किया और खड़े हो गये। तब मृत्युके निकट पहुँचनेवालेको भीति अकारण हो क्रोध करनेवाले उस दुष्टने भगवद्भक्त पुत्रको उच्चस्वरसे डाँटते हुए कहा—'ओ मूख! तू मेरा यह अन्तिम और अटल वचन सुन; इसके बाद मैं तुझसे कुछ न कहूँगा; इसे सुनकर तेरी जैसी इच्छा हो, यहाँ करना।' यह कहकर उसने शीघ्र ही चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तलवार खींच ली। उस समय सब लोग उसको ओर आकर्षणपूर्वक देखने लगे। उसने तलवार चलाते हुए पुनः प्रह्लादसे कहा—'रे मूख! तेरा विष्णु कहाँ है? आज वह तेरी रक्षा करे! तुने कहा था कि वह सर्वत्र है। फिर इस खंभेमें क्यों नहीं दिखायी देता? यदि तेरे विष्णुको इस खंभेके भीतर देख लूँगा, तब तो तुझे नहीं मारूँगा; यदि ऐसा न हुआ तो इस तलवारसे तेरे दो टुकड़े कर दिने जायँगे' ॥ ६-१० ॥

प्रह्लादने भी ऐसी बात देखकर उन परमेश्वरका ध्यान किया और पहले कहे हुए उनके वचनको याद करके हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया। इतनेमें ही दैत्यनन्दन प्रह्लादने देखा कि वह दर्पणके समान स्वच्छ खंभा, जो अभीतक छड़ा था, दैत्यराजको तलवारके आघातसे फट पड़ा तथा उसके भीतर अनेक योजन विस्तारवाला, अत्यन्त रीद्रे एवं महाकाय नरसिंहरूप दिखायी दिया, जो दानवोंको भयभीत करनेवाला था। उसके बड़े-बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और लंबी-लंबी भुजाएँ थीं। उसके नख बहुत बड़े और पैर विशाल थे। उसका मुख कालाग्निके समान देदीप्यमान था, जबड़े कानतक फैले हुए थे और वह बहुत भयानक दिखायी देता था ॥ ११-१५ ॥

कृत्वेत्थं नारसिंहं तु ययौ विष्णुस्त्रिविक्रमः ।
 नरसिंहः स्तम्भमध्याग्निर्गत्य प्रणनाद च ॥ १६
 निनादश्रवणाद्देव्या नरसिंहमवेष्टयन् ।
 तान् हत्वा सकलांस्तत्र स्वपीरुषपराक्रमात् ॥ १७
 बभञ्ज च सभां दिव्यां हिरण्यकशिपोर्नृप ।
 वारयामासुरभ्येत्य नरसिंहं महाभटाः ॥ १८
 ते तु राजन् क्षणादेव नरसिंहेन वै हताः ।
 ततः शस्त्राणि वर्षन्ति नरसिंहे प्रतापिनि ॥ १९
 स तु क्षणेन भगवान् हत्वा तद्गलभोजसा ।
 ननाद च महानादं दिशः शब्देन पूरयन् ॥ २०
 तान्मृतानपि विज्ञाय पुनरन्यान्महामुरः ।
 अष्टाशीतिसहस्राणि हेतिहस्तान् समादिशत् ॥ २१
 तेऽप्यागत्य च तं देवं ठरुधुः सर्वतोदिशम् ।
 हत्वा तानखिलान् युद्धे युध्यमानो ननाद सः ॥ २२
 पुनः सभां बभञ्जासौ हिरण्यकशिपोः शुभाम् ।
 तान् हतानपि विज्ञाय क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २३
 ततो हिरण्यकशिपुर्निश्चक्राम महाबलः ।
 उवाच च महीपाल दानवान् बलदर्पितान् ॥ २४
 हन्यतां हन्यतामेध गृह्यतां गृह्यतामयम् ।
 इत्येवं वदतस्तस्य प्रमुखे तु महामुरान् ॥ २५
 युध्यमानान् रणे हत्वा नरसिंहो ननाद च ।
 ततोऽतिदुर्बुद्धैत्या हतशेषा दिशो दश ॥ २६
 तावद्धता युध्यमाना दैत्याः कोटिसहस्रशः ।
 नरसिंहेन यावच्च नभोभागं गतो रविः ॥ २७
 शस्त्रास्त्रवर्षचतुरं हिरण्यकशिपुं जघात् ।
 प्रगृह्य तु बलाद्राजन् नरसिंहो महाबलः ॥ २८
 संध्याकाले गृहद्वारि स्थित्वोरी स्थाप्य तं रिपुम् ।
 वज्रतुल्यमहोरस्कं हिरण्यकशिपुं रुषा ।
 नखैः किसलयमिव दारयत्याह सोऽसुरः ॥ २९

इस प्रकार नरसिंहरूप धारणकर त्रिविक्रम भगवान् विष्णु खंभेके पीठरसे निकल पड़े और लगे बड़े जोर-जोरसे दहाड़ने। नरेश्वर! यह गर्जना सुनकर दैत्योंने भगवान् नरसिंहको घेर लिया। तब उन्होंने अपने पीरुष एवं पराक्रमसे उन सबको मौतके घाट उतारकर हिरण्यकशिपुका दिव्य सभाभवन नष्ट कर दिया। राजन्! उस समय जिन महाभटोंने निकट आकर नृसिंहजीको रोका, उन सबको उन्होंने क्षणभरमें मार डाला। तत्पश्चात् प्रतापी नरसिंहभगवान्पर असुर सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६—१९ ॥

भगवान् नृसिंहने क्षणभरमें ही अपने तेजसे समस्त दैत्यसेनाका संहार कर दिया और दिशाओंकी अपनी गर्जनासे गुंजाते हुए वे भयंकर सिंहनाद करने लगे। उपर्युक्त दैत्योंको यश जान महामुर हिरण्यकशिपुने पुनः हाथमें शस्त्र लिये हुए अट्ठासी हजार असुर सैनिकोंको नृसिंहदेवसे लड़नेकी आज्ञा दी। उन असुरोंने भी आकर भगवान्को सब ओरसे घेर लिया। तब युद्धमें लड़ते हुए भगवान् उन सभीका वध करके पुनः सिंहनाद करने लगे। उन्होंने हिरण्यकशिपुके दूसरे सुन्दर सभाभवनको भी पुनः नष्ट कर दिया। राजन्! अपने भेजे हुए इन असुरोंकी भी मार गया जान क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके महाबली हिरण्यकशिपु स्वयं बाहर निकला और बलाभिमानो दानवोंसे बोला—'ओ, इसे पकड़ो-पकड़ो; मार डालो, मार डालो। इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपुके सामने ही युद्ध करनेवाले उन सभी महान् असुरोंका रणमें संहार करके भगवान् नृसिंह गर्जने लगे। तब मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें वेग-पूर्वक भाग चले ॥ २०—२६ ॥

जबतक सूर्यदेव अस्ताचलको नहीं चले गये, तबतक भगवान् नृसिंह अपने साथ युद्ध करनेवाले हजारों करोड़ दैत्योंका संहार करते रहे। राजन्! किन्तु जब सूर्य डूबने लगे, तब महाबली भगवान् नृसिंहने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेमें कुशल हिरण्यकशिपुको बड़े वेगसे बलपूर्वक पकड़ लिया। फिर संपत्तके समय धरके दरवाजेपर बैठकर, उस वक्रके समान कटोर विशाल वक्षवाले शत्रु हिरण्यकशिपुको अपनी जोंधोंपर गिराकर जब भगवान् नृसिंह रोषपूर्वक नखोंसे पतेकी भाँति उसे बियोर्ज करने लगे, तब उस महान् असुरने जीवनसे निराश होकर कहा— ॥ २७—२९ ॥

यत्राखण्डलदन्तिदन्तमुसला-

न्याखण्डितान्याहवे

धारा यत्र पिनाकपाणिपरशो-

राकुण्ठतामागमत् ।

तन्मे तावदुरो नृसिंहकरज-

व्यादीर्यते साम्प्रतं

दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि

प्रायोऽप्यवज्रायते ॥ ३०

एवं वदति दैत्येन्द्रे ददार नरकेसरी।

हृदयं दैत्यराजस्य पद्मपत्रमिव द्विपः ॥ ३१

शकले द्वे तिरोभूते नखरन्ध्रे महात्मनः।

ततः क्व यातो दुष्टोऽसाधिति देखोऽतिविस्मितः ॥ ३२

निरीक्ष्य सर्वतो राजन् वृक्षैतत्कर्म मेऽभवत्।

इति संचिन्त्य राजेन्द्र नरसिंहो महाबलः ॥ ३३

व्यधूनयत्कराबुच्चैस्ततस्तो शकले नृप।

नखरन्ध्रात्रिपतिते भूमी रेणुसमे हरेः ॥ ३४

दृष्ट्वा व्यतीतसंरोधो जहास परमेश्वरः।

पुष्पवर्षं च वर्पन्तो नरसिंहस्य मूर्धनि ॥ ३५

देवाः सब्रह्मकाः सर्वे आगताः प्रीतिसंयुताः।

आगत्य पूजयामासुर्नरसिंहं परं प्रभुम् ॥ ३६

ब्रह्मा च दैत्यराजानं प्रह्लादमभिषेचयत्।

धर्मे रतिः समस्तानां जनानामभवत्तदा ॥ ३७

इन्द्रोऽपि सर्वदेवैस्तु हरिणा स्थापितो दिवि।

नरसिंहोऽपि भगवान् सर्वलोकहिताय वै ॥ ३८

श्रीशैलशिखरं प्राप्य विश्रुतः सुरपूजितः।

स्थितो भक्तहितार्थाय अभक्तानां क्षयाय च ॥ ३९

इत्येतन्नरसिंहस्य माहात्म्यं यः पठेन्नरः।

शृणोति वा नृपश्रेष्ठ मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४०

'हाय! युद्धके समय देवराज इन्द्रके वाहन गजराज ऐरावतके मूसल—जैसे दौत जहाँ टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, जहाँ पिनाकपाणि महादेवके फरसेकी तीखी धार भी कुण्ठित हो गयी थी, वही मेरा वक्षःस्थल इस समय नृसिंहके नखोंद्वारा फटका जा रहा है। सब है, अब भाग्य छोटा हो जाता है, तब तिनका भी प्रायः अनादर करने लगता है' ॥ ३० ॥

दैत्यराज हिरण्यकशिपु इस प्रकार कह ही रहा था कि भगवान् नृसिंहने उसका हृदयदेश विदीर्ण कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी कमलके पतेको अचायास ही छिल-भिन्न कर देता है। उसके शरीरके दोनों टुकड़े महात्मा नृसिंहके नखोंके छेदमें घुसकर छिप गये। राजन्! तब भगवान् सब ओर देखकर अत्यन्त विस्मित हो सोचने लगे—'अहो! यह दुष्ट कहाँ चला गया? जान पड़ता है, मेरा यह सारा उद्योग ही व्यर्थ हो गया' ॥ ३१-३२ ॥

राजेन्द्र! महाबली नृसिंह इस प्रकार चिन्तामें पड़कर अपने दोनों हाथोंको बढ़े जोरसे झाड़ने लगे। राजन्! फिर तो वे दोनों टुकड़े उन भगवान्के नख-छिद्रसे निकलकर भूमिपर गिर पड़े, वे कुचलकर भूल्लकणके समान हो गये थे। यह देख रोपहीन हो वे परमेश्वर हैंसने लगे। इसी समय ब्रह्मादि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो वहाँ आये और भगवान् नरसिंहके मस्तकपर फूलोंको वर्षा करने लगे। पास आकर उन सभने उन परम प्रभु नरसिंहदेवका पूजन किया ॥ ३३-३६ ॥

तदनन्तर ब्रह्मजीने प्रह्लादको दैत्योंके राजाके पदपर अभिषिक्त किया। उस समय समस्त प्राणियोंका धर्ममें अनुराग हो गया। सम्पूर्ण देवताओंसहित भगवान् विष्णुने इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित किया। भगवान् नृसिंह भी सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये श्रीशैलके शिखरपर जा पहुँचे। वहाँ देवताओंसे पूजित हो वे प्रसिद्धिकी प्राप्त हुए। वे भक्तोंका हित और अभक्तोंका नाश करनेके लिये वहाँ रहने लगे ॥ ३७-३९ ॥

नृश्रेष्ठ! जो मनुष्य भगवान् नरसिंहके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता

नरो वा यदि वा नारी शृणोत्याख्यानमुत्तमम् ।
वैधव्याददुःखशोकाच्च दुष्टसङ्गात्प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥

दुःशीलोऽपि दुराचारो दुष्प्रजो दोषकर्मकृत् ।
अधर्मिष्ठोऽनभोगी च शृण्वन् शुद्धो भवेन्नरः ॥ ४२ ॥

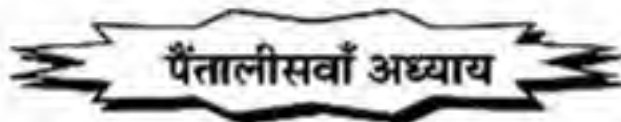
हरिः सुरेशो नरलोकपूजितो
हिताय लोकस्य चराचरस्य ।
कृत्वा विरूपं च पुराऽऽत्ममायया
हिरण्यकं दुःखकरं नखिशिखनत् ॥ ४३ ॥

है। नर हो या नारी—जो भी इस उत्तम आख्यानको सुनता है, वह दुष्टोंका सङ्ग करनेके दोषसे, दुःखसे, शोकसे एवं वैधव्यके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। जो दुष्ट स्वभाववाला, दुराचारी, दुष्ट संजनवाला, दूषित कर्मोंका आचरण करनेवाला, अधर्मरसि और विषयभोगी हो, वह मनुष्य भी इसका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ४०—४२ ॥

मनुष्यलोकपूजित देवेश्वर भगवान् हरिने पूर्वकालमें चराचर जगत्के हितके लिये अपनी मायासे भयानक आकारवाला नरसिंहरूप धारण करके दुःखदायी दैत्य हिरण्यकशिपुको नखाँद्वारा नष्ट कर दिया था ॥ ४३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहजन्तुर्भाषी नाम धनुःशतवारितोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहका प्रदुर्भाव' नामक चौकालीसवाँ अध्याय पुरा हुआ ॥ ४४ ॥



पैंतालीसवाँ अध्याय

वामन-अवतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् समासेन वामनस्य पराक्रमम् ।
बलियागे हता येन पुरा दैत्याः सहस्रशः ॥ १ ॥
विरोचनसुतः पूर्वं महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यं बुभुजे जित्वा देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ २ ॥
ततः कृशतरा देवा बभूवुस्तेन खण्डिताः ।
इन्द्रं कृशतरं दृष्ट्वा नष्टरान्यं नृपोत्तम ॥ ३ ॥
अदितिर्देवमाता या सातप्यत्परमं तपः ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ ४ ॥
ततः स्तुत्याभिसंतुष्टो देवदेवो जनार्दनः ।
स्थित्वा तत्पुरतो वाचमुवाच मधुसूदनः ॥ ५ ॥
तव पुत्रो भविष्यामि सुभगे बलिबन्धनः ।
इत्युक्त्वा तां गतो विष्णुः स्वगृहं सा समाययौ ॥ ६ ॥
ततः कालेन सा गर्भमवाप नृप कश्यपात् ।
अजायत स विश्वेशो भगवान् वामनाकृतिः ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! जिन्होंने पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें सहस्रों दैत्योंका संहार किया था, उन भगवान् वामनका चरित्र संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

पहलेकी बात है, विरोचनका पुत्र बलि महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीतकर त्रिभुवनका राज्य भोग रहा था। नृपवर! उसके द्वारा खण्डित हुए देवतालोग बहुत दुबले हो गये थे। राज्य नष्ट हो जानेसे इन्द्र और अधिक कृश हो गये थे। उन्हें इस दृश्यमें देखकर देवमाता अदितिने बहुत चढ़ी तपस्या की। उन्होंने भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अभीष्ट वाणोद्धार उनका लोचन किया। अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवधिदेव मधुसूदन जनार्दन उनके सम्मुख उपस्थित हो बोले—'सौभाग्यशालिनि! मैं बलिको बँधनेके लिये तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' उनसे यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और अदिति भी अपने घर चली गयी ॥ २—६ ॥

राजन्! तदनन्तर समय आनेपर अदितिने कश्यपजीसे गर्भ धारण किया। उस गर्भसे वामनरूपमें साधव् भगवान्

तस्मिज्जाते समागत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तत्र चकार वै ॥ ८
कृतोपनयनो देवो ब्रह्मचारी सनातनः ।
अदितिं चाप्यनुज्ञाप्य यज्ञशालां बलेर्वयौ ॥ ९
गच्छतः पादविक्षेपाच्चाल सकला मही ।
यज्ञभागात्र गृह्णन्ति दानवाश्च बलेर्मखात् ॥ १०
प्रशान्ताश्चाग्रयस्तत्र ऋत्विजो मन्त्रतश्च्युताः ।
विपरीतमिदं दृष्ट्वा शुक्रमाह महाबलः ॥ ११
न गृह्णन्ति मुने कस्माद्भविर्भागं महासुराः ।
कस्माच्च यद्वयः शान्ताः कस्माद्भुङ्क्ष्वलति द्विज ॥ १२
कस्माच्च मन्त्रतो भ्रष्टा ऋत्विजः सकला अमी ।
इत्युक्तो बलिना शुक्रो दानवेन्द्रं वचोऽब्रवीत् ॥ १३

शुक्र उवाच

हे बले शृणु मे वाक्यं त्वया देवा निराकृताः ।
तेषां राज्यप्रदानाय अदित्यामच्युतोऽसुर ॥ १४
देवदेवो जगद्योनिः संजातो वामनाकृतिः ।
स त्यागच्छति ते यज्ञं तत्पादन्यासकम्पिता ॥ १५
चलतीयं मही सर्वा तेनाद्यासुरभूयते ।
तत्संनिधानादसुरा न गृह्णन्ति हविर्मखे ॥ १६
तवाग्रयोऽपि वै शान्ता वामनागमनाद्धि भोः ।
ऋत्विजश्च न भासन्ते होममन्त्रो बलेऽधुना ॥ १७
असुराणां श्रियो हन्ति सुराणां भूतिरुत्तमा ।
इत्युक्तः स बलिः प्राह शुक्रं नीतिमतां वरम् ॥ १८
शृणु ब्रह्मन् वचो मे त्वमागते वामने मखे ।
यन्मया चाद्य कर्तव्यं वामनस्यास्य धीमतः ॥ १९
तन्मे वद महाभाग त्वं हि नः परमो गुरुः ।

शुक्रोऽप्युवाच

इति संचोदितः शुक्रः स राज्ञा बलिना नृप ॥ २०
तमुवाच बलिं वाक्यं ममापि शृणु साम्प्रतम् ।
देवानामुपकाराय भवतां संक्षयाय च ॥ २१
स नूनमायाति बले तव यज्ञे न संशयः ।
आगते वामने देवे त्वया तस्य महात्मनः ॥ २२

जगन्नाथ ही प्रकट हुए । वामनजीका अवतार होनेपर लोक-
पितामह ब्रह्मजी वहाँ आये। उन्होंने उनके जातकर्मादि
सम्पूर्ण समबोधित संस्कार सम्यक् किये। उपनयन-संस्कारके
बाद वे सनातन भगवान् ब्रह्मचारी होकर अदितिको आज्ञा
ले राजा बलिकी यज्ञशालामें गये। चलते समय उनके
चरणोंके आघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। दानवगण बलिके
यज्ञसे हविष्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये। वहाँकी आग
बुझ गयी। ऋत्विक्गण मन्त्रोच्चारणमें झुटि करने लगे। यह
विपरीत कार्य देखकर महाबली बलिने शुक्राचार्यसे कहा—
‘मुने! ये महान् असुरगण यज्ञका भाग क्यों नहीं ग्रहण कर
रहे हैं? अग्नि क्यों शान्त हो रही है? विप्रवर! यह पृथ्वी
क्यों डगमगा रही है तथा ये सम्पूर्ण ऋत्विज् मन्त्रभ्रष्ट क्यों
हो रहे हैं?’ बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यने उस
दानवराजसे कहा— ॥ ७-१३ ॥

शुक्र बोले—असुरराज बलि! तुम मेरी बात सुनो।
तुमने देवताओंको जोतकर स्वर्गसे निकाल दिया है; उन्हें पुनः उनका राज्य देनेके लिये जगत्के उत्पत्तिस्थान
देवदेव भगवान् विष्णु अदितिके गर्भसे वामनरूपमें
प्रकट हुए हैं। असुरराज! वे ही तुम्हारे यज्ञमें आ रहे
हैं, अतः उन्हींके पादविन्यास (पाँव रखने)-से कम्पित
हो यह सारी पृथ्वी आज हिलने लगी है तथा उन्हींके
निकट आ जानेके कारण असुरगण आज यज्ञमें हविष्य
ग्रहण नहीं कर रहे हैं। बले! वामनके आगमनसे ही
तुम्हारे यज्ञकी आग भी बुझ गयी है और ऋत्विज् भी
श्रीहीन हो गये हैं। इस समयका होममन्त्र असुरोंको
सम्पत्तिको नष्ट कर रहा है और देवताओंका उत्तम वैभवा
वद रहा है ॥ १४-१७ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर बलिने नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ
शुक्राचार्यजीसे कहा—‘ब्रह्मन्! महाभाग! आप मेरी बात
सुनें। यज्ञमें वामनजीके पधारनेपर उन बुद्धिमान् वामनजीके
लिये मुझे क्या करना चाहिये, वह हमें बताइये; क्योंकि
आप मेरे परम गुरु हैं’ ॥ १८-१९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नरेन्द्र! राजा बलिके इस
प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यजीने उनसे कहा—‘राजन्!
जब मेरी भी राय सुनो। बले! वे देवताओंका हित
करने और तुम लोगोंके विनाशके लिये ही तुम्हारे
यज्ञमें पधार रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है। अतः जब
भगवान् वामन वहाँ आ जायें, तब उन महात्माके लिये

प्रतिज्ञा नैव कर्तव्या ददाम्येतत्तवेति वै।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य बलिर्बलवतां वरः ॥ २३

उवाच तां शुभां वाणीं शुक्रपात्पपुरोहितम्।
आगते वामने शुक्र यज्ञे मे मधुसूदने ॥ २४

न शक्यते प्रतिख्यातुं दानं प्रति मया गुरो।
अन्येषामपि जन्तूनामित्युक्तं ते मयाधुना ॥ २५

किं पुनर्वासुदेवस्य आगतस्य तु शार्ङ्गिणः।
त्वया विघ्नो न कर्तव्यो वामनेऽत्रागते द्विज ॥ २६

यद्यद्द्रव्यं प्रार्थयते तत्तद्द्रव्यं ददाम्यहम्।
कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ यद्यागच्छति वामनः ॥ २७

इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञशालां स वामनः।
आगत्य प्रविशेशाथ प्रशशंस बलेर्मखम् ॥ २८

तं दृष्ट्वा सहसा राजन् राजा दैत्याधिपो बलिः।
उपचारेण सम्पूज्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९

यद्यत्प्रार्थयसे मां त्वं देवदेव धनादिकम्।
तत्सर्वं तव दास्यामि मां याचस्वाद्य वामन ॥ ३०

इत्युक्तो वामनस्तत्र नृपेन्द्र बलिना तदा।
याचयामास देवेशो भूमेर्देहि पदत्रयम् ॥ ३१

ममाग्निशरणार्थाय न मेऽर्थोऽस्ति प्रयोजनम्।
इत्युक्तो वामनेनाथ बलिः प्राह च वामनम् ॥ ३२

पदत्रयेण चेत्तृतिर्मया दत्तं पदत्रयम्।
एवमुक्ते तु बलिना वामनो बलिमब्रवीत् ॥ ३३

दीयतां मे करे तोयं यदि दत्तं पदत्रयम्।
इत्युक्तो देवदेवेन तदा तत्र स्वयं बलिः ॥ ३४

‘मैं आपको यह वस्तु देता हूँ’ यों कहकर कुछ देनेकी
प्रतिज्ञा न करना’ ॥ २०—२२ १/४ ॥

उनकी यह बात सुनकर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिने
अपने पुरोहित शुक्राचार्यजीसे यह सुन्दर बात कही—
‘गुरुदेव शुक्र! यज्ञमें मधुसूदन भगवान् वामनके पधारनेपर
मैं उन्हें कुछ भी देनेसे इनकार नहीं कर सकता। अभी—
अभी मैं आपसे कह चुका हूँ कि दूसरे प्राणी भी यदि
मुझसे कुछ याचना करेंगे तो मैं उन्हें वह वस्तु देनेसे
इनकार नहीं कर सकता; फिर शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले
साक्षात् भगवान् विष्णु (वासुदेव)मेरे यज्ञमें पधारें और
मैं उनकी मुँहमाँगी वस्तु उन्हें देनेसे इनकार कर दूँ, यह
कैसे सम्भव होगा? ब्राह्मणदेव! यहाँ भगवान् वामनके
पदार्पण करनेपर आप उनके कार्यमें विघ्न न डालियेगा।
ये जो-जो द्रव्य माँगेंगे, वही-वही मैं उन्हें दूँगा। मुनिश्रेष्ठ!
यदि मचमुच ही यहाँ भगवान् वामन पधार रहे हैं तो
मैं कृतार्थ हो गया’ ॥ २३—२७ ॥

राजा बलि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय
वामनजीने आकर यज्ञशालामें प्रवेश किया और वे उनके
उस यज्ञकी प्रशंसा करने लगे। राजन्! उन्हें देखते ही
दैत्याधिपति राजा बलिने सहसा उठकर पूजन-सामग्रियोंसे
उनकी पूजा की, फिर इस प्रकार कहा—‘देवदेव! आप
धन आदि जो-जो वस्तु माँगेंगे, वह सब मैं आपको
दूँगा; इसलिये वामनजी! आज आप मुझसे याचना
कीजिये’ ॥ २८—३० ॥

‘नृपेन्द्र! बलिके यों कहनेपर उस समय देवेश्वर
भगवान् वामनने उनसे यही याचना की कि मुझे
अग्निशालाके लिये केवल तीन पग भूमि दीजिये, मुझे
धनकी आवश्यकता नहीं है’ ॥ ३१ १/४ ॥

भगवान् वामनके यों कहनेपर बलिने उनसे कहा—
‘यदि तीन पग भूमिसे ही आपको संतोष है तो तीन
पग भूमि मैंने आपको दे दी’ ॥ ३२ १/४ ॥

बलिके द्वारा यों कहे जानेपर भगवान् वामन उनसे
बोले—‘यदि आपने मुझे तीन पग भूमि दे दी तो मेरे
हाथमें संकल्पका जल दीजिये’ ॥ ३३ १/४ ॥

कहते हैं, उस समय वहाँ देवदेव भगवान् वामनजीके

सजलं हेमकलशं गृहीत्वोत्थाय भक्तितः ।
 यावत्स वामनकरे तोयं दातुमुपस्थितः ॥ ३५
 तावच्छुक्रः कलशगो जलधारां करोष्य ह ।
 ततश्च वामनः क्रुद्धः पवित्राग्नेः सत्तम ॥ ३६
 उदके कलशद्वारि तच्छुक्राक्षिमवेधयत् ।
 ततो व्यपगतः शुक्रो विद्वैकाक्षो नरोत्तम ॥ ३७
 तोयधारा निपतिता वामनस्य करे पुनः ।
 करे निपतिते तोये वामनो बबुधे क्षणात् ॥ ३८
 पादेनैकेन विक्रान्ता तेनैव सकला मही ।
 अन्तरिक्षं द्वितीयेन द्यौस्तृतीयेन सत्तम ॥ ३९
 अनेकान् दानवान् हत्वा हत्वा त्रिभुवनं बलेः ।
 पुनर्दराय त्रैलोक्यं दात्वा बलिमुवाच ह ॥ ४०
 यस्मात्ते भक्तितो दत्तं तोयमद्य करे मम ॥
 तस्यात्ते साम्प्रतं दत्तं पातालतलमुत्तमम् ॥ ४१
 तत्र गत्वा महाभाग भुङ्क्ष्व त्वं यत्प्रसादतः ।
 वैवस्वतेऽन्तरेऽन्तीते पुनरिन्द्रो भविष्यसि ॥ ४२
 प्रणम्य च ततो गत्वा तत्तं भोगमवाप्तवान् ॥ ४३
 शुक्रोऽपि स्वर्गमारुह्य प्रसादाद्दामनस्य वै ।
 समागतस्त्रिभुवनं राजन् देवसमन्वितः ॥ ४४
 यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय वामनस्य कथाभिमाम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ४५
 इत्थं पुरा वामनरूपमास्थितो
 हरिर्वलेद्वैत्यं जगत्त्रयं नृप ।
 कृत्वा प्रसादं च दिवौकसाम्पते-
 र्दत्त्वा त्रिलोकं स ययौ महोदधिम् ॥ ४६

इस प्रकार आज्ञा देनेपर स्वयं राजा बलि जलसे भरे हुए सुवर्णकलशको लेकर भक्तिपूर्वक खड़े हो गये और ज्यों ही वामनजीके हाथमें जल देनेको उद्यत हुए, त्यों ही शुक्राचार्यने [योगकलसे] कलशमें घुसकर गिरती हुई जलधारा रोक दी। सत्तम! तब वामनजीने क्रुद्ध होकर पवित्र (कुल)-के अग्रभागसे कलशके छेदमें जल निकलनेके मार्गपर स्थित हुए शुक्राचार्यको एक आँख छेद डाली। नरोत्तम! एक आँख छिद जानेपर शुक्राचार्य उसमेंसे निकल भागे ॥ ३४—३७ ॥

तत्पश्चात् वामनजीके हाथमें जलकी धारा गिरी। हाथपर जल पड़ते ही वामनजी क्षणभरमें ही बहुत बड़े हो गये। सत्तम! उन्होंने एक पगसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, द्वितीय पगसे अन्तरिक्षलोक तथा तृतीय पगसे स्वर्गलोकको अलङ्घन कर लिया। फिर अनेक दानवीको संहार करके बलिसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया और यह त्रिलोकी इन्द्रको अर्पितकर पुनः बलिसे कहा—'तुमने भक्तिपूर्वक आज मेरे हाथमें संकल्पका जल अर्पित किया है, इसलिये इस समय मैंने तुम्हें उत्तम पाताललोकका राज्य दिया। महाभाग! यहाँ जाकर तुम मेरे प्रसादसे राज्य भोगो; वैवस्वत मन्वन्तर अन्तीत हो जानेपर तुम पुनः इन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित होओगे' ॥ ३८—४२ ॥

तब बलिने भगवान्को प्रणाम करके पातालतलमें जाकर यहाँ उत्तम भोगोंको प्राप्त किया। राजन्! शुक्राचार्य भी भगवान् वामनकी कृपासे त्रिभुवनकी राजधानी स्वर्गमें आकर सब देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवान् वामनकी इस कथाका स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृप! इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर त्रिभुवनका राज्य बलिसे ले लिया और उसे कृपापूर्वक देवराज इन्द्रको अर्पित कर दिया। तत्पश्चात् ये क्षीरसागरकी चले गये ॥ ४३—४६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वामनप्रबुधने पञ्चवाक्यारितोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वामनावतार' विषयक पैंतालिसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

परशुरामावतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।
 जामदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं भृशम् ॥ १
 पुरा देवगणैर्विष्णुः स्तुतः क्षीरोदधौ नृप ।
 ऋषिभिश्च महाभागीर्जमदग्नेः सुतोऽभवत् ॥ २
 परशुराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभुः ।
 दुष्टानां निग्रहं कर्तुमवतीर्णो महीतले ॥ ३
 कृतवीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत् पुरा ।
 दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्तित्वमाप्तवान् ॥ ४
 स कदाचिन्महाभागो जमदग्न्याश्रमं ययौ ।
 जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ५
 उवाच मधुरं वाक्यं कार्तवीर्यं नृपोत्तमम् ।
 मुख्यतामत्र ते सेना अतिधित्यं समागतः ।
 वन्यादिकं मया दत्तं भुक्त्वा गच्छ महामते ॥ ६
 प्रमुच्य सेनां मुनिवाक्यगौरवात्
 स्थितो नृपस्तत्र महानुभावः ।
 आपन्न्य राजानमलङ्घ्यकीर्ति-
 मुनिः स धेनुं च दुदोहं दोग्धीम् ॥ ७
 हस्त्यश्वाशाला विविधा नराणां
 गृहाणि चित्राणि च तोरणानि ।
 सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन्
 समिच्छतां यानि सुकाननानि ॥ ८
 गृहं वरिष्ठं बहुभूमिकं पुनः
 समन्वितं साधुगुणैरुपस्कृतैः ।
 दुग्ध्वा प्रकल्पन् मुनिराह पार्श्वं
 गृहं कृतं ते प्रविशेह राजन् ॥ ९
 इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्ते
 गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम् ।
 हस्त्यश्वजात्यश्च विशन्तु शालां
 भृत्याश्च नीचेषु गृहेषु सन्तु ॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके

जामदग्न्य (परशुराम) नामक शुभ अवतारका वर्णन करता हूँ, जिसने पूर्वकालमें क्षत्रियवंशका उच्छेद किया था; उस प्रसङ्गको सुनो ॥ १ ॥

नरेश! पहलेकी बात है, क्षीरसागरके तटपर देवताओं और महाभाग ऋषियोंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की; इससे ये जमदग्नि मुनिके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। ये भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'परशुराम' नामसे विख्यात थे और दुष्ट राजाओंका नाश करनेके लिये ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। उनके अवतारसे पूर्व राजा कृतवीर्यका पुत्र 'कार्तवीर्य' हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजीकी आराधना करके सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था। एक समय वह महाभाग नरेश जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर गया। उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी। उस राजाको चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आश्रमपर आया देख जमदग्निने नृपवर कृतवीर्यसे मधुर वाणीमें कहा—'महामते! आप भैंरे अतिथि होकर यहाँ पधारे हैं; अतः आज अपनी सेनाका पड़ाव यहाँ डालिये और भैंरे दिये हुए वन्य फल आदिका भोजन करके कल यहाँसे जाइयेगा' ॥ २—६ ॥

महानुभाव राजा कार्तवीर्य मुनिके वाक्यका गौरव मानकर अपनी सेनाको यहाँ उहलनेका आदेश दे वहाँ रह गया। इधर अलङ्घ्य यशवाले मुनिने राजाको आमन्त्रित करके अपनी कामधेनु गौका दोहन किया। राजन्! उन्होंने अनेकानेक गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेयोग्य विचित्र गृह और तोरण (द्वार) आदिका दोहन किया। सामन्त नरेशोंके रहनेयोग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदिकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सुन्दर उद्यान थे, दोहनद्वारा प्रस्तुत किये। फिर अनेक मंजिलोंका श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान संचित थे, गोदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा—'राजन्! आपके लिये महल तैयार है। आप इसमें प्रवेश कीजिये। आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें। विभिन्न जातियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे बरोंमें निवास करें' ॥ ७—१० ॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसी
गृहे वरिष्ठे प्रविवेश राजा।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमावभाषे ॥ ११

स्नानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप।
स्नाहि त्वमद्यात्र यथाप्रकाशं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥ १२

स स्नातर्वास्तत्र सुरेन्द्रवत्पुत्रो
गीत्यादिशब्दैर्षधुरैश्च वाद्यैः।
स्नातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे
ददौ मुनिर्भूष विभूषिते द्वे ॥ १३

परिधाय वस्त्रं च कुतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार।
मुनिश्च दुग्ध्वात्रमयं महागिरिं
नृपाय भृत्याय च दत्तवानसी ॥ १४

यावत्स राजा बुभुजे सभृत्य-
स्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम्।
राज्ञी च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥ १५

ततः प्रभाते विमले स्वप्रलब्धमिवाभवत्।
भूमिभागं ततः कंचिद् दृष्ट्वासी चिन्तयन्नृपः ॥ १६

किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः।
सुरभ्या वा महाभाग ब्रूहि मे त्वं पुरोहित ॥ १७

इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः।
मुनेः सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चेयं हि गोर्नृप ॥ १८

तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभात्रराधिप।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद् यै तस्य नाशो ध्रुवं भवेत् ॥ १९

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्यने उस उत्तम गृहमें प्रवेश किया। फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए। इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीर्यसे कहा—'नरेशर! आपको स्नान करानेके लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियोंके नित्य किया है। जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए स्नान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्नान कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

भूप। (मुनिकी आज्ञासे) वहाँ राजा कार्तवीर्यने इन्द्रकी भाँति मधुर वाद्याँ और गीत आदिके शब्दोंसे आनन्दित होते हुए स्नान किया। स्नान कर लेनेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुरोभिषि वस्त्र दिये। धौतवस्त्र पहन और ऊपरसे चादर ओढ़कर राजाने नित्य-नियम करनेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की। फिर उन मुनिवरने गौसे अत्यमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा राजसेवकबृन्दको अर्पित किया। नृप। राजा तथा उनके भूतपगणोंने जबतक भोजनका कार्य सम्पन्न किया, तबतक सूर्यदेव अस्तान्तको चले गये। तब उन्होंने रातको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो सपन किया ॥ १३-१५ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्नमें मित्सी हुई सम्पत्तिके सम्पन्न सब कुछ लुप्त हो गया। फिर वहाँ केवल कोई भूभागमात्र ही अवशिष्ट देख राजाने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—'महाभाग पुरोहितजी! यह महात्मा जमदग्नि मुनिके तपकी शक्ति थी या कामधेनु गौकी? इसे आप मुझे बताइये।' कार्तवीर्यके इस प्रकार बूढ़नेपर पुरोहितने उससे कहा—'राजन्! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गौकी ही थी। तो भी नरेशवर! आप लोभवश उस गौका अपहरण न करें; क्योंकि जो उसे हर लेनेकी इच्छा करता है, उसका निश्चय ही विनाश हो जाता है' ॥ १६-१९ ॥

अथ मन्त्रिवरः प्राह ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ।
राजकार्यं न पश्येद् वै स्वपक्षस्यैव पोषणात् ॥ २०

हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि विविधानि च ।
तथा सुवर्णपात्राणि शयनादीनि च स्त्रियः ॥ २१

तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र लीयमानानि तत्क्षणात् ।
अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा ॥ २२

तवेयं योग्या राजेन्द्र यदीच्छसि महामते ।
गत्वाहमानयिष्यामि आज्ञां मे देहि भूभुज ॥ २३

इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोत्तम ।
सचिवस्तत्र गत्वाच सुरभिं हर्तुमारभत् ॥ २४

वारयामास सचिवं जमदग्निः समन्ततः ।
राजयोग्यामिमां ब्रह्मन् देहि राज्ञे महामते ॥ २५

त्वं तु शाकफलाहारी किं धेन्वा ते प्रयोजनम् ।
इत्युक्त्वा तां बलाद्भुत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्रमे ॥ २६

पुनः सभार्यः स मुनिवारयामास तं नृपम् ।
ततो मन्त्री सुदुष्टात्मा मुनिं हत्वा तु तं नृप ॥ २७

ब्रह्महा नेतुमारभे वायुभागैण सा गता ।
राजा च क्षुब्धहृदयो ययौ माहिष्यतीं पुरीम् ॥ २८

मुनिपत्नीं सुदुःखार्तां रोदयन्ती भृशं तदा ।
त्रिस्सप्तकृत्वः स्वां कुक्षिं ताडयामास पार्थिव ॥ २९

तच्चकृण्वन्नागतो रामो गृहीतपरशुस्तदा ।
पुण्यादीनि गृहीत्वा तु यनाम्नातरमब्रवीत् ॥ ३०

अलमम्ब प्रहारेण निमित्ताद् विदितं मया ।
हनिष्यामि दुराचारमर्जुनं दुष्टमन्त्रिणम् ॥ ३१

त्वयैकविंशवारेण यस्यात्कुक्षिश्च ताडिता ।
त्रिस्सप्तकृत्वस्तस्मात्तु हनिष्ये भुवि पार्थिवान् ॥ ३२

यह सुनकर राजाके प्रधान मन्त्रीने कहा—‘महाराज ब्राह्मण ब्राह्मणका ही प्रेमी होता है, वह अपने पक्षका पोषण करनेके कारण राजाके कार्यकी कोई परवाह नहीं करता। राजन् ! उस गौको पाकर आपके पास तत्काल गुप्त हो जानेवाले वाना प्रकारके घर, सोनेके पात्र, शय्यादि तथा सुन्दरी स्त्रियाँ—ये सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हम लोगोंने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है। इस उतम धेनुको आप अवश्य ले चलीं। महामते राजेन्द्र ! यह गौ आपके ही योग्य है। भूपाल ! यदि आपको इच्छा हो तो मैं स्वयं जाकर इसे ले आऊँगा। आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये’ ॥ २०—२३ ॥

नृपवर ! मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर अनुमति दे दी। फिर राजमन्त्री आश्रमपर जाकर गौका अपहरण करने लगा। तब जमदग्नि मुनिने उसे सब ओरसे मना किया, किंतु उसने उनकी बात न मानते हुए कहा—‘महाशुद्धिमान् ब्राह्मण ! यह गौ राजाके योग्य है; अतः इसे राजाको ही दे दीजिये। आप तो साग और फल खानेवाले हैं; आपको इस गायसे क्या काम है?’ यों कहकर मन्त्री उस गौको बलपूर्वक ले जाने लगा। राजन् ! तब उस मुनिने स्त्रीसहित आकर उसे पुनः रोका। इसपर उस दुष्टात्मा और ब्रह्महत्यारे मन्त्रीने उस मुनिका बध करके गौको यहीं ही ले जाना चाहा, त्यों ही वह दिव्य गौ आकाशमार्गसे चली गयी और राजा मन-ही-मन क्षुब्ध होकर माहिष्यती नगरीको लौट आया ॥ २४—२८ ॥

राजन् ! उस समय मुनिकी पत्नी दुःखसे पीड़ित होकर आपत्त बिलाप करने लगी और प्राण त्याग देनेकी इच्छासे अपनी कुक्षि (उदर)—में उसने इक्कीस बार मुका मारा। माताका बिलाप सुनकर परशुरामजी वनसे फूल आदि लेकर हाथमें कुल्हाड़ी लिये उसी समय आवे और मातासे बोले—‘मा ! इस प्रकार छत्ती पीटनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं सब कुछ शकुनसे जान गया हूँ। उस दुष्ट मन्त्रीवाले दुराचारी राजा अर्जुनका मैं अवश्य बध करूँगा। मातः ! चूँकि तुमने अपनी कुक्षिमें इक्कीस बार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूषण्डलके धत्रियोंका इक्कीस बार संहार करूँगा’ ॥ २९—३२ ॥

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं ययौ ।
 माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाह्वयत् ॥ ३३
 युद्धार्थमागतः सोऽथ अनेकाक्षौहिणीयुतः ।
 तयोर्युद्धमभूत्तत्र धैरवं लोमहर्षणम् ॥ ३४
 पिशिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम् ।
 ततः परशुरामोऽभूमहाबलपराक्रमः ॥ ३५
 परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान् ।
 कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह ॥ ३६
 हत्वा निपात्य भूमौ तु परमाद्भुतविक्रमः ।
 कार्तवीर्यस्य बाहुनां वनं चिच्छेद रोषवान् ।
 छिन्ने बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गवः ॥ ३७
 विष्णुहस्ताद्भुतं प्राप्य चक्रवर्ती स पार्थिवः ।
 दिव्यरूपधरः श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ ३८
 दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकमवासवान् ।
 क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः ॥ ३९
 त्रिस्सप्तकृत्यो भूम्यां वै पार्थिवात्रिजघान सः ।
 क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ ४०
 भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने ।
 इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो मयोदितः ॥ ४१
 यश्च तच्छृणुयाद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४२
 अवतीर्य भूमौ हरिरेष साक्षात्
 त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपात्रिहत्य सः ।
 क्षात्रं च तेजो प्रविभज्य राजन्
 रामः स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे ॥ ४३

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मती पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको ललकारा। तब वह अनेक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया। वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियोंके आनन्द देनेवाला था। उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्वरूप, परम ज्योतिर्मय, कारणमूर्ति भगवान् विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने परम आश्चर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोषसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं। उसके बाहुवनका उच्छेद हो जानेपर भृगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी भड़से अलग कर दिया ॥ ३३—३७ ॥

इस प्रकार यह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णुके हाथसे वधकी प्राप्ति होकर दिव्यरूप धारण करके, श्रीसम्पन्न एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आरुढ़ हो, विष्णुभामकी प्राप्ति हुआ। फिर महान् बल और पराक्रमवाले परशुरामजीने भी इस पृथ्वीके क्षत्रियोंका इकोस बार संहार किया। इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिगत भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको दान कर दी ॥ ३८—४० ॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' (परशुराम) नामक अवतारका वर्णन किया। जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इकोस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियोंकी छिन्न-भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं ॥ ४१—४३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामप्रभुर्भावे कथं कथाचरितौऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'परशुरामावतार' नामक छिन्नोत्तीर्ण अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।
 निहतो रावणो येन सगणो देवकण्ठकः ॥ १

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कण्ठकस्वरूप रावण अपने गणोंसहित मारा गया। तुम [ध्यान देकर] सुनो ॥ १ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभूमहामुनिः ।
 तस्य वै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूतस्य राक्षसः ॥ २
 तस्माज्जातो महावीरो रावणो लोकरावणः ।
 तपसा महता युक्तः स तु लोकानुषाद्रवत् ॥ ३
 सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा ।
 यक्षाश्च दानवाश्चैव तेन राजन् विनिर्जिताः ॥ ४
 स्त्रियश्चैव सुरुषिण्यो हतास्तेन दुरात्मना ।
 देवादीनां नृपश्रेष्ठ रत्नानि विविधानि च ॥ ५
 रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः ।
 तत्पुत्रीं जग्हे लङ्कां विमानं चापि पुष्पकम् ॥ ६
 तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिपोऽभवत् ।
 पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूवुरमितीजसः ॥ ७
 राक्षसाश्च तमाश्रित्य महाबलपराक्रमाः ।
 अनेककोटयो राजन् लङ्कायां निवसन्ति ये ॥ ८
 देवान् पितृन् मनुष्यांश्च विद्याधरगणानपि ।
 यक्षांश्चैव ततः सर्वे घातयन्ति दिवानिशम् ॥ ९
 संव्रस्तं तद्भयादेव जगदासोच्चराचरम् ।
 दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बभूव नराधिप ॥ १०
 एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा महर्षयः ।
 सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥ ११
 गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ।
 ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा शङ्करं च नराधिप ॥ १२
 ते ययुर्हतविक्रान्ताः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।
 तत्राराध्य हरिं देवास्तस्थुः प्राञ्जलपस्तदा ॥ १३
 ब्रह्मा च विष्णुमाराध्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
 प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवमध्यास्तुवत् ॥ १४

ब्रह्मोवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नागपर्यङ्कशायिने ।
 नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १५
 नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भाविताय च ।
 तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १६

ब्रह्माजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनके 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ। विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ। समस्त लोकोंको रक्षानेवाला महावीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था। वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा। राजन्! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंको जीत लिया तथा यक्षों और दानवोंको भी अपने बसीभूत कर लिया। नृपश्रेष्ठ! उस दुरात्माने देवता आदिकी सुन्दरी स्त्रियाँ और नाना प्रकारके रत्न भी हर लिये। बलाभिमानी रावणने युद्धमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्का और पुष्पक विमानपर भी अधिकार जमा लिया ॥ २—६ ॥

उस लङ्कापुरीमें दशमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ। उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपरिमित बलसे सम्पन्न थे। राजन्! लङ्कामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे। नराधिप! समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त दुःखी हो गया था ॥ ७—१० ॥

नरेश! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तम तटपर गये। वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्की आराधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर ब्रह्माजीने गन्ध-पुष्प आदि सुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११—१४ ॥

ब्रह्माजी बोले—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शय्यापर सोते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहलाये जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योग ही जिनकी निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो गरुडजीके कपर आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है।

नमः श्रीराधिकलोलस्पृष्टपात्राय शार्ङ्गिणे ।
 नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥ १७
 भक्तार्चितसुपादाय नमो योगप्रियाय वै ।
 शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ १८
 सुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्रिणे ।
 सुवक्त्राय सुकर्णाय श्रीधराय नमो नमः ॥ १९
 सुवक्षसे सुनाभाय पद्मनाभाय वै नमः ।
 सुध्रुवे चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्ङ्गिणे ॥ २०
 चारुजङ्घाय दिव्याय केशवाय नमो नमः ।
 सुनखाय सुशान्ताय सुविधाय गदाधृते ॥ २१
 धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः ।
 असुरघ्नाय चोग्राय रक्षोघ्नाय नमो नमः ॥ २२
 देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः ।
 नमस्ते लोकनाथाय रावणान्तकृते नमः ॥ २३

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोऽपि परमेष्ठिना ।
 स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुवाच ह ॥ २४
 किमर्थं तु सूरिः सार्धमागतस्त्वं पितामह ।
 यत्कार्यं ब्रूहि मे ब्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया ॥ २५
 इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 सर्वदेवगणैः सार्धं ब्रह्मा प्राह जनार्दनम् ॥ २६

ब्रह्मावाच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्मना ।
 सेन्द्राः पराजितास्तेन बहुशो रक्षसा विभो ॥ २७
 राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाश्चापि विदूषिताः ।
 देवकन्या हृतास्तेन बलाच्छतसहस्रशः ॥ २८
 त्वामृते पुण्डरीकाक्ष रावणस्य वधं प्रति ।
 न समर्था यतो देवास्त्वमतस्तद्वधं कुरु ॥ २९

शोरसागरकी सहरेँ जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके सुन्दर चरण भक्तोंद्वारा पूजित हैं, जिन्हें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बारंबार नमस्कार है। जिनके केश, नेत्र, ललाट, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रधारिण भगवान् श्रीधरको प्रणाम है। जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है। जिनकी भीड़ सुन्दर, शरीर मनोहर और दाँत उज्ज्वल हैं, उन भगवान् शार्ङ्गधन्वाको प्रणाम है। रुधिर पिंडलियोंवाले दिव्यरूपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है। जो सुन्दर नखोंवाले, परमशान्त और सद्गुणोंके आश्रय हैं, उन भगवान् गदाधरको नमस्कार है। धर्मप्रिय भगवान् वामनको बारंबार प्रणाम है। असुर और राक्षसोंके हन्ता उग्र (नृसिंह)-रूपधारी भगवान्को नमस्कार है। देवताओंकी पीड़ा हरनेके लिये भयंकर कर्म करनेवाले तथा रावणके संहारक आप भगवान् जगन्नाथको प्रणाम है ॥ १५—२३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् ब्रह्माजीसे बोले—'पितामह! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो? ब्रह्मन्! जो कार्य आ पड़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह यथाओ।' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार ब्रह्म किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान ब्रह्माजीने उन जनार्दनसे कहा ॥ २४—२६ ॥

ब्रह्माजी बोले—विभो! दुरात्मा रावणने समस्त जगत्में भौषण संहार मचा रखा है। उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार परास्त किया है। रावणके पार्श्ववर्ती राक्षसोंने असंख्य मनुष्योंको खा लिया और उनके यज्ञोंको दूषित कर दिया है। स्वयं रावणने सैकड़ों हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है। कमलनयन! तूँकि आपजो छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उसका वध करें ॥ २७—२९ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
 शृणुष्ववहितो ब्रह्मन् यद्वदामि हितं बचः ॥ ३०
 सूर्यंशोद्भवः श्रीमान् राजाऽऽसीद्भुवि वीर्यवान् ।
 नाम्ना दशरथख्यातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥ ३१
 रावणस्य वधार्थाय चतुर्धाशेन सत्तम ।
 स्वांशैर्वानररूपेण सकला देवतागणाः ॥ ३२
 यतार्यन्तां विश्वकर्तः स्यादेवं रावणक्षयः ।
 इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३३
 देवाश्च ते प्रणम्याथ मेरुपुष्ठं तदा ययुः ।
 स्वांशैर्वानररूपेण अवतेरुक्षु भूतले ॥ ३४
 अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्वेदपारगैः ।
 इष्टिं तु कारयामास पुत्रप्राप्तिकर्तुं नृपः ॥ ३५
 ततः सौवर्णपात्रस्थं हविरादाय पायसम् ।
 यज्ञिः कुण्डात् समुत्तस्थी नूनं देवेन नोदितः ॥ ३६
 आदाय मुनयो मन्त्राच्छकुः पिण्डद्वयं शुभम् ।
 दत्ते कौशल्यकैकेय्योर्द्वे पिण्डे मन्त्रमन्त्रिते ॥ ३७
 ते पिण्डप्राशने काले सुमित्राया महामते ।
 पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु सुभागिन्याः प्रयच्छतः ॥ ३८
 ततस्ताः प्राशयामासु राजपत्न्यो यथाविधि ।
 पिण्डान् देवकृतान् प्राश्य प्रापुर्गर्भाननिन्दितान् ॥ ३९
 एवं विष्णुर्दशरथाज्जातस्तत्पत्निषु त्रिषु ।
 स्वांशैर्लोकहितार्थैव चतुर्धा जगतीपते ॥ ४०
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च ।
 जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम् ॥ ४१
 मन्त्रपिण्डवशाद्योगं प्राप्य चेह्यवधार्धकाः ।
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्यं विचेरतुः ॥ ४२
 जन्मादिकृतसंस्कारी पितुः प्रीतिकरी नृप ।
 वयुधाते महावीर्यी श्रुतिशब्दातिलक्षणी ॥ ४३
 भरतः कैकयो राजन् भ्रात्रा सह गृहेऽवसत् ।
 वेदशास्त्राणि वयुधे शस्त्रशास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४४

ब्रह्मणोके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—'ब्रह्मन्! मैं तुम लोगोंके हितके लिये जो बात कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पराक्रमी राजा हैं, मैं उन्हींका पुत्र होऊँगा। सत्तम! रावणका वध करनेके लिये मैं अंशतः चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विश्वस्तृष्ट ब्रह्माजी! आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेसे ही रावणका संहार होगा।' देवदेव भगवान्के यों कहनेपर लोक-पितामह ब्रह्माजी तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मेरुशिखरपर चले गये और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हुए ॥ ३०—३४ ॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने वेदके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करनेवाले 'पुष्टि' नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। तब भगवान्की प्रेरणामें अग्निदेव सुवर्णपात्रमें रखी हुई होमकी खीर हाथमें लिये कुण्डसे प्रकट हुए। मुनियोंने यह खीर ले ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उन दोनों पिण्डोंको कौसल्या तथा कैकेयीके हाथमें दे दिया। महामते! पिण्ड-भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा निकालकर सौभाग्यवती सुमित्राकी दे दिया। फिर उन तीनों रानियोंने विधिपूर्वक उन क्षीरपिण्डोंका भोजन किया। उन देवनिर्मित पिण्डोंका भक्षण करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम गर्भ धारण किये ॥ ३५—३९ ॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी तीनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार हो जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डोंके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भाँति विचरने लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरपाल! जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्षण अश्रुतपूर्व एवं वर्णनासीत थे। अथवा वे वेद और व्याकरणदि शास्त्रोंमें पारंगत होनेके शुभलक्षणसे सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घरपर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेदशास्त्र और अस्त्रविद्या भी सीख ली थी ॥ ४०—४४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्रो महातपाः ।
यागेन यष्टुमारेभे विधिना मधुसूदनम् ॥ ४५
स तु विघ्नेन यागोऽभूद्वाक्षसैर्बहुशः पुरा ।
नेतुं स यागरक्षार्थं सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणौ ॥ ४६
विश्वामित्रो नृपश्रेष्ठ तत्पितुर्मन्दिरं शुभम् ।
दशरथस्तु तं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय महामतिः ॥ ४७
अर्घ्यपाद्यादि विधिना विश्वामित्रमपूजयत् ।
स पूजितो मुनिः ब्रूह राजानं राजसंनिधौ ॥ ४८
शृणु राजन् दशरथ यदर्थमहमागतः ।
तत्कार्यं नृपशार्दूल कथयामि तवाग्रतः ॥ ४९
राक्षसैर्नाशितो यागो बहुशो मे दुरासदैः ।
यज्ञस्य रक्षणार्थं मे देहि त्वं रामलक्ष्मणौ ॥ ५०
राजा दशरथः श्रुत्वा विश्वामित्रवचो नृप ।
विषण्णवदनो भूत्वा विश्वामित्रमुवाच ह ॥ ५१
बालाभ्यां मम पुत्राभ्यां किं ते कार्यं भविष्यति ।
अहं त्वया सहागत्य शक्त्या रक्षामि ते मखम् ॥ ५२
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरब्रवीत् ।
रामोऽपि शक्नुते नूनं सर्वात्राशयितुं नृप ॥ ५३
रामेणैव हि ते शक्या न त्वया रक्षसा नृप ।
अतो मे देहि रामं च न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ५४
इत्युक्तो मुनिना तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं राजा मुनिवर्यमुवाच ह ॥ ५५
यद्वीमि मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नस्त्वं निबोध मे ।
राजीवलोचनं राममहं दास्ये सहानुजम् ॥ ५६
किं त्वस्य जननी ब्रह्मन् अदृष्ट्वनं मरिष्यति ।
अतोऽहं चतुरङ्गेण बलेन सहितो मुने ॥ ५७
आगत्य राक्षसान् हन्मीत्येवं मे मनसि स्थितम् ।

इन्हीं दिनों महातपस्वी विश्वामित्रजीने यज्ञविधिसे भगवान् मधुसूदनका यजन आरम्भ किया। परंतु पहले उस यज्ञमें बहुत बार राक्षसोंद्वारा विघ्न डाला गया था, नृपश्रेष्ठ! इसलिये इस बार विश्वामित्रजी यज्ञकी रक्षाके लिये राम तथा लक्ष्मणको ले जानेके निमित्त उनके पिताके सुन्दर महलमें आये। महाबुद्धिमान् दशरथजी उन्हें देखकर उठ खड़े हुए और अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंद्वारा उन्होंने विधिवत् उनकी पूजा की। इस प्रकार उनके द्वारा सम्पन्नित हो, मुनिने अन्य राजाओंके निकट विराजमान राजा दशरथसे कहा—'राजसिंह महाराज दशरथ! सुनो— मैं जिस कार्यके लिये आया हूँ, वह तुम्हारे सामने निवेदन करता हूँ। मेरे यज्ञको दुर्धर्ष राक्षसोंने अनेक बार नष्ट किया है; अतः उसकी रक्षाके लिये तुम राम और लक्ष्मणको मुझे दे दो' ॥ ४५—५० ॥

शेरधर! विश्वामित्रजीकी बात सुननेपर राजा दशरथ- के मुखपर विषाद छा गया। वे उनसे बोले—'भगवान्! मेरे ये दोनों पुत्र अभी बालक हैं। इनसे आपका कौन- सा कार्य सिद्ध होगा? मैं स्वयं आपके साथ चलकर यथाशक्ति यज्ञकी रक्षा करूँगा।' राजाकी बात सुनकर मुनि उनसे बोले—'नरपाल! राम भी उन सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। सच तो यह है कि रामके द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारे द्वारा नहीं; अतः राजन्! तुम्हें रामको ही मुझे दे देना चाहिये और किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये' ॥ ५१—५४ ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रमुनिके द्वारा यों कहे जानेपर राजा क्षणभरके लिये घुप हो गये और फिर उन मुनीश्वरसे बोले—'मुनिश्रेष्ठ! मैं जो कह रहा हूँ, उसे आप प्रसन्नतापूर्वक सुनें। मैं कमललोचन रामको लक्ष्मणके सहित आपको दे तो दूँगा, परंतु ब्रह्मन्! इनकी माता इन्हें देखे बिना मर जायगी। इसलिये मुने! मेरा ऐसा विचार है कि मैं स्वयं ही चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चलकर सब राक्षसोंका वध करूँ' ॥ ५५—५७ ॥

विश्वामित्रः पुनः प्राह राजानमपितीजसम् ॥ ५८

नाज्ञो रामो नृपश्रेष्ठ स सर्वज्ञः समः क्षमः ।
शेषनारायणावेतौ तव पुत्री न संशयः ॥ ५९

दुष्टानां निग्रहाद्यां शिष्टानां पालनाय च ।
अवतीर्णा न संदेहो गृहे तव नराधिप ॥ ६०

न मात्रा न त्वया राजन् शोकः कार्योऽत्र चाण्डपि ।
निःक्षेपे च महाराज अपीयिष्यामि ते सुतौ ॥ ६१

इत्युक्तो दशरथस्तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तच्छापभीतो मनसा नीयतामित्यभाषत ॥ ६२

कृच्छ्रातिपत्रा विनिर्मुक्तं राममादाय सानुजम् ।
ततः सिद्धाश्रमं राजन् सम्प्रतस्थे स कौशिकः ॥ ६३

तं प्रस्थितमथालोक्य राजा दशरथस्तदा ।
अनुव्रज्याव्रवीदेतद् यच्चो दशरथस्तदा ॥ ६४

अपुत्रोऽहं पुरा ब्रह्मन् बहुभिः काम्यकर्मभिः ।
मुनिप्रसादादधुना पुत्रवानस्मि सत्तम ॥ ६५

मनसा तद्वियोगं तु न शक्यामि विशेषतः ।
त्वमेव जानासि मुने नीत्वा शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ६६

इत्येवमुक्तो राजानं विश्वामित्रोऽब्रवीत्पुनः ।
समाप्तयज्ञश्च पुनर्नये रामं च लक्ष्मणम् ॥ ६७

सत्यपूर्वं तु दास्यामि न चिन्तां कर्तुमर्हसि ।
इत्युक्तः प्रेषयापास रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ ६८

अनिच्छन्नपि राजासौ मुनिशापभयावृपः ।
विश्वामित्रस्तु तौ गृह्य अयोध्याया ययौ शनैः ॥ ६९

सरध्वास्तीरमासाद्य गच्छत्रेव स कौशिकः ।
तयोः प्रीत्या स राजेन्द्र द्वे विष्टे प्रथमं ददौ ॥ ७०

यत्नामतिबलां चैव समन्त्रे च ससंग्रहे ।
क्षुत्पिपासापनयने पुनश्चैव महामतिः ॥ ७१

अस्त्रग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तु तौ तदा ।
आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ७२

दर्शयित्वा उपित्वा च पुण्यस्थानेषु सत्तमः ।
गङ्गामुत्तीर्य शोणस्य तीरमासाद्य पश्चिमम् ॥ ७३

विश्वामित्रजी यह सुनकर उन अमित-तेजस्वी राजासे पुनः बोले— 'नृपश्रेष्ठ! रामचन्द्र अबोध नहीं हैं; ये सर्वज्ञ, समदर्शी और परम समर्थ हैं। इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण साक्षात् नारायण एवं शेषनाग हैं। नराधिप! दुष्टोंको दण्ड देने और सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये ही ये दोनों आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। इसमें संदेह नहीं है। राजन्! इनकी माता तथा आपको इस विषयमें धोड़ी-सी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। महाराज! ये मेरे पास धरोहरके तौरपर रहेंगे। यज्ञ पूर्ण हो जानेपर मैं इन दोनोंको आपके हाथमें दे दूँगा' ॥ ५८—६१ ॥

कुटुम्बान् विश्वामित्रजीके यों कहनेपर दशरथजी मन ही-मन उनके शापसे डरते हुए बोले—'अच्छा, इन्हें ले जाइये।' राजन्! पिताके द्वारा बड़ी कठिनाईसे छोड़े गये श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्र मुनि तब अपने सिद्धाश्रमकी ओर प्रस्थित हुए। उन्हें जाते देख उस समय राजा दशरथ कुछ दूर पीछे-पीछे गये और तब मुनिसे इस प्रकार बोले—'साधुश्रेष्ठ! ब्रह्मन्! मैं पहले दीर्घकालतक पुत्रहीन रहा; मुनियोंकी कृपासे अनेक सकाम यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान करके अब पुत्रवान् हो सका हूँ। अतः मुने! मैं मनसे भी इन पुत्रोंका अधिक कालतक वियोग नहीं सह सकूँगा, यह बात आप ही जानते हैं; अतः इन्हें ले जाकर फिर यथासम्भव शीघ्र मेरे पास पहुँचा दीजियेगा' ॥ ६२—६६ ॥

उनके यों कहनेपर विश्वामित्रजीने पुनः राजासे कहा— 'अपना यज्ञ समाप्त हो जानेपर मैं पुनः श्रीराम और लक्ष्मणको यहाँ ले आऊँगा तथा अपने यवनको सत्य करते हुए इन्हें वापस कर दूँगा, आप चिन्ता न करें' ॥ ६७ ॥

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजासे उनके शापकी आशङ्कासे भयभीत हो, इच्छा न रहते हुए भी, श्रीराम और लक्ष्मणको उनके साथ भेज दिया। विश्वामित्रजी उन दोनों भीड़ियोंको साथ ले धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ ६८—६९ ॥

राजेन्द्र! सरयूके तटपर पहुँचकर महामति विश्वामित्रजीने चलते-चलते ही श्रीराम और लक्ष्मणको प्रेमवश पहले 'वत्स' और 'अतिवत्स' नामकी दो विघाएँ ब्रदान कीं, जो क्षुधा और पिपासाको दूर करनेवाली हैं। मुनिने उन विघाओंको मन्त्र और संग्रह (उपसंहार) पूर्वक सिखाया। फिर उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र-समुदायकी शिक्षा देकर वे साधुश्रेष्ठ मुनि श्रीराम और लक्ष्मणको अनेक आत्मज्ञानी मुनीश्वरोंके दिव्य आश्रम दिखाते और पवित्र तीर्थस्थानोंमें निवास करते हुए गङ्गा नदीको पारकर शोणभट्टके पश्चिम तटपर आ पहुँचे ॥ ७०—७३ ॥

मुनिधार्मिकसिद्धांश्च पश्यन्ती रामलक्ष्मणी ।
 ऋषिभ्यश्च वरान् प्राप्य तेन नीतौ नृपात्मजौ ॥ ७४
 ताटकाया वनं घोरं मृत्योर्मुखमिवापरम् ।
 गते तत्र नृपश्रेष्ठ विश्वामित्रो महातपाः ॥ ७५
 राममक्लिष्टकर्माणमिदं वचनमब्रवीत् ।
 राम राम महाबाहो ताटका नाम राक्षसी ॥ ७६
 रावणस्य नियोगेन वसत्यस्मिन् महावने ।
 तथा मनुष्या बहवो मुनिपुत्रा मृगास्तथा ॥ ७७
 निहता भक्षिताश्चैव तस्मात्तां वध सत्तम ।
 इत्येवमुक्तो मुनिना रामस्तं मुनिमब्रवीत् ॥ ७८
 कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने ।
 स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७९
 इति रामवचः श्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम् ।
 तस्यास्तु निधनान्नाम जनाः सर्वे निराकुलाः ॥ ८०
 भवन्ति सततं तस्मात् तस्याः पुण्यप्रदो वधः ।
 इत्येवं वादिनि मुनी विश्वामित्रे निशाचरी ॥ ८१
 आगता सुमहाघोरा ताटका विवृतानना ।
 मुनिना प्रेरितो रामस्तां दृष्ट्वा विवृताननाम् ॥ ८२
 उद्यतैकभुजयष्टिपायतीं
 श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
 तां विलोक्य वनितावधे घृणां
 पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥ ८३
 शरं संधाय बेगेन तेन तस्या उरःस्थलम् ।
 विपाटितं द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥ ८४
 घातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु तौ ।
 प्रापयामास तं तत्र नानाऋषिनिषेवितम् ॥ ८५
 नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
 नानानिर्झरतोयाढ्यं विन्ध्यशीलान्तरस्थितम् ॥ ८६
 शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम् ।
 रक्षार्थं तावुभी स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः ॥ ८७

मार्गमें मुनियों, भर्मात्माओं और सिद्धोंका दर्शन करते हुए तथा ऋषियोंसे घर प्रातःकर, राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा उस ताड़कावनमें ले जाये गये, जो यमराजके दूसरे मुखके समान भयंकर था। नृपश्रेष्ठ। वहाँ पहुँचकर महातपस्वी विश्वामित्रने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामसे कहा—'महाबाहो राम! इस महान् वनमें रावणकी आज्ञासे 'ताड़का' नामकी एक राक्षसी रहती है। उसने बहुत-से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है; अतः सत्तम! तुम उसका वध करो' ॥ ७४—७७/१, ॥

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—'महामुने। आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं।' श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—'राम! उस ताड़काको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्धन हो जायेंगे, इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है' ॥ ७८—८०/१, ॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महाघोर राक्षसी ताड़का मुँह फैलाये वहाँ आ पहुँची। तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा। वह मुँह खोले आ रही थी। उसकी छड़ी-सरीखी एक बाँह ऊपरकी ओर उठे थी। कटिप्रदेशमें मेखला (करधनी) की जगह लिपटी हुई मनुष्यकी अँतड़ी लटक रही थी। इस रूपमें आती हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवधके प्रति होनेवाली घृणा और बाणको एक साथ ही छोड़ दिया। राजन्। उन्होंने धनुषपर बाण रखकर उसे बड़े वेगसे छोड़ा। उस बाणने ताड़काकी छातीके दो टुकड़े कर दिये। फिर तो वह धरतीपर गिरी और मर गयी ॥ ८१—८४॥

इस प्रकार ताड़काका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुत-से मुनियोंद्वारा सेवित था। वह आश्रम विन्ध्य पर्वतकी मध्यवर्तिनी उपत्यकामें विद्यमान था। वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भीति-भीतिके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुशोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था। यहाँ उन दोनों राजकुमारोंकी विशेषरूपसे शिक्षा देकर मुनिने उनको यज्ञकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया। तदनन्तर महान्

ततश्चारब्धवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः ।
 दीक्षां प्रविष्टे च मुनी विश्वामित्रे महात्मनि ॥ ८८

यज्ञे तु वितते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः ।
 मारीचश्च सुबाहुश्च बहवश्चान्यराक्षसाः ॥ ८९

आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः ।
 तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः ॥ ९०

शरेण पातयामास सुबाहुं धरणीतले ।
 असूक्ष्मबाहुं वर्षन्तं मारीचं भक्षकेन तु ॥ ९१

प्रताड्य नीतवानब्धिं यथा पर्णं तु वायुना ।
 शेषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणश्च निशाचरान् ॥ ९२

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशः ।
 समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान् ॥ ९३

सदस्यानपि सम्पुन्य यथाहं च हारिदम् ।
 रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तितः ॥ ९४

ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम ।
 ववर्ष पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि ॥ ९५

निवार्य राक्षसभयं कारयित्वा तु तन्मखम् ।
 श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भ्रातृसमन्वितः ॥ ९६

तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति ।
 व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा श्रमा हि सा पुरा ॥ ९७

पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात् ।
 अहल्या मुक्तपाषा च जगाम गौतमं प्रति ॥ ९८

विश्वामित्रस्ततस्तत्र चिन्तयामास वै क्षणम् ।
 कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः ॥ ९९

इति संचिन्त्य ती गृह्य विश्वामित्रो महातपाः ।
 शिष्यैः परिवृतोऽनेकैर्जगाम मिथिलां प्रति ॥ १००

तपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया ॥ ८५—८७ ॥

महात्मा विश्वामित्र ज्यों-ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए, उस यज्ञका कार्य चालू हो गया। उसमें ऋत्विजगण अपना-अपना कार्य करने लगे। तब रावणके द्वारा नियुक्त मारीच, सुबाहु तथा अन्य बहुत-से राक्षसगण यज्ञ नष्ट करनेके लिये वहाँ आये। उन सबको वहाँ आया जान कमलनयन श्रीरामने बाण मारकर 'सुबाहु' नामक राक्षसको तो भरहायी कर दिया। वह अपने शरीरसे रक्तकी वर्षा-सौ करने लगा। इसके बाद 'भक्ष' नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके तटपर फेंक दिया, जैसे वायु पतेको ठड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर शेष सभी राक्षसोंका वध कर डाला ॥ ८८—९२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके ऋत्विजोंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शत्रुदमन! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणकी भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रतप्ता की। सायुष्योंमें श्रेष्ठ महाराज। तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागोंसे सन्तुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९३—९५ ॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएँ सुनते हुए मुनिके द्वारा उस स्थानपर लाये गये, जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र! पूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप प्राप्तकर अहल्या पत्थर हो गयी थी। उस समय रामका दर्शन पाते ही वह शापसे मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी ॥ ९६—९८ ॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षणभर विचार किया कि मुझे कमललोचन रामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या ले चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले मिथिलाकी ओर चल दिये ॥ ९९—१०० ॥

नानादेशादद्याता जनकस्य निवेशनम् ।
 राजपुत्रा महावीर्याः पूर्वं सीताधिकाङ्क्षिणः ॥ १०१
 तान् दृष्ट्वा पूजयित्वा तु जनकश्च यथावतः ।
 यत्सीतायाः समुत्पन्नं धनुर्भद्रं महत् ॥ १०२
 अर्चितं गन्धमालाभी रम्यशोभासमन्विते ।
 रङ्गे महति विस्तीर्णे स्थापयामास तदनुः ॥ १०३
 उवाच च नृपान् सर्वास्तदोच्चैर्जनको नृपः ।
 आकर्षणादिदं येन धनुर्भद्रं नृपात्मजाः ॥ १०४
 तस्येयं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना ।
 इत्येवं श्राविते तेन जनकेन महात्मना ॥ १०५
 क्रमादादाय ते तत् सन्वीकर्तुमयाभवन् ।
 धनुषा ताडिताः सर्वे क्रमात्तेन महीपते ॥ १०६
 विभूय पतिता राजन् विलज्जास्तत्र पार्श्विवाः ।
 तेषु भग्नेषु जनकस्तदनुस्यूय्वकं नृप ॥ १०७
 संस्थाप्य स्थितवान् वीरो रामागमनकाङ्क्षया ।
 विश्वामित्रस्ततः प्रामो मिथिलाधिपतेर्गृहम् ॥ १०८
 जनकोऽपि च तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं गृहागतम् ।
 रामलक्ष्मणसंयुक्तं शिष्यैश्चाभिगतं तदा ॥ १०९
 तं पूजयित्वा विधिवत्प्रात्रं विप्रानुयायिनम् ।
 रामं रघुपतिं चापि लावण्यादिगुणैर्वृतम् ॥ ११०
 शीलाचारगुणोपेतं लक्ष्मणं च महामतिम् ।
 पूजयित्वा यथान्यार्यं जनकः प्रीतमानसः ॥ १११
 हेमपीठे सुखासीनं शिष्यैः पूर्वापरैर्वृतम् ।
 विश्वामित्रमुवाचाद्य किं कर्तव्यं मयेति सः ॥ ११२

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः प्राह महीपतिम् ।
 एष रामो महाराज विष्णुः साक्षान्महीपतिः ॥ ११३
 रक्षार्थं विष्टपानां तु जातो दशरथात्मजः ।
 अस्मै सीतां प्रयच्छ त्वं देवकन्यामिव स्थिताम् ॥ ११४
 अस्या विवाहे राजेन्द्र धनुर्भद्रमुदीरितम् ।
 तदानय भवधनुरर्चयस्य जनाधिप ॥ ११५

इनके जानेसे पूर्व ही वहाँ सीतासे विवाह करनेकी इच्छावाले अनेक महान् पराक्रमी राजकुमार नाना देशोंसे जनकके यहाँ पधारे थे। उन सबको आया देख राजा जनकने उनका पयोधित सत्कार किया तथा जो सीताके स्पर्शकरके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषका चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय शोभासे सम्पन्न सुविस्तृत रङ्गमञ्चपर लाकर रखवाया ॥ १०१—१०३ ॥

तब राजा जनकने वहाँ पधारे हुए उन समस्त राजाओंके प्रति उच्च स्वार्से कहा—‘राजकुमारों! जिसके रीतिनेसे यह धनुष टूट जायगा, यह सर्वाङ्गसुन्दरी सीता उसीकी धर्मपत्नी हो सकती है।’ महात्मा जनकके द्वारा ऐसी बात सुनाने पर वे नरैराज क्रमशः उस धनुषको ले-लेकर पड़नेका प्रयत्न करने लगे; परंतु बारी-बारीसे उस धनुषका हाँ झटके खाकर काँसे हुए वे दूर गिर जाते थे। राजन्! इससे उन सभी भूषालोंको वहाँ बड़ी लज्जा हुई। नरेश्वर! उन सबके विराग हो जानेपर वीर राजा जनक उस शिव-धनुषको यथास्थान रखवाकर श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें वहाँ ही ठहरे रहे। इतनेमें विश्वामित्रजो मिथिलानरेशके राजभवनमें आ पहुँचे ॥ १०४—१०८ ॥

जनकने श्रीराम, लक्ष्मण तथा शिष्योंसे युक्त विश्वामित्रजोंको अपने भवनमें आया देख उस समय उनकी विधिवत् पूजा की। फिर ब्राह्मणका अनुसरण करनेवाले तथा लावण्य आदि गुणोंसे लक्षित रघुवंशनाथ बुद्धिमान् श्रीराम एवं शील-सदाचारदि गुणोंसे युक्त महामति लक्ष्मणका भी यथायोग्य पूजन करके जनकजो मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। तबछात् सोनेके सिंहासनपर मुखपूर्वक बैठकर छोटे-बड़े शिष्योंसे घिरे हुए मुनिवर विश्वामित्रसे ये बोले—‘भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये’ ॥ १०९—११२ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा जनककी यह बात सुनकर मुनिने उनसे कहा—‘महाराज! ये राजा राम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। (तीनों) लोकोंको रक्षाके लिये ये दशरथके पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; अतः देवकन्याके समान सुरोहित होनेवाली सीताका क्या तुम इन्हींके स्पर्ध कर दो। परंतु राजेन्द्र! नरधिप! तुमने सीताके विवाहमें धनुष तोड़नेकी शर्त रखी है; अतः अब उस शिवधनुषको लाकर वहाँ उसको अर्चना करो’ ॥ ११३—११५ ॥

तथेत्युक्त्वा च राजा हि भवचापं तदद्भुतम् ।
 अनेक भूभुजां भङ्गि स्थापयामास पूर्ववत् ॥ ११६
 ततो दशरथसुतो विश्वामित्रेण चोदितः ।
 तेषां मध्यात्समुत्थाय रामः कमललोचनः ॥ ११७
 प्रणम्य विप्रान् देवांश्च धनुरादाय तत्तदा ।
 सम्यं कृत्वा महाबाहुन्याघोषमकरोत्तदा ॥ ११८
 आकृष्यमाणं तु बलात्तेन भग्नं महद्भुजः ।
 सीता च मालामादाय शुभां रामस्य मूर्धनि ॥ ११९
 क्षिप्त्वा संवरयामास सर्वक्षत्रियसंनिधौ ।
 ततस्ते क्षत्रियाः क्रुद्धा राममासाद्य सर्वतः ॥ १२०
 मुमुक्षुः शरजालानि गर्जयन्तो महाबलाः ।
 तान्निरीक्ष्य ततो रामो धनुरादाय वेगवान् ॥ १२१
 न्याघोषतलघोषेण कम्पयामास तान्नुपान् ।
 चिच्छेद शरजालानि तेषां स्वास्त्रै रथांस्ततः ॥ १२२
 धनुषि च पताकाश्च रामश्चिच्छेद लीलया ।
 संहृष्ट स्वबलं सर्वं मिथिलाधिपतिस्ततः ॥ १२३
 जामातरं रणे रक्षन् पार्णिप्राहो बभूव ह ।
 लक्ष्मणश्च महावीरो विद्राव्य युधि तान्नुपान् ॥ १२४
 हस्त्यश्वाभ्यगृहे तेषां स्यन्दनानि बहूनि च ।
 बाहानानि परित्यज्य पलायनपराङ्मुपान् ॥ १२५
 तान्निहन्तुं च धावत्स पृष्ठतो लक्ष्मणस्तदा ।
 मिथिलाधिपतिस्तं च वारयामास कौशिकः ॥ १२६
 जितसेनं महावीरं रामं भ्रात्रा समन्वितम् ।
 आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम् ॥ १२७
 दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः ।
 श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः ॥ १२८
 सभार्यः ससुतः श्रीमान् हस्त्यश्वरथवाहनः ।
 मिथिलामाजगामाशु स्वबलेन समन्वितः ॥ १२९
 जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः ।
 विधिवत्कृतशुल्कां तां ददौ रामाय पार्थिव ॥ १३०
 अपराश्रय सुतास्तिस्रो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
 त्रिभ्यस्तु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवद्ददौ ॥ १३१

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजाने अनेक भूभालोंका
 मान भङ्ग करनेवाले उस अद्भुत शिवधनुषको पूर्ववत् वहाँ
 रखवाया । तत्पश्चात् कमललोचन दशरथतन्दन एव विश्वामित्रजीके
 आज्ञा देनेपर राजाओंके बीचसे उठे और ब्राह्मणों तथा
 देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष उठा लिया ।
 फिर उन महाबाहुने धनुषकी छोरी चढ़ाकर उसकी टंकार
 की । रामके द्वारा बलपूर्वक खींचे जानेसे वह महान् धनुष
 सहसा टूट गया । तब सीताजी सुन्दर माला लेकर आयीं और
 उन सम्पूर्ण क्षत्रियोंके निकट भगवान् रामके गलेमें वह माला
 डालकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिरूपसे वरण किया ।
 इससे वहाँ आये हुए सभी महाबली क्षत्रिय कुपित हो गये
 और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते
 हुए उनपर बाण बरसने लगे । उन्हें यों करते देख श्रीरामने
 भी वेगपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यक्षाकी टंकारसे उन सभी
 नरेशोंको बर्हिमत कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबको
 काट तथा रथ काट डाले । इतना ही नहीं, श्रीरामने लीलापूर्वक
 ही उनके धनुष तथा पताकाएँ भी काट डालीं । तदनन्तर
 मिथिलानरेश भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संग्राममें
 जाभाता श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये ।
 इधर, महावीर लक्ष्मणने भी युद्धमें उन राजाओंको मार
 भगाया तथा उनके हाथों, घोड़े और बहुत से रथ अपने
 अधिष्ठाते कर लिये । अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए
 उन राजाओंको मार डालनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे
 दौड़े । तब उन्हें मिथिलानरेश जनक और विश्वामित्रने मना
 कर दिया ॥ ११६—१२६ ॥

राजाओंकी सेनापर विजय पाये हुए महावीर श्रीरामको
 लक्ष्मणसहित साथ ले राजा जनकने अपने सुन्दर भवनमें
 प्रवेश किया । उसी समय उन्होंने राजा दशरथके पास
 एक दूत भेजा । दूतके मुखसे सारी बातें सुनकर राजाकी
 सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ । तब श्रीमान् राजा दशरथ अपनी
 रानियों और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़े और रथ
 आदि वाहनोंसे सम्यक् हो, सेनाके साथ तुरन्त ही मिथिलामें
 पधारे । राजन् ! जनकने भी राजा दशरथका बलीभाँति
 सत्कार किया । फिर विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी
 शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको
 रामके हाथमें दे दिया । तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन
 कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलङ्कृत
 थीं, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक ब्याह
 दिया ॥ १२७—१३१ ॥

एवं कृतविवाहोऽसी रामः कमललोचनः ।
 भ्रातृभिर्मातृभिः सार्धं पित्रा बलवता सह ॥ १३२
 दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः ।
 ततोऽयोध्यापुरीं गन्तुमुत्सुकं ससुतं नृपम् ।
 दृष्ट्वा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु ॥ १३३
 रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा
 रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि ।
 हस्त्यश्वासानपि कर्मयोग्यान्
 दासीजनांश्च प्रवराः स्त्रियश्च ॥ १३४
 सीतां सुशीलां बहुरत्नभूषितां
 रथं समारोप्य सुतां सुरुषाम् ।
 वेदादिषोषैर्बहुमङ्गलैश्च
 सम्प्रेषयामास स पार्थिवो बली ॥ १३५
 प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम् ।
 विश्वामित्रं नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तवान् ॥ १३६
 तस्य पत्न्यो महाभागाः शिक्षयित्वा सुतां तदा ।
 भर्तृभक्तिं कुरु शुभे श्रृणुणां श्रुतस्य च ॥ १३७
 श्रृणुणामर्पयित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम् ।
 ततस्तु रामं गच्छन्तमयोध्यां प्रबलान्वितम् ॥ १३८
 श्रुत्वा परशुरामो वै पन्थानं संकरोध ह ।
 तं दृष्ट्वा राजपुरुषाः सर्वे ते दीनमानसाः ॥ १३९
 आसीद्विशरदश्चापि दुःखशोकपरिप्लुतः ।
 सभार्यः सपरीवारो भार्गवस्य भयावृष ॥ १४०
 ततोऽब्रवीज्जनान् सर्वान् राजान् च सुदुःखितम् ।
 वसिष्ठश्चोर्जिततपा ब्रह्मचारी महामुनिः ॥ १४१
 वसिष्ठ उवाच
 युष्माभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्वपि ॥ १४२
 पित्रा वा मातृभिर्वापि अन्यैर्भृत्यजनैरपि ।
 अयं हि नृपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे ॥ १४३
 जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः ।
 यस्य संकीर्त्यं नामापि भवभीतिः प्रणश्यति ॥ १४४
 ब्रह्म मूर्तं स्वयं यत्र भयादेस्तत्र का कथा ।
 यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो ॥ १४५
 नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम् ।

इस प्रकार विवाह कर लेनेके पश्चात् कमललोचन श्रीराम अपने भ्राताओं, माताओं और बलवान् पिताके साथ कुछ दिनोंतक नाना प्रकारके भोजनादिसे सत्कृत हो निथिलापुरीमें रहे। फिर महाराज दशरथको अपने पुत्रोंके साथ अयोध्या जानेके लिये उत्कण्ठित देख राजा जनकने सीताके लिये बहुत-सा धन और दिव्य रत्न देकर श्रीरामके लिये अत्यन्त सुन्दर घस्र, क्रियाकुशल हाथी, घोड़े और दास दिये एवं दासोंके रूपमें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी अर्पित कीं। उन बलवान् भूपालने बहुत-से रत्नमय आभूषणोंद्वारा विभूषित सुन्दरी साखी पुत्री सीताको रथपर चढ़ाकर वेदधर्मादि तथा अन्य मातृलालिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथजी तथा विश्वामित्र [एवं वसिष्ठ] मुनिकों प्रणम करके लौट आये। तब जनकजी अति सौभाग्य-शालिनो रहियीं भी अपनी कन्याओंको यह शिक्षा देकर कि 'शुभे! तुम पतिकी भक्ति तथा मास-ससुरकी सेवा करना' उन्हें उनकी सामुआँकी सौप, नगरमें लौट आयीं ॥ १३२—१३७ ॥

कहते हैं, तदनन्तर यह सुनकर कि 'राम अपनी प्रबल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको लौट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रोक लिया। उन्हें देखकर सभी राजपुरुषोंका हृदय कातर हो गया। रोझर! परशुरामके भयसे राजा दशरथ भी अपनी स्त्री तथा परिवारके साथ दुःखी और शोकमग्न हो गये। तब उत्कृष्ट तपस्वी ब्रह्मचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे बोले ॥ १३८—१४१ ॥

वसिष्ठजीने कहा—तुम लोगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भाई अथवा अन्य भूतृजन थोड़ा-सा भी खेद न करें। नरपाल! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही इन्होंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपी भय निवृत्त हो जाता है, वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान हैं, वहाँ भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्रका भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये संक्रामक जोमारी और अकालमृत्युका भय नहीं होता ॥ १४२—१४५ ॥

इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम् ॥ १४६

त्यज त्वं रामसंज्ञां तु मया वा संगरं कुरु ।

इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम् ॥ १४७

रामसंज्ञां कुतस्त्यक्ष्ये त्वया योतस्ये स्थिरो भव ।

इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः ॥ १४८

न्याघोषमकरोद्भीरो वीरस्यैवाग्रतस्तदा ।

ततः परशुरामस्य देहात्रिष्क्रम्य वैष्णवम् ॥ १४९

पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।

दृष्ट्वा तं भार्गवो रामः प्रसन्नवदनोऽब्रवीत् ॥ १५०

राम राम महाबाहो रामस्त्वं नात्र संशयः ।

विष्णुरेव भवाद्भातो ज्ञातोऽस्यद्य मया विभो ॥ १५१

गच्छ वीर यथाकामं देवकार्यं च वै कुरु ।

दृष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ॥ १५२

याहि त्वं स्येच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम् ।

इत्युक्त्वा पूजितस्तैस्तु मुनिभावेन भार्गवः ॥ १५३

महेन्द्राद्रिं जगामाद्य तपसे धृतमानसः ।

ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ह ॥ १५४

पुरीमयोध्यां सप्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः ।

दिव्यशोभां पुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम् ॥ १५५

प्रत्युत्थाय ततः पौराः शङ्खतूर्पादिभिः स्वनैः ।

विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणोऽजितम् ॥ १५६

तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम् ।

तौ दृष्ट्वा स मुनिः प्राप्तीं रामं लक्ष्मणमन्तिके ॥ १५७

दशरथाय तत्पित्रे मानुष्यश्च विशेषतः ।

तौ समर्प्य मुनिश्रेष्ठस्तेन राज्ञा च पूजितः ।

विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तुं मनो दधे ॥ १५८

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—
“राम! तुम अपना यह ‘राम’ नाम त्याग दो, अथवा मेरे साथ युद्ध करो।” उनके यों कहनेपर रघुकुलगन्दन श्रीरामने मार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—“मेरे ‘राम’ नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध हो कौनगा, सँभल जाओ।” उनसे इस प्रकार कहकर कमललोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन बीरवरने उस समय वीर परशुरामके सामने ही धनुषकी प्रत्यक्षकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीरामके मुखमें समा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी ओर देख प्रसन्नमुख होकर कहा—“महाबाहू श्रीराम! आप ही ‘राम’ हैं, अब इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने आपको पहचाना; आप साक्षात् विष्णु ही इस रूपमें अवतारण हुए हैं। वीर! अब आप अपने इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका नाश करके साधु पुरुषोंका पालन कीजिये श्रीराम! अब आप स्वेच्छानुसार चले जाइये; मैं भी तपोवनको जाता हूँ” ॥ १४६—१५२ ॥

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके द्वारा मुनिभाषसे पूजित हुए और तपस्याके लिये मनमें निश्चय करके महेन्द्राचलको चले गये। तब समस्त बरातियों तथा महाप्राज्ञ दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरीको सब ओर दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके सङ्घ और दुन्दुभि आदि गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानोंके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे रणमें अनेक श्रीरामजीको पत्नीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमान हो गये और उनके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ १५३—१५६ ॥

तत्पश्चात् मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—
दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माताओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये उद्यत हुए।

समर्प्य रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्यमग्रे पितुरेकवाङ्मम् ।
पुनः पुनः श्राव्य हसन्महामति-
जंगाम सिद्धाश्रममेवमात्मनः ॥१५९॥

इस प्रकार महामति मुनि विश्वामित्रजीने छोटे भाई लक्ष्मण तथा भाषां सीताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिताको एकान्त प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समस्त बारम्बार उनका गुणगान करके हँसते हुए वे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको चले गये ॥ १५७—१५९ ॥

इति श्रीरामचन्द्रपुराणे वनप्रस्थाने तपःप्रकरणेऽध्यायः ४८ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रपुराणमें "वनप्रस्थाने तपःप्रकरणे" अष्टादशोऽध्यायः पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

॥ १५७—१५९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम-वनवास; राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम-भरतकी भेंट

सर्गप्रयोग उत्तरार्ध

कृतदारो महातेजा रामः कमलस्तोचनः ।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन् ॥ १
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः ।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रघुपती नृप ॥ २
भ्राता शत्रुघ्नसहितो भरतो मातुलं ययौ ।
ततो दशरथो राजा प्रसमीक्ष्य सुशोभनम् ॥ ३
युवानं बलिनं योग्यं भूषसिद्धये सुतं कविम् ।
अभिषिच्य राज्यभारं रामे संस्थाप्य वैष्णवम् ॥ ४
पदं प्राप्तुं महद्यत्नं करिष्यामीत्यविव्रतयत् ।
संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत् ॥ ५
प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालान्मन्त्रिणश्च त्वराव्रितः ।
राधाभिषेकद्रव्याणि श्रुषिप्रोक्तानि यानि वै ॥ ६
तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ ।
दूतामात्याः समादेशात्सर्वदिक्षु नराधिपान् ॥ ७
आहूय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ ।
अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ८
जनाः कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिनन्दितम् ।
पुरवासिजनानन्दं देशवासिमनःप्रियम् ॥ ९

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महतीजसवी कमलस्तोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंका आनन्द बढ़ाते हुए सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो, पिताके संतोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। नरेश्वर! जब रघुकुलनायक श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द निवास करने लगे, तब उनके भाई भरत शत्रुघ्नकी साथ लेकर अपने मामाके यहाँ चले गये। तदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अग्रिम सुन्दर, बलिष्ठ, कवयूक, विद्वान् और राजा बनाने जानेके योग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजपदपर अभिषिक्त करके राज्यका भार इन्हें सौंप दूँ और स्वयं भगवान् विष्णुके भ्रमको प्राप्त करनेके लिये महान् यत्न करूँ ॥ १—४ ॥

यह सोचकर राजा इस कार्यमें तत्पर हो गये और समस्त दिशाओंमें रहनेवाले बुद्धिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा मन्त्रियोंको तुरन्त आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामचन्द्रजीके राज्यारोहणके लिये जो-जो सामान मुनियोंने बताया है, वे सब एकत्र करके शीघ्र ही आओ। दूतों और मन्त्रियों! तुम लोग भी मेरी आज्ञासे सब दिशाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र यहाँ आ जाओ। पुरवासी जनो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रीतिसे सजाकर सर्वशोभा-सम्पन्न बना दो तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह नगर समस्त पुरवासियोंको आनन्द देनेवाला हो जाय और सम्पूर्ण देशके निवासियोंको मनोहर प्रतीत होने लगे।

रामाभिषेकं विपुलं शो भविष्यति जानघ।
 श्रुत्वेत्थं मन्त्रिणः प्राहुस्तं नृपं प्रणिपत्य च ॥ १०
 शोभनं ते मतं राजन् यदिदं परिभाषितम्।
 रामाभिषेकमस्माकं सर्वेषां च प्रियंकरम् ॥ ११
 इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरब्रवीत्।
 आनीयन्तां द्रुतं सर्वे सम्भारा मम शासनात् ॥ १२
 सर्वतः सारभूता च पुरीं चैवं सपन्ततः।
 अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम् ॥ १३
 इत्येवमुक्ता राज्ञा ते मन्त्रिणः शीघ्रकारिणः।
 तथैव चक्रुस्ते सर्वे पुनःपुनरुदीरिताः ॥ १४
 प्रातर्हर्षः स राजा च शुभं दिनमुदीक्ष्यन्।
 कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागते जनः ॥ १५
 रामाभिषेकमाकर्ण्य मुदं प्राप्यातिहर्षितः।
 शशशशुरयोः सम्यक् शश्रूषणपरा तु सा ॥ १६
 मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकर्ण्य शोभनम्।
 शोभाधिन्यभिषेके तु रामस्य विदितात्मनः ॥ १७
 दासी तु मन्थरानाप्नो कैकेय्याः कुब्जरूपिणी।
 स्वां स्वामिनीं तु कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८
 भृणु राज्ञि महाभागे वचनं मम शोभनम्।
 त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः ॥ १९
 रामोऽसौ कौसलीपुत्रः शो भविष्यति भूपतिः।
 वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे ॥ २०
 भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किञ्चन।
 भरतोऽपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति ॥ २१
 हा कष्टं मन्दभाग्यासि सापत्न्यादुःखिता भृशम्।
 सैवमाकर्ण्य कैकेयी कुब्जामिदमब्रवीत् ॥ २२
 पश्य मे दक्षतां कुब्जे अद्यैव त्वं विचक्षणो।
 यथा तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति ॥ २३

तुम सब लोग यह जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक होगा ॥ ५—११/५ ॥

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजाको प्रणाम करके उनसे कहा—‘राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, बहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सभीके लिये प्रियकारक है’ ॥ १०—११ ॥

उनके यों कहनेपर राजा पुनः उन सब लोगोंसे बोले—‘अच्छ, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी सम्मान शीघ्र लाये जायें और समस्त वसुधाकी सारभूता इस अयोध्यापुरीको भी आज ही सब ओरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपकी रचना भी परम आवश्यक है’ ॥ १२—१३ ॥

राजाके यों कहने और बार-बार प्रेरणा करनेपर उन सब शीघ्रकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। मास-ससुरकी सेवामें भलीभाँति लगी रहनेवाली सीता भी अपने पतिके लिये इस शुभ संवादकी सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १४—१५/५ ॥

आत्मतत्त्वके ज्ञाता अध्याम सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीरामका अभिषेक दूरसे ही दिन होनेवाला था। इसी बीचमें कैकेयोकी कुबड़ी दासी मन्थराने अपनी मन्थिनी कैकेयीके पास जाकर यह बात कही—‘बड़भागिनी रानी! मैं एक बहुत अच्छी बात सुनाती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दशरथ अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुभे! ये जो कौशल्या-पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। धन, वाहन और जोश आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका हो जायगा; भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाग्यकी बात; इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर— अपने मामाके घर चले गये हैं। हाय! यह सब कितने कष्टकी बात है! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुम्हें सीतकी ओरसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा’ ॥ १७—२१/५ ॥

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुब्जासे कहा—‘बुद्धिन्तु कुब्जे! तू मेरी दक्षता तो देख—आज ही मैं ऐसा यज्ञ करती हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका

रामस्य वनवासश्च तथा यत्र करोष्यहम् ।
इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उन्मुच्य स्वाङ्गभूषणम् ॥ २४

वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोधराभवत् ।
निर्माल्यपुष्पधृक्कष्टा कश्मलाङ्गी विलुपिणी ॥ २५

भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा भ्रिते ।
भूभागे शान्तदीपे सा संध्याकाले मुदुःखिता ॥ २६

ललाटे श्वेतचैलं तु बद्ध्वा सुष्वाप भामिनी ।
मन्त्रिभिः सह कार्याणि सम्मन्य सकलानि तु ॥ २७

पुण्याहः स्वस्तिमाङ्गल्यैः स्थाप्य रामं तु मण्डले ।
ऋषिभिस्तु वसिष्ठाद्यैः सार्धं सम्भारमण्डपे ॥ २८

वृद्धिजागरणीयैश्च सर्वतस्तूर्यनादिते ।
गीतनृत्यसमाकीर्णैः शङ्खकाहलनिःस्वनैः ॥ २९

स्वयं दशरथस्तत्र स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः ।
कैकेय्या वेश्मने द्वारं जरद्भिः परिरक्षितम् ॥ ३०

रामाभिषेकं कैकेयीं यत्कुसुमः स पाथिवः ।
कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारमवाग्रवीत् ॥ ३१

अन्धकारमिदं कस्मादद्य ते मन्दिरे प्रिये ।
रामाभिषेकं हर्षाय अन्वजा अपि मेनिरे ॥ ३२

गृहालंकरणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम् ।
त्वयाद्य न कृतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः ॥ ३३

ज्वालयित्वा गृहे दीपान् प्रविशेश गृहं नृपः ।
अशोभनाङ्गीं कैकेयीं स्वपत्नीं पतितां भुवि ॥ ३४

दृष्ट्वा दशरथः प्राह तस्याः प्रियमिदं त्विति ।
आश्लिष्योत्थाय तां राजा शृणु मे परमं वचः ॥ ३५

स्वमातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै ।
तस्याभिषेकं रामस्य श्वो भविष्यति शोभने ॥ ३६

हो जाय और रामका वनवास हो' ॥ २२-२३ १/२ ॥

मन्थरामें यों कहकर कैकेयीने अपने अङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर वस्त्र और फूलोंके हार भी उतार कैके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्य (पूज्यसे उतारे हुए) पुष्पोंको धारण किया, देहमें राख और धूल लपेट ली और कुरूप वेष बनाकर वह हठोरमें कष्ट और मूर्च्छाका अनुभव करने लगी। वह भामिनी ललाटे श्वेत वस्त्र बाँध, संध्याके समय दीपक बुझा, अँधेरामें ही राख और धूलसे भरे भूभागमें अत्यन्त दुःखित हो लेट गयी ॥ २४-२६ १/२ ॥

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें मन्त्रणा करके, वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-सामग्रीसे युक्त मण्डपमें बिठाया और वृद्धि (नान्दीश्राद्ध) एवं जागरण-सम्बन्धी कृत्यके लिये उपयुक्त तथा सब ओर सहज एवं सहज, कादल आदिके शब्दोंसे निनादित एवं गान और नृत्यके कार्यक्रमोंसे पूर्ण उस मण्डपमें थोड़ा देरतक स्वयं भी उठकर राजा दशरथ वहाँसे लौट आये। राजा कैकेयीसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकका शुभ समाचार सुनानेकी इच्छासे कैकेयीके भवनके दरवाजेपर पहुँचे, जहाँ वृद्ध सिपाही पहरा देते थे। कैकेयीके घरको अन्धकारयुक्त देख राजाने कहा ॥ २७-३१ ॥

'प्रिये! आज तुम्हारे मन्दिरमें अन्धकार क्यों है? आज तो इस नगरके चाण्डालोंने भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेकको आनन्दजनक माना है। सभी लोग अपने घरको सुन्दर ढंगसे सज रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया?'—यों कहकर राजाने घरमें दीप प्रज्वलित कराये; फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी धस्तीपर पड़ी सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उसे इस अवस्थामें देख राजाने उठाकर हृदयसे लगाया और उसको प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे—'प्रिये! मेरी उत्तम बात सुनो। सुन्दरि! जो तुम्हारे प्रति अपनी मातासे भी अधिक प्रेम रखते हैं, उन्हीं श्रीरामचन्द्रका कल रात्र्याभिषेक होगा' ॥ ३२-३६ ॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किञ्चिन्नोवाच सा शुभा ।
 मुञ्चन्ती दीर्घमुष्णं च रोषोच्चासं मुहुर्मुहुः ॥ ३७
 तस्थावाश्लिष्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम् ।
 किं ते कैकेयि दुःखस्य कारणं वद शोभने ॥ ३८
 वस्त्राभरणरत्नादि यद्यदिच्छसि शोभने ।
 तत्त्वं गृहीष्व निःशङ्कं भाण्डारात् सुखिनी भव ॥ ३९
 भाण्डारेण मम शुभे क्षोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति ।
 यदाभिषेकं सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने ॥ ४०
 भाण्डागारस्य मे द्वारं मया मुक्तं निर्गलम् ।
 भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४१
 बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः ।
 इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी पापलक्षणा ॥ ४२
 कुमतिनिर्घुणा दुष्टा कुब्जया शिक्षिताब्रवीत् ।
 राजानं स्वपतिं वाक्यं कूरमत्यन्तनिष्ठुरम् ॥ ४३
 रत्नादि सकलं यत्ते तन्मयैव न संशयः ।
 देवासुरमहायुद्धे प्रीत्या यन्मे वरद्वयम् ॥ ४४
 पुरा दत्तं त्वया राजस्तदिदानीं प्रयच्छ मे ।
 इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकेयीमशुभां तदा ॥ ४५
 अदत्तमप्यहं दास्ये तव नान्यस्य वा शुभे ।
 किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तव ॥ ४६
 शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपमनर्थकम् ।
 रामाभिषेकजं हर्षं भजोत्तिष्ठ सुखी भव ॥ ४७
 इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी कलहप्रिया ।
 उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो मरणकारणम् ॥ ४८
 वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो ।
 श्लोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः ॥ ४९
 द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्यादण्डके वने ।
 अभिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति ॥ ५०

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली। बारम्बार क्रोधपूर्वक केवल लम्बी-लम्बी गरम हाँसे छोड़ती रही। राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये और उस रुढ़ी हुई कैकेयीसे बोले— 'सुन्दरी कैकेयि! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है? शुभे! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन-जिन वस्तुओंका तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्कके भाण्डारघरसे ले लो; परंतु प्रसन्न हो जाओ। कल्याणि! कल जब श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, उस समय उस भाण्डारसे मेरे मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। इस समय तो मैंने भाण्डारघरका द्वार उन्मुक्त कर रखा है। श्रीरामके राज्य-शासन करते समय वह फिर पूर्ण हो जायगा। प्रिये! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्त्व और सम्मान दो' ॥ ३७—४१ १/२ ॥

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुब्जाके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीनता और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक निष्ठुर वाक्यन कहा— 'महाराज! इसमें संदेह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये' ॥ ४२—४६ १/२ ॥

यह सुनकर राजाने उस अशुभा कैकेयीसे कहा— 'शुभे! और किसीकी बात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये तो जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा। फिर जिसको देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई ही समझो। कल्याणि! अब सुन्दर वेष धारण करो और यह व्यर्थका कोप छोड़ दो। उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवमें भाग लो और सुखी हो जाओ' ॥ ४५—४७ ॥

नृपक्षेत्र दशरथके जो कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर बात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी। उसने कहा— 'प्रभो! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हैं तो (पहला वर मैं यही माँगती हूँ कि) ये कौशल्यानन्दन श्रीराम कल सबेर होते ही वनको चले जायें और आपको आज्ञासे ये बारह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अर्थात् वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा' ॥ ४८—५० ॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम् ।
 पपात भुवि निस्संज्ञो राजा सापि विभूषिता ॥ ५१
 रात्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदावती ।
 दूतं सुमन्त्रपाह्वं राम आनीयतामिति ॥ ५२
 रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।
 यागमण्डपमध्यस्थः शङ्खतूर्यरवान्वितः ॥ ५३
 तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरःस्थितः ।
 राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता ॥ ५४
 हुतमुत्तिष्ठ गच्छ त्वं यत्र तिष्ठति ते पिता ।
 इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रमुत्थाय राघवः ॥ ५५
 अनुज्ञाप्य द्विजान् प्राप्तः कैकेय्या भवनं प्रति ।
 प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्पुणा ॥ ५६
 पितुस्तव मतं वत्स इदं ते प्रखीम्यहम् ।
 वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाब्दकम् ॥ ५७
 अदीव गम्यतां वीर तपसे धृतमानसः ।
 न चिन्त्यमन्यथा वत्स आदरात् कुरु मे वचः ॥ ५८
 एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं रामः कमललोचनः ।
 तथेत्याज्ञां गृहीत्वासी नमस्कृत्य च तावुभी ॥ ५९
 निष्क्रम्य तद्गृहाग्रामो धनुरादाय वेश्मतः ।
 कौशल्यां च नमस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः ॥ ६०
 तच्छ्रुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिप्लुताः ।
 विव्यथुश्चाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोषितः ॥ ६१
 ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं रक्तलोचनम् ।
 वारयामास धर्मज्ञो धर्मवाग्भिर्महामतिः ॥ ६२
 ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणम्य मुनींश्च सः ।
 रामो रथं खिन्नसूतं प्रस्थानायारुह वै ॥ ६३
 आत्मीयं सकलं द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मजः ।
 श्रद्धया परया दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च ॥ ६४

कैकेयीके इस घोर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कैकेयीने (प्रसन्नतापूर्वक) अपने आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात बिताकर प्रातःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—'श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।' उस समय राम ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वास्तिकाचन कराकर, शङ्ख और तूर्य आदि वाद्योंका शब्द सुनते हुए मत्तमण्डपमें विराजमान थे ॥ ५१—५३ ॥

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उनके प्रणाम करके सामने खड़े हो गये और बोले—'राम! महाबाहु श्रीराम! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, जल्दी उठो और जहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।' दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही उठे और ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे ॥ ५४—५५ ॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयाहीन कैकेयीने कहा—'वत्स! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रही हूँ। महाबाहो! तुम बारह वर्षोंतक वनमें जाकर रहो। वीर! वहाँ तपस्या करनेका निश्चय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। चेटा! तुम्हें अपने मनमें कोई अन्वेषा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो' ॥ ५६—५८ ॥

कैकेयीके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमललोचन श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों—माता-पिताकी प्रणाम करके उनके भवनसे निकलकर उन्होंने अपना धनुष सँभाला। फिर कौशल्या और सुमित्राकी प्रणाम करके वे घरसे जानेकी तैयार हो गये ॥ ५९, ६० ॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरवासीजन दुःख शोकमें डूब गये और बड़ी व्यथाका अनुभव करने लगे। इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति कुपित हो उठे। परम युद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको क्रोधसे लालत आँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया। तत्पश्चात् वहाँ जो बड़े-बूढ़े उपस्थित थे, उनको तथा मुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनकी यात्राके लिये रथपर आरुढ़ हुए। उस रथका सारथि बहुत दुःखी था। उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने मासके लमरा द्रव्य और नाता प्रकारके वस्त्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ६१—६४ ॥

तिस्रः श्वश्रुः समामन्य श्वशुरं च विसंज्ञितम् ।
 मुञ्चन्तमश्रुधाराणि नेत्रयोः शोकजानि च ॥ ६५
 पश्यती सर्वतः सीता चारुरोह तथा रथम् ।
 रथमारुह्य गच्छन्तं सीतया सह राघवम् ॥ ६६
 दृष्ट्वा सुमित्रा वचनं लक्ष्मणं चाह दुःखिता ।
 रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजम् ॥ ६७
 अयोध्यामटवीं विद्धि व्रज ताभ्यां गुणाकर ।
 मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्तनक्षीराद्रदह्या ॥ ६८
 तां नत्वा चारुयानं तमारुरोह स लक्ष्मणः ।
 गच्छतो लक्ष्मणो भ्राता सीता चैव पतिव्रता ॥ ६९
 रामस्य पुष्टतो याती पुराद्धीरं महामते ।
 विधिच्छिन्नाभिषेकं तं रामं राजीवलोचनम् ॥ ७०
 अयोध्याया विनिष्क्रान्तमनुयाताः पुरोहिताः ।
 मन्त्रिणः पौरमुख्याश्च दुःखेन महतान्विताः ॥ ७१
 तं च प्राप्य हि गच्छन्तं राममूचुरिदं वचः ।
 राम राम महाबाहो गन्तुं नाहंसि शोभन ॥ ७२
 राजव्रतं निवर्तस्व विहायास्मान् ख्व गच्छसि ।
 इत्युक्तो राघवस्तैस्तु तानुवाच हृदयतः ॥ ७३
 गच्छध्वं मन्त्रिणः पीरा गच्छध्वं च पुरोधसः ।
 पित्रादेशं मया कार्यमभियास्यामि वै वनम् ॥ ७४
 द्वादशाब्दं व्रतं चैतन्नीत्वाहं दण्डके वने ।
 आगच्छामि पितुः पादं मातृणां द्रष्टुमञ्जसा ॥ ७५
 इत्युक्त्वा ताञ्जगामाथ रामः सत्यपरायणः ।
 तं गच्छन्तं पुनर्याताः पुष्टतो दुःखिता जनाः ॥ ७६
 पुनः प्राह स काकुत्स्थो गच्छध्वं नगरीमिमाम् ।
 मातृश्च पितरं चैव शत्रुजं नगरीमिमाम् ॥ ७७
 प्रजाः सप्तस्तास्तप्रस्था राज्यं भरतमेव च ।
 पालयध्वं महाभागास्तपसे याप्यहं वनम् ॥ ७८

तदनन्तर सीताजी भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा
 नेत्रोंसे शोकशुक्ली धारा बहाते हुए संहाय्य श्वशुर महाराज
 दशरथसे आता ले सब ओर देखती हुई रथपर आरुढ़
 हुई। सीताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर वनमें
 जाते देख सुमित्रा अत्यन्त दुःखित हो लक्ष्मणसे बोली—
 'मद्गुणोंकी खान देता लक्ष्मण! तुम आजसे श्रीरामको
 ही पिता दशरथ समझो, सीताको ही मेरा स्वरूप मानो
 तथा वनको ही अयोध्या जानो। उन दोनोंके साथ ही
 सेवाके लिये तुम भी जाओ' ॥ ६५—६७ ॥

येहवश जिनके स्तनोंसे दूध बहकर समस्त शरीरको
 भिगे रहा था, उन माता सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर
 लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके स्वयं भी उस सुन्दर रथपर
 जा बैठे। महामते! इस प्रकार नगरसे वनमें जाते हुए
 श्रीरामचन्द्रजीके पीछे धीरे-धीरे भ्राता लक्ष्मण तथा सुस्थिर-
 हृदया पतिव्रता सीता—दोनों ही चले ॥ ६८—६९ ॥

दुर्लभने जिनके राज्यभिषेकको बीचमें ही छिन्न
 भिन्न कर दिया था, वे क्रमलग्न श्रीराम जब अयोध्यापुरीसे
 निकले, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान
 पुरयासी भी बहुत दुःखी होकर उनके पीछे-पीछे चले
 तथा वनकी ओर जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर
 उनसे यों बोले—'राम! राम! महाबाहो! तुम्हें वनमें नहीं
 जान चाहिये। सोभाताली नरेश्वर! नगरको लौट चलो;
 हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो?' ॥ ७०—७२ ॥

उनके यों कहनेपर दृढ़प्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—
 'मन्त्रिणो! पुरवासियो! और पुरोहितगण! आप लोग
 लौट जायें। मुझे अपने पिताजीको आज्ञाका पालन करना
 है, इसलिये मैं वनमें अवश्य जाऊँगा। वहाँ दण्डकारण्यमें
 बारह वर्षोंतक वनवासके नियमको पूर्ण करनेके पश्चात्
 मैं पिता और माताओंके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके
 लिये शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा' ॥ ७३—७५ ॥

नगर-निवासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम
 आगे बढ़ गये। उन्हें जाते देख पुनः सब लोग दुःखी
 हो उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब ककुत्स्थनन्दन
 श्रीरामने फिर कहा—महाभाग्यगण! आपलोग इस
 अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मैं पिता-माताओंकी,
 भरत-शत्रुघ्नीकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त
 प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यको भी रक्षा कीजिये। मैं
 वनमें तपस्याके लिये जाता हूँ' ॥ ७६—७८ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वचनं राघवस्तदा ।
सीतामर्पय राजानं जनकं मिथिलेश्वरम् ॥ ७९

पितृमातृवशे तिष्ठ गच्छ लक्ष्मण याम्यहम् ।
इत्युक्तः प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ॥ ८०

मैवमाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८१

इत्युक्तो लक्ष्मणेनासी सीतां तामाह राघवः ।
सीते गच्छ ममादेशात् पितरं प्रति शोभने ॥ ८२

सुमित्राया गृहे चापि कौशल्यायाः सुमध्यमे ।
निवर्तस्य हि तावत्त्वं यावदागमनं मम ॥ ८३

इत्युक्ता राघवेनापि सीता प्राह कृताञ्जलिः ।
यत्र गत्वा वने वासं त्वं करोषि महाभुज ॥ ८४

तत्र गत्वा त्वया साधं वसाम्यहपरिदम ।
वियोगं नो सहे राजस्तवया सत्यवता क्वचित् ॥ ८५

अतस्त्वां प्रार्थयिष्यामि दयां कुरु मम प्रभो ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८६

नानायानैरुपगताञ्जनान् यीक्ष्य स पृष्ठतः ।
योषितां च गणान् रामो वारयामास धर्मवित् ॥ ८७

निवृत्त्य स्थायितां स्वरमयोध्यायां जनाः स्विद्यः ।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानसः ॥ ८८

कतिपयाब्दादायास्ये नान्यथा सत्यमीरितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या च स्वभार्यया ॥ ८९

जनात्रिवर्त्यं रामोऽसी जगाम च गुहाश्रमम् ।
गुहस्तु रामभक्तोऽसी स्वभावादेव वीष्णवः ॥ ९०

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह बात कही—'लक्ष्मण! तुम सीताको ले जाकर मिथिलापति राजा जनकको सौंप आओ और स्वयं पिता-माताके अधीन रहो। लौट आओ, लक्ष्मण! मैं वनकी ओकेला ही जाऊँगा।' इनके यों कहनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा लक्ष्मण कह—'प्रभो! करुणानिधान! आप मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दीजिये। आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं अवश्य चलीँगा।' लक्ष्मणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—'शोभने सोते! तुम मेरी आज्ञासे अपने पिताके यहाँ चली जाओ अथवा माता कौशल्या और सुमित्राके भवनमें जाकर रहो। सुन्दरि! तुम राघवकाके लिये वहाँ लौट आओ, जबतक कि मैं वनसे फिर यहाँ आ न जाऊँ' ॥ ७९—८३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी हाथ जोड़कर चोली—'महाबाहो! हे शत्रुदमन! आप वनमें जहाँ जाकर निवास करेंगे, वहाँ चलकर मैं भी आपके ही साथ रहूँगी। राजन्! सत्यव्रतका गालन करनेवाले आप पतिदेवका वियोग में क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकती; इसीलिये प्रभो! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया करें। प्रान-वध! आप जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ मैं भी अवश्य ही चलीँगी' ॥ ८४—८६ ॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मेरे पीछे बहुत-से पुरुष पाना प्रकारके चाहनोंपर चढ़कर आ गये हैं तथा झुंड-को-झुंड स्त्रियाँ भी आ गयी हैं, तब धर्मवेला श्रीरामने उन सबको साथ चलनेसे मना किया और कहा—'पुरुषों! और स्त्रियों! आप सब लोग लौटकर अबोध्यामें स्वच्छन्दता पूर्वक रहें। मैं तपस्याके लिये विल एकान्न करके दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। वहाँ कुछ ही वर्गोंतक रहनेके बाद मैं अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ वहाँ लौट आऊँगा, वह मैंने सखी बात बताया है। इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये' ॥ ८७—८९ ॥

इस प्रकार अबोध्यावासी लोगोंको लौटकर श्रीरामने गुहके आश्रमपर पदार्पण किया। गुह स्वभावमें ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा किं कर्तव्यमिति स्थितः ।
महता तपसाऽऽनीता गुरुणा या हि वः पुरा ॥ ९१

भगीरथेन या भूमिं सर्वपापहरा शुभा ।
नानामुनिजनैर्जुष्टा कूर्ममत्स्यसमाकुला ॥ ९२

गङ्गा तुङ्गोर्मिमालादद्या स्फटिकाभजलावहा ।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गां स महाद्युतिः ॥ ९३

उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रमं शुभम् ।
प्रयागे तु ततस्तस्मिन् स्वात्वा तीर्थं यथाविधि ॥ ९४

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया सह ।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्रान्तस्तेन पूजितः ॥ ९५

ततः प्रभाते विमले तमनुज्ञाप्य राघवः ।
भरद्वाजोक्तमार्गेण चित्रकूटं जनैर्वयी ॥ ९६

नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम् ।
तापसं वेषमास्थाय जहुकन्यामतीत्य वै ॥ ९७

गते रामे सभायै तु सह भ्रात्रा ससारथी ।
अयोध्यामवसन् भूप नष्टशोभां सुदुःखिताः ॥ ९८

नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमप्रियम् ।
रामप्रयासजननं कैकेय्या मुखनिम्सृतम् ॥ ९९

लब्धसंज्ञः क्षणाश्रया रामरामेति चुक्रुशे ।
कैकेय्युवाच भूपालं भरतं चाभिषेचय ॥ १००

सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामचन्द्रो वनं गतः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा ॥ १०१

विहाय देहं दुःखेन देवलोकं गतस्तदा ।
ततस्तस्य महापुत्र्यामयोध्यायामरिदम् ॥ १०२

रुरुदुर्दुःखशोकार्ता जनाः सर्वे च योषितः ।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी ॥ १०३

भगवान् रामको देखते ही वह उनके सामने हाथ जोड़कर
छड़ा हो गया और बोला—'भगवन्! मैं क्या सेवा
करूँ' ॥ ९० १/२ ॥

[यों कहकर गुहने सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका
सादर पूजन एवं सात्कार किया। इसके बाद सबेरे सारा
और रणको लौटाकर वे गङ्गातीरे तक पहुँच गये और पुनः
बहने लगे—] राजन्! जिनमें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ
पूर्वकालमें बड़ी तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो
समस्त पापहारिणी और कल्याणकारिणी हैं, अनेकानेक
मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कूर्म और मत्स्य
अदि जल-जन्तु भरे रहते हैं, जो ऊँची-ऊँची लहरोंसे
सम्पन्न एवं स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल बहानेवाली
हैं, उन पुण्यसलिला गङ्गाजीको गुहके द्वारा लायी हुई
नापसे पार करके महान् कानिमान् भगवान् श्रीराम
भरद्वाज मुनिके शुभ आश्रमपर गये ॥ ९१—९३ १/२ ॥

वह आश्रम प्रयागमें था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा
भाई लक्ष्मणके साथ उस प्रयागतोर्थमें विधिवत् स्नान
करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे सम्मान
प्राप्तकर रात्रिमें निवास किया। फिर निमल प्रभातकाल
होनेपर श्रीराम तपस्वीवेष धारणकर, भरद्वाज मुनिसे
आज्ञा ले, उन्होंने बताया हुए मार्गसे गङ्गाके पार हो,
धीरे-धीरे नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आच्छन्न
परम उत्तम पावन तीर्थ चित्रकूटको गये ॥ ९४—९७ ॥

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और सारथिके सहित
रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासियोंमें बहुत दुःखी
होकर शोभाशून्य अयोध्यानगरीमें रहने लगे। राजा दशरथ
तो कैकेयीके मुखसे निर्गत श्रीरामको वनवास देनेवाले
अप्रिय वचनको सुनते ही मूर्च्छित हो गये थे। कुछ देर
बाद जब राजाको होश हुआ, तब ये उलझकरसे 'राम!
राम!' पुकारने लगे। तब कैकेयीने भूपालसे कहा—'राम
तो सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये; अब आप
भरतका राज्याभिषेक कीजिये।' यह सुनते ही राजा
दशरथ पुत्रशोकसे संतप्त हो, दुःखके मारे शरीर त्यागकर
देवलोकको चले गये ॥ ९८—१०१ १/२ ॥

अनुदमन! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले
सभी स्त्री-पुरुष दुःख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने
लगे। कौशल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी कैकेयी भी

परिवार्य मृतं तत्र रुरुदुस्ताः पतिं ततः ।
ततः पुरोहितस्तत्र वसिष्ठः सर्वधर्मवित् ॥ १०४

तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य मृतं राजकलेवरम् ।
दूतं वै प्रेषयामास सहप्रन्विगणैः स्थितः ॥ १०५

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः ।
तत्र प्राप्य तथा वार्तां संनिवर्त्य नृपात्मजी ॥ १०६

तावानीय ततः शीघ्रमयोध्यां पुनरागतः ।
कूराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च वै पथि ॥ १०७

विपरीतं त्वयोध्यायामिति मेने स पार्थिवः ।
निश्शोभां निर्गतश्रीकां दुःखशोकान्वितां पुरीम् ॥ १०८

कैकेय्याग्निविनिर्दग्धामयोध्यां प्रविवेश सः ।
दुःखान्विता जनाः सर्वे तौ दृष्ट्वा रुरुदुर्भुशम् ॥ १०९

हा तात राम हा सीते लक्ष्मणेति पुनः पुनः ।
रुरोद भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः ॥ ११०

कैकेय्यास्तत्क्षणाच्छ्रुत्वा चुक्रोध भरतस्तदा ।
दुष्टा त्वं दुष्टचित्ता च यया रामः प्रवासितः ॥ १११

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया वनम् ।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽप्यभाग्यया ॥ ११२

उद्वास्य सीतया रामं लक्ष्मणेन महात्मना ।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव ॥ ११३

दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः ।
भ्रात्रा रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै ॥ ११४

यत्र रामो नरव्याघ्रः पद्मपत्रायतेक्षणः ।
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् बन्धुवत्सलः ॥ ११५

सीता च यत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी ।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ११६

अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं ॥ १०२-१०३ १/२ ॥

तब सब धर्मोंको जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजाके मृत शरीरको तैलसे भरी हुई नौकामें रखवाकर, मन्त्रिगणोंके साथ विचार करके भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा। वह दूत जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उतना ही संदेश सुनाकर, उन दोनों राजकुमारोंको यहाँसे लौटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें लौट आया। राजा भरत मार्गमें घोर अपशकुन देख मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है।' फिर जो कैकेयोरूपी अग्निसे दग्ध होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-शोकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्यापुरीमें भरतजीने प्रवेश किया। उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुःखी हो 'हा तात! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार कागम्बार पुकारते हुए बहुत तिलाप करने लगे। यह देख भरत और शत्रुघ्न भी दुःखी होकर रोने लगे ॥ १०४-११० ॥

उस समय कैकेयोंके मुखसे तत्काल सारा खतान सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और बोले—'अरी! तू तो बड़ा दुष्ट है। तैरे चित्तमें दुष्टतापूर्ण विचार भर हुआ है। हाय! जिसने श्रीरामको वनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ श्रीरामनाथजीको वनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्ट कौन स्त्री होगी? अरी दुष्टे! ओ मन्दभागियो! तूने तत्काल ऐसा दुस्साहस कैसे किया? तूने सोचा होगा कि महात्मा लक्ष्मण और साध्वी सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराजा दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना दंगे। (धिक्कार है तेरी इस कुबुद्धिको!) आह! मैं कितना भाग्यहीन हूँ, जो तुझ-जैसी अभागिनी दुष्ट स्त्रीका पुत्र हुआ। किंतु तू निश्चय जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा। जहाँ मनुष्योंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर स्नेह रखनेवाले पूज्य भ्राता कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और व्रतका आचरण करनेवाले, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी पतिव्रता विदेहराजकुमारी सीताजी विद्यमान हैं

लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भ्रातृवत्सलः ।
 तत्र यास्यामि कैकेयि महत्यापं त्वया कृतम् ॥ ११७
 राम एव मम भ्राता ज्येष्ठो मतिमतां वरः ।
 स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा ॥ ११८
 इत्युक्त्वा मातरं तत्र रुरोद भृशदुःखितः ।
 हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम् ॥ ११९
 क्व गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह तद्वद ।
 भ्राता पित्रा समः क्वास्ते ज्येष्ठे मे करुणाकरः ॥ १२०
 सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह ।
 इत्येवं विलपन्तं तं भरतं मन्त्रिभिः सह ॥ १२१
 वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागयित् ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स त्वं न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ १२२
 कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थितः ।
 तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन ॥ १२३
 रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च ।
 अवतीर्णो जगत्स्यामी स्वांशेन भुवि माधवः ॥ १२४
 प्रायस्तत्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च ।
 यत्रामी भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः ॥ १२५
 तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कमललोचनः ।
 इत्युक्तो भरतस्तेन वसिष्ठेन महात्मना ॥ १२६
 संस्कारं लब्धयामास विधिदुष्टेन कर्मणा ।
 अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः ॥ १२७
 स्नात्वा सरस्वाः सलिले कृत्वा तस्योदकक्रियाम् ।
 शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवैः सह ॥ १२८
 तस्यैर्ध्वदेहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः ।
 हस्त्यश्वरथपत्नीभिः सह प्रायान्महामतिः ॥ १२९

और जहाँ भाईमें भक्ति रखनेवाले, सद्गुणसम्पन्न, महान् पराक्रमी लक्ष्मणजी गये हैं, वहाँ मैं भी जाऊँगा। कैकेयि! तुने रामकी वनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टहृदये! बुद्धिमानोंमें ज्येष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो सदा उनका दास हूँ ॥ ११९—११८ ॥

मातासे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुःखी हो, वहाँ फूट फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—'हा राजन्! हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मुझ अत्यन्त दुःखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं अब वहाँ क्या करूँ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया?' ॥ ११९—१२० ॥

भरतको इस प्रकार विलाप करते देख काल और कर्मके विभागकी जाननेवाले भगवान् वसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा! उठो, उठो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र। काल और कर्मके वशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गवासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येष्टिसंस्कार आदि कर्म करो। भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण हैं। वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुगुणोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशमें इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। वनमें श्रीराम और लक्ष्मणके झगड़-से क्लेश होनेवाले हैं। वहाँ वीरवर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर रहेंगे और उन्हें पूर्ण करके वहाँ लौट आयेंगे ॥ १२१—१२५ ॥

उन महात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने तात्प्रोक्त विधिसे अनुसार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार किया। उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शवका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरयूके जलमें स्नान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य चम्बुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलकी अञ्जलि दी ॥ १२६—१२८ ॥

इस प्रकार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिपति साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा चम्बुजनोंको भी साथ

भरतो राममन्वेष्टं राममार्गेण सत्तमः ।
तमायान्तं महासैनं रामस्यानुविरोधिनम् ॥ १३०

मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा ।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा संनद्धः कवची रथी ॥ १३१

महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि ॥ १३२

सध्रातुकं सभार्य मे रामं स्वामिनमुत्तमम् ।
प्रापयस्त्वं वनं द्रष्टुं साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि ॥ १३३

गमिष्यसि दुरात्मस्त्वं सेनया सह दुर्मते ।
इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दनः ॥ १३४

तमुवाच विनीतात्मा रामायाश्च कृताञ्जलिः ।
यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान् ॥ १३५

प्रोक्षिते मयि कैकेय्या कृतमेतन्महामते ।
रामस्यानयनार्थाय व्रजाम्यद्य महामते ॥ १३६

सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह ।
इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारितः ॥ १३७

नीकावृन्दैरनेकैस्तु स्वात्वासी जाह्नवीजले ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम् ॥ १३८

प्रणम्य शिरसा तस्मै यथावृत्तमुवाच ह ।
भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृशम् ॥ १३९

दुःखं न तावत् कर्तव्यं रामार्थेऽपि त्वयाधुना ।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः ॥ १४०

त्वयि तत्र गते वापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति ।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसौ वक्ति तत्कुरु ॥ १४१

रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे स्थितः शुभे ।
लक्ष्मणस्तु महावीर्यो दुष्टालोकनतत्परः ॥ १४२

ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न) को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर रामभक्त गुहने दुष्टके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाका छड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ़ हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया। उसने कहा—'दुष्ट! दुरात्मन्! दुर्युद्धे! तुने भैंरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्नीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ वहाँ जा रहे हो?' ॥ १२९—१३३ ॥

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यमें हाथ जोड़कर विनयपूर्वक लेकर उससे बोले—'गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नगरसे बाहर (मामाके घर) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लीट लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर यहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो' ॥ १३४—१३६ ॥

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातट-पर ले आया और झुंड की झुंड नौकाएँ मँगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके उन्होंने उनसे अपना यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १३७—१३८ ॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—'भरत! कालके हो प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। यहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे; तथापि तुम यहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर वनखण्डोंमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं' ॥ १३९—१४२ ॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता ।
 उत्तीर्य यमुनां यातश्चित्रकूटं महानगम् ॥ १४३
 स्थितोऽसी दृष्टवान्दुरात्मधूलीं चोत्तरां दिशम् ।
 रामाय कथयित्वाऽऽस तदादेशान् लक्ष्मणः ॥ १४४
 वृक्षमारुह्य मेधावी वीक्षमाणः प्रयत्नतः ।
 स ततो दृष्टवान् हृष्टामायान्तीं महतीं जम्बूम् ॥ १४५
 हस्त्यश्वरथसंयुक्तां दृष्ट्वा राममद्यावधीत् ।
 हे भ्रातस्त्वं महाबाहो सीतापार्श्वे स्थितो भव ॥ १४६
 भूपोऽस्ति बलवान् कश्चिद्धस्त्यश्वरथपतिभिः ।
 इत्याकर्ण्य यच्चस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ १४७
 रामस्तमश्चबोद्धीरो वीरं सत्यपराक्रमः ।
 प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुम्व्याति लक्ष्मण ॥ १४८
 इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः ।
 आरात्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः ॥ १४९
 ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सार्धं रुद्रप्रागत्य पादयोः ।
 रामस्य निपपाताद्य वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥ १५०
 मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्निग्धबन्धुसुहृजनाः ।
 परिवार्यं ततो रामं रुरुदुः शोककातराः ॥ १५१
 स्वयान्तिं पितरं ज्ञात्वा ततो रामो महामतिः ।
 लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्याथ समन्वितः ॥ १५२
 स्नात्वा मलापहे तीर्थे दत्त्वा च सलिलाञ्जलिम् ।
 मात्रादीन्भवाद्याथ रामो दुःस्वसमन्वितः ॥ १५३
 उवाच भरतं राजन् दुःखेन महतान्वितम् ।
 अयोध्यां गच्छ भरत इतः शीघ्रं महामते ॥ १५४
 राज्ञा विहीनां नगरिं अनाथां परिपालय ।
 इत्युक्तो भरतः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥ १५५
 त्वामृते पुरुषव्याघ्र न यास्येऽहमितो ध्रुवम् ।
 यत्र त्वं तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा ॥ १५६

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना
 पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े
 हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशामें भूल उड़ती
 देल श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे
 वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर
 देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती
 दिखायी दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी।
 हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर
 लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—'धैर्य! तुम सीताके पास
 स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा
 हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी
 सेनाके साथ आ रहा है' ॥ १४३—१४६/१ ॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर सत्यपराक्रमी
 योगेश्वर श्रीराम अपने उस वीर भ्रातासे बोले—'लक्ष्मण!
 मुझे तो प्रायः यही जान पड़ता है कि भरत ही हम लोगोंसे
 मिलनेके लिये आ रहे हैं।' विदितात्मा भगवान् श्रीराम
 जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी
 वहाँ पहुँचे और सेनाको कुछ दूरीपर उतराकर स्वयं ब्राह्मणों
 और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सौदा और लक्ष्मणसहित
 भगवान् श्रीरामके चरणोंपर छेते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री,
 माताएँ, स्नेही बन्धु तथा मित्रगण श्रीरामको चारों ओरसे
 घेरकर शोकमग्न हो रोने लगे ॥ १४७—१५१ ॥

तदनन्तर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गगामी
 होनेका समाचार पाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकोंके
 साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाञ्जलि
 दी। राजन्! फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके
 रामचन्द्रजी दुःखी हो अत्यन्त खेदमें पड़े हुए भरतसे
 बोले—'महामते भरत! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको
 चले जाओ और राजासे होन हुई उस अनाथ नगरीका
 पालन करो।' उनके यों कहनेपर भरतने
 कमललोचन रामसे कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! यह निश्चय है
 कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊँगा।
 जहाँ आप जाएँगे, वहाँ सोता-लक्ष्मणकी भीति मैं भी
 चलूँगा' ॥ १५२—१५६ ॥

इत्याकर्ण्य पुनः ग्राह भरतं पुरतः स्थितम् ।
 नृणां पितृसमो ज्येष्ठः स्वधर्ममनुवर्तिनाम् ॥ १५७
 यथा न लङ्घ्यं वचनं मया पितृमुखेरितम् ।
 तथा त्वया न लङ्घ्यं स्याद्वचनं मम सत्तम ॥ १५८
 मत्समीपादितो गत्वा प्रजास्त्वं परिपालय ।
 द्वादशाब्दिकमेतन्मे व्रतं पितृमुखेरितम् ॥ १५९
 तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽनतिकम् ।
 गच्छ तिष्ठ ममादेशे न दुःखं कर्तुमर्हसि ॥ १६०
 इत्युक्तो भरतः ग्राह बाष्पपर्याकुलेश्वरः ।
 यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा ॥ १६१
 तवादेशान्मया कार्यं देहि त्वं पादुके मम ।
 नन्दिग्रामे वसिष्येऽहं पादुके द्वादशाब्दिकम् ॥ १६२
 त्वद्वेषमेव मद्वेषं त्वद्व्रतं मे महाव्रतम् ।
 त्वं द्वादशाब्दिकादूर्ध्वं यदि नायासि सत्तम ॥ १६३
 ततो हविर्यथा चाग्नीं प्रधक्ष्यामि कलेवरम् ।
 इत्येवं शपथं कृत्वा भरतो हि सुदुःखितः ॥ १६४
 बहु प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ।
 पादुके शिरसा स्थाप्य भरतः प्रस्थितः शनैः ॥ १६५
 स कुर्वन् भ्रातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी ।
 तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः ॥ १६६
 जटाकलापं शिरसा च विभ्रत्
 त्वचश्च वाक्शीः किल वन्यभोजी ।
 रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
 अभार भूभारमनिन्दितात्मा ॥ १६७

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुनः कहा—'साधुश्रेष्ठ भरत! अपने धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान पूज्य है। जिस प्रकार मुझे पिताके मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तुम्हें भी मेरे वचनोंके उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर प्रजाजनका पालन करो। पिताके मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका वनमें पालन करके मैं पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ; तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये' ॥ १५७—१६० ॥

उनके यों कहनेपर भरतने औंछोंमें औंसू भरकर कहा—'पैया! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं। अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करूँगा; किंतु आप अपने दोनों चरणपादुकाएँ मुझे दें। मैं इन्हीं पादुकाओंका आश्रय ले नन्दिग्राममें निवास करूँगा और आपकी ही भाँति ब्राह्मणोंके व्रतका पालन करूँगा। अब आपके वेषके समान ही मेरा वेष होगा और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा। साधुशिरमणे! यदि आप बारह वर्षोंके व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पधारेंगे तो मैं अग्निमें हविष्यकी भाँति अपने शरीरको होम दूँगा।' अत्यन्त दुःखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामको अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरणपादुकाएँ अपने सिरपर रखकर वे वहाँसे धीरे-धीरे चल दिये ॥ १६१—१६५ ॥

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और मूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए, तपोनिष्ठ हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे। विनुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने सिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें बल्कल पहने, वन्य फलोंका ही आहार करते थे। वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें ब्रह्मा रखनेके कारण अपने ऊपर पड़े पृथ्वीके शासनका भार ढोने लगे ॥ १६६—१६७ ॥

इति श्रीमहाभारतवने श्रीरामचन्द्रजीके अष्टमस्कन्धोऽध्यायः ४८ ॥

इस प्रकार श्रीनन्दिग्राममें श्रीरामचन्द्रजीके अष्टमस्कन्धोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवां अध्याय

श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभह्न, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना;
शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुबध और शबरीको दर्शन देना

मार्कण्डेय उवाच

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भार्यया सीतया सह ॥ १
शाकमूलफलाहारो विचचार महाबने ।
कदाचिन्नक्षत्रमणमृते रामदेवः प्रतापवान् ॥ २
चित्रकूटवनोद्देशे वैदेह्युत्सङ्गमाश्रितः ।
सुष्याप स मुहूर्तं तु ततः काको दुरात्मवान् ॥ ३
सीताभिमुखमध्येत्य विददार स्तनान्ताम् ।
विदार्य वृक्षमारुह्य स्थितोऽसीं वायसाधमः ॥ ४
ततः प्रबुद्धो रामोऽसीं दृष्ट्वा रक्तं स्तनान्तरे ।
शोकाविष्टां तु सीतां तामुवाच कमलेश्वरः ॥ ५
यद् स्तनान्तरे भद्रे तव रक्तस्य कारणम् ।
इत्युक्त्वा सा च तं प्राह भर्तारं विनयान्विता ॥ ६
पश्य राजेन्द्र वृक्षाग्रे वायसं दुष्टचेष्टितम् ।
अनेनैव कृतं कर्म सुमे त्वयि महामते ॥ ७
रापोऽपि दृष्टवान् काकं तस्मिन् क्रोधमध्याकरोत् ।
इषीकास्त्रं समाधाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८
काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्भवान्वितः ।
स त्विन्द्रस्य सुतो राजत्रिन्द्रलोकं विवेश ह ॥ ९
रामास्त्रं प्रखलहीनं तस्यानु प्रविवेश वै ।
विदितायंश्च देवेन्द्रो देवैः सह सम्पन्नितः ॥ १०
निष्क्रामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम् ।
ततोऽसीं सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्बहिः कृतः ॥ ११
पुनः सोऽप्यपतद्रामं राजानं शरणां गतः ।
पाहि राम महाबाहो अज्ञानादपकारिणम् ॥ १२

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भरतजीके अयोध्या लौट जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस महान् वनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतापे भगवान् राम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकूट पर्वतके वनमें सीताजीकी गोदमें कुछ देरतक सोये रहे। इतनेमें ही एक दुष्ट कौएने सीताके सम्मुख आ उनके स्तनोंके बीच-बीच मारकर घाव कर दिया। घाव करके यह अधम काक वृक्षपर जा बैठा ॥ १—४ ॥

तदनन्तर जब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीको नौद खुली, तब उन्होंने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त बह रहा है और वे शोकमें डूबी हुई हैं। यह देख उन्होंने सीतासे पूछा—‘कल्याणि! बलाओं, दुष्टों स्तनोंके बीचसे रक्त बहनेका क्या कारण है?’ उनके यह कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे विनयपूर्वक कहा—‘राजेन्द्र! महामते! वृक्षको शाखापर बैठे हुए इस दुष्ट कौएको देखिये; आपके सो जानेपर इसने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य किया है’ ॥ ५—७ ॥

रामचन्द्रजीने भी उस कौएको देखा और उसपर बहुत ही क्रोध किया। फिर सीकका बाण बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उस कौएको लक्ष्य करके चला दिया। यह देख यह भयभीत होकर भागा। राजन्! कहते हैं, यह काक वास्तवमें इन्द्रका पुत्र जयन्त था, अतः भागकर इन्द्रलोकमें घुस गया। उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रखलित एवं दीर्घायुमान बाणने भी उसका पीछा करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया। यह सब वृत्तान्त जान, देवराज इन्द्रे देवताओंके साथ मिलकर विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको वहाँसे निकाल दिया। जब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब यह पुनः राजा श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आया और बोला—‘महाबाहो श्रीराम! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये’ ॥ ८—१२ ॥

इति ब्रुवन्तं तं ग्राह रामः कमललोचनः।
अमोघं च ममैवास्त्रमङ्गमेकं प्रयच्छ वै॥ १३

ततो जीवसि दुष्ट त्वमपकारो महान् कृतः।
इत्युक्तोऽसी स्वकं नेत्रमेकमस्त्राय दत्तवान्॥ १४

अस्त्रं तत्रेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समापयी।
ततः प्रभृति काकानां सर्वेषामेकनेत्रता॥ १५

चक्षुर्वेकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव।
उपित्वा तत्र सुचिरं चित्रकूटे स राघवः॥ १६

जगाम दण्डकारण्यं नानामुनिनिषेधितम्।
सभानृकः सभार्यश्च तापसं वेधमास्थितः॥ १७

धनुःपर्वसुपाणिश्च सेषुधिश्च महाबलः।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्बुभक्षाम्हामुनीन्॥ १८

अश्मकुट्टाननेकाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
पञ्चाग्रिमध्यगानन्यानन्यानुप्रतपश्चरान्॥ १९

तान् दृष्ट्वा प्रणिपत्योच्चै रामस्तेश्चाभिनन्दितः।
ततोऽखिलं वनं दृष्ट्वा रामः साक्षाज्जनार्दनः॥ २०

भ्रातृभार्यासहायश्च सम्प्रतस्थे महामतिः।
दर्शयित्वा तु सीतायै वनं कुसुमितं शुभम्॥ २१

नानाश्चर्यसमायुक्तं शनैर्गच्छन् स दृष्टवान्।
कृष्णाङ्गं रक्तनेत्रं तु स्थूलशीलसमानकम्॥ २२

शुभदंष्ट्रं महाबाहुं संध्याघनशिरोरुहम्।
मेघस्वनं सापराधं शरं संधाय राघवः॥ २३

विष्याथ राक्षसं क्रोधाद्भक्ष्मणेन सह प्रभुः।
अन्यैरवध्यं हत्वा तं गिरिगते महातनुम्॥ २४

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमललोचन श्रीरामने कहा—'और दुष्ट! मेरा अस्त्र अमोघ है, अतः इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दे; तभी तू जीवित रह सकता है; क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है।' उनके यों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया। उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया। उसी समयसे सभी को एक नेत्रवाले हो गये। राजन्! इसी कारण ये एक आँखसे ही देखते हैं॥ १३—१५ १/२॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई और पत्नीके साथ चित्रकूटपर चित्रकूटपर निवास करनेके अनन्तर यहाँसे अनेक मुनिजनोंद्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये। उस समय ये तपस्वी वेधमें थे, उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा पीठपर तरकस बैठा था। यहाँ जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस वनमें रहनेवाले बड़े-बड़े मुनियोंका दर्शन किया, जिनमेंसे कई लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे। कितने ही दन्तहीन होनेसे पत्थरपर कूट पीसकर आहार ग्रहण करते, इसलिए वे 'अश्मकुट्ट' कहलाते थे। कुछ तपस्वी दंतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले होनेसे 'दन्तोलूखली' कहे जाते थे। कुछ चौबे अग्रियोंके बीचमें बैठकर तप करते थे और कुछ महात्मा इससे भी उग्र तपस्यामें तत्पर थे। उनका दर्शन करके श्रीरामने उन्हें साक्षात् प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया॥ १६—१९ १/२॥

तपश्शालु साक्षात् विष्णुस्वरूप महामति भगवान् श्रीराम तहाँके समस्त वनका अवलोकन करके अपनी भार्या और भाईके साथ आगे बढ़े। वे सीताजीकी फूलोंसे सुशोभित तथा नाना आभरणोंसे युक्त सुन्दर वन दिखाते हुए जिस समय भीरि-भीरि जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरीर काला और नेत्र लाल थे। वह पर्वतके समान स्थूल था। उसकी दाहिं चमकीली, भुजार्ध बड़ी-बड़ी और केश संध्याकालिक मेघके समान लाल थे। वह घनघोर गर्जना करता हुआ सदा दूसरोंका अपकार किया करता था। उसे देखते ही लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर राक्षसको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, बाँधकर मार डाला। इस प्रकार उसका बंध करके उन्होंने उस महाकाय राक्षसको लाशको पर्वतके खड्डमें डाल दिया

शिलाभिश्छाद्य गतवाञ्छरभङ्गाश्रमं ततः ।
 तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्टमानसः ॥ २५
 तीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्ट्वांस्तं महामुनिम् ।
 तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्यं ददर्श ह ॥ २६
 खड्गं तु विमलं तस्मादवाप रघुनन्दनः ।
 इषुधिं चाक्षयशरं चापं चैव तु वैष्णवम् ॥ २७
 ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातृभार्यासमन्वितः ।
 गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः ॥ २८
 ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम् ।
 नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृध्रनायकः ॥ २९
 रामोऽपि तत्र तं दृष्ट्वा आत्मयुतं विशेषतः ।
 कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते ॥ ३०
 इत्युक्तोऽसौ जटायुस्तु राममालिङ्ग्य सादरम् ।
 कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह वनान्तरम् ॥ ३१
 अहं रक्षामि ते भार्यां स्वीयतामत्र शोभन ।
 इत्युक्त्वा गतवात्रामं गृध्रराजः स्वमाश्रमम् ॥ ३२
 समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेविते ।
 वसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम् ॥ ३३
 मन्मथाकारसदृशं कथयन्तं महाकथाः ।
 कृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम् ॥ ३४
 मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्रावणानुजा ।
 गायन्ती सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी ॥ ३५
 ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह ।
 अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा ॥ ३६
 निशङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत ।
 भज मां कान्त कल्याणीं भजन्तीं कामिनीमिह ॥ ३७

और शिलाओंसे टैंककर वे वहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये। वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देरतक विश्रम किया और उनके साथ कथा-वार्ता करके वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ २०—२५ ॥

वहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने ठीक महर्षिका दर्शन किया और कहते हैं, उन्हींके बताये हुए मार्गसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले। वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खड्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रखा हुआ थाण कभी समाप्त न हो—ऐसा तरकस भी उपलब्ध किया। तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे। वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृध्रराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये। उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा वृत्तान्त विशेषरूपसे जनाया और कहा—'महामते! तुम सीताकी रक्षा करते रहो' ॥ २६—३० ॥

श्रीरामके यों कहनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—'श्रीराम! जब कभी कार्यवश अपने भाई लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे वनमें चले जावें, उस समय मैं ही आपकी भार्याकी रक्षा करूँगा; अतः सुन्दर। आप विश्रित होकर यहाँ रहिये।' श्रीरामसे यों कहकर गृध्रराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंद्वारा सेवित था ॥ ३१—३२ ॥

एक बार यह सुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारकी महत्त्वपूर्ण कथाएँ कहते हुए अपने भाई सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे हैं, रावणकी छोटी बहिन राक्षसी शूर्पणखा मन-ही-मन कामसे पीड़ित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे युक्त मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई धीरे-धीरे वहाँ आयी। उसने वनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा। तब मायामय सुन्दर रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निडर होकर श्रीरामसे कहा—'प्रियतम! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ। आप मुझ सेविकाको स्वीकार करें।

भजमानां त्यजेद्यस्तु तस्य दोषो महान् भवेत् ।
 इत्युक्तः शूर्पणखया रामस्तामाह पार्श्विकः ॥ ३८
 कलत्रवानहं बाले कनौयांसं भजस्व मे ।
 इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कामरूपिणी ॥ ३९
 अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि राघव ।
 त्यक्त्वनामनभिज्ञां त्वं सीतां मां भज शोभनाम् ॥ ४०
 इत्याकर्ण्य वचः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः ।
 परस्त्रियं न गच्छेऽहं त्वमितो गच्छ लक्ष्मणम् ॥ ४१
 तस्य नात्र खने भार्या त्वामसौ संग्रहीष्यति ।
 इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥ ४२
 यथा स्यान्नक्ष्मणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम् ।
 तथैवमुक्त्वा मतिमान् रामः कमललोचनः ॥ ४३
 छिन्ध्यस्या नासिकामिति मोक्तव्या नात्र संशयः ।
 इति रामो महाराजो लिख्य पत्रं प्रदत्तवान् ॥ ४४
 सा गृहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता ।
 गत्वा दत्तवती तद्गच्छ्मणाय महात्मने ॥ ४५
 तां दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह राक्षसीं कामरूपिणीम् ।
 न लङ्घ्यं राघववचो मया तिष्ठात्यकम्पले ॥ ४६
 तां प्रगृह्य ततः खड्गमुद्यम्य विमलं मुधीः ।
 तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४७
 छिन्ननासा ततः सा तु रुरोद भृशदुःखिता ।
 हा दशास्य मम धातः सर्वदेवविमर्दक ॥ ४८
 हा कष्टं कुम्भकर्णाद्यायाता मे चापदा परा ।
 हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषण महामते ॥ ४९
 इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणी ।
 त्रिशिरसं च सा दृष्ट्वा निवेद्यात्मपराभवम् ॥ ५०

जो पुरुष मेवामें उपस्थित हुई रमणोंका त्याग करता है,
 उसे बड़ा दोष लगता है ॥ ३३—३७ ॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीने
 उससे कहा—'बाले! मेरे तो स्त्री हैं। तुम मेरे छोटे भाईके
 पास जाओ।' उनकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण
 करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रति-कर्ममें
 बहुत निपुण हूँ और यह सोता अनभिज्ञ है; अतः इसे
 त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करें' ॥ ३८—४० ॥

उसको यह बात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—
 'मैं परावै स्त्रीके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता। तुम
 यहाँसे लक्ष्मणके निकट जाओ। वहाँ तनमें उसकी स्त्री
 नहीं है; अतः तापद वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके
 यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—
 'अच्छ, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण
 मेरा भर्ता (भरण-पोषणका भार लेनेवाला) हो सके।' तब
 बुद्धिमान् कमलनयन महाराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा'
 कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा
 था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो; निस्संदेह ऐसा
 ही करना। यों ही न छोड़ना' ॥ ४१—४४ ॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँमें गयी।
 जाकर उसने महाराज लक्ष्मणको उसी रूपमें वह पत्र
 दे दिया। उस कामरूपिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने
 उससे कहा—'कलत्रिणी! ठहर, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी
 आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर बुद्धिमान्
 लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक घमचपाटी हुई
 तलवार उठाकर तिलवृक्षके काण्ड (चोखो)-के समान
 उसकी नाक और कान काट लिये ॥ ४५—४७ ॥

नाक काट जानेपर वह बहुत दुःखी हो रोने तथा
 विलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका मान-
 मर्दन करनेवाले मेरे भाई राघव। आज मुझपर महान्
 कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी
 विपत्ति आ पड़ी। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे
 महान् दुःख देखना पड़ा' ॥ ४८—४९ ॥

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह
 खर-दूषण और त्रिशिराके पास गयी तथा उनसे
 अपने अपमानकी बात निवेदन करके बोली—

राममाह जनस्थाने भ्रात्रा सह महाबलम् ।
 ज्ञात्वा ते राघवं क्रुद्धाः प्रेषयामासुर्कृतान् ॥ ५१
 चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां बलीयसाम् ।
 अग्रे निजामुस्तेनैव रक्षसां नायकास्त्रयः ॥ ५२
 रावणेन नियुक्तास्ते पुरैव तु महाबलाः ।
 महाबलपरीवारा जनस्थानमुपागताः ॥ ५३
 क्रोधेन महताऽऽविष्टा दृष्ट्वा तां छिन्ननासिकाम् ।
 रुदतीमश्रुदिग्धाङ्गीं भगिनीं रावणास्य तु ॥ ५४
 रामोऽपि तद्वत् दृष्ट्वा राक्षसानां बलीयसाम् ।
 संस्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति ॥ ५५
 गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पितैः ।
 चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम् ॥ ५६
 क्षणेन निहतं तेन शरीरग्रिशिखोपमैः ।
 खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः ॥ ५७
 त्रिशिराश्च महारोषाद् रणे रामेण पातितः ।
 दृष्ट्वा तान् राक्षसान् दुष्टान् रामश्चाश्रममाविशत् ॥ ५८
 शूर्पणखा च रुदती रावणान्तिकमागता ।
 छिन्ननासां च तां दृष्ट्वा रावणो भगिनीं तदा ॥ ५९
 मारीचं प्राह दुर्बुद्धिः सीताहरणकर्मणि ।
 पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल ॥ ६०
 जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र ममाज्ञया ।
 सीवर्णमृगरूपं त्वमास्थाप्य तु शनैः शनैः ॥ ६१
 गच्छ त्वं तत्र कार्यार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता ।
 दृष्ट्वा सा मृगपोतं त्वां सीवर्णं त्वयि मातुल ॥ ६२
 स्पृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने ।
 तद्वाक्यात्तत्र गच्छन्तं धावस्व गहने वने ॥ ६३
 लक्ष्मणस्यापकर्षार्थं वक्तव्यं वागुदीरणम् ।
 ततः पुष्पकमारुह्य मायारूपेण चाप्यहम् ॥ ६४
 तां सीतामहमानेभ्ये तस्यामासक्तमानसः ।
 त्वमपि स्वेच्छया पश्चादागमिष्यसि शोभन ॥ ६५

'महाबली श्रेष्ठम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।' श्रीरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने चौदह हजार प्रकपो एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निश्वर-नायक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे-आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहलेसे ही नियुक्त कर रखा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणकी बहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग आँसुओंसे भोग गये थे। उसकी वह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे थे ॥ ५०—५४ ॥

श्रीरामने भी बलवान् राक्षसोंकी उस सेनाको देख लक्ष्मणकी सीताकी रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने साथ युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाभिषानी राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। अग्रिकी ज्वालाके समान दीहिमान् बाणोंद्वारा उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार त्रिशिराको भी श्रीरामने अत्यन्त रोषपूर्वक रणक्षेत्रमें मार गिराया। उस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी अपने आश्रममें लौट आये ॥ ५५—५८ ॥

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्बुद्धि रावणने अपनी बहिनकी नाक कटी देख सीताकी हर लानेके उद्देश्यसे मारीचसे कहा—'मामा! हम और तुम पुष्पक विमानसे चलकर जनस्थानके पास ठहरें। वहाँसे तुम मेरी आज्ञाके अनुसार सीनेके मृगका वेष धारणकर धीरे-धीरे मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, वहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुपर्णमय मृगशावकके रूपमें देखेगी, तब तुम्हें लानेकी उच्च करेगी और श्रीरामको तुम्हें बाँध लानेके लिये भेजेगी। जब सीताकी बात मानकर वे तुम्हें बाँधने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन वनमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खींचनेके लिये उच्चस्वरसे [हा भाई लक्ष्मण! इस प्रकार] कातर वचन बोलना। तत्पश्चात् मैं भी मायामय वेष बनाकर, पुष्पक विमानपर आरुढ़ हो, उस अमहाया सीताको हर लाऊँगा; क्योंकि मेरा मन उसमें असक्त हो गया है। फिर भद्र! तुम भी स्वेच्छानुसार चले जाना' ॥ ५९—६५ ॥

इत्युक्ते रावणेनाथ मारीचो वाक्यमब्रवीत् ।
त्वमेव गच्छ पापिष्ठ नाहं गच्छामि तत्र वै ॥ ६६

पुँरवानेन रामेण व्यधितोऽहं मुनेर्मखे ।
इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ६७

मारीचं हन्तुमारोभे मारीचोऽप्याह रावणम् ।
तव हस्तवधाद्धीर रामेण मरणं वरम् ॥ ६८

अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुमिच्छसि ।
अथ पुष्पकमारुह्य जनस्थानमुपागतः ॥ ६९

मारीचस्तत्र सीवर्णं मृगमास्थाय चाग्रतः ।
जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा ॥ ७०

सीवर्णं मृगपोतं तु दृष्ट्वा सीता यशस्विनी ।
भाविकर्मयशारात्राममुवाच पतिमात्मनः ॥ ७१

गृहीत्वा देहि सीवर्णं मृगपोतं नृपात्मज ।
अयोध्यायां तु मदेहे क्रीडनार्थमिदं मम ॥ ७२

तथैवमुक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्थाप्य तत्र वै ।
रक्षणाथं तु सीताया गतोऽसी मृगपृष्ठतः ॥ ७३

रामेण चानुयातोऽसी अभ्यधावद्वने मृगः ।
ततः शरेण विध्याध रामस्तं मृगपोतकम् ॥ ७४

हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासी निपपात महीतले ।
मारीचः पर्वताकारस्तेन नष्टो बभूव सः ॥ ७५

आकर्ण्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमब्रवीत् ।
गच्छ लक्ष्मण पुत्र त्वं यत्रायं शब्द उत्थितः ॥ ७६

भ्रातुर्व्येष्टस्य तत्त्वं वै रुदतः श्रूयते ध्वनिः ।
प्रायो रामस्य संदेहं लक्षयेऽहं महात्मनः ॥ ७७

इत्युक्तः स तथा ग्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम् ।
न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्वचित् ॥ ७८

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—'अरे पच्छि! तुम्हीं जाओ, मैं वहीं नहीं जाऊँगा। मैं तो विश्वामित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भरी कष्ट उठ चुका हूँ।' मारीचके यों कहनेपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार डालनेको उद्यत हो गया। तब मारीचने उससे कहा—'वीर! तुम्हारे हाथसे बंध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है। तुम मुझे जहाँ ले चलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलींगा' ॥ ६६—६८ ॥

यह सुनकर वह पुष्पक विमानपर आरुढ़ हो उसके साथ जनस्थानके निकट आया। वहाँ पहुँचकर मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकनिन्दिनी सीता विद्यमान थीं, वहाँ उनके सामने गया। उस सुवर्णमय मृगकिशोरको देखकर यशस्विनी सीता भक्तों कर्मके वशीभूत हो अपने पति भगवान् श्रीरामसे बोलीं—'राजपुत्र! आप इस सुवर्णमय मृगशावकको पकड़कर मेरे लिये ला दीजिये। यह अयोध्यामें मेरे महलके भीतर क्रीडा-विनोदके लिये रहेगा' ॥ ६९—७२ ॥

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं उस मृगके पीछे चले। श्रीरामके पीछा करनेपर वह मृग वनकी ओर भागा, तब श्रीरामने उस मृगशावकको जगसे बाँध डाला। मारीच 'हा! लक्ष्मण!'—यों कहकर पर्वताकार शरीरसे पृथ्वीपर गिरा और प्राणहीन हो गया। रोते हुए मारीचके उस आर्तनादको सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'कस लक्ष्मण! जहाँसे यह आवाज आयी है, वहीं तुम भी जाओ। निश्चय ही तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताके रोदनका शब्द कानोंमें आ रहा है, मुझे प्रायः महात्मा श्रीरामका जीवन संशयमें पड़ा दिखायी देता है' ॥ ७३—७७ ॥

सीताको यह बात सुनकर उन अनिन्दिता देवीसे लक्ष्मणने कहा—'देवि! श्रीरामके लिये कोई संदेहकी बात नहीं है, उन्हें कहीं भी भय नहीं है।'

इति ब्रुवाणं तं सीता भाविकर्मबलाद्भूतम् ।
 लक्ष्मणं प्राह वैदेही विरुद्धवचनं तदा ॥ ७९
 मृते रामे तु मामिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि ।
 इत्युक्तः स विनीतात्मा असहप्रप्रियं वचः ॥ ८०
 जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः ।
 संन्यासवेषमास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान् ॥ ८१
 स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान् ।
 आगतो भरतः श्रीमानयोध्याया महामतिः ॥ ८२
 रामेण सह सम्भाष्य स्थितवांस्तत्र कानने ।
 मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह ॥ ८३
 अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः ।
 मृगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान् ॥ ८४
 क्लेशितासि महारण्ये बहुकालं त्वमीदृशम् ।
 सम्प्राप्तराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः ॥ ८५
 लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह ।
 इत्युक्ता सा तथा गत्वा नीता तेन महात्मना ॥ ८६
 आरुरोह विमानं तु छन्दना प्रेरिता सती ।
 तज्जगाम ततः शीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम् ॥ ८७
 ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता ।
 विमाने खेऽपि रोदन्याश्रुके स्पर्शं न राक्षसः ॥ ८८
 रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महातनुः ।
 दशग्रीवं महाकायं दृष्ट्वा सीता सुदुःखिता ॥ ८९
 हा राम वञ्चिताद्याहं केनापिच्छन्नरूपिणा ।
 रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयार्दिता ॥ ९०
 हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि द्रष्टेन रक्षसा ।
 द्रुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामद्याकुलाम् ॥ ९१

यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध वचन कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था। वे बोलीं—'मैं जानती हूँ, तुम श्रीरामके मर जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो; इसीसे इस समय यहाँ नहीं जा रहे हो।' सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अप्रिय वचनको न सह सके और तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजीकी खोजमें चल पड़े ॥ ७८—८० ॥

इसी समय दुरात्मा रावण भी संन्यासीका वेष बनाकर सीताके पास आया और यों बोला—'देवि! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ बातचीत करके यहाँ काननमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने मनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। वैदेहि! तुम्हारी जीडा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृग-शावकको भी पकड़ लिया है। अहो! तुमने इस विशाल वनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यग्रहण कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ' ॥ ८१—८५ ॥

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण बातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महात्माके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आरुह हो गयीं। तब वह विमान शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थीं, तथापि रावणने यहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकवाले उस विशालकाय रावणपर दृष्टि पड़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और विलाप करने लगीं—'हाय राम! किसी कपटवेषधारी भयानक राक्षसने आज मुझे धोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूँ; मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण! मुझे दृष्ट रक्षस हरकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्याकुल हूँ तुम जल्दी आकर मुझ असहायकी रक्षा करो' ॥ ८६—९१ ॥

एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम् ।
आकर्ण्य गृधराजस्तु जटायुस्तत्र चागतः ॥ ९२

तिष्ठ रावण दुष्टात्मन् मुञ्च मुञ्चात्र मैथिलीम् ।
इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान् ॥ ९३

पक्षाभ्यां ताडयामास जटायुस्तस्य वक्षसि ।
ताडयन्तं तु तं मत्वा बलवानिति रावणः ॥ ९४

तुण्डचक्षुप्रहारैस्तु भृशं तेन प्रपीडितः ।
तत उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत् ॥ ९५

जघान तेन दुष्टात्मा जटायुं धर्मचारिणम् ।
निपपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः ॥ ९६

उवाच च दशग्रीवं दुष्टात्मन् न त्वया हतः ।
चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम ॥ ९७

निरायुधं को हनेन्मूढ सायुधस्त्वामृते जनः ।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस ॥ ९८

दुष्ट रावण रामस्त्वां वधिष्यति न संशयः ।
रुदती दुःखशोकार्ता जटायुं प्राह मैथिली ॥ ९९

मत्कृते मरणं यस्मात्त्वया प्राप्तं द्विजोत्तम ।
तस्माद्रामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्स्यसि ॥ १००

यावद्ब्रामेण सङ्गस्ते भविष्यति महाद्विज ।
तावन्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खगोत्तमम् ॥ १०१

ततस्तान्यर्पितान्यङ्गाद्भूषणानि विमुच्य सा ।
शीघ्रं निबध्य वस्त्रेण रामहस्तं गमिष्यथ ॥ १०२

इत्युक्त्वा पातयामास भूमौ सीता सुदुःखिता ।
एवं हत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले ॥ १०३

इस प्रकार उच्छ्वस्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस महान् आर्तनादको सुनकर गृधराज जटायु वहाँ आ पहुँचे (और बोले—) 'अरे दुष्टात्मा रावण! ठहर जा; तू सीताको छोड़ दे, छोड़ दे।' यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे रावणको छातीमें चोट की। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख रावणने समझ लिया कि 'यह पक्षी बड़ा बलवान् है।' जब जटायुके मुख और चोंचको मारसे वह बहुत पीड़ित हो गया, तब उस दुष्टने बड़े वेगसे 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग उठाया और उससे धर्मात्मा जटायुपर घातक प्रहार किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९२—९६ ॥

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—'अरे दुष्टात्मन्! ओ नीच राक्षस! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे 'चन्द्रहास' नामक खड्गके प्रभावसे मारा गया हूँ। अरे मूर्ख! तेरे सिवा दूसरा कौन शस्त्रधारी चोढ़ा होगा, जो किसी निहत्थेपर हथियार चलावेगा? अरे दुष्ट राक्षस! तू यह जान ले कि सीताका हर ले जाना तेरी भीत है। दुष्टात्मा रावण! निस्संदेह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध कर डालेंगे' ॥ ९७—९८ ॥

जटायुके मारे जानेसे अत्यन्त दुःख और शोकसे पीड़ित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोली—'हे पक्षिराज! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको प्राप्त होओगे। खगश्रेष्ठ! जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी भेंट न हो, जबतक तुम्हारे प्राण शरीरमें ही रहें।' उन पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बँधकर कहा—'तुम सब के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।' और तब उन्हें भूमिपर गिरा दिया ॥ ९९—१०२ ॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुको धराशयी करके

पुष्पकेण गतः शीघ्रं लङ्कां दुष्टनिशाचरः ।
 अशोकवनिकामध्ये स्थापयित्वा स मैथिलीम् ॥ १०४
 इमामत्रैव रक्षध्वं राक्षस्यो विकृताननाः ।
 इत्यादिश्य गृहं यातो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १०५
 लङ्कानिवासिनश्चोचुरेकान्तं च परस्परम् ।
 अस्याः पुर्यां विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना ॥ १०६
 राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्ष्यमाणा समन्ततः ।
 सीता च दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा ॥ १०७
 उवास सा सुदुःखार्ता दुःखिता रुदती भृशम् ।
 यथा ज्ञानखले देवी हंसयाना सरस्वती ॥ १०८
 सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्र यदृच्छया ।
 वस्त्रबद्धं तपोत्सृष्टं गृहीत्वा भूषणं हुतम् ॥ १०९
 स्वभर्त्रे विनिवेष्टोचुः सुग्रीवाय महात्मने ।
 अरण्येऽभुन्महायुद्धं जटायो रावणस्य च ॥ ११०
 अथ रामश्च तं हत्वा मारीचं माघयाऽऽगतम् ।
 निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्ट्वा तेन गत्वा स्वमाश्रमम् ॥ १११
 सीतामपश्यन्दुःखार्तः प्ररुद स राघवः ।
 लक्ष्मणश्च महातेजा रुद भृशदुःखितः ॥ ११२
 बहुप्रकारमस्वस्थं रुदन्तं राघवं तदा ।
 भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्वास्य लक्ष्मणः ॥ ११३
 उवाच वचनं प्राप्तं तदा यत्तच्छृणुष्व मे ।
 अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ११४
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो ।
 इत्येवं वदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ११५
 उत्थापितो नरपतिर्दुःखितो दुःखितेन तु ।
 भ्रात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं वनम् ॥ ११६

वह दुष्ट निशाचर पुष्पक विमानद्वारा शीघ्र हो लङ्कामें जा पहुँचा। वहाँ मिथिलेसकुमारों सीताको अशोक-वाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—‘भयंकर मुखवाली निशाचरियो! तुम लोग यहीं सीताको रखवाली करो।’ यह आदेश दे यह राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया। उस समय लङ्कानिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—‘दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये ही सीताको यहाँ ला रखा है’ ॥ १०३—१०६ ॥

विकट आकारवाली राक्षसियोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमात्र ही केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगीं। वे सदा अत्यन्त शोकार्त हो बड़े दुःखके साथ बहुत रोदन किया करती थीं। रावणके वशमें पड़ी हुई सीता ज्ञानको अपनैतक ही सीमित रखनेवाले कृष्णके अधीन हुई हंसबाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोभा नहीं पाती थी ॥ १०७—१०८ ॥

सीताने वस्त्रमें बँधे हुए अपने जिन आभूषणोंको नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकस्मात् घूमनेके लिये आये हुए चार वानरोंने, जो वानरराज सुग्रीवके सेवक थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक ले जाकर अपने स्वामी महात्मा सुग्रीवको अर्पित करके यह समाचार भी सुनाया कि ‘आज वनके भीतर जटायु और रावणमें बड़ा भारी युद्ध हुआ था।’ इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी माघाभय वेष बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर लौट पड़े, तब मार्गमें लक्ष्मणको देखाकर उनके साथ अपने आश्रमपर आये; किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यथित हो फूट-फूटकर रोने लगे। महातेजस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी होकर रोदन करने लगे। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा अस्वस्थ होकर रोते और पृथ्वीपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर भीरज बँधाय ॥ १०९—११३ ॥

राजन्! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समपोषित बात कही थी, वह तुम मुझसे सुनो। (लक्ष्मण बोले—) ‘महाराज! आप अधिक शोक न करें। प्रभो! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये।’ इत्यादि बातें कहते हुए दुःखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोक-ग्रस्त भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताको खोज करनेके लिये वनमें चले ॥ ११४—११६ ॥

वनानि सर्वाणि विशोध्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान् ।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् बहू-
स्तृणादिवाल्मीकगहनेषु भूमिषु ॥ ११७

नदीतटे भूविबरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः ।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च घातितं नृपः ॥ ११८

अहो भवान् केन हतस्त्वमीदृशीं
दशामवासोऽसि मृतोऽसि जीवसि ।
ममाद्य सर्वं समदुःखितस्य भोः
पत्नीवियोगादिह चागतस्य वै ॥ ११९

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छा-
दुवाच वाचं मधुरां तदानीम् ।
शृणुष्व राजन् मम वृत्तमत्र
वदामि द्रष्टुं च कृतं च सद्यः ॥ १२०

दशाननस्तामपनीय मायया
सीतां समारोप्य विमानमुत्तमम् ।
जगाम खे दक्षिणदिग्मुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता ॥ १२१

आकर्ष्य सीतास्वनमागतोऽहं
सीतां विभोक्तुं स्वबलेन राघव ।
युद्धं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खड्गबलेन रक्षसा ॥ १२२

वैदेहिवाक्यादिह जीवता मया
द्रष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये ।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जह्यद्य दुष्टं सगणं तु नैर्ऋतम् ॥ १२३

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्तं चाह शोकतः ।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते ॥ १२४

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे वनोंको छान
झाल, समस्त पर्वतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेवाले
मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने
मुनियोंके बहुत-से आश्रम भी देखे; तृण एवं
लताओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा खुले मैदानोंमें,
नदीके किनारे, गुहोंमें और कन्दराओंमें देखनेपर भी
जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं
लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय राजा
रामचन्द्रजीने रावणद्वारा मारे गये जटायुको देखा और
कहा—'अहो! आपको किसने मार? आह! आप ऐसी
दुर्दशाको पहुँच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या
मर गये। पत्नीके वियोगवश आपके समान ही दुःखी
होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये आजकल
आप ही सब कुछ थे' ॥ ११७—११९ ॥

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षी उस
समय बड़े कष्टसे मधुर वाणीमें बोला—'राजन्!
इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल
ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह मेरा
सारा वृत्तान्त आप सुनैँ। दशमुख रावणने मायासे
सीताका अपहरण करके उसे उत्तम विमानपर चढ़ा
लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी
ओर चल दिया। उस समय माता सीता बड़े
दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रघुनन्दन!
सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे
छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध छेड़
दिया। फिर उस राक्षसने अपनी तलवारके बलसे
मुझे मार डाला। विदेहकुमारी सीताके ही आशीर्वादसे
मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोक-
को जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न
कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके
गणोंसहित मार ही डालिये' ॥ १२०—१२३ ॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः
शोकपूर्वक उनसे कहा—'पक्षिराज! आपका
कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।'

ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम् ।
विमानेन तु रम्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ १२५

रामोऽपि दग्ध्वा तदेहं स्नातो दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
भ्रात्रा सगच्छन् दुःखार्तो राक्षसो पथि दृष्टवान् ॥ १२६

उद्धमन्ती महोल्काभां विवृतास्यां भयंकरीम् ।
क्षयं नयन्ती जन्तून् वै पातयित्वा गतो रुषा ॥ १२७

गच्छन् वनान्तरं रामः स कवचं ददर्श ह ।
विरूपं जठरमुखं दीर्घबाहुं घनस्तनम् ॥ १२८

कवचानं राममार्गं तु दृष्ट्वा तं दग्ध्वाञ्जनैः ।
दग्धोऽसी दिव्यरूपी तु खस्थो राममभाषत ॥ १२९

राम राम महाबाहो त्वया मम महामते ।
विरूपं नाशितं वीर मुनिशापाच्चिरागतम् ॥ १३०

त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वत्प्रसादाच्च संशयः ।
त्वं सीताप्राप्तये सख्यं कुरु सूर्यसुतेन भोः ॥ १३१

वानरेन्द्रेण गत्वा तु सुग्रीवे स्वं निवेद्य वै ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ ऋष्यमूकगिरिं व्रज ॥ १३२

इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् रामो लक्ष्मणसंयुतः ।
सिद्धैस्तु मुनिभिः शून्यमाश्रमं प्रविवेश ह ॥ १३३

तत्रस्थां तापसीं दृष्ट्वा तथा संलाप्य संस्थितः ।
शबरीं मुनिमुख्यानां सपर्याहतकल्मषाम् ॥ १३४

तथा सम्पूजितो रामो बदरादिभिरीश्वरः ।
साप्येनं पूजयित्वा तु स्वामवस्थां निवेद्य वै ॥ १३५

सीतां त्वं प्राप्यसीत्युक्त्वा प्रविश्याग्निं दिवंगता ।
दिवं प्रस्थाप्य तां चापि जगामान्यत्र राघवः ॥ १३६

तदनन्तर जटायु अपना ऊपर त्यागकर एक सुन्दर विमानपर आसूढ़ हुए और अप्सरागणोंसे सेवित हो स्वर्गलोकको चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके शरीरका दाह-संस्कार करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। फिर सीताके लिये दुःखी हो भाई लक्ष्मणके साथ आगे जाते लगे। इतनेमें ही उन्हें गस्तेपर एक राक्षसी खड़ी दिखायी दी। वह मुँहसे बड़ी भारी उल्काके समान आगकी ज्वाला उगल रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह बड़ी डरावनी थी और पास आये हुए अनेकानेक जीवोंका संहार कर रही थी। श्रीरामने उसे रोपपूर्वक भार गिराया। फिर वे आगे बढ़ गये। जब श्रीराम दूसरे जनमें जाने लगे, तब उन्होंने कवचको देखा, जो बहुत ही कुरूप था। उसका मुख उसके पेटमें ही था, बाँहि बड़ी-बड़ी थीं और स्तन घने थे। श्रीरामने उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे काट-कण्टाद्वारा धीरे-धीरे जला दिया। जल जानेपर वह दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुआ और आकाशमें स्थित होकर श्रीरामसे बोला— ॥ १२४—१२९ ॥

'महाबाहु श्रीराम! महामते वीरवर! एक मुनिके शापवश पिरकाससे प्राप्त हुई मेरी कुरूपताकी आपने नष्ट कर दिया; अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि आज मैं आपको कृपासे धन्य हो गया। रघुवन्दन! आप सीताकी प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता कीजिये। उनके यहाँ जाकर सुग्रीवसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर देनेपर आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः नृपश्रेष्ठ! आप यहाँसे ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये' ॥ १३०—१३२ ॥

यह कहकर कवच स्वर्गको चला गया। कहते हैं, तब लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक ऐसे आश्रममें प्रवेश किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे शून्य था। उसमें उन्होंने एक 'शबरी' नामकी तपस्विनी देखी, जो बड़े-बड़े मुनियोंकी सेवा-पूजा करनेसे निष्पाप हो गयी थी। उसके साथ वार्तालाप करके वे वहाँ ठहर गये। शबरीने बेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभाँति स्तुति किया। आवभगतके पश्चात् उनसे अपनी अवस्था निवेदन की और यह कहकर कि 'आप सीताको प्राप्त कर लेंगे' वह शबरी भी उनके सामने ही अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गयी। उसे भी स्वर्गलोकमें पहुँचाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अन्यत्र चले गये ॥ १३३—१३६ ॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भ्रात्रा समेतो जगदेकनाथः।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याप्यां स तु रामदेवः॥ १३७

तदनन्तर विनयशील और गुणों भाई लक्ष्मणके साथ
जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके वियोगसे अत्यन्त दुःखी
हो वहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये॥ १३७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रबुधनि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामायणविषयक' उन्चासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्सना;
सीताकी खोज और हनुमान्का लङ्कागमन

मार्कण्डेय उवाच

वालिनो कृतवैरोऽथ दुर्गवतीं हरीश्वरः।
सुग्रीवो दृष्टवान् दूराद्दृष्ट्वाऽऽह पवनात्मजम्॥ १

कस्येमी सुधनुःपाणी चीरवल्कलधारिणी।
पश्यन्ती सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम्॥ २

नानारूपधरावेती तापसं वेधमास्थिती।
वालिदूताविह प्राप्ताविति निश्चित्य सूर्यजः॥ ३

उत्पपात भयत्रस्तः ऋष्यमूकाद् वनान्तरम्।
वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम्॥ ४

तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः।
हनूमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेधधृक्॥ ५

कौ हि कस्य सुतौ जातौ किमर्थं तत्र संस्थिती।
ज्ञात्वा सत्यं मम ब्रूहि वायुपुत्र महामते॥ ६

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम्।
भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भ्रात्रा समन्वितम्॥ ७

को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं ब्रूहि महामते।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम्॥ ८

मार्कण्डेयजी बोले—वालीसे वैर हो जानेके कारण
उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने
दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर
पवनकुमार हनुमान्जीसे कहा—'ये दोनों किसके पुत्र हैं,
जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चीर एवं वल्कल-यस्त
धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छन्न इस दिव्य
सरोवरको देख रहे हैं।' जान पड़ता है, ये दोनों वालीके
भेजे हुए बहुविधरूपधारी दूत हैं, जो इस समय तपस्वीका
वेध धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं। यह निश्चय करके
सूर्यकुमार सुग्रीव भयभीत हो गये और समस्त वानरोंके
साथ ऋष्यमूक पर्वतसे कूटकर दूसरे वनमें स्थित
आश्रमपुनिके उत्तम आश्रमपर चले गये॥ १—४॥

वहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—
'हनूमन्! तुम भी तपस्वीका वेध धारण करके शीघ्र जाओ
और पूछो कि 'वे कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और किस
लिये वहाँ ठहरे हुए हैं?' महाबुद्धिमान् वायुनन्दन! ये सब
बातें सच-सच जानकर मुझसे बताओ'॥ ५-६॥

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्जी संन्यासीके
रूपमें पम्पासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके
साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'महामते! आप
कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं? इस जनशून्य घोर वनमें
आप कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?—
ये सब बातें मेरे समक्ष ठीक-ठीक बताइये'॥ ७-८॥

एवं वदन्तं तं ग्राह लक्ष्मणो भ्रातुरात्रया ।
 प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥ ९
 राजा दशरथो नाम बभूव भुवि विश्रुतः ।
 तस्य पुत्रो महाबुद्धे रामो ज्येष्ठो ममाग्रजः ॥ १०
 अस्याभिषेक आरब्धः कैकेय्या तु निवारितः ।
 पितुराज्ञामयं कुर्वन् रामो भ्राता ममाग्रजः ॥ ११
 मया सह विनिष्क्रम्य सीतया सह भार्यया ।
 प्रविष्टो दण्डकारण्यं नानामुनिसमाकुलम् ॥ १२
 जनस्थाने निवसतो रामस्यास्य महात्मनः ।
 भार्या सीता तत्र बने केनापि पाप्मना हता ॥ १३
 सीतामन्वेषयन् वीरो रामः कमललोचनः ।
 इहायातस्त्वया दृष्ट इति वृत्तान्तमीरितम् ॥ १४
 श्रुत्वा ततो वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
 अव्यञ्जितात्मा विश्वासाद्धनुमान् मारुतात्मजः ॥ १५
 त्वं मे स्वामी इति वदन् रामं रघुपतिं तदा ।
 आश्वासनीय सुग्रीवं तयोः सख्यमकारयत् ॥ १६
 शिरस्यारोप्य पादाब्जं रामस्य विदितात्मनः ।
 सुग्रीवो वानरेन्द्रस्तु उवाच मधुराक्षरम् ॥ १७
 अद्यप्रभृति राजेन्द्र त्वं मे स्वामी न संशयः ।
 अहं तु तव भृत्यश्च वानरैः सहितः प्रभो ॥ १८
 त्वच्छत्रुर्मम शत्रुः स्यादद्यप्रभृति राघव ।
 मित्रं ते मम सन्मित्रं त्वद्दुःखं तन्ममापि च ॥ १९
 त्वत्प्रीतिरेव मत्प्रीतिरित्युक्त्वा पुनराह तम् ।
 वाली नाम मम ज्येष्ठो महाबलपराक्रमः ॥ २०
 भार्यापहारी दुष्टात्मा मदनासक्तमानसः ।
 त्वामृते पुरुषव्याघ्र नास्ति हन्ताद्य वालिनम् ॥ २१
 युगपत्सप्ततालांस्तु तरुन् यो वै वधिष्यति ।
 स तं वधिष्यतीत्युक्तं पुराणज्ञैर्नृपात्मज ॥ २२

इस प्रकार पूछते हुए हनुमान्जैसे अपने भाईकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण बोले—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त आदिसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। इस पृथ्वीपर दशरथ नामके राजा बहुत प्रसिद्ध थे। महाबुद्धे! ये मेरे बड़े भाई श्रीराम उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका रज्याभिषेक होने जा रहा था, किन्तु (मेरी छोटी सीतेली माता) कैकेयीने उसे रोक दिया। फिर, पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए ये मेरे बड़े भ्राता श्रीराम मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ घरसे निकल आये। वनमें आकर इन्होंने अनेकों मुनियोंसे युक्त दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। वहाँ जनस्थानमें निवास करते हुए इन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीताको वनमें किसी बाघीने हर लिया। उन सीतार्जीकी ही खोज करते हुए ये बीरवर कमलनयन श्रीराम यहाँ आये हैं, जिससे तुम्हें यहाँ इनका दर्शन हुआ है। वर, यही हमारा वृत्तान्त है, जो तुमसे बतल दिया' ॥ ९—१४ ॥

महात्मा लक्ष्मणके वचन सुनकर उनपर विश्वास हो आनेके कारण वायुनन्दन हनुमान्ने अपने स्वरूपको प्रकट नहीं किया और रघुकुलनायक रामचन्द्रसे यह कहकर कि 'आप मेरे स्वामी हैं'—उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने साथ सुग्रीवके पास ले आकर उन दोनों भाइयोंकी सुग्रीवसे मित्रता कर दी। फिर श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका परिचय प्राप्त हो जानेके कारण उनके चरण-कमलोंको सिरपर धारणकर वानराज सुग्रीवने मधुर वाणीमें कहा—'राजेन्द्र! इसमें संदिह नहीं कि आजसे आप हमारे स्वामी हुए और प्रभो! मैं सम्मत्त वानरोंके साथ आपका सेवक हुआ। रघुनन्दन! आपका जो शत्रु है, वह आजसे मेरा भी शत्रु है और जो आपका मित्र है, वह मेरा भी श्रेष्ठ मित्र है; इतना ही नहीं, आपका जो दुःख है, वह मेरा भी है तथा आपकी प्रसन्नता ही मेरी भी प्रसन्नता है' यों कहकर सुग्रीवने पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ १५—१९ ॥

'प्रभो! 'वाली' नामक मेरा ज्येष्ठ भाई है, जो महाबलवान् और बड़ा ही पराक्रमी है; किन्तु वह हृदयका अत्यन्त दुष्ट है। उसने कामासक्त होकर मेरी भार्याका अपहरण कर लिया है। पुरुषश्रेष्ठ! इस समय आपके सिवा दूसरा कोई वालीको मारनेवाला नहीं है। राजकुमार! पुराणवेत्ताओंने कहा है कि जो ताड़के इन सप्त वृक्षोंको एक साथ ही काट डालेगा, वही वालीका वध कर सकेगा' ॥ २०—२२ ॥

तत्प्रियार्थं हि रामोऽपि श्रीमांश्छित्त्वा महातरून् ।
 अर्धाकृष्टेन बाणेन युगपद्रघुनन्दनः ॥ २३

विद्ध्वा महातरून् रामः सुग्रीवं प्राह पार्थिवम् ।
 बालिना गच्छ युध्यस्व कृतचिह्नो रवेः सुत ॥ २४

इत्युक्तः कृतचिह्नोऽयं युद्धं चक्रेऽथ बालिना ।
 रामोऽपि तत्र गत्वाथ शरेणैकेन बालिनम् ॥ २५

विध्याथ वीर्यवान् बाली पपात च ममार च ।
 विव्रस्तं बालिपुत्रं तु अद्भुतं विनयान्वितम् ॥ २६

रणशीण्डं यौवरान्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा ।
 तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविमूनवे ॥ २७

सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः ।
 राज्यमन्वेषय स्वं त्वं कपीनां पुनराव्रज ॥ २८

त्वं सीतान्वेषणे यत्नं कुरु शीघ्रं हरीश्वर ।
 इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ २९

प्रावृट्कालो महान् प्रातः साम्प्रतं रघुनन्दन ।
 वानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे ॥ ३०

गते तस्मिंस्तु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्मले ।
 चारान् सम्प्रेषयिष्यामि वानरान्दिक्षु राघव ॥ ३१

इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीश्वरः ।
 पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः ॥ ३२

रामोऽपि विधिबद्धात्रा शैलसानौ महावने ।
 निवासं कृतवान् शैले नीलकण्ठे महामतिः ॥ ३३

प्रावृट्काले गते कृच्छात् प्राप्ते शरदि राघवः ।
 सीतावियोगाद्गुण्यतः सौमित्रिं प्राह लक्ष्मणम् ॥ ३४

उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुषा ।
 लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ३५

[यह सुनकर] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खींचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ काट डाला। उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—'सूर्यनन्दन सुग्रीव! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और बालीके साथ युद्ध करो।' उनके गों कान्नेपर सुग्रीवने चिह्न धारणकर बालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे बालीको बीध दिया। इससे पराक्रमी बाली पुष्पोंपर गिरा और मर गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त डरे हुए बालि-कुमार अद्भुतको, जो बहुत ही विनयी और संग्राममें कुशल था, युवराजपदपर अभिषिक्त करके ताराको सुग्रीवकी सेवामें अर्पित कर दिया। तत्पश्चात् कमलनयन धर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—'तुम वानरोंके राज्यकी देख-भाल कर लो, फिर मेरे पास आना और कपीश्वर। सीताकी खोज करानेका शीघ्र ही यत्न करना' ॥ २३—२८ १/२ ॥

उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन। इस समय महान् वर्षाकाल आ पहुँचा है; इन्द्रके वर्षा करते रहनेपर इस वनमें वानरोंका चलना फिरना न हो सकेगा। राजेन्द्र। वर्षा बीतने और शरत्काल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने वानर दूतोंको भेजूँगा।' यह कहकर वानरराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे ॥ २९—३२ ॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें 'नीलकण्ठ' नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रहने लगे। (सीताके वियोगमें) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईसे बीता। जब शरत्काल उपस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके वियोगसे व्यथित हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया। उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था। इसलिये भ्रातृवत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—

गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसी नागतः कपिनायकः ।
 गते तु वर्षाकालेऽहमागमिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ३६
 अनेकैर्वानरैः सार्धमित्युक्त्वासी तदा गतः ।
 तत्र गच्छ त्वरायुक्तो यत्रास्ते कपिनायकः ॥ ३७
 तं दृष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम् ।
 रमन्तं तारया सार्धं शीघ्रमानय मां प्रति ॥ ३८
 नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसौ प्राप्तभूतिकः ।
 तदा त्वयैवं वक्तव्यः सुग्रीवोऽनृतभाषकः ॥ ३९
 बालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठति ।
 स्मृत्वैतदाचर कपे रामवाक्यं हितं तव ॥ ४०
 इत्युक्तस्तु तथेत्युक्त्वा रामं नत्वा च लक्ष्मणः ।
 पम्पापुरं जगामाथ सुग्रीवो यत्र तिष्ठति ।
 दृष्ट्वा स तत्र सुग्रीवं कपिराजं वभाष वै ॥ ४१
 ताराभोगविषक्तस्त्वं रामकार्यपराङ्मुखः ।
 किं त्वया विस्मृतं सर्वं रामाग्रे समयं कृतम् ॥ ४२
 सीतामन्विष्य दास्यामि यत्र क्वापीति दुर्धते ।
 हत्वा तु बालिनं राज्यं येन दत्तं पुरा तव ॥ ४३
 त्वामृते कोऽयमन्येत कपीन्द्र पापचेतसः ।
 प्रतिश्रुत्य च रामस्य भार्याहीनस्य भूपते ॥ ४४
 साहाय्यं ते करोमीति देवाग्रिजलसंनिधी ।
 ये ये च शत्रवो राजस्ते ते च मम शत्रवः ॥ ४५
 मित्राणि यानि ते देव तानि मित्राणि मे सदा ।
 सीतामन्वेषितुं राजन् वानरैर्वहुभिर्वृतः ॥ ४६
 सत्यं यास्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा कोऽन्यथाकरोत् ।
 त्वामृते पापिनं दुष्टं रामदेवस्य संनिधी ॥ ४७
 कारयित्वा तु तेनैवं स्वकार्यं दुष्टवानर ।
 ऋषीणां सत्यवद्वाक्यं त्वयि दृष्टं मयाधुना ॥ ४८
 सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।
 वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥ ४९

‘लक्ष्मण! तुम पम्पापुरमें जाओ। देखो, क्या कारण है कि वह दुष्ट वानरराज अभीतक नहीं आया। पहले तो वह यही कहकर गया था कि ‘वर्षाकाल बीतनेपर मैं अनेक वानरोंके साथ आपके पास आऊँगा।’ अब तुम जहाँ वह वानरराज रहता है, वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ उसके साथ रमण करनेवाले उस दुष्ट वानरको आग करके समस्त वानरसेनाके सहित मेरे पास शीघ्र ले आओ। यदि ऐश्वर्य प्राप्त कर लेनेके कारण मदमें चूर हो सुग्रीव यहाँ न आये तो तुम उस असत्यवादीसे यों कहना—‘ओरे दुष्ट! श्रीरामने कहा है कि जिससे बालिका बध किया गया था, वह बाण आज भी मेरे हाथमें मौजूद है; अतः वानर। इस बातको याद करके तू श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन कर; इसीमें तेरा भला है।’ ॥ ३६—४० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसे शिरोधार्य किया और उनको नमस्कार करके वे पम्पापुरमें गये, जहाँ सुग्रीव रहता था। वहाँ उन्होंने वानरराज सुग्रीवकी देखकर कहा—‘ओरे! तू श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे मुँह मोड़कर यहाँ उसके साथ भोग-विलासमें पैसा हुआ है? रे दुर्दुष्टे! तूने श्रीरामके सामने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि ‘जहाँ-कहाँ भी हो, सीताको ढूँढ़कर मैं आपके अर्पित करूँगा’ उसे क्या भूल गया? ओरे पापात्मा वानरराज! जिन्होंने बालिको मारकर पहले ही तुम्हें राज्य दे दिया, ऐसे परोपकारी मित्रका तैरे सिखा कौन अन्याय कर सकता है? तूने देवता, अग्नि और जलके निकट श्रीरामसे यह प्रतिज्ञा की थी कि ‘राजन्! मैं पत्नीसे विमुक्त हुए आपकी सहायता करूँगा। राजन्! जो-जो आपके शत्रु हैं, वे-वे मेरे भी शत्रु हैं तथा देव! जो-जो आपके मित्र हैं, वे-वे मेरे भी मित्र ही मित्र हैं। राजन्! मैं बहुत-से वानरोंके साथ सीताको खोज करनेके लिये अवश्य ही आपके पास आऊँगा।’ भगवान् श्रीरामके निकट यों कहकर तुझ-जैसे दुष्ट पापोंके सिवा दूसरा कौन है, जो इसके विपरीत आचरण करता। ओरे दुष्ट वानर! इस प्रकार तूने अपना काम तो उनसे करा लिया और उनका कार्य करना तू भूल गया! इस समय ऋषियोंकी यह यथार्थ बात कि ‘अपना काम सिद्ध हो जानेपर सभीकी बुद्धि बदल जाती है, जैसे बछड़ा माताके दूधमें दूधकी कमी देखकर उसे छोड़ देता है [फिर माताकी परवा नहीं करता]’

जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम् ।
 न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः ॥ ५०
 शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि ।
 कृतघ्नस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा ॥ ५१
 कृतघ्नता न कार्या ते त्वत्कृतं समयं स्मर ।
 एहो ह्यागच्छ शरणं काकुत्स्थं हितपालकम् ॥ ५२
 यदि नायासि च कपे रामवाक्यमिदं शृणु ।
 नधिष्ये मृत्युसदनं सुग्रीवं वालिनं यथा ॥ ५३
 स शरो विद्यतेऽस्माकं येन वाली हतः कपिः ।
 लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसी सुग्रीवः कपिनायकः ॥ ५४
 निर्गत्य तु नमश्चक्रे लक्ष्मणं मन्त्रिणोदितः ।
 उवाच च महात्मानं लक्ष्मणं वानराधिपः ॥ ५५
 अज्ञानकृतपापानामस्माकं क्षन्तुमर्हसि ।
 समयः कृतो मया राज्ञा रामेणामिततेजसा ॥ ५६
 यस्तदानीं महाभाग तमद्यापि न लङ्घये ।
 यास्यामि निखिलैरद्य कपिभिर्नृपनन्दन ॥ ५७
 त्वया सह महावीर रामपार्श्वं न संशयः ।
 मां दृष्ट्वा तत्र काकुत्स्थो यद्वक्ष्यति च मां प्रति ॥ ५८
 तत्सर्वं शिरसा गृह्य करिष्यामि न संशयः ।
 सन्ति मे हरयः शूराः सीतान्वेषणकर्मणि ॥ ५९
 तान्यहं प्रेषयिष्यामि दिक्षु सर्वासु पार्श्विव ।
 इत्युक्तः कपिराजेन सुग्रीवेण स लक्ष्मणः ॥ ६०
 एहि शीघ्रं गमिष्यामि रामपार्श्वमितोऽधुना ।
 सेना चाद्वयतां वीर ऋक्षाणां हरिणामपि ॥ ६१
 यां दृष्ट्वा प्रीतिमभ्येति राघवस्ते महाभते ।
 इत्युक्तो लक्ष्मणेनाथ सुग्रीवः स तु वीर्यवान् ॥ ६२
 पार्श्वस्थं युवराजानमद्भवं संज्ञयाद्यवतीत् ।
 सोऽपि निर्गत्य सेनानीमाह सेनापतिं तदा ॥ ६३
 तेनाहताः समागत्य ऋक्षवानरकोटयः ।
 गुहास्थाश्च गिरिस्थाश्च वृक्षस्थाश्चैव वानराः ॥ ६४
 तैः सार्धं पर्वताकारैर्वानैर्भीमविक्रमैः ।
 सुग्रीवः शीघ्रमागत्य बबन्धे राघवं तदा ॥ ६५
 लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामं भ्रातरमब्रवीत् ।
 प्रसादं कुरु सुग्रीवे विनीते चाधुना नृप ॥ ६६

मुझे दुष्टनें ही ठीक-ठीक घटती-सी दीख रही है। संसारमें जो मनुष्योंचित सद्ब्यवहारका ज्ञान रखनेवाले हैं, उन सर्वज्ञ महात्माओंमेंसे मैं किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो लोकमें दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारको न मानता हो। शास्त्रोंमें महापातकी पुरुषोंके भी उद्धारका उपाय (प्रायश्चित्त) देखा गया है, किन्तु दुष्ट वानर! कृतघ्न पुरुषको उद्धारका उपाय मैंने पहले कभी नहीं देखा है। इसलिये तुझे कभी कृतघ्नता नहीं करनी चाहिये। अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पाद कर। अब आ, तैरे हितकी रक्षा करनेवाले ककुत्स्थकुलनन्दन भगवान् श्रीरामको शरणमें चल। वानर! यदि तू नहीं आना चाहता तो यह श्रीरामका वचन सुन। [उन्होंने कहा है—] 'मैं वालिवकी ही भाँति सुग्रीवको भी यमपुर भेज दूँगा। जिससे वानरराज वालि मारा गया है, वह बाण अब भी मेरे पास मौजूद है' ॥ ४१—५३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर कपिराज सुग्रीव मन्त्रीको प्रेरणासे बाहर निकले। उन्होंने लक्ष्मणको प्रणाम किया और उन महाभासे कहा—'महाभाग! हमारे अज्ञानवश किये हुए अपराधोंको आप क्षमा करें। मैंने उस समय अमिततेजस्वी राजा रामचन्द्रके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, उसका अब भी उल्लङ्घन नहीं करूँगा। महावीर राजकुमार! मैं अब समस्त वानरोंको साथ लेकर आपके साथ श्रीरामके पास चलूँगा। मुझे यहाँ देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुझसे जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं शिरोधार्य करके निस्संदेह पूर्ण करूँगा। राजन्! मेरे यहाँ बड़े-बड़े वीर वानर हैं। उन सबको मैं सीताजीकी खोज करनेके लिये समस्त दिशाओंमें भेजूँगा' ॥ ५४—५९ ॥

वानरराज सुग्रीवके यों कहनेपर लक्ष्मणने कहा—'आओ! अब यहाँसे शीघ्र ही श्रीरामके पास चलें। वीर! महामते। वानरों और भालुओंकी सेना भी बुला लो, जिसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुमपर प्रसन्न हों।' लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी सुग्रीवने पास ही खड़े हुए युवराज अङ्गदसे इशारेमें कुछ कहा। अङ्गदने भी जाकर सेनाका संचालन करनेवाले सेनापतिको प्रेरित किया। सेनापतिके बुलानेसे पर्वत, कन्दरा और वृक्षोंपर रहनेवाले करोड़ों वानर आये। पर्वतोंके समान आकारवाले उन भयंकर पराक्रमी वानरोंके साथ सुग्रीवने उस समय शोधतापूर्वक पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। साथ ही लक्ष्मणजीने भी अपने भाईको प्रणाम करके कहा—'राजन्! इन विनयशील सुग्रीवपर अब आप कृपा करें' ॥ ६०—६६ ॥

इत्युक्तो राघवस्तेन भ्रात्रा सुग्रीवमब्रवीत् ।
 आगच्छात्र महावीर सुग्रीव कुशलं तव ॥ ६७
 श्रुत्वेत्थं रामवचनं प्रसन्नं च नराधिपम् ।
 शिरस्यञ्जलिमाधाय सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥ ६८
 तदा मे कुशलं राजन् सीतादेवी तव प्रभो ।
 अन्विष्य तु यदा दत्ता मया भवति नान्यथा ॥ ६९
 इत्युक्ते वचने तेन हनूमान्मारुतात्पजः ।
 नत्वा रामं बभाषैनं सुग्रीवं कपिनायकम् ॥ ७०
 शृणु सुग्रीव मे वाक्यं राजाय दुःखितो भृशम् ।
 सीतावियोगेन च सदा नाश्नाति च फलादिकम् ॥ ७१
 अस्य दुःखेन सततं लक्ष्मणोऽयं सुदुःखितः ।
 एतयोरत्र यावस्था तां श्रुत्वा भरतोऽनुजः ॥ ७२
 दुःखी भवति तद्दुःखाद्दुःखं प्राप्नोति तज्जनः ।
 यत एवमतो राजन् सीतान्वेषणमाचर ॥ ७३
 इत्युक्ते वचने तत्र वायुपुत्रेण धीमता ।
 जाम्बवानतितेजस्वी नत्वा रामं पुरःस्थितः ॥ ७४
 स प्राह कपिराजं तं नीतिमान् नीतिमद्बुधः ।
 यदुक्तं वायुपुत्रेण तत्तथेत्यवगच्छ भोः ॥ ७५
 यत्र क्वापि स्थिता सीता रामभार्या यशस्विनी ।
 पतिव्रता महाभागा वेदेही जनकात्मजा ॥ ७६
 अद्यापि वृत्तसम्पन्ना इति मे मनसि स्थितम् ।
 न हि कल्याणचिन्तायाः सीतायाः केनचिद्भुवि ॥ ७७
 पराभवोऽस्ति सुग्रीव प्रेषयादौव वानरान् ।
 इत्युक्तस्तेन सुग्रीवः प्रीतात्मा कपिनायकः ॥ ७८
 पश्चिमायां दिशि तदा प्रेषयामास तान् कपीन् ।
 अन्वेष्टुं रामभार्यां तां महाबलपराक्रमः ॥ ७९
 उत्तरस्यां दिशि तदा नियुतान् वानरानसी ।
 प्रेषयामास धर्मात्मा सीतान्वेषणकर्मणि ॥ ८०

भाई लक्ष्मणके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—'महावीर सुग्रीव! यहाँ आओ। कहो, कुशल तो है न?' श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा कथन सुनकर और उन नरेशको प्रसन्न जानकर सुग्रीवने सिरपर अञ्जलि जोड़ उभरते कहा—'राजन्! प्रभो! मेरे कुशल तो ठीकी होगी, जब मैं सीतादेवीको ढूँढ़कर आपको अर्पित कर दूँ; नहीं तो नहीं' ॥ ६७—६९ ॥

सुग्रीवने जब यह बात कही, तब पवनकुमार हनूमान्जी श्रीरामको नमस्कार करके कपिराज सुग्रीवसे बोले—'सुग्रीव! आप मेरी बात सुनें। ये राजा श्रीरामचन्द्रजी सीताके वियोगसे सदा ही बहुत दुःखी रहते हैं, इसीलिये फल आदिका भी आहार नहीं करते। इन्हींके दुःखसे ये लक्ष्मण भी सदा अत्यन्त दुःखित रहा करते हैं। इन दोनोंकी यहाँ जो अवस्था है, उसे सुनकर इनके छोटे भाई भरत भी दुःखी होते हैं और उनके दुःखसे वहँकि सभी लोग दुःखमें पड़े रहते हैं। राजन्! चूँकि ऐसी स्थिति है, अतः आप बहुत शीघ्र सीताकी खोज कराइये' ॥ ७०—७३ ॥

बुद्धिमान् वायुनन्दनके यों कहनेपर अत्यन्त तेजस्वी जाम्बवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। ये नीतिज्ञ थे, अतः कपिराज सुग्रीवसे नीतियुक्त वचन बोले—'सुग्रीव! हनुमान्जीने जो कहा है, उसे आप ठीक ही समझें। श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी भार्या विदेहकुलनन्दिनी जनककुमारी महाभागा पतिव्रता सीता जहाँ कहीं भी होंगी, आज भी सदाचारसे सम्पन्न होंगी—यह विचार मेरे मनमें निश्चितरूपसे जमा हुआ है। सुग्रीव! सदा कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीमें ही मन लगावे रहनेवाली सीताजीका इस पृथ्वीपर किसीके द्वारा भी पराभव नहीं हो सकता। इसलिये आप अभी वानरोंको भेजें' ॥ ७४—७७ ॥

जाम्बवान्के इस प्रकार कहनेपर महान् बल और पराक्रमसे युक्त कपिराज सुग्रीवने प्रसन्न हो सीताकी खोजके लिये बहुत-से वानरोंको पश्चिम दिशामें भेजा तथा उन धर्मात्माने उत्तर दिशामें भी सीताको ढूँढ़नेके निमित्त एक लाख वानरोंको उसी समय भेज दिया।

पूर्वस्यां दिशि कपींश्च कपिराजः प्रतापवान् ।
 प्रेषयामास रामस्य सुभार्यान्वेषणाय वै ॥ ८१
 इति तान् प्रेषयामास वानरान् वानराधिपः ।
 सुग्रीवो वालिपुत्रं तमङ्गदं ग्राह बुद्धिमान् ॥ ८२
 त्वं गच्छ दक्षिणं देशं सीतान्वेषणकर्मणि ।
 जाम्बवांश्च हनूमांश्च मैन्दो द्विविद एव च ॥ ८३
 नीलाद्याश्चैव हरयो महाबलपराक्रमाः ।
 अनुयास्यन्ति गच्छन्तं त्वामद्य मम शासनात् ॥ ८४
 अचिरादेव यूयं तां दृष्ट्वा सीतां यशस्विनीम् ।
 स्थानतो रूपतश्चैव शीलतश्च विशेषतः ॥ ८५
 केन नीता च कुत्रास्ते ज्ञात्वात्रागच्छ पुत्रक ।
 इत्युक्तः कपिराजेन पितृव्येण महात्मना ॥ ८६
 अङ्गदस्तूर्णमुत्थाय तस्याङ्गां शिरसा दधे ।
 इत्युक्ते दूरतः स्थाप्य वानरानथ जाम्बवान् ॥ ८७
 रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं माठतात्मजम् ।
 एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान् नीतिमद्वचः ॥ ८८
 श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि ।
 श्रुत्वा च तद्गुहाण त्वं रोचते यत्रुपात्मज ॥ ८९
 रावणेन जनस्थानाग्रीयमाना तपस्विनी ।
 जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता ॥ ९०
 भूषणानि च दृष्टानि तथा क्षिप्तानि तेन वै ।
 तान्यस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च ॥ ९१
 जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय ।
 एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा ॥ ९२
 रावणेन महाबाहो लङ्कायां वर्तते तु सा ।
 त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वदुःखेन सुदुःखिता ॥ ९३
 रक्षन्ती यत्नतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा ।
 त्वद्गुह्यानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना ॥ ९४

इसो प्रकार प्रतापी वानरराजने पूर्व दिशामें भी रामकी श्रेष्ठ भार्या सीताका अन्वेषण करनेके लिये बहुत-से वानर भेजे। बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवने इस प्रकार वानरोंको भेज लेनेके बाद वालिकुमार अङ्गदसे कहा—'अङ्गद! तुम सीताको खोज करनेके लिये दक्षिण दिशामें जाओ। मेरी आज्ञासे आज तुम्हारे चलते समय तुम्हारे साथ जाम्बवान्, हनूमान्, मैन्द, द्विविद और नील आदि महाबली एवं महापराक्रमी वानर जायेंगे। बेटा! तुम सभी लोग बहुत सोच जाकर यशस्विनी सीताका दर्शन करो और यह भी पता लगाओ, 'वे कैसे स्थानमें हैं, किस रूपमें हैं? विशेषतः उनका आचरण कैसा है? कौन उन्हें ले गया है? क्या उसने उन्हें काँटों रखा है?'—यह सब जानकर शीघ्र लौट आओ" ॥ ७८—८५ १/२ ॥

अपने चाचा महाराज सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान् ने सब वानरोंको कुछ दूर छाड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जोंको एक जगह करके उनमें यह नीतिगुरु बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी! सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जाया जाता हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हम लोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! ये इस समय लङ्कामें हो हैं। वहाँ रहकर भी वे आपके ही दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्कामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने प्राणोंको धारण करती हुई

स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपरायणा ।
 हितमेव च ते राजब्रुदधैर्लङ्घने क्षमम् ॥ ९५
 वायुपुत्रं हनुमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।
 त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥ ९६
 तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते ।
 बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥ ९७
 क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा ।
 उक्ते जाम्बवतीं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते ॥ ९८
 वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात् ।
 वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ ९९
 शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज ।
 अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान् ॥ १००
 पितुरादेशमादाय भ्रातृभार्यासमन्वितः ।
 प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्धर्मपरायणः ॥ १०१
 सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान् ।
 अस्य भार्या हुता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥ १०२
 तद्वियोगजदुःखार्तो विचिन्वन्स्तां बने बने ।
 त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमथं वीरः प्रतापवान् ॥ १०३
 एतेन सह संगम्य समयं चापि कारितम् ।
 अनेन निहतः शत्रुर्मम वालिमहाबलः ॥ १०४
 अस्य प्रसादेन कपे राज्यं प्राप्तं मयायुना ।
 मया च तत्प्रतिज्ञातमस्य साहाय्यकर्मणि ॥ १०५
 तत्सत्यं कर्तुमिच्छामि त्वद्वलान्मारुतात्मज ।
 उत्तीर्य सागरं वीर दृष्ट्वा सीतामनिन्दिताम् ॥ १०६
 भूयस्तर्तुं बलं नास्ति वानराणां त्वया विना ।
 अतस्त्वमेव जानासि स्वामिकार्यं महामते ॥ १०७
 बलवाग्रीतिमांश्चैव दक्षस्त्वं दीत्यकर्मणि ।
 तेनैवमुक्तो हनुमान् सुग्रीवेण महात्मना ॥ १०८
 स्वामिनोऽर्थं न किं कुर्यामीदृशं किं नु भाषसे ।
 इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामस्तं पुरतः स्थितम् ॥ १०९

प्रायः आपके ही वियोग-दुःखमें डूबी रहती हैं। इसलिये राजन्! इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा हूँ, आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनुमान्जीको आज्ञा दें, क्योंकि ये ही समुद्र लौघनेमें समर्थ हैं और सुग्रीव! आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्जीको ही वहाँ भेजें क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा हे वीर! इनके बराबर किसीका बल भी नहीं है। यम, मेरे मनमें यही विचार है। मेरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा ॥ ८६—९७ १/४ ॥

जाम्बवान्के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्जीके निकट जाकर उनसे बोले— ॥ ९८ ९९ ॥

“पवनकुमार वीर हनुमान्जी! तुम मेरी बात सुनो। ये प्रतापी राजा श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकु वंशके भूषण हैं। ये अपने पिताको आज्ञा मानकर भाई और पत्नीके सहित दण्डकारण्यमें चले आये थे। सदैव धर्ममें तत्पर रहनेवाले ये श्रीराम समस्त लोकोके ईश्वर और सबके आत्मा साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं। इस समय मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इनकी धर्मपत्नी सीताको दुष्ट दुरात्मा रावणने हर लिया है। ये प्रतापी वीर राजा उन्हींके वियोगजन्य दुःखसे पीड़ित हो वन-वनमें उन्हींकी खोज करते हुए आ रहे थे, जबकि तुमने इन्हें पहले-पहल देखा था। इनके साथ मिलकर हमने प्रतिज्ञा भी की थी। इन्होंने मेरे सन्तु महाबली वालिका वध किया तथा कपे। इन्हींकी कृपासे मैंने इस समय अपना राज्य प्राप्त किया है और मैंने भी इनकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है। पवननन्दन! मैं अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम्हारे ही बलपर पूर्ण करना चाहता हूँ। वीर! समुद्रके पार जा पतिव्रता सीताको देखकर पुनः समुद्रके इस पार लौट आनेकी सामर्थ्य तुम्हारे सिवा वानरोंमेंसे किसीमें भी नहीं है। अतः महामते! तुम्हीं अपने स्वामीके कार्यको ठीक-ठीक जान सकते हो; क्योंकि तुम बलवान्, नीतिज्ञ और दूतकर्ममें दक्ष हो” ॥ १००—१०७ १/४ ॥

महात्मा सुग्रीवके यों कहनेपर हनुमान्जी बोले— ‘आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? भला, अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका कार्य क्या मैं नहीं करूँगा?’ वायुनन्दनके

प्राह वाक्यं महाबाहुर्वाप्यसम्पूर्णलोचनः ।
सीतां स्मृत्वा सुदुःखार्तः कालयुक्तमभिप्रजित् ॥ ११०
त्वयि भारं समारोप्य समुद्रतरणादिकम् ।
सुग्रीवः स्थाप्यते ह्यत्र मया सार्धं महामते ॥ १११
हनूमस्तत्र गच्छ त्वं मत्प्रीत्यै कृतनिश्चयः ।
ज्ञातीनां च तथा प्रीत्यै सुग्रीवस्य विशेषतः ॥ ११२
प्रायेण रक्षसा नीता भार्या मे जनकात्मजा ।
तत्र गच्छ महावीर यत्र सीता व्यवस्थिता ॥ ११३
यदि पृच्छति सादृश्यं यदाकारमशेषतः ।
अतो निरीक्ष्य मां भूयो लक्ष्मणं च ममानुजम् ॥ ११४
ज्ञात्वा सर्वाङ्गं लक्ष्म सकलं चावयोरिह ।
नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे मनसि स्थितम् ॥ ११५
इत्युक्तो रामदेवेन प्रभञ्जनमुतो बलो ।
उत्थाय तत्पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिरुवाच तम् ॥ ११६
जानामि लक्षणं सर्वं युधयोस्तु विशेषतः ।
गच्छामि कपिभिः सार्धं त्वं शोकं मा कुण्ठ्य वै ॥ ११७
अन्यच्च देहभिक्षां विद्यासो येन मे भवेत् ।
सीतायास्तव देव्यास्तु राजन् राजीवलोचन ॥ ११८
इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामः कमललोचनः ।
अङ्गुलीपकमुमुच्य दत्तवान् रार्धार्चितम् ॥ ११९
तदगृहीत्वा तदा सोऽपि हनूमान्मारुतात्मजः ।
रामं प्रदक्षिणीकृत्य लक्ष्मणं च कपीश्वरम् ॥ १२०
नत्वा ततो जगामाशु हनूमानञ्जनीसुतः ।
सुग्रीवोऽपि च ताञ्छ्रुत्वा वानरान् गन्तुमुद्यतान् ॥ १२१
आज्ञेयानाज्ञापयति वानरान् बलदर्शितान् ।
शृण्वन्तु वानराः सर्वे शासनं मम भाषितम् ॥ १२२
विलम्बनं न कर्तव्यं युष्माभिः पर्वतादिषु ।
हृतं गत्वा तु तां वीक्ष्य आगन्तव्यमनिन्दिताम् ॥ १२३
रामपत्नीं महाभागां स्थास्येऽहं रामसंनिधौ ।
कर्तनं वा करिष्यामि अन्यथा कर्णनासयोः ॥ १२४

इस प्रकार उत्तर देनेपर शत्रुविजयी महाबाहु राम सीताकी यादसे अपना दुःखी हो, आँखोंमें आँसू भरकर, सामने बैठे हुए हनुमान्जीसे समयोचित वचन बोले—'महामते! मैं समुद्रके पार जाने आदिका भार तुम्हारे ही ऊपर रखकर सुग्रीवको अपने साथ रखता हूँ। हनूमन्! तुम मेरो, इन वानर-बन्धुओंकी और विशेषतः सुग्रीवकी प्रसन्नताके लिये दृढ़ निश्चय करके यहाँ (रङ्गनामें) जाओ। महावीर! प्रायः यही जान पड़ता है कि रावण नामक रक्षस ही सीताको ले गया है; अतः जहाँ सीता रखी गयी हो, वहाँ जाना। यदि मे पूछें कि 'तुम जिनके पाससे आते हो, उन श्रीराम और लक्ष्मणका स्वरूप कैसा है?' तो इसका उत्तर देनेके लिये तुम मेरे शरीरको तथा मेरे छोटे भाई लक्ष्मणको भी अच्छी तरह देख लो। हम दोनोंके शरीरका इत्येक चिह्न देखकर उनसे बताना। नहीं तो सीता तुमपर विश्वास नहीं कर सकती—यह मेरे मनका दृढ़ विचार है' ॥ १०८—११५ ॥

भगवान् श्रीरामके यों कहनेपर महाबली वायुनन्दन हनुमान् उठकर उनके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले—'मैं आप दोनोंके सब लक्षण विशेषरूपसे जानता हूँ; अब मैं वानरोंके साथ जा रहा हूँ, आप खेद न करें। कमललोचन राजन्! इसके अतिरिक्त आप मुझे कोई पहचानकी वस्तु दीजिये, जिससे आपकी महारानी सीताका मुझपर विश्वास हो' ॥ ११६—११८ ॥

वायुनन्दन हनुमान्के इस प्रकार अनुरोध करनेपर कमलनयन श्रीरामने अपनी अँगूठी निकालकर दे दी जिसपर 'राम' नाम खुदा हुआ था। उसे लेकर पवनकुमार हनुमान्ने भी श्रीराम, लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीवकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रणमकर वे अञ्जनीनन्दन हनुमान् वहींसे शीघ्रतापूर्वक चले। तब सुग्रीव भी अपने आज्ञाकारी एवं कर्तृभिमान श्रीरामके विषयमें यह जानकर कि वे जानैके लिये उद्यत हैं, उन्हें आदेश देते हुए बोले—'सभी वानर इस समय मेरी आज्ञा सुन लें—तुम पर्वतों और वनोंमें विलम्ब मत जाना। शीघ्र जाकर महाभागा रामपत्नी पतिव्रता सीताका पता लगाकर लौट आना; मैं श्रीरामपदजी-के पास ठहरता हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाके विपरीत चलोगे तो मैं तुम्हारी नाक और कान काट लूँगा' ॥ ११९—१२४ ॥

एवं तान् प्रेषयित्वा तु आज्ञापूर्वं कपीश्वरः ।
 अथ ते वानरा याताः पश्चिमादिषु दिक्षु वै ॥ १२५
 ते सानुषु समस्तेषु गिरीणामपि मूर्धसु ।
 नदीतीरेषु सर्वेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १२६
 कन्दरेषु च सर्वेषु वनेषूपवनेषु च ।
 वृक्षेषु वृक्षगुल्मेषु गुहासु च शिलासु च ॥ १२७
 सह्यपर्वतपार्श्वेषु विन्ध्यसागरपार्श्वयोः ।
 हिमवत्यपि शैले च तथा किम्पुरुषादिषु ॥ १२८
 मनुदेशेषु सर्वेषु सप्तपातालकेषु च ।
 मध्यदेशेषु सर्वेषु कश्मीरेषु महाबलाः ॥ १२९
 पूर्वदेशेषु सर्वेषु कामरूपेषु कोशले ।
 तीर्थस्थानेषु सर्वेषु सप्तकोट्यणकेषु च ॥ १३०
 यत्र तत्रैव ते सीतामदृष्ट्वा पुनरागताः ।
 आगत्य ते नमस्कृत्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ १३१
 सुग्रीवं च विशेषेण नास्माभिः कमलेक्षणा ।
 दृष्ट्वा सीता महाभागेत्युक्त्वा तांस्तत्र तस्थिरे ॥ १३२
 ततस्तं दुःखितं प्राह रामदेवं कपीश्वरः ।
 सीता दक्षिणादिग्भागे स्थिता ब्रह्मं वने नृप ॥ १३३
 शक्या वानरसिंहेन वायुपुत्रेण धीमता ।
 दृष्ट्वा सीतामिहायाति हनुमात्रात्र संशयः ॥ १३४
 स्थितो भव महाबाहो राम सत्यमिदं वचः ।
 लक्ष्मणोऽप्याह शकुनं तत्र वाक्यमिदं तदा ॥ १३५
 सर्वथा दृष्टसीतस्तु हनुमानागमिष्यति ।
 इत्याश्वास्य स्थितौ तत्र रामं सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ १३६
 अथाङ्गदं पुरस्कृत्य ये गता वानरोत्तमाः ।
 यत्नादन्वेषणार्थाय रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ १३७
 अदृष्ट्वा श्रममापन्नाः कृच्छ्रभूतास्तदा वने ।
 भक्षणेन विहीनास्ते क्षुधया च प्रपीडिताः ॥ १३८
 भ्रमद्भिर्गहनेऽरण्ये कापि दृष्ट्वा च सुप्रभा ।
 गुहानिवासिनीं सिद्धा ऋषिपत्नीं ह्यनिन्दिता ॥ १३९
 सा च तानागतान्दृष्ट्वा स्वाश्रमं प्रति वानरान् ।
 आगताः कस्य यूयं तु कुतः किं नु प्रयोजनम् ॥ १४०

कपिराज सुग्रीवने इस प्रकार आज्ञापूर्वक उन्हें भेजा और वे वानर पश्चिम आदि दिशाओंमें चला पड़े। समस्त पर्वतोंके सानुओं (उपत्यकाओं) और शिखरोंपर, सारी नदियोंके तटोंपर, मुनियोंके आश्रमोंमें, खड्डोंमें, सब प्रकारके वनों और उपवनोमें, वृक्षों और झाड़ियोंमें, कन्दराओं तथा शिलाओंमें, सह्यपर्वतके आस-पास, विन्ध्याचल और समुद्रके निकट, हिमालय पर्वतपर किम्पुरुष आदि देशोंमें, समस्त मानवीय प्रदेशोंमें, सातों पातालोंमें, सम्पूर्ण मध्यप्रदेशोंमें, कामरूपमें, पूर्वदिशाके सारे देशोंमें, कामरूप (आसाम) और कोशल (अवध)-में, सम्पूर्ण तीर्थ-स्थानोंमें तथा सातों कोट्युण देशोंमें भी जहाँ-तहाँ सर्वत्र सीताको खोज करते हुए वे महाबली वानर उन्हें न पाकर लौट आये। आकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें तथा विशेषतः सुग्रीवको प्रणाम किया और यह कहकर कि 'हमने कमललोचना महाभाग। सीताको कहीं नहीं देखा', वहाँ खड़े हो गये ॥ १२५—१३२ ॥

तब दुःखित हुए भगवान् रामसे कपिराज सुग्रीवने कहा—'राजन्। सीताजी दक्षिण दिशामें ही वनमें स्थित हैं; उन्हें वानरब्रह्म बुद्धिमान् पवनकुमार ही देख सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि हनुमान्जी सीताको देखकर ही आयेंगे। महाबाहु श्रीराम! आप धैर्य धारण करें, मेरा यह कथन बिलकुल सत्य है।' तब लक्ष्मणने भी शकुन देखकर यह बात कही—'हनुमान् सर्वथा सीताको देखकर ही आयेंगे।' इस प्रकार सुग्रीव और लक्ष्मण भगवान् श्रीरामको सान्त्वना देते हुए उनके पास रहने लगे ॥ १३३—१३६ ॥

इधर जो-जो ब्रह्म वानर अङ्गदजीको आगे करके यशस्विनी श्रीसीताजीको यत्रपूर्वक खोज करनेके लिये गये थे, वे वनमें कहीं भी सीताजीका पता न पाकर बहुत थक गये तथा कष्टमें पड़ गये। यही नहीं, कुछ भोजन न मिलनेके कारण वे भूखसे भी बहुत पीड़ित हो गये। गहन वनमें घूमते हुए उन्होंने एक परम कान्तिमयी और उत्तम गुणोंवाली ऋषिपत्नी देखी, जो कन्दरामें निवास करनेवाली और सिद्धा थी। उसने उन वानरोंको अपने आश्रमपर आया देख पूछा—'आप लोग किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? और यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' ॥ १३७—१४० ॥

इत्युक्ते जाम्बवानाह तां सिद्धां सुमहामतिः ।
 सुग्रीवस्य वयं भृत्या आगता ह्यत्र शोभने ॥ १४१
 रामभार्याधर्मनघे सीतान्वेषणकर्मणि ।
 कां दिग्भूता निराहारा अद्भुता जनकात्मजाम् ॥ १४२
 इत्युक्ते जाम्बवत्यत्र पुनस्तानाह सा शुभा ।
 जानामि रामं सीतां च लक्ष्मणं च कपीश्वरम् ॥ १४३
 भुञ्जीध्वमत्र ये दत्तमाहारं च कपीश्वराः ।
 रामकार्यागतास्त्वत्र यूयं रामसमा मम ॥ १४४
 इत्युक्त्वा चामृतं तेषां योगादत्वा तपस्विनी ।
 भोजयित्वा यथाकामं भूयस्तानाह तापसी ॥ १४५
 सीतास्थानं तु जानाति सम्पातिनां पक्षिराट् ।
 आस्थितो वै वने सोऽपि महेन्द्रे पर्वते द्विजः ॥ १४६
 मार्गेणानेन हरपस्तत्र यूयं गमिष्यथ ।
 स वक्ति सीतां सम्पातिदूरदर्शी तु यः खगः ॥ १४७
 तेनादिष्टं तु पन्थानं पुनरासाद्य गच्छथ ।
 अवश्यं जानकीं सीतां द्रक्ष्यते पवनात्मजः ॥ १४८
 तथैवमुक्ताः कपयः परां प्रीतिमुपागताः ।
 हृष्टास्तेजनमापन्नास्तां प्रणम्य प्रतस्थिरे ॥ १४९
 महेन्द्राद्रिं गता वीरा वानरास्तद्दिक्षुः ।
 तत्र सम्पातिमासीनं दृष्ट्वन्तः कपीश्वराः ॥ १५०
 तानुवाचाथ सम्पातिर्वानराणागतान्द्विजः ।
 के यूयमिति सम्प्राप्ताः कस्य वा द्यूत मा चिरम् ॥ १५१
 इत्युक्ते वानरा ऊचुर्यथावृत्तमनुक्रमत् ।
 रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि ॥ १५२
 प्रेषिताः कपिराजेन सुग्रीवेण महात्मना ।
 त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनाद्द्विजः ॥ १५३
 सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महामते ।
 इत्युक्तो वानरैः श्येनो वीक्षांचक्रे सुदक्षिणाम् ॥ १५४

उसकी बात सुनकर महामति जाम्बवान्ने उस सिद्धा तपस्विनीसे कहा—'शोभने! पापहीने! हम सुग्रीवके भृत्य हैं, श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताको खोज करनेके लिये यहाँ आये हैं। हम किस दिशाको जायें, इसका ज्ञान हमें नहीं रह गया है। सीताजीका पता न पानेके कारण अभी तक हमने कुछ भोजन भी नहीं किया है' ॥ १४१-१४२ ॥

जाम्बवान्ने यों कहनेपर उस कल्याणी तपस्विनीने पुनः उन वानरोंसे कहा—'मैं श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और कपिराज सुग्रीवको भी जानती हूँ। वानरेन्द्रगण! आप लोग यहाँ मेरा दिया हुआ आहार ग्रहण करें। आप लोग श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे यहाँ आये हैं, अतः हमारे लिये श्रीरामचन्द्रजीके सम्मान ही आदरणीय हैं।' यों कहकर उस तपस्विनीने अपने योगबलसे उन वानरोंको अमृतमय मधुर पदार्थ अर्पित किया तथा यथेष्ट भोजन कराकर पुनः उनसे कहा—'सीताका स्थान पक्षिराज सम्पातिको ज्ञात है। वे इसी वनमें महेन्द्रपर्वतपर रहते हैं। वानरगण! आप लोग इसी मार्गसे वहाँ पहुँच जायेंगे। सम्पाति बहुत दूर तक देखनेवाले हैं, अतः वे सीताका पता बता देंगे। उनके बताये हुए मार्गसे आप लोग पुनः आगे जाइयेगा। जनकनन्दिनी सीताको ये पवनकुमार हनुमान्जी अवश्य देख लेंगे' ॥ १४३-१४८ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर वानरगण बहुत ही प्रसन्न हुए; उन्हें बड़ा उत्साह मिला। फिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे वीर कपीश्वर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ बैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए वानरोंसे कहा—'आप लोग कौन हैं? किसके दूत हैं? वहाँसे आये हैं? जोध बतायें' ॥ १४९-१५१ ॥

सम्पातिके यों पूछनेपर वानरोंने सारा समाचार यथार्थरूपसे क्रमशः बताया आरम्भ किया—'पक्षिराज! हम सब श्रीरामचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुग्रीवने हमें सीताजीकी खोजके लिये भेजा है। पक्षिवर! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामते! महाभाग! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।' वानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गूढ़ सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दीक्षायी और पतिव्रता

सीतां दृष्ट्वा स लङ्कायामशोकाख्ये महावने ।
स्थितेति कथितं तेन जटायुस्तु मृतस्तथ ॥ १५५

भ्रातेति चोचुः स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम् ।
योगमास्थाय स्वं देहं विसर्ज्य महामतिः ॥ १५६

ततस्तं वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम् ।
गत्वा महेन्द्रशृङ्गं ते तमारुह्य क्षणं स्थिताः ॥ १५७

सागरं वीक्ष्य ते सर्वे परस्परमथाब्रुवन् ।
रावणेनैव भार्या सा नीता रामस्य निश्चितम् ॥ १५८

सम्पातिवचनादद्य संज्ञातं सकलं हि तत् ।
वानराणां तु कश्चात्र उत्तीर्य लवणोदधिम् ॥ १५९

लङ्कां प्रविश्य दृष्ट्वा तां रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं ब्रूत हि शोभनाः ॥ १६०

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः ।
सागरोत्तरणं किंतु कार्यमन्यस्य सम्भवेत् ॥ १६१

तत्र दक्षोऽयमेवात्र हनुमानिति मे मतिः ।
कालक्षेपो न कर्तव्यो मासार्धमधिकं गतम् ॥ १६२

यद्यदृष्ट्वा तु गच्छामो वैदेहीं वानरर्षभाः ।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृन्तति कपीश्वरः ॥ १६३

तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्माभिर्वायुपुत्रस्तु मे मतिः ।
इत्युक्तास्ते तथेत्यूचुर्वानरा वृद्धवानरम् ॥ १६४

ततस्ते प्रार्थयामासुर्वानराः पवनात्मजम् ।
हनुमन्तं महाप्राज्ञं दक्षं कार्येषु चाधिकम् ॥ १६५

गच्छ त्वं रामभृत्यस्त्वं रावणस्य भयाय च ।
रक्षस्व वानरकुलमस्माकमञ्जुनीसुत ।

इत्युक्तस्तांस्तथेत्याह वानरान् पवनात्मजः ॥ १६६

सीताको देखकर बताया—'सीताजी लङ्कामें अशोकवनके भीतर टहरो हुई हैं।' तब वानरोंने कहा—'आपके भाता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।' यह सुनकर महामति सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी और योगधारणाका आग्रह तब अपने शरीरको त्याग दिया ॥ १५२—१५६ ॥

तदनन्तर वानरोंने सम्पातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाञ्जलि दे, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके शिखरपर आरुढ़ हो, शवभर खाड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर देख वे सभी परस्पर कहने लगे—'रावणने ही भगवान् श्रीरामकी भार्या सीताका अपहरण किया है, यह बात निश्चित हो गयी। सम्पातिके वचनसे आज सब बातें ठीक-ठीक ज्ञात हो गयीं। शोभाशाली वानरो! अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा वीर है, जो इस क्षर समुद्रके पार जा लङ्कामें पुसे और परम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेमें समर्थ हो सके' ॥ १५७—१६० ॥

वानरोंकी यह बात सुनकर जाम्बवान्ने कहा—'समुद्रको पार करनेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम वानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारमें तो यह जाता है कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें केवल हनुमान्जी ही समर्थ हैं। अब समय नहीं खोना चाहिये। हमारे लौटनेकी जो नियत अवधि थी। इससे पंद्रह दिन अधिक बीत गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट आयेंगे तो ऊपरि राज सुग्रीव हमारे नाक और कान काट लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनुमान्जीसे ही प्रार्थना करें' ॥ १६१—१६३ ॥

यह सुनकर उन वानरोंने वृद्ध जाम्बवान्जीसे कहा, 'अच्छ, ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् वे सभी वानर कार्यसाधनमें विशेष कुशल महाबुद्धिमान् पवननन्दन हनुमान्जीसे प्रार्थना करने लगे—'अञ्जनीनन्दन! आप श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय सेवक हैं। आप ही रावणको भय देनेके लिये लङ्कामें जायें और हमारे वानरकुलकी रक्षा करें।' वानरोंके यों कहनेपर पवनकुमार हनुमान्जीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। एक तो श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी,

रामप्रयुक्तश्च पुनः स्वभर्तुणा
पुनर्महिन्द्रे कपिभिश्च नोदितः।
गन्तुं प्रचक्रे मतिमञ्जनीसुतः
समुद्रमुत्तीर्य निशाचरालयम् ॥ १६७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामकण्डोर्ध्वे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामायण'का कथाविवरण 'रामकण्ड' अष्टमः पुरा हुआ ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

हनुमान्जीका समुद्र पार करके लङ्कामें जाना, सीतासे भेंट और
लङ्काका दहन करके श्रीरामको समाचार देना

मार्कण्डेय उवाच

स तु रावणनीतायाः सीतायाः परिमार्गणम्।
इयेष पदमन्येष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥

अञ्जलिं प्राङ्मुखं कृत्वा सगणायात्मयोनये।
मनसाऽऽबन्ध रापं च लक्ष्मणं च महारथम् ॥ २ ॥

सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः।
ज्ञातींश्चैव परिष्वज्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥ ३ ॥

अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुण्यवायुनिषेवितम्।
पुनरागमनायेति वानरैरभिपूजितः ॥ ४ ॥

अञ्जसा स्वं तथा वीर्यमाविवेशाय वीर्यवान्।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणाः ॥ ५ ॥

सम्पूर्णमिव चात्मानं भावयित्वा महाबलः।
उत्पपात गिरेः शृङ्गात्रिष्वीड्य गिरिमध्वरम् ॥ ६ ॥

पितुर्मार्गेण यातस्य वायुपुत्रस्य धीमतः।
रामकार्यपरस्यास्य सागरेण प्रचोदितः ॥ ७ ॥

विश्रामार्थं समुत्तस्थौ मैनाको लवणोदधेः।
तं निरीक्ष्य निषीड्याथ रयात्सम्भाष्य सादरम् ॥ ८ ॥

फिर अपने स्वामी सुग्रीवने भी आदेश दिया था, इसके बाद महेन्द्रपर्वतपर उन वानरोंने भी उन्हें प्रेरित किया, अतः अञ्जनीकुमार हनुमान्जीने समुद्र लाँचकर निशाचरपुरी लङ्कामें जानेका निश्चय कर लिया ॥ १६४—१६७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हनुमान्जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताको खोज करने तथा उनके स्थानका पता लगानेके लिये चारणोंके मार्ग (आकाश) से जानेकी इच्छा की। पूर्वाभिमुख हो, हाथ जोड़कर उन्होंने देवगणोंसहित आत्मयौनि ब्रह्माजीको मन ही मन प्रणाम किया तथा शीरम और महारथी लक्ष्मणको भी मनसे ही प्रणाम करके सागर तथा सरिताओंको मस्तक नवाया। फिर अपने वानर-बन्धुओंको गले लगाकर उन सबकी प्रदक्षिणा की। तब अन्य सब वानरोंने यह आशीर्वाद दिया—'खो! तुम (सकुशल) लौट आनेके लिये पवित्र वायुसे सेवित मार्गपर बिना विघ्न-बाधाके जाओ।' यों कहकर उन्होंने हनुमान्जीका सम्मान किया। फिर पराक्रमी पवनकुमार अपनी सहज शक्तिको प्राप्त हुए—उनमें वायुके सदृश बलका आवेश हो गया। दूरतकके मार्गका अवलोकन करते हुए उन्होंने ऊपर दृष्टि डाली। अपने-आपमें यहविध ऐश्वर्यकी पूर्णताका-सा अनुभव करते हुए वे महाबली हनुमान् महेन्द्र पर्वतको पैरोसे दबाकर उसके शिखरसे आकाशकी ओर उछले ॥ १—६ ॥

बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्जी श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो जब अपने पिता वायुके मार्गसे चले जा रहे थे, उस समय उनकी थोड़ी देरतक विश्राम देनेके लिये, समुद्रद्वारा प्रेरित हो, मैनाक पर्वत पानीसे चाहर ऊपरकी ओर उठ गया। उसे देख उन्होंने वहाँ थोड़ा-सा रुककर उससे आदरपूर्वक बातचीत की और फिर उसे अपने वेगसे दबाकर उछलते हुए वे दूर चले गये।

उत्पतंश्च यने वीरः सिंहिकास्य महाकपिः ।
 आस्यप्रान्तं प्रविश्याथ वेगेनान्तर्विनिस्सृतः ॥ ९
 निस्सृत्य गतवाञ्छीघ्रं वायुपुत्रः प्रतापवान् ।
 लङ्घयित्वा तु तं देशं सागरं पवनात्मजः ॥ १०
 त्रिकूटशिखरे रम्ये वृक्षाग्रे निषपात ह ।
 तस्मिन् स पर्वतश्रेष्ठे दिनं नीत्वा दिनक्षये ॥ ११
 संध्यामुपास्य हनुमान् रात्रौ लङ्कां शनैर्निशि ।
 लङ्काभिधां विनिर्जित्य देवतां प्रविवेश ह ॥ १२
 लङ्कामनेकरत्नाढ्यां बद्धाश्चर्यसमन्विताम् ।
 राक्षसेषु प्रसूतेषु नीतिमान् पवनात्मजः ॥ १३
 रावणस्य ततो वेश्म प्रविवेशाथ ऋद्धिमत् ।
 शयानं रावणं दृष्ट्वा तल्पे महति वानरः ॥ १४
 नासापटुर्घोरकरिर्विशिष्टिर्बायुभोजकः ।
 तथैव दशभिर्वक्त्रैर्दृष्टोपेतैस्तु संयुतम् ॥ १५
 स्त्रीसहस्रैस्तु दृष्ट्वा तं नानाभरणभूषितम् ।
 तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे ॥ १६
 तथा शयानं स्वगृहे राक्षसानां च नायकम् ।
 दुःखितो वायुपुत्रस्तु सम्पातेर्वचनं स्मरन् ॥ १७
 अशोकवनिकां प्राप्तो नानापुष्पसमन्विताम् ।
 जुष्टां मलयजातेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ १८
 प्रविश्य शिंशपावृक्षमाश्रितां जनकात्मजाम् ।
 रामपत्नीं समद्राक्षीद् राक्षसीभिः सुरक्षिताम् ॥ १९
 अशोकवृक्षमारुह्य पुष्पितं मधुपञ्चवम् ।
 आसांचक्रे हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन् ॥ २०
 सीतां निरीक्ष्य वृक्षाग्रे यावदास्तेऽनिलात्मजः ।
 स्त्रीभिः परिवृतस्तत्र रावणस्तावदागतः ॥ २१
 आगत्य सीतां प्राहाथ प्रिये मां भज कामुकम् ।
 भूषिता भव वैदेहि त्यज रामगतं मनः ॥ २२
 इत्येवं भाषमाणं तमन्तर्धाय तृणं ततः ।
 प्राह वाक्यं शनैः सीता कम्पमानाथ रावणम् ॥ २३
 गच्छ रावण दुष्ट त्वं परदारपरायण ।
 अचिराद्रामवाणास्ते पिबन्तु रुधिरं रणे ॥ २४

मार्गमें सिंहिका नामकी राक्षसी थी। उसने जलमें मुँह फैला
 रखा था। महाकपि हनुमान्जी उसके मुँहमें जा पड़े। मुँहमें
 पड़ते ही वे वेगपूर्वक उसके भीतर धुसकर पुनः बाहर
 निकल आये। इस प्रकार सिंहिकाके मुखसे निकलकर
 प्रतापी पवनकुमार उस समुद्र-प्रदेशको लाँघते हुए त्रिकूट
 पर्वतके सुरम्भ शिखरपर एक महान् वृक्षके ऊपर जा उतरे।
 उसी उत्तम पर्वतपर दिन बिताकर हनुमान्जीने वहाँ
 सायंकालकी संध्योपासना की। फिर रातमें धीरे-धीरे वे
 लङ्काकी ओर चले। मार्गमें मिली हुई 'लङ्का' नामकी
 नगर-देवताकी जीतकर उन्होंने नाना रत्नोंसे सम्पन्न और
 अनेक प्रकारके आभूषणोंसे युक्त लङ्कापुरीमें प्रवेश
 किया ॥ ७—१२^१/_१ ॥

तदनन्तर जब सब राक्षस गहरी नींदमें सो गये, तब
 नीतिज्ञ हनुमान्जीने रावणके समुद्रिशाली भवनमें प्रवेश
 किया। वहाँ रावण एक बहुत बड़े मलंगपर सो रहा था।
 हनुमान्जीने देखा—सौस छोड़नेवाले बीस भयंकर नासिका
 छिद्रोंसे युक्त उसके दसों मुखोंमें जड़ी भयानक दाढ़ें थीं।
 नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रावण हजारों स्त्रियोंके
 साथ वहाँ सोया था। किंतु रावणके उस सुन्दर भवनमें
 सीताजी कहीं नहीं दिखायी दीं। वह राक्षसराज अपने
 घाके भीतर गड़ निद्रामें सो रहा था। सीताजीका दर्शन
 न होनेसे वायुनन्दन हनुमान्जी बहुत दुःखी हुए। फिर
 सम्पादिके कथनको याद करके वे अशोकवाटिकामें आये,
 जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित और अत्यन्त
 सुगन्धित मलयज चन्दनसे व्याप्त थीं ॥ १३—१८ ॥

वाटिकामें प्रवेश करके हनुमान्जीने अशोकवृक्षके
 नीचे बैठी हुई जनकचन्दनी श्रीरामपत्नी सीताको देखा
 जो राक्षसियोंसे सुरक्षित थीं। वह अशोकवृक्ष सुन्दर
 मृदुल पत्रवर्षोंसे विलसित और पुष्पोंसे सुशोभित था।
 कपिवर हनुमान्जी उस वृक्षपर चढ़ गये और 'ये ही
 सीता हैं'—यह सोचते हुए वहाँ बैठ गये। सीताजीका
 दर्शन करके वे पवनकुमार ज्यों ही वृक्षके शिखरपर
 बैठे, त्यों ही रावण बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरा हुआ वहाँ
 आया। आकर उसने सीतासे कहा—'प्रिये! मैं कामपीड़ित
 हूँ, मुझे स्वीकार करो। वैदेहि! अब शृङ्गार धारण करो
 और श्रीरामकी ओरसे मन हटा लो।' इस प्रकार कहते
 हुए रावणसे भयवश कौपसी हुई सीताजी बीचमें तिनकेकी
 ओट रखकर धीरे-धीरे बोलीं—'परस्त्रीसेवी दुष्ट रावण!
 तू चला जा। मैं शाप देती हूँ—भगवान् श्रीरामके पाण
 शीघ्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त पीयें' ॥ १९—२४ ॥

तथेत्युक्तो भस्मितश्च राक्षसीराह राक्षसः ।
 द्विमासाभ्यन्तरे चैनां वशीकुरुत मानुषीम् ॥ २५
 यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम् ।
 इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम् ॥ २६
 ततो भयेन तां प्राहू राक्षस्यो जनकात्मजाम् ।
 रावणं भज कल्याणि सधनं सुखिनी भव ॥ २७
 इत्युक्ता प्राह ताः सीता राघवोऽलघुविक्रमः ।
 निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नयिष्यति ॥ २८
 नाहमन्यस्य भार्या स्यामृते रामं रपूतमम् ।
 स ह्यागत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति ॥ २९
 इत्याकर्ण्य वचस्तस्या राक्षस्यो ददृशुर्भयम् ।
 हन्यतां हन्यतामेषा भक्ष्यतां भक्ष्यतामियम् ॥ ३०
 ततस्तास्त्रिजटा प्राह स्वष्ट्रे दृष्टमनिन्दिता ।
 शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनः ॥ ३१
 रक्षोभिः सह सर्वैस्तु रावणस्य मृतिप्रदः ।
 लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामस्य विजयप्रदः ॥ ३२
 स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाश्च पतिप्रदः ।
 त्रिजटावाक्यमाकर्ण्य सीतापार्श्वं विसृज्य ताः ॥ ३३
 राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाञ्जनीसुतः ।
 कीर्तयन् रामवृत्तान्तं सकलं पवनात्मजः ॥ ३४
 तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम् ।
 सम्भाष्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्ततः ॥ ३५
 महत्या सेनया युक्तः सुग्रीवः कपिनायकः ।
 तेन सार्धमिहागत्य रामस्तत्र पतिः प्रभुः ॥ ३६
 लक्ष्मणश्च महावीरो देवस्ते शुभानने ।
 रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽऽदाय गच्छति ॥ ३७
 इत्युक्ते सा तु विश्वस्ता वायुपुत्रमधाव्रवीत् ।
 कथमत्रागतो वीर त्वमुत्तीर्य महोदधिम् ॥ ३८
 इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पुनस्तामाह वानरः ।
 गोष्पदवन्मयोत्तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥ ३९

सीताजीका यह उत्तर और फटकार पाकर राक्षसराज रावणने राक्षसियोंसे कहा—'तुम लोग इस मानव-कन्याको दो महीनेके भीतर समझाकर मेरे वशीभूत कर दो। यदि इतने दिनोंतक इसका मन मेरी ओर न झुके तो इस मानुषीको तुम खा डालना।' यों कहकर दुष्ट रावण अपने महलमें चला गया। तब रावणके दरसे डरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—'कल्याणि! रावण बहुत धनी है, इसे स्वीकार कर लो और सुखसे रहो।' राक्षसियोंके यों कहनेपर सीताने उनसे कहा—'महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके सेवकगणोंसहित मारकर मुझे ले जायेंगे। मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरेको भार्या नहीं हो सकती। ये ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे' ॥ २५—२९ ॥

सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियोंने उन्हें भय दिखाते हुए कहा—'अरी! इसे मार डालो, मार डालो, खा जाओ, खा जाओ।' उन राक्षसियोंमें एकका नाम त्रिजटा था। यह उसमें विचार रखनेवाली—साध्वी स्त्री थी। उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्नमें देखी हुई बात बताया। यह बोली—'अरी दुष्टा राक्षसियों! सुनो; मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, सदात राक्षसोंके साथ रावणको मौतके घूँटमें डालनेवाला है, भ्रात्रा लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीको विजयका सुभक्त है और सीताको पतिसे मिलानेवाला है।' त्रिजटाकी बात सुनकर ये सभी राक्षसियों सीताके पाससे हटकर दूर चली गयीं। तब अञ्जनीन्दन हनुमान्जीने अपनेको सीताके सामने प्रकट किया और 'श्रीराम नाम' का कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण वृत्तान्तका उनके समक्ष वर्णन किया। इस प्रकार सीताके मनमें विश्वास उत्पन्न करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी दी। फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरके लक्षण बताये और कहा—'सुमुखि! वानरोंके राजा सुग्रीव बहुत बड़ी सेनाके स्वामी हैं। उन्होंने के साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवर महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पधारेंगे और रावणको सेनासहित मारकर आपको यहाँसे ले जायेंगे' ॥ ३०—३७ ॥

हनुमान्जीके यह कहनेपर सीताजीका उनपर विश्वास हो गया। ये बोली—'वीर! तुम किम तरह महासागरको पार करके यहाँ चले आये?' उनका यह वचन सुनकर हनुमान्जीने पुनः उनसे कहा—'वरानने। मैं इस समुद्रको उसी प्रकार लांघ गया, जैसे कोई गोके खुरसे बने हुए गड्ढेको लांघ जाय।

जपतो रामरायेति सागरो गोष्पदायते ।
दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने ॥ ४०

क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
इत्याश्वास्य सती सीतां दुःखितां जनकात्मजाम् ॥ ४१

ततश्चूडामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम् ।
नत्वा तां प्रस्थितो वीरो गन्तुं कृतपतिः कपिः ॥ ४२

ततो विमृश्य तद्भङ्गत्वा क्रीडावनमशेषतः ।
तोरणस्थो ननादोव्यं रामो जयति वीर्यवान् ॥ ४३

अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनाः सेनापतींश्च सः ।
तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणसैनिकम् ॥ ४४

साधुं ससारथिं हत्वा इन्द्रजित्तं गृहीतवान् ।
रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं संकीर्त्य लक्ष्मणाम् ॥ ४५

सुग्रीवं च महावीर्यं दग्ध्वा लङ्कामशेषतः ।
निर्भर्त्य रावणं दुष्टं पुनः सम्भाष्य जानकीम् ॥ ४६

भूयः सागरमुतीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान् ।
सीतादर्शनमावेष्ट हनुमांश्चैव पूजितः ॥ ४७

वानरैः सार्धमागत्य हनुमान्मधुवनं गतः ।
निहत्य रक्षपालांस्तु पाययित्वा च तन्मधु ॥ ४८

सर्वे दधिमुखं पात्य हर्षितो हरिभिः सह ।
खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ ४९

नत्वा तु हनुमांस्तत्र सुग्रीवं च विशेषतः ।
आदितः सर्वमावेष्ट समुद्रतरणादिकम् ॥ ५०

कथयामास रामाय सीता दृष्टा मयेति वै ।
अशोकवनिकामध्ये सीता देवी मुदुःखिता ॥ ५१

जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र गौँके खुरके चिह्नेके सम्मान हो जाता है। शुभानने वैदेहि! आप दुःखमग्रा दिखायी देती हैं, अब धैर्य धारण कीजिये। मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप बहुत शीघ्र श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगे।' इस प्रकार दुःखमें डूबी हुई पतिव्रता जनकनन्दिनी सीताको आश्वासन दे, उनसे पहचानके लिये चूडामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकरूपी जयन्तके पराभवकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमानजीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया ॥ ३८—४२ ॥

तत्पश्चात् कुछ सोचकर पराक्रमी हनुमानजीने रावणके उस सम्पूर्ण क्रीडावन (अशोकवाटिका)-को नष्ट-भष्ट कर डाला और वनके द्वारपर स्थित हो, उल्लाससे सिंहनाद करते हुए बोले—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो।' फिर तो युद्धके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर सेना और सेनापतियोंका संहार किया। इसके बाद रावणके सेनापति अजकुमारको अध तथा सारथिसहित यमलोका पहुँचा दिया। इसपर रावणपुर इन्द्रजित्ने वरके प्रभावसे उन्हें बंदी बना लिया। इसके बाद वे रावणके सम्मुख उपस्थित किये गये। वहाँसे घुटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और मत्स्यवती सुग्रीवके यत्नका कीर्तन करते हुए सम्पूर्ण लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर दुष्टत्वा रावणको डोढ़ करके पुनः सीताजीसे वार्तालेख किया। फिर पराक्रमी हनुमानजी समुद्रके इस पार आकर अपने वानर बन्धुओंसे मिले और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए ॥ ४३—४७ ॥

तत्पश्चात् हनुमानजी सभी वानरोंके साथ मधुवनमें आये। उसके राक्षसोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साधियोंको मधु-पान कराया और स्वयं भी पीया। इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके वानरको मारने धरतीपर दे मारा। इसके बाद हनुमानजी सब वानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उड़ते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट जा पहुँचे। वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणम कर, विशेषतः सुग्रीवको मस्तक दूकाकर उन्होंने समुद्र तटधनेसे लेकर सारा समाचार अग्रोपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया।

राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरन्ती च सर्वदा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी खरानना ॥ ५२

शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा ।
सर्वशान्देष्टमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता ॥ ५३

मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन ।
अलङ्कारश्च सुमणिस्तया ते प्रेषितः प्रभो ॥ ५४

इत्युक्त्वा दत्तवांस्तस्मै चूडामणिमनुत्तमम् ।
इदं च वचनं तुभ्यं पत्या सम्प्रेषितं शृणु ॥ ५५

चित्रकूटे मदङ्गे तु सुप्ते त्वयि महावत ।
वायसाभिर्भव राजंस्तत्किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५६

अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया बलिभुजि प्रभो ।
यत्कृतं तत्र कर्तुं च शक्यं देवासुरैरपि ॥ ५७

ग्रह्यास्त्रं तु तदोत्सृष्टं रावणं किं न जेष्यसि ।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह ।

एवं तु दुःखिता सीता तां मोक्तुं यत्नमाचर ॥ ५८

इत्येवमुक्ते पवननात्मजेन
सीतावचस्तच्छुभभूषणं च ।

श्रुत्वा च दृष्ट्वा च रुरोद रामः
कपिं समालिङ्ग्य शनैः प्रतस्थे ॥ ५९

उन्हें राक्षसियों घेरें हुए थीं और वे बहुत दुःखी होकर निरन्तर आपका ही स्मरण कर रही थीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन! आपको धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। मैंने सब जगह दौड़ते हुए पतिव्रता जानकीको अशोकवनमें पाया, वनसे बर्तालाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिमय अलङ्कार भेजा है' ॥ ५८—५४ ॥

यह कहकर हनुमान्जीने भगवान् श्रीरामको वह उत्तम चूडामणि दे दी और कहा—'प्रभो! आपको धर्मपत्नी श्रीसीताजीने यह संदेश भी कहला भेजा है, सुनिये—'महान् व्रतका पालन करनेवाले महाव्रज। चित्रकूट पर्वतपर जब आप मेरी गोदमें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकवेषधारी जयन्तका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र। प्रभो! उस कौएके भोढ़े-से ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देवता और असुर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ग्रह्यास्त्रका प्रयोग किया था? क्या इस समय इस रावणको पराजित नहीं करेंगे?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताजी रोने लगी थीं। यह है दुःखिनी सीताका वृत्तान्त। आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।' पवनकुमार हनुमान्जीके इस प्रकार कहनेपर सीताजीका वह संदेश सुन और उनके इस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिपर हनुमान्जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और धीरे-धीरे वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ५५—५९ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे रामचन्द्रावली एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणमें 'श्रीरामचन्द्रकी कथात्रिपचक' इत्यन्तर्गत अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

बावनवाँ अध्याय

श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्काके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके वानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके वीरोचित उद्धार और दीव्यकर्म; वानर वीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस वीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणका हनुमान्जीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधामगमन

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा प्रियावार्ता वायुपुत्रेण कीर्तिताम् ।
 रामो गत्वा समुद्रान्तं वानरैः सह विस्मृतः ॥ १
 सागरस्य तटे रम्यं तालीवनविराजिते ।
 सुग्रीवो जाम्बवांश्चाथ वानरैरतिहर्षितैः ॥ २
 संख्यातीतिवृतः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
 अनुजेन च धीरेण वीक्ष्य तस्थौ सरित्पतिम् ॥ ३
 रावणेनाथ लङ्कायां स सूक्ती भर्तिसतोऽनुजः ।
 विभीषणो महाबुद्धिः शास्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिः सह ॥ ४
 नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले ।
 एवं रामेऽक्षलां भक्तिमागत्य विनयात्तदा ॥ ५
 कृताञ्जलिरुवाचेदं राममक्लिष्टकारिणम् ।
 राम राम महाबाहो देवदेव जनार्दन ॥ ६
 विभीषणोऽस्मि मां रक्ष अहं ते शरणं गतः ।
 इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राञ्जली रामपादयोः ॥ ७
 विदितार्थोऽथ रामस्तु तमुत्थाप्य महामतिम् ।
 समुद्रतोयैस्तं वीरमभिषिञ्च्य विभीषणम् ॥ ८
 लङ्काराज्यं तवैवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान् ।
 ततो विभीषणेनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः ॥ ९
 अक्विरर्ददानु मार्गं ते देव तं वाचयामहे ।
 इत्युक्तो वानरैः सार्धं शिश्ये तत्र स राघवः ॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—वायुवन्दन हनुमान्जीके द्वारा कथित प्रिया जनकोष्ण वृत्तान्त सुन लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी विशाल वानरसेनाके साथ समुद्रके निकट गये। साथ ही सुग्रीव और जाम्बवान् भी तालवनसे सुशोभित सागरके समीप तटपर जा पहुँचे। अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। अपने धीर-वीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालशक्त्य अवलोकन करते हुए वे उसके तटपर उतर गये। इधर लङ्कामें रावणने [राक्षसकुलके हितके लिये] अच्छी बात कहनेपर भी अपने छोटे भाई महानुद्धिमान् विभीषणको बहुत पटकारा। तब वे अपने शास्त्रज्ञ मन्त्रियोंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल लक्ष्मीपतिके अवतार नरेश्वर श्रीराममें अविचल भक्ति रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीरामसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों बोले—‘महाबाहो श्रीराम! देवदेव जनार्दन। मैं [रावणका भाई] विभीषण हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ; मेरी रक्षा कीजिये’—यों कहकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीरामने उन महानुद्धिमान् वीर विभीषणको उठाया और समुद्रके जलसे उनका राज्याभिषेक करके कहा—‘अब लङ्काका राज्य तुम्हारा ही होगा।’ श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ जातघीत करके वहीं खड़े रहे ॥ १—८/१ ॥

तब विभीषणने कहा—‘प्रभो! आप जगत्पति भगवान् विष्णु हैं। देव! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जनेका मार्ग दे दे। हम सब लोग उससे प्रार्थना करें।’ उनके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ समुद्रके

सुमे रामे गतं तत्र त्रिरात्रममितद्युतौ।
ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामो राजीवलोचनः ॥ ११
संशोषणमपां कर्तुमस्वमाग्नेयमाददे।
तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम् ॥ १२
क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते।
भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः ॥ १३
क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा धृतवान् शरम्।
ततो रात्रित्रये याते क्रुद्धं राममवेक्ष्य सः ॥ १४
आग्नेयास्वाद्य संव्रस्तः सागतोऽभ्येत्य मूर्तिमान्।
आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणाम् ॥ १५
मार्गो दतो मया तेऽद्य कुशलः सेतुकर्मणि।
नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव ॥ १६
यावदिष्टं तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुत्तमम्।
ततो नलमुखैरन्यैर्वाचैरमितीजसैः ॥ १७
बन्धयित्वा महासेतुं तेन गत्वा स राघवः।
सुवेलाख्यं गिरिं प्राप्तः स्थितोऽसौ वानरैर्वृतः ॥ १८
हर्म्यस्थलस्थितं दुष्टं रावणं वीक्ष्य चाङ्गदः।
रामादेशादथोत्सुत्य दूतकर्मसु तत्परः ॥ १९
प्रादात्पादप्रहारं तु रोषाद्वावणमूर्धनि।
विस्मितं तैः सुरगणैर्वीक्षितः सोऽतिवीर्यवान् ॥ २०
साधयित्वा प्रतिज्ञां तां सुवेलं पुनरागतः।
ततो वानरसेनाभिः संख्यातीताभिरच्युतः ॥ २१
रुरोध रावणपुरीं लङ्कां तत्र प्रतापवान्।
रामः समन्तादालोक्य प्राह लक्ष्मणमन्तिके ॥ २२
तीर्णोऽर्णवः कवलितेव कपीश्वरस्य
सेनाभटैर्द्रष्टि रक्षसरजधानीम्।
यत्पौरुषोचितमिहाङ्कुरितं मया तद्
दैवस्य वश्यमपरं धनुषोऽथ वास्य ॥ २३

तटपर धरना देते हुए सेट गये। अपार कान्तिमान् भगवान् श्रीरामको वहाँ सेटे-सेटे तीन रातें बीत गयीं; तब कमलनयन कण्ठोद्धर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही क्रोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको सुखा छालनेके लिये हाथमें अग्निबाण धारण किया। यह देख लक्ष्मणजी तात्काल उठे और क्रुद्ध हुए भगवान् रामसे यों बोले— ॥ १-१२ ॥

'महामते! आपका क्रोध तो समस्त ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोपको दया दें; क्योंकि आपने प्राणियोंको रक्षाके लिये अवतार धारण किया है। देवदेव! आप क्षमा करें',—यों कहकर उन्होंने श्रीरामके उस बाणको पकड़ लिया। इधर तीन रात बीत जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको कुपित देख, उनके अग्निबाणसे भयभीत हो, समुद्र मनुष्यरूप धारणकर उनके निकट आया और महान् देवता भगवान् श्रीरामसे बोला— 'भगवन्! मुझ अपराधोंकी रक्षा कीजिये। रघुनन्दन! अब मैंने आपको जानेका मार्ग दे दिया। आपकी सेनामें योंवर नल पुल बनानेमें विपुल कहे गये हैं। उनके द्वारा आपको जितना बड़ा अभीष्ट हो, उतने ही बड़े उत्तम पुलका निर्माण करा लीजिये' ॥ १३-१५ ॥

तब भगवान् रामने नल आदि अन्य अमित-तेजस्वी वानरोंद्वारा बहुत बड़ा पुल बनवाया और उसीके द्वारा समुद्रके पार जा, सुवेल नामक पर्वतपर पहुँचकर वहाँ वानरोंके साथ डेरा डाल दिया। वहाँसे अङ्गदने देखा— 'दुष्ट रावण महलकी अट्टालिकापर बैठा हुआ है।' उसे देखते ही वे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा ले, दूत-कार्यमें संलग्न हो, उछलकर रावणके पास जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने रोषपूर्वक रावणके मस्तकपर लात मारी। उस समय देवताओंने महान् पराक्रमी अङ्गदजीकी ओर बड़े विस्मयके साथ देखा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पुनः सुवेल पर्वतपर चले आये। तदनन्तर प्रतापी भगवान् श्रीरामने असंख्य वानर-सेनाओंके द्वारा रावणकी पुरी लङ्काको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १७-२१ ॥

तब श्रीरामने चारों ओर देख लक्ष्मणको पास बुलाकर कहा— 'भाई! हम लोगोंने समुद्र तो पार कर लिया तथा कपिराज सुग्रीवके सैनिकोंने राक्षसोंकी राजधानी लङ्काको आनन-फाननमें अपना घास खा बना लिया है। पुरुषार्थसे जो कुछ सिद्ध होनेके योग्य था, उसका अङ्कुर तो हमने उत्पन्न कर दिया; अब आगे जो कुछ होना है, वह भाग्य अवका इस धनुषके अधीन है' ॥ २२-२३ ॥

लक्ष्मणः प्राह—कातरजनमनोऽवलम्बिना किं
दैवेन ।

यावत्प्रलाटशिखरं भुकुटिनं याति
यावत्त कार्मुकशिखामधिरोहति न्या ।

तावन्निशाचरपतेः पटिमानमेतु

त्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः ॥ २४ ॥

तदा लक्ष्मणः रामस्य कर्णं लगित्वा
पितृवधवैरस्मरणे अथ तद्भक्तिवीर्यपरीक्षणाय
लक्षणविज्ञानायादिश्यतामङ्गदाय दूत्यम् । रामः साधु
इति भणित्वा अङ्गदं सबहुमानमवलोक्य
आदिशति ॥ २५ ॥ अङ्गद! पिता ते
यद्वाली यस्मिन् दशकण्ठे कलितवाग्रशकास्तद्वक्तुं
वयमपि मुदा तेन पुलकः ।

स एव त्वं व्यावर्त्तयसि तनुजत्वेन पितृतां
ततः किं वक्तव्यं तिलकयति सृष्टार्थपदवीम् ॥ २६ ॥

अङ्गदो मीलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणम्य
यदाज्ञापयति देवः । अवधार्यताम् ॥ २७ ॥

किं प्राकारविहारतोरणावतीं लङ्कामिहेवानये
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपते तत्रैव सम्पादये ।

अत्यल्पं कुलपर्वतैरधिरलैर्बध्नामि वा सागरं
देवादेशय किं करोमि सकलं दोहण्डसाध्यं मम ॥ २८ ॥

श्रीरामस्तद्वचनमात्रेणैव तद्भक्तिं सामर्थ्यं
चावेक्ष्य वदति ॥ २९ ॥

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसा वास्मत्परोक्षे द्रुता
सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद ।
नो चेन्नलक्ष्मणमुक्तमार्गगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छत्रदिगन्तमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो वास्यसि ॥ ३० ॥

लक्ष्मण बोले—'भाई! कातर पुरुषोंके हृदयको
अवलम्बन देनेवाले भाग्य या दैवसे क्या होनेवाला है ?
जबतक हमारी भुकुटि रोपसे तनकर ललाटके ऊपरतक
नहीं जाती और जबतक प्रत्यक्षा धनुषके अग्रभागपर
नहीं चढ़ती, तभीतक निशाचरराज रावणका दर्प शिभुवनका
मूलोच्छेदन करनेवाली उसकी भुजाओंके भरसे बढ़ती
रहे' ॥ २४ ॥

ऐसा विचार प्रकट करके लक्ष्मणने उसी समय
भगवान् श्रीरामके कानमें मुँह लगाकर कहा—'अब इस
समय इस बातकी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि यह
अङ्गद अपने पिता वालीके वैरजनिव बधका स्मरण
करके भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना
पराक्रम है तथा इसके अब कैसे लक्षण (रंग-रंग) है,
आप अङ्गदको पुनः दूतकर्म करनेका आदेश दीजिये ।'
श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा' कहकर अङ्गदकी ओर
चढ़े आदरसे देखकर उन्हें आदेश देने लगे—'अङ्गद!
तुम्हारे पिता वालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ
किया था, उसका हम भी वर्णन नहीं कर सकते। उसकी
बाद आते ही हरके कारण हमारे शरीरमें रोमाञ्च हो जाता
है। वही वाली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है। तुम पुत्ररूपमें
उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थसे पिताकी भी पीछे छोड़ रहे हो;
अतः तुम्हारे विषयमें क्या कहना है। तुम पुत्र-पदवीको
मस्तकका तिलक बना रहे हो' ॥ २५-२६ ॥

अङ्गदने अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ भगवान्को
प्रणाम करके कहा—'जैसी आज्ञा; भगवान् इधर भ्रम
दें। रघुपते! क्या मैं चहारदीवारी, विहार-स्थल और
नगरद्वारमहित लङ्कापुरीको यहाँ उठा लाऊँ? या अपनी
सारी सेनाको हो उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा दूँ?
अथवा इस अत्यन्त दुष्क सागरको अबिरल कुलाचलोंद्वारा
घट दूँ? भगवान्! आज्ञा दीजिये, क्या करूँ? मेरे भुज-
दण्डोद्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है' ॥ २७-२८ ॥

भगवान् रामने अङ्गदके कथनसे ही उनकी भक्ति
और शक्तिका अनुमान लगाकर कहा—'वीर! तुम दशमुख
रावणके पास जाकर कहो—'रावण! तुम अज्ञानसे या
प्रभुत्वके अभिमानमें आकर हम लोगोंके पीठ-पीछे
चोत्की भाँति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो;
नहीं तो लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंद्वारा बेधे जाकर
छलकते हुए रक्तकी धाराओंसे छत्रकी भाँति दिगन्तको
आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको
प्रस्थान करोगे' ॥ २९-३० ॥

अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव!

संधी वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननी।
अक्षता वाक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति ॥ ३२

तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः।
उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम् ॥ ३३

राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारैस्तदनुजस्य च।
वानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः ॥ ३४

लङ्कापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान्।
आदिश्य सर्वतो दिक्षु पुत्रानाह दशाननः ॥ ३५

भूषाक्षं भूषपानं च राक्षसा यात मे पुरीम्।
पाशैर्वर्धनीत तौ मर्त्यौ अमिश्रानाकवीर्यवान्।
कुम्भकर्णोऽपि मद्भाता तुर्यनादैः प्रबोधितः ॥ ३६

राक्षसाश्चैव संदिष्टा रावणेन महाबलाः।
तस्याज्ञां शिरसाऽऽदाय युयुधुर्वा नरैः सह ॥ ३७

युध्यमाना यथाशक्त्या कौटिसंख्यास्तु राक्षसाः।
वानरैर्निधनं प्राप्ताः पुनरन्यान् यथाऽऽदिशत् ॥ ३८

पूर्वद्वारे दशग्रीवो राक्षसानमितीजसः।
ते चापि युध्य हरिभिर्नीलाद्यैर्निधनं गताः ॥ ३९

अथ दक्षिणदिग्भागे रावणेन नियोजिताः।
ते सर्वे वानरवीर्यदारितास्तु यमं गताः ॥ ४०

पश्चिमेऽङ्गदमुख्यश्च वानरैरतिगर्वितैः।
राक्षसाः पर्वताकाराः प्रापिता यमसादनम् ॥ ४१

तदुत्तरे तु दिग्भागे रावणेन निवेशिताः।
पेतुस्ते राक्षसाः कूरा मैन्दाद्यैर्वानरैर्हताः ॥ ४२

ततो वानरसङ्घास्तु लङ्काप्राकारमुच्छ्रितम्।
उत्प्लुत्याभ्यन्तरस्थांश्च राक्षसान् बलदर्पितान् ॥ ४३

अङ्गदने कहा—‘देव! मुझ दूतके रहते हुए रावण संधि करे या विग्रह, दोनों ही अवस्थाओंमें उसके दसों मस्तक जूझीतलपर गिरकर लोटेँगे। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होगा कि संधि कर लेतेपर उसके मस्तक बिना कटे ही (आपके सामने प्रणामके लिये) गिरेंगे और विग्रह कलेपर कटकर गिरेंगे।’ तब श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें भेजा और वे भी वहाँ जा, बाद-प्रतिवादको चातुरीसे लड़ुको हराकर लौट आये ॥ ३१—३३ ॥

दशानन रावणने भी अपने गुप्तचरोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीका, उनके भाई लक्ष्मणका और वानरोंका बल जानकर भयभीत होनेपर भी निडरकी भाँति लङ्कापुरीकी रक्षाके लिये राक्षसोंको आज्ञा दी। सम्पूर्ण दिशाओंमें राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे उसने अपने पुत्रोंसे और भूषाक्ष तथा भूषपानसे भी कहा—‘राक्षसों! तुम लोग क्यामें जाओ और इन दोनों मनुष्य-कुमारोंको पाशसे बाँध लाओ। शत्रुओंके लिये यमराजके समान पराक्रमी मेरा भाई कुम्भकर्ण भी इस समय बाघोंके शब्दसे जगा लिया गया है ॥ ३४—३६ ॥

इतना ही नहीं, रावणने बड़े बालवान् फलवान् राक्षसोंको युद्धके लिये आदेश दिया और वे भी उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर वानरोंके साथ जुझने लगे। अपनी शक्तिपर युद्ध करते हुए करोड़ों राक्षस वानरोंके हाथ मारे गये। और—तो—और, दशमुख रावणने जिन दूसरे-दूसरे अपार तेजस्वी राक्षसोंको पूर्वद्वारपर युद्धके लिये आदेश किया था, वे सब भी नील आदि वानरोंसे युद्ध करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए। इसके बाद रावणने दक्षिण दिशामें लड़नेके लिये जिन राक्षसोंको नियुक्त किया था, वे भी ब्रह्म वानरोंद्वारा अपने अङ्गोंके विदीर्ण कर दिये जानेपर यमलोकको चले गये। फिर पश्चिम द्वारपर जो पर्वताकार राक्षस थे, वे भी आपत्त गव्योंसे अङ्गदादि वानर वीरोंद्वारा यमपुरीकी पहुँचा दिये गये। फिर उत्तर द्वारपर रावणके द्वारा ठहराये हुए कूर राक्षस मैन्य आदि वानरोंके हाथ मारे जाकर धराशयी हो गये। तदनन्तर वानरसंग लङ्काकी ईर्ष्या चहारदीवारी फँदकर उसके भीतर रहनेवाले वक्ताभिमानी राक्षसोंका भी संहार करके पुनः शीघ्रापूर्वक

हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ताः स्वसेनामेव वानराः ।
 एवं हतेषु सर्वेषु राक्षसेषु दशाननः ॥ ४४
 रोदमानासु तत्स्त्रीषु निर्गतः क्रोधमूर्च्छितः ।
 द्वारे स पश्चिमे खीरो राक्षसैर्वहुभिर्वृतः ॥ ४५
 क्वासी रामेति च वदन् धनुष्याणिः प्रतापवान् ।
 रथस्थः शरवर्षं च विसृजन् वानरेषु सः ॥ ४६
 ततस्तद्वाणछिन्नाङ्गा वानरा दुद्रुवुस्तदा ।
 पलायमानांस्तान् दृष्ट्वा वानरान् राघवस्तदा ॥ ४७
 कस्मात्तु वानरा भग्नाः किमेषां भयमागतम् ।
 इति रामवचः श्रुत्वा प्राह वाक्यं विभीषणः ॥ ४८
 शृणु राजन् महाबाहो रावणो निर्गतोऽधुना ।
 तद्वाणछिन्ना हरयः पलायन्ते महामते ॥ ४९
 इत्युक्तो राघवस्तेन धनुरुद्यम्य रोषितः ।
 ज्याघोषतलघोषाभ्यां पूरयामास खं दिशः ॥ ५०
 युयुधे रावणेनाथ रामः कमलस्तोचनः ।
 सुग्रीवो जाम्बवांश्चैव हनूमानङ्गदस्तथा ॥ ५१
 विभीषणो वानराश्च लक्ष्मणश्चापि वीर्यवान् ।
 उपेत्य रावणीं सेनां यथैर्नीं सर्वसायकान् ॥ ५२
 हस्त्यश्वरथसंयुक्तां ते निजघ्नुर्महाबलाः ।
 रामरावणयोर्युद्धमभूत् तत्रापि भीषणम् ॥ ५३
 रावणेन विसृष्टानि शस्त्रास्त्राणि च यानि वै ।
 तानि छित्त्वाथ शस्त्रैस्तु राघवश्च महाबलः ॥ ५४
 शरेण सारथिं हत्वा दशभिश्च महाहयान् ।
 रावणस्य धनुश्छित्त्वा भङ्गेनैकेन राघवः ॥ ५५
 मुकुटं पञ्चदशभिश्छित्त्वा तन्मस्तकं पुनः ।
 सुवर्णपुङ्खैर्दशभिः शरैर्विव्याध वीर्यवान् ॥ ५६
 तदा दशास्यो व्यधितो रामबाणैर्भृशं तदा ।
 विवेश मन्त्रिभिर्नीतः स्वपुरीं देवमर्दकः ॥ ५७

अपनी सेनामें लौट आये ॥ ३७—४३½ ॥

इस प्रकार सब राक्षसोंके मारे जानेपर उनकी स्त्रियोंको रोदन करते देख दशानन रावण क्रोधसे मूर्च्छित होकर निकला। वह प्रतापी वीर हाथमें धनुष ले बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ पश्चिम द्वारपर आया और बोला—
 'कहाँ है वह राम?' तथा रथपर बैठे-बैठे वानरोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके बाणोंसे अङ्ग छिन-भिन्न हो जानेके कारण वानर इधर-उधर भागने लगे। उस समय वानरोंको भागते देख श्रीरामने पूछा—'वानरोंमें क्यों भगदड़ पड़ गयी है? इनपर कौन-सा भय आ पहुँचा?' ॥ ४४—४९½ ॥

श्रीरामको बात सुनकर विभीषणने कहा—'राजन्! महाबाहो! सुनिधे, इस समय रावण युद्धके लिये निकला है। महामते! उसीके बाणोंसे शत-विधत हो वानरगण भाग रहे हैं' ॥ ४८-४९ ॥

विभीषणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर धनुष उठाया और प्रत्यक्षाकी टंकारसे समस्त दिशाओं तथा आकाशको गुँजा दिया। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी रावणसे युद्ध करने लगे और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान्, अङ्गद, विभीषण, पराक्रमी लक्ष्मण तथा अन्योन्य महाबली वानर पहुँचकर हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त रावणकी चतुरङ्गिणी सेनाको, जो सब प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर रही थी, मारने लगे। वहाँ भी श्रीराम और रावणका युद्ध बढ़ा हो भयंकर हुआ। रावण जिन-जिन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करता था, उन सबका बाणोंद्वारा छेदन करके महाबली श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे सारथिको तथा दस बाणोंसे उसके बड़े-बड़े घोड़ोंको भराशापी करके एक भल्ल नामक बाणद्वारा रावणके धनुषको भी काट डाला। फिर महान् पराक्रमी रामने पंद्रह बाणोंसे उसके मुकुट छेधकर सुवर्णकी पोंछवाले दस बाणोंसे उसके मस्तकोंको भी छेध दिया। उस समय देवताओंका मान-मर्दन करनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गया और मन्त्रियोंद्वारा ले जाया जाकर वह अपनी पुरी लङ्काको लौट गया ॥ ५०—५७ ॥

बोधितस्तूर्यनादैस्तु गजयूथक्रमैः शनैः ।
 पुनः प्राकारमुखद्वयं कुम्भकर्णो विनिर्गतः ॥ ५८
 उत्तुङ्गस्थूलदेहोऽसौ भीमदृष्टिर्महाबलः ।
 वानरान् भक्षयन् दुष्टो विचचार क्षुधान्वितः ॥ ५९
 तं दृष्टोत्पत्य सुग्रीवः शूलैर्नोरस्यताडयत् ।
 कर्णद्वयं कराभ्यां तुच्छित्वा वक्ष्येण नासिकाम् ॥ ६०
 सर्वतो युध्यमानांश्च रक्षोनाथान् रणेऽधिकान् ।
 राघवो घातयित्वा तु वानरेन्द्रैः समन्ततः ॥ ६१
 चकतं विशिखैस्तीक्ष्णैः कुम्भकर्णस्य कण्ठम् ।
 विजित्येन्द्रजितं साक्षाद्गरुडेनागतेन सः ॥ ६२
 रामो लक्ष्मणसंयुक्तः शुशुभे वानैर्वृतः ।
 व्यर्थं गते चेन्द्रजिति कुम्भकर्णो निपातितः ॥ ६३
 लङ्कानाथस्ततः क्रुद्धः पुत्रं त्रिशिरसं पुनः ।
 अतिकायमहाकायी देवान्तकनरान्तकी ॥ ६४
 यूयं हत्वा तु पुत्राद्या तौ नरौ युधि निष्ठत ।
 तान्नियुज्य दशग्रीवः पुत्रानेवं पुनर्बन्धितः ॥ ६५
 महोदरमहापार्श्वं सार्धमेतैर्महाबलैः ।
 संग्रामेऽस्मिन् रिपून् हन्तुं युवां व्रजतमुद्यती ॥ ६६
 दृष्ट्वा तानागतांश्च युध्यमानान् रणे रिपून् ।
 अनयाश्चक्ष्मणः पद्भिः शरीरस्तीक्ष्णैर्यमालयम् ॥ ६७
 वानराणां समूहश्च शिष्टांश्च रजनीचरान् ।
 सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो बलदर्पितः ॥ ६८
 निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्ठकः ।
 विरूपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः ॥ ६९
 भीममैन्द्री च श्वपतिं वानरेन्द्री निजघ्नतुः ।
 अङ्गदो जाम्बवान्श्चाथ हरयोऽन्यात्रिजाचरान् ॥ ७०
 युध्यमानस्तु समरे महालक्षं महाचलम् ।
 जघान रामोऽथ रणे बाणवृष्टिकरं नृप ॥ ७१

तदनन्तर वाद्योंके घोषसे जगाया गया कुम्भकर्ण लङ्काके परकोटेको लौकर धीरे-धीरे गजसमूहको-सी मन्द गतिसे बाहर निकला। उसका शरीर बहुत ही ऊँचा और मोटा था, आँखें बड़ी ही भयानक थीं। वह महाबली दुष्ट राक्षस भूखसे व्याकुल हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा। उसे देख सुग्रीवने उड़लकर उसको छातीमें शूलसे प्रहार किया तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों कानोंको और मुखसे उसको नासिकाको काट लिया ॥ ५८-६० ॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहुसंख्यक राक्षसोंकी चारों ओरसे वानरोंद्वारा मरवाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला काट लिया। फिर वहाँ आये हुए साक्षात् गरुड़के द्वारा इन्द्रजित्को भी जीतकर वानरोंसे धिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित बड़ी जोधा पाने लगे। इन्द्रजित्का उद्योग व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मरे जानेपर लङ्कापति रावणने क्रुद्ध हो अपने पुत्र त्रिशिरा, अतिकाय, महाकाय, देवान्तक और नरान्तकसे कहा—‘पुत्रवरो! तुम उन दोनों मनुष्यों—राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डालो।’ इस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आज्ञा दे दशकण्ठ रावणने पुनः महोदर और महापार्श्व नामक राक्षसोंसे कहा—‘तुम दोनों इस संग्राममें शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ ॥ ६१-६६ ॥

रणभूमिमें उपर्युक्त शत्रुओंको आकर युद्ध करते देख लक्ष्मणने छः तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक भेज दिया। इसके बाद वानराणने शेष राक्षसोंको मार डाला। सुग्रीवने बलाभिमाने कुम्भ नामक राक्षसको मारा, हनुमान्जीने देवताओंके लिये कण्ठकरूप निकुम्भका वध किया। युद्ध करते हुए विरूपाक्षको विभीषणने गदासे मार डाला। वानरक्षेत्र भीम और मैन्दने श्वपतिका संहार किया, अङ्गद और जाम्बवान् तथा अन्य वानरोंने दूसरे निराश्रितोंका संहार किया। नरेश्वर! युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजीने भी संग्रामभूमिमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले महाबल और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ६७-७१ ॥

इन्द्रजिन्मन्त्रलब्धं तु रथमारुह्य वै पुनः ।
 वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षं ववर्ष सः ॥ ७२
 रात्रौ तद्वाणभिन्नं तु बलं सर्वं च राघवम् ।
 निश्चेष्टमखिलं दृष्ट्वा जाम्बवत्प्रेरितस्तदा ॥ ७३
 वीर्यादीषधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः ।
 भूम्यां शयानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा ॥ ७४
 तैरेव वानरैः सार्धं ज्वलितोत्काकरैर्निशि ।
 दाहयामास लङ्कां तां हस्त्यध्वरक्षसाम् ॥ ७५
 वर्षनं शरजालानि सर्वदिक्षु घनो यथा ।
 स भ्रात्रा मेघनादं तं घातयामास राघवः ॥ ७६
 घातितेष्वथ रक्षसु पुत्रमित्रादिबन्धुषु ।
 कारितेष्वथ विष्टेषु होमजप्यादिकर्मणाम् ॥ ७७
 ततः क्रुद्धो दशग्रीवो लङ्काद्वारे विनिर्गतः ।
 क्वासी राम इति ब्रूते मानुषस्तापसाकृतिः ॥ ७८
 योद्धा कपिबलीत्युच्चैर्व्याहरद्राक्षसाधिपः ।
 वेगवद्भिर्विनीतैश्च अश्वैश्चित्ररथे स्थितः ॥ ७९
 अथायानं तु तं दृष्ट्वा रामः प्राह दशाननम् ।
 रामोऽहमत्र दुष्टात्मन्नेहि रावण मां प्रति ॥ ८०
 इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम् ।
 अनेन रक्षसा योत्ये त्वं तिष्ठेति महाबल ॥ ८१
 ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः ।
 विंशद्बाहुविसृष्टस्तु शस्त्रास्त्रैर्लक्ष्मणं युधि ॥ ८२
 रुरोध स दशग्रीवः तयोर्युद्धमभून्महत् ।
 देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्धुर्महाहवम् ॥ ८३
 ततो रावणशस्त्राणिच्छित्त्वा स्वैस्तोक्ष्णसायकैः ।
 लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्चानपि भद्रकैः ॥ ८४

तत्पश्चात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आरुढ़ हो समस्त वानरोंपर बाण-वृष्टि करने लगा। रात्रिके समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनादके बाणोंसे विद्ध हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार हनूमान्जी जाम्बवान्के द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रम औषध ले आये। उन्होंने उस औषधके प्रभावसे भूमिपर पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको उठाया और प्रन्वतित उत्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रातमें जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे युक्त राक्षसोंकी लङ्कामें आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए मेघनादका अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा बध करा दिया ॥ ७२—७६ ॥

इस प्रकार जब पुत्र-मित्रादि समस्त राक्षस-बन्धु मारे गये तथा होम-जप आदि अभिचार-कर्मोंमें वानरोंद्वारा विघ्न डाल दिया गया, तब क्रुषित हो दशग्रीव रावण वेंगशाली सुशिक्षित अश्वोंसे युक्त विचित्र रथमें बैठकर लङ्काके द्वारपर निकल आया और कहने लगा—'तपस्वीका येप बनाये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंके बलपर योद्धा बना हुआ है?' राक्षसराज रावणने यह बात बड़े जोरोंसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको आते देख उससे कहा—'दुष्टात्मा रावण! मैं ही राम हूँ और यहाँ खड़ा हूँ, तू मेरी ओर चला आ' ॥ ७७—८० ॥

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबल! आप अभी ठहरें, मैं इस राक्षसके साथ युद्ध करूँगा।' तदनन्तर लक्ष्मणने आगे बढ़कर बाणोंको वृष्टिसे रावणको ढक दिया। फिर दशग्रीव रावणने भी अपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको संग्राममें आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर अरुद्ध देवतागण इस महान् संग्रामको देख [कौतूहलवश] आकाशमें दिखत हो गये ॥ ८१—८३ ॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणने अपने तोखे बाणोंद्वारा रावणके अस्त्र तस्त्र काटकर उसके सारथिकों मार डाला और भद्र नामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया।

रावणस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं च निशितैः शरैः ।
वक्षःस्थलं महावीर्यो विव्याध परवीरहा ॥ ८५

ततो रथान्निपत्याधः क्षिप्रं राक्षसनायकः ।
शक्तिं जग्राह कुपितो घण्टानादविनादिनीम् ॥ ८६

अग्निज्वालान्वलज्जिह्वां महोल्कासदृशघृतिम् ।
दृढमुष्ट्या तु निक्षिप्ता शक्तिः सा लक्ष्मणोरासि ॥ ८७

विदार्यान्तःप्रविष्टाथ देवास्त्रस्तास्ततोऽम्बरे ।
लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा रुदद्भिर्वायोरेश्वरैः ॥ ८८

दुःखितः शीघ्रमागम्य तत्पार्श्वं प्राह राघवः ।
क गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्मजः ॥ ८९

यदि जीवति मे धाता कश्चित्पतितो भुवि ।
इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विख्यातपीरुषः ॥ ९०

बद्ध्वाञ्जलिं बभाषेदं देहानुज्ञां स्थितोऽस्मि भोः ।
रामः प्राह महावीर विशल्यकरणी मम ॥ ९१

अनुजं विरुजं शीघ्रं कुरु मित्र महाबल ।
ततो वेगात्समुत्पत्य गत्वा द्रोणगिरिं कपिः ॥ ९२

बद्ध्वा च शीघ्रमानीय लक्ष्मणं नीरुजं क्षणात् ।
चकार देवदेवेशां पश्यतां राघवस्य च ॥ ९३

ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामः कमललोचनः ।
रावणस्य बलं शिष्टं हस्त्यश्वरथराक्षसम् ॥ ९४

हत्वा क्षणेन रामस्तु तच्छरीरं तु सायकैः ।
तीक्ष्णैर्जर्जरितं कृत्वा तस्थिवान् वानरैर्वृतः ॥ ९५

अस्तचेष्टो दशग्रीवः संज्ञां प्राप्य जनैः पुनः ।
उत्थाय रावणः क्रुद्धः सिंहनादं ननाद च ॥ ९६

तत्रादश्रवणैर्व्योम्नि विव्रस्तो देवतागणः ।
एतस्मिन्नेव काले तु रामं प्राप्य महामुनिः ॥ ९७

फिर तोखे बाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर शत्रु-बाणोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्षःस्थलको बेध दिया। तब राक्षसराज रावण अपने नीचे गिर पड़ा। किंतु शीघ्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें शक्ति उठायी, जो सैकड़ों घड़ियालोंकी समान आवाज करनेवाली थी। उसकी धार अग्निकी ज्वालाके समान प्रज्वलित थी तथा उसकी कान्ति महती उत्कृष्टके समान प्रतीत होती थी। उसने दृढ़तापूर्वक मुट्ठी बांधकर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर फेंका। यह शक्ति उनकी छाती छेदकर भीतर धुस गयी। इससे आकाशमें स्थित देवतागण भयभीत हो गये। लक्ष्मणकी गिरा देख रोते हुए वानराधिपतिपोंके साथ दुःखी हो भगवान् श्रीराम शीघ्र ही उनके पास आये और कहने लगे—'मेरे मित्र पवनकुमार हनुमान् कहाँ चले गये? पृथ्वीपर पड़ा हुआ मेरा भाई लक्ष्मण जिस किसी प्रकार भी जीवित हो सके, वह उपाय होना चाहिये' ॥ ८४—८९॥

राजन्! उनके इस प्रकार कहनेपर, विख्यात पराक्रमी वीर हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—'देव! आज्ञा दें, मैं सेवामें उपस्थित हूँ' ॥ ९०॥

श्रीरामने कहा—'महावीर! मुझे 'विशल्यकरणी' ओषधि चाहिये। महाबली! उसे लाकर मेरे भाईको जोष ही नीरोग करो' ॥ ९१॥

तब हनुमान्जी बड़े वेगसे उड़ले और द्रोणगिरिपर जाकर शीघ्र ही वहाँसे दवा बाँधकर ले आये और उसका प्रयोग करके देवदेवेश्वरों तथा रामचन्द्रजीके देखते-देखते क्षणभरमें लक्ष्मणकी नीरोग कर दिया ॥ ९२—९३॥

तदनन्तर जगदीश्वर कमलनयन श्रीराम बहुत ही कुपित हुए और रावणकी खोजे हुई सेनाकी हाथी, घोड़े, रथ तथा राक्षसोंसहित क्षणभरमें मार गिराया। उन्होंने तोखे बाणोंसे रावणका शरीर चर्चर कर दिया और रणभूमिमें वानरोंसे फिर हुए खड़े रहे। रावण निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा। फिर धीरे-धीरे होतमें आतेपर वह उठकर कुपित हो सिंहनाद करने लगा। उसकी गर्जना सुनकर अज्ञातवर्ती देवतालोक दहल गये ॥ ९४—९६॥

इसी समय रावणके प्रति वीर बाँधे महामुनि अगस्त्य श्रीरामचन्द्रजीके पास आये

रावणे ब्रह्मवैरस्तु अगस्त्यो वै जयप्रदम् ।
 आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं प्रादाजयप्रदम् ॥ १८
 रामोऽपि जप्त्वा तन्मन्त्रमगस्त्योक्तं जयप्रदम् ।
 तदन्तं वीष्णवं चापमतुलं सद्गुणं दृढम् ॥ १९
 पूजयित्वा तदादाय सख्यं कृत्वा महाबलः ।
 सौवर्णपुङ्खस्तीक्ष्णस्तु शरैर्मर्मविदारणैः ॥ १००
 युयुधे राक्षसेन्द्रेण रघुनाथः प्रतापवान् ।
 तयोस्तु युध्यतोस्तत्र भीमशक्त्योर्महामते ॥ १०१
 परस्परविसृष्टस्तु व्योम्नि संवर्द्धितोऽनलः ।
 समुत्थितो नृपश्रेष्ठ रामरावणयोर्युधि ॥ १०२
 संगरे वर्तमाने तु रामो दाशरथिस्तदा ।
 पदातिर्युयुधे वीरो रामोऽनुक्तपराक्रमः ॥ १०३
 सहस्राश्वयुतं दिव्यं रथं मातलिमेव च ।
 प्रेषयामास देवेन्द्रो महान्तं लोकविभ्रुतम् ॥ १०४
 रामस्तं रथमारुह्य पूज्यमानः सुरोत्तमैः ।
 मातल्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान् ॥ १०५
 ब्रह्मदत्तवरं दुष्टं ब्रह्मास्त्रेण दशाननम् ।
 जघान वैरिणं क्रूरं रामदेवः प्रतापवान् ॥ १०६
 रामेण निहते तत्र रावणे सगणे रिपी ।
 इन्द्राद्या देवताः सर्वाः परस्परमद्याब्रुवन् ॥ १०७
 रामो भूत्वा हरिर्यस्मादस्माकं वैरिणं रणे ।
 अन्यैरथध्यमप्येनं जघान युधि रावणम् ॥ १०८
 तस्मात्तं रामनामानमनन्तमपराजितम् ।
 पूजयामोऽवतीर्यनमित्युक्त्वा ते दिवीकसः ॥ १०९
 नानाविमानैः श्रीमद्विरवतीर्यं महीतले ।
 रुद्रेन्द्रवसुचन्द्राद्या विधातारं सनातनम् ॥ ११०
 विष्णुं जिष्णुं जगन्मूर्तिं सानुजं राममव्ययम् ।
 तं पूजयित्वा विधिवत्परिवार्योपतस्थिरे ॥ १११
 रामोऽयं दृश्यतां देवा लक्ष्मणोऽयं व्यवस्थितः ।
 सुग्रीवो रविपुत्रोऽयं वायुपुत्रोऽयमास्थितः ॥ ११२

और शत्रुओंपर विजय दिलानेवाले 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्र-मन्त्रका उपदेश किया। महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी अगस्त्यमुनिके बताये हुए उस विजयदायक मन्त्रका जप करके उनके द्वारा अर्पित किये गये उत्तम डोरेवाले, सुदृढ़ एवं अनुपम वीष्णव-धनुषको सादर ग्रहण किया और उसपर प्रत्यक्षा चढ़ायी। फिर प्रतापी रघुनाथजी शत्रुओंका मर्म-भेदन करनेमें समर्थ सोनेको पाँखवाले तीक्ष्ण चाणोंद्वारा राक्षसराव रावणके साथ युद्ध करने लगे ॥ १०—१०० ॥

महामते! नृपश्रेष्ठ! उन दोनों भयंकर शक्तिवाले श्रीराम और रावणके परस्पर युद्ध करते समय एक दूसरेपर छाँड़ी हुई अग्निबी ज्वाला उठ उठकर वहाँ आकाशमें फैलने लगी। इस वर्तमान संग्राममें अवर्णनीय पराक्रमवाले वीर दशरथनन्दन श्रीराम पैदल ही युद्ध कर रहे थे। यह देख देवराज इन्द्रने अपने शरार्थि मातलिसहित एक महान् लोकविज्ज्वात दिव्य रथ भेजा, जिसमें एक हजार घोड़े जुते थे। प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवोंद्वारा प्रशंसित होकर उस रथपर आरुढ़ हुए और मातलिके उपदेशसे उस दुष्ट दशाननका, जिसे ब्रह्माजीने वरदान दिया था, ब्रह्मास्त्रद्वारा वध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने क्रूर वैरी रावणका संहार किया ॥ १०१—१०६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शत्रु रावणका उसके गणोंसहित वध हो जानेपर इन्द्र आदि सभी देवता परस्पर कहने लगे—“सबका भगवान् विष्णुने ही श्रीरामावतार लेकर हमारे वैरी रावणका, जो दूसरोंके लिये अतृप्त था, युद्धमें वध किया है। इसलिये हम लोग आकाशमें उड़कर इन अनन्त पराक्रमी तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाले 'श्रीराम' नामक परमेश्वरकी पूजा करें।” ऐसी सम्मति करके वे रुद्र, इन्द्र, वसु और चन्द्र आदि देवतागण अनेक कान्तिमान् विमानोंद्वारा पृथ्वीपर उतरे। वे जगत्के रक्षयिता, विश्वमूर्ति, सनातन पुरुष, विजयशील भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत अविनाशी परमात्मा श्रीरामका लक्ष्मणसहित विधिवत् पूजन करके उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ १०७—१११ ॥

सब देवता परस्पर कहने लगे—‘देवगण! देखो— ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये लक्ष्मणजी खड़े हैं, ये सूर्यनन्दन सुग्रीव हैं, ये वायुनन्दन हनुमान्जी खड़े हैं और ये

अङ्गदाणां इमे सर्वे इत्युचुस्ते दिवौकसः ।
 गन्धामोदितदिक्कका धमरालिपदानुगा ॥ ११२
 देवस्त्रीकरनिर्मुक्ता राममूर्धनि शोभिता ।
 पपात पुण्यवृष्टिस्तु लक्ष्मणस्य च मूर्धनि ॥ ११४
 ततो ब्रह्मा समागत्य हंसयानेन राघवम् ।
 अमोघारुह्येन स्तोत्रेण स्तुत्वा राममबोचत ॥ ११५

ब्रह्माजीने

त्वं विष्णुरादिर्भूतानामनन्तो ज्ञानद्वयप्रभुः ।
 त्वमेव शाश्वतं ब्रह्म वेदान्ते विदितं परम् ॥ ११६
 त्वया यदद्य निहतो रावणो लोकरावणः ।
 तदाशु सर्वलोकानां देवानां कर्म साधितम् ॥ ११७
 इत्युक्ते पद्मयोनी तु शङ्करः प्रीतिमास्थितः ।
 प्रणम्य रामं तस्मै तं भूयो दशरथं नृपम् ॥ ११८
 दर्शयित्वा गतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन् ।
 ततो बाहुबलप्राप्तं विमानं पुष्पकं शुभम् ॥ ११९

पूतामारोप्य सीतां तामादिष्टः पद्मनात्मजः ।
 ततस्तु जानकीं देखीं विशोकां भूषणान्विताम् ॥ १२०
 वन्दितां वानरेन्द्रैस्तु सार्धं भ्रात्रा महाबलः ।
 प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्ये स राघवः ॥ १२१
 लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शम्भोरनुग्रहात् ।
 रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥ १२२
 तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति ।
 रामस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसौ भरतासक्तमानसः ॥ १२३

ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः ।
 अभिषिक्तो वसिष्ठाद्यैर्भरतेन प्रसादितः ।
 अकरोद्धर्मतो रात्र्यं चिरं रामः प्रतापवान् ॥ १२४

अङ्गद आदि सभी वानर धीर विराजमान हैं ।' तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मस्तकपर देवाङ्गनाओं-
 के हाथसे छोड़े गये 'फूलोंकी बरषा हुई। उस समय
 वहाँको सब दिशाएँ उन दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धसे
 सुवासित हो रही थीं और उन पुष्पोंपर भ्रमरगण मँडरा
 रहे थे ॥ ११२—११४ ॥

उदनन्तर ब्रह्माजी हंसकी सवारीसे वहाँ आये और
 'अमोघ' नामक स्तोत्रसे भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके
 तब उनसे बोले ॥ ११५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—आप समस्त प्राणियोंके
 आदिकारण, अधिवासी, ज्ञानदृष्टि भगवान् विष्णु हैं; आप
 ही वेदान्त-विख्यात सनातन परब्रह्म हैं। आपने आज जो
 सम्पूर्ण लोकोंको रक्तानेवाले रावणका बध किया है,
 इससे समस्त लोकों तथा देवताओंका भी कार्य सद्यःसिद्ध
 हो गया ॥ ११६—११७ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवान् शङ्करने
 भी पहले श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। फिर
 उन्हें राजा दशरथका दर्शन कराया। उसके बाद यह
 कहकर कि 'सीताजी निष्कलङ्क और शुद्ध चरित्रवाली
 हैं'—भगवान् शंकर चले गये ॥ ११८ १/२ ॥

उदनन्तर पवित्रात्मा सीताजीको अपने बाहुबलसे
 प्राप्त सुन्दर पुष्पक-विमानपर चढ़ाकर भगवान् हनुमान्जी-
 को चलनेका आदेश दिया। तब समस्त वानरेन्द्रोंद्वारा
 चन्दित लोकरीहित जानकीदेवीको आभूषणोंसे विभूषितकर
 महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले।
 लौटती बार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी
 स्थापना की और शङ्करजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें
 परमभक्ति प्राप्त की। वहाँ स्थापित हुए पिनाकधारी
 महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। उनके दर्शनमात्र
 से शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते
 हैं ॥ ११९—१२० १/२ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना
 चित्त भारतजीकी ओर लगा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी
 अयोध्याको गये। फिर भारतजीके मनानेपर श्रीरामचन्द्रजीने
 वसिष्ठ आदि दत्तम् ब्राह्मणोंके द्वारा अपना राव्याभिषेक
 कराया। उपरान्त प्रताप भगवान् श्रीरामने चिरकालतक

यज्ञादिकं कर्म निजं च कृत्वा
 परैस्तु रामो दिवमाकरोह।
 राजन्मया ते कथितं समासतो
 रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः।
 इदं सुभक्त्या पठतां च शृण्वतां
 ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः ॥ १२५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामचन्द्रजीके द्विरहोक्तोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इत प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामचन्द्रजीके कल्याणकर्म कावचकी अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र

श्रीकृष्णदेव उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावद्वयं शुभम्।
 तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समासतः ॥ १ ॥
 पुरा ह्यसुरभारता मही प्राह नृपोत्तम।
 आसीनं देवमध्ये तु ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ २ ॥
 देवासुरे हता ये तु विष्णुना दैत्यदानवाः।
 ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्भव ॥ ३ ॥
 तद्भारिभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन।
 मम तद्भारहानिः स्याद्यथा देव तथा कुरु ॥ ४ ॥
 तयैवमुक्तो ब्रह्माथ देवैः सह जगाम ह।
 क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविद्योदितम् ॥ ५ ॥
 तत्र गत्वा जगत्त्रय देवैः सार्धं जनार्दनम्।
 नरसिंहं महादेवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६ ॥
 अभ्यर्च्य भक्त्या गोविन्दं वाक्पुष्पेण च केशवम्।
 पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः ॥ ७ ॥

राजेश्वर

वाक्पुष्पेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माप्यर्चितवान् हरिम्।
 तमे कथय विप्रेन्द्र ब्रह्मोक्तं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥

धर्मपूर्वक राज्य किया तथा राजोचित यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करके वे पुरवासौजन्योंके साथ ही स्वर्गलोक (साकेतधाम)-को चले गये। राजन्! पृथ्वीपर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके किये हुए चरित्रोंका मैंने तुमसे संक्षेपतः वर्णन किया। जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धाम प्रदान करते हैं ॥ १२३-१२५ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—अब मैं तीसरे राम (बलराम) और श्रीकृष्णके युगत अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालको याद है, पृथ्वी दैत्योंके भारसे पीड़ित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान कमलासन ब्रह्माजीके पास गयी और इस प्रकार बोली ॥ १-२ ॥

‘कमलोद्भव! देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस आदि क्षत्रियोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। चतुरानन! उनके भरी कोशसे दसकर मैं बहुत दुःखी हो गयी हूँ। देव! मेरा वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें’ ॥ ३-४ ॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तर तटपर भगवान् विष्णुके निकट गये। उन्होंने भगवान्को अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतेसे जगाया था। वहाँ पहुँचकर जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ नरसिंहस्वरूप महान् देवता भगवान् जनार्दनकी गन्ध पुष्पादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की। फिर वाक्पुष्पसे भी उन गोविन्द-केशवका पूजन किया। राजेन्द्र! इससे वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु उनपर बहुत संतुष्ट हुए ॥ ५-७ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको वाक्पुष्पसे किस प्रकार पूजा की? विप्रेन्द्र! ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए उस उत्तम स्तोत्र (वाक्पुष्प)-को आप मुझे सुनाइये ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं ब्रह्ममुखेरितम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुतुष्टिकरं परम् ॥ ९
तमाराध्य जगन्नाथमूर्ध्वबाहुः पितामहः ।
भूत्वैकाग्रमना राजन्निदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १०

ब्रह्मवाच

नपापि देवं नरनाथमच्युतं
नारायणं लोकगुरुं सनातनम् ।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमध्ययं
वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ११
आनन्दरूपं परमं परात्परं
चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं
ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम् ॥ १२
भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं
सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम् ।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं
रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १३
गदासिशङ्खाब्जकरं भ्रियः पतिं
सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम् ।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं
नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम् ॥ १४
गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं
सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा ।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्वनिं
जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम् ॥ १५
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान्
स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः ।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं य-
स्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १६

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! मैं ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए उस उत्तम स्तोत्रको कहता हूँ, सुनो! वह स्तोत्र समस्त चार्णको हरनेवाला, पवित्र तथा भगवान् विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाला है। राजन्! ब्रह्माजीने पूर्वोक्त रूपसे भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके एकाग्रचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ किया ॥ ९ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—मैं सम्पूर्ण जोंनोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त, अधिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं जिनियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नीलकमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवकी मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शङ्ख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्ग धनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीतवस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुवश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें गृध्रोंपर अवतार ले, देवद्रोही दान्योंको हत्या करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्को सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्ग्रामो भगवान् केशवकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ११—१६ ॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान्
 वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
 निहत्य युद्धे मधुकैटभाबुधौ
 तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा ॥ १७

देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो
 व्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान्।
 हिताय कौर्मं वपुरास्थितो य-
 स्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम् ॥ १८

हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं
 वराहरूपी भगवान् सनातनः।
 यो भूमिमेतां सकलां समुद्धर-
 स्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम् ॥ १९

कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं
 हिताय लोकस्य सनातनो हरिः
 जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दिनेः सुतं
 तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥ २०

यो वामनोऽसी भगवान्जनार्दनो
 बलिं वचन्ध त्रिभिरुजितैः पदैः।
 जगत्त्रयं कम्प्य ददौ पुरंदरो
 तदेवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम् ॥ २१

यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात्
 त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपात्वजानपि।
 तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं
 नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा ॥ २२

सेतुं महान्तं जलधौ वचन्ध यः
 सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम्।
 जघान भृत्यं जगतां सनातनं
 तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि ॥ २३

यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः
 कृतं त्वया देव हितं सुराणाम्।
 तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं
 प्रसीद विष्णो भगवन्नमस्ते ॥ २४

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेदवेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और अमूर्तोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराक्षतको सचका हित करनेके लिये कूर्मरूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुंधराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानों दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही शंख नृसिंहरूप धारण करके अपने तीक्ष्ण नखोंद्वारा दिने-नन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको जीया था और अपने बड़े हुए तीन पैरोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कौपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इकोस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने समुद्रमें बहुत बड़ा पुल बाँधा और लङ्कामें पहुँचकर त्रिलोकीको रक्षाके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालमें] वाराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने दैत्यताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सदा नमस्कार है ॥ १७—२४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः श्रीधरः पद्मयोनिना ।
 आविर्बभूव भगवाञ्छङ्खचक्रगदाधरः ॥ २५
 उवाच च हृषीकेशः पद्मयोनिं सुगन्धिपि ।
 स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवीकसः ॥ २६
 पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि ।
 यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥ २७
 देवैः सेन्द्रैः सरुद्रैस्तु पृथ्व्या च प्रार्थितो ह्यहम् ।
 पद्मयोने वदाद्य त्वं श्रुत्वा तत्करवाणि ते ॥ २८
 इत्युक्ते विष्णुना प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 दैत्यानां गुरुभारेण पीडितेयं मही भृशम् ॥ २९
 लघ्वीमिमां कारयितुं त्वयाहं पुरुषोत्तम ।
 तेनागतः सुरैः सार्धं नान्यदस्तीति कारणम् ॥ ३०
 इत्युक्तो भगवान् प्राह गच्छध्वममराः स्वकम् ।
 स्थानं निरामयाः सर्वे पद्मयोनिस्तु गच्छन्तु ॥ ३१
 देवक्यां वसुदेवाच्च अग्रतीर्थं महीतले ।
 सितकृष्णे च मच्छक्ती कंसादीन् घातयिष्यतः ॥ ३२
 इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यं हरिं गत्वा ययुः सुराः ।
 गतेषु त्रिदिवीकःसु देवदेवो जनार्दनः ॥ ३३
 शिष्टानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च ।
 प्रेषयामास ते शक्ती सितकृष्णे स्वके नृप ॥ ३४
 तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्बभूव ह ।
 तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह ॥ ३५
 रोहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान् ।
 देवकीनन्दनः कृष्णस्तयोः कर्म शृणुष्व मे ॥ ३६
 गोकुले बालकाले तु राक्षसी शकुनी निशि ।
 रामेण निहता राजन् तथा कृष्णेन पूतना ॥ ३७
 धेनुकः सगणस्तालवने रामेण घातितः ।
 शकटशार्जुनौ वृक्षौ तद्वत्कृष्णेन घातितौ ॥ ३८

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगत्पति भगवान् लक्ष्मीधर हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हुए तथा ये भगवान् हृषीकेश ब्रह्माजी और देवताओंसे बोले—‘पितामह! देवताओं! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। देवगण! यह स्तोत्र इसका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नष्ट करनेमें समर्थ है। यद्यपि मैं श्रीहरिके रूपमें भक्तिमान् पुरुषोंको भी कठिनतासे ही प्राप्त होता हूँ, तथापि इस स्तोत्रके प्रभावसे मैं प्रत्यक्ष प्रकट हो गया हूँ। ब्रह्माजी! आज यह और इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा पृथिवीने मेरी प्रार्थना की है, अतः तुम लोग अपना मनोरथ कहो; उसे सुनकर पूर्ण करूँगा’ ॥ २५—२८ ॥

भगवान् विष्णुके यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी बोले—‘पुरुषोत्तम! यह पृथ्वी दैत्योंके गुरुतर भारसे अत्यन्त पीडित हो रही है। अतः मैं आपके द्वारा इस वसुधाके भारको उतरवानेके लिये यहाँ देवताओंके साथ आया हूँ। मेरे अनेक दूसरा कोई कारण नहीं है’ ॥ २९—३० ॥

यह सुनकर भगवान्ने कहा—‘देवगण! तुम लोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। ब्रह्माजी भी चले जायें। मेरी गौर और कृष्ण—दो शक्तियाँ पृथ्वीपर वसुदेवजीके शीर्ष एवं देवजीके गर्भसे अवतार लेकर कंस आदि अमूर्तेका वध करेंगी’ ॥ ३१—३२ ॥

भगवान्का यह वचन सुनकर सभी देवता उनकी प्रणाम करके चले गये। राजन्! देवताओंके चले जानेपर देवदेव जनार्दनने सज्जनोंको रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी ये गौर-कृष्ण—दो शक्तियाँ भेजीं। उनमेंसे गौर शक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्ण शक्तिने वसुदेवके अंश एवं देवकीके गर्भसे अवतार लिया। पुण्यात्मा महापुरुष रोहिणीनन्दनने ‘राम’ नाम धारण किया और देवकीनन्दनका ‘श्रीकृष्ण’ नाम रखा गया। नरेन्द्र! तुम उन दोनोंके कर्म मुझसे सुनो ॥ ३३—३६ ॥

राजन्! गोकुलमें रामने बाल्यकालमें ही रात्रिके समय एक पक्षीरूपधारिणी राक्षसीको मारा था और श्रीकृष्णने ‘पूतना’ का संहार किया था। रामने तालवनमें ‘धेनुक’ नामक राक्षसको उसके गणोंसहित मारा था और श्रीकृष्णने भी शकट उलट दिया तथा ‘चमस्तादुन’ नामक दो वृक्षोंको उखाड़ दिया था।

प्रलम्बो निधनं नीतो दैत्यो रामेण मुष्टिना ।
कालियो दमितस्तोये कालिन्धां विषपत्रगः ॥ ३९

गोवर्धनश्च कृष्णो न धृतो वर्षति वासवे ।
गोकुलं रक्षता तेन अरिष्टश्च निपातितः ॥ ४०

केशी च निधनं नीतो दुष्टवाजी महामुरः ।
अकूरेण च तौ नीतौ मथुरायां महात्मना ॥ ४१

ददर्श तु निमग्नश्च रामकृष्णौ महामते ।
स्वं स्वं रूपं जले तस्य अकूरस्य विभूतिदम् ॥ ४२

अनयोर्भावमतुलं ज्ञात्वा दृष्ट्वा च यादवाः ।
बभूवुः प्रीतमनसो ह्यकूरश्च नृपात्मज ॥ ४३

दुर्वचश्च प्रजल्पन्तं कंसस्य रजकं ततः ।
कृष्णो जघान रामश्च तदुस्त्रं ब्रह्मणे ददौ ॥ ४४

मालाकारेण भक्ष्या तु सुमनोभिः प्रपूजितौ ।
ततस्तस्य वरान्दत्त्वा दुर्लभान् रामकेशवी ॥ ४५

गच्छन्तौ राजमार्गं तु कुब्जया पूजितौ ततः ।
तत्कौटिल्यमपानीय विरूपं कार्मुकं ततः ॥ ४६

वभञ्ज कृष्णो बलवान् कंसस्याकुप्य तत्क्षणात् ।
रक्षपालान् जघानाथ रामस्तत्र खलान् बहून् ।

हत्वा कुवलयारुख्यं च गजं रामजनार्दनौ ॥ ४७

प्रविश्य रङ्गं गजदन्तपाणी
मदानुलिप्ता वसुदेवपुत्री ।
युद्धे तु रामो निजघान माझं
शीलोपमं मुष्टिकमव्ययात्मा ॥ ४८

कृष्णोऽपि चाणूरमतिप्रसिद्धं
बलेन वीर्येण च कंसमलकम् ।

युद्ध्वा तु तेनाथ चिरं जघान
तं दैत्यमाझं जनसंसदीशः ॥ ४९

रामने 'प्रलम्ब' नामक राखसको मुञ्चते मारकर मौतके घाट उतारा तथा श्रीकृष्णने यमुनाके जलमें रहनेवाले विषले सपं 'कालिय' का दमन किया और इन्द्रके वर्षा करते समय ये सात दिनोंतक हाथपर गोवर्धनपर्वत धारण किये खड़े रहे। इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने गोकुलकी रक्षा करते हुए अरिष्टासुरका भी वध किया था। फिर दुष्ट घोड़ेका रूप धारण करनेवाले महान् असुर केशीका उन्होंने संहार किया; इसके बाद महात्मा अकूरजी [कंसकी आत्मासे] आये तथा राम और कृष्ण—दोनों बन्धुओंको मथुरा से गये। महामते! मार्गमें अकूरजीने यमुनामें दुबकी लगाते समय जलके भीतर राम और कृष्ण—दोनोंको देखा। उन दोनों बन्धुओंने अकूरजीको अपने-अपने ऐश्वर्यदायक स्वरूपका दर्शन कराया। नृपनन्दन! इन दोनोंके अनुपम स्वरूपको देख और जानकर अकूरजीके साथ ही समस्त यादवगण बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३९—४३ ॥

तत्पश्चात् [मथुरामें भ्रमण करते समय] कटुवचन कहनेवाले कंसके एक धोबीको कृष्ण और रामने मार डाला तथा उसके वस्त्र ब्राह्मणोंको बाँट दिये। फिर मार्गमें एक मालीने फूलोंसे धक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तब राम और श्रीकृष्णने उसे दुर्लभ वर दिये। उसके बाद जब वे सड़कपर चूम रहे थे, उसी समय 'कुब्ज' दामोदर आकर उनका आदर-सत्कार किया। तब श्रीकृष्णने उसकी भरी लगनेवाली कुब्जताको दूर कर दिया। तदनन्तर [यज्ञशालामें रखे गये] कंसके धनुषको महाबली श्रीकृष्णने [बलपूर्वक] खींचा और तत्काल ही तोड़ डाला। उस समय वहाँके अनेकों दुष्ट रक्षकोंको बलरामजीने मार डाला। फिर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंने मिलकर 'कुवलयारुख' नामक हाथीको भी मार गिराया ॥ ४४—४७ ॥

तदनन्तर उन दोनों वसुदेवकुमारोंने हाथीके दाँत उखाड़कर हाथमें ले लिये और उसके मदसे मने हुए ही रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। वहाँ अधिनाशी बलरामजीने पर्वतकार 'मुष्टिक' नामक पहलवानको कुस्तोंमें मार डाला और श्रीकृष्णचन्दने भी कंसके 'चाणूर' नामक

मृतस्य मातस्य च मुष्टिकस्य
मित्रं पुनः पुष्करकं स रामः ।
युद्धार्थमुत्थाय कृतक्षणां तं
मुष्टिप्रहारेण जघान वीरः ॥ ५० ॥

कृष्णः पुनस्तान् सकलात्रिहत्य
निगृह्य कंसं विनिपात्य भूमौ ।
स्वयं च देहे विनिपात्य तस्य
हत्वा तथोर्व्यां निचकर्ष कृष्णः ॥ ५१ ॥

हते तु कंसे हरिणातिक्रुद्धो
भातापि तस्यातिरुषेण चोत्थितः ।
सुनाभसंज्ञो बलवीर्ययुक्तो
रामेण नीतो यमसादनं क्षणात् ॥ ५२ ॥

तौ बन्ध मातापितरौ सुहृदौ
जनैः समस्तीर्यदुभिः सुसंवृता ।
कृत्वा नृपं चोग्रसेनं यदनां
सभां सुधर्मा ददतुर्महिन्दीम् ॥ ५३ ॥

सर्वज्ञभावावपि रामकृष्णौ
सम्राट्प्य सांदीपनितोऽस्त्रविद्याम् ।
गुरोः कृते पञ्चजनं निहत्य
यमं च जित्वा गुरवे सुतं ददौ ॥ ५४ ॥

निहत्य रामो मगधेश्वरस्य
बलं समस्तं बहुशः समागतम् ।
दिव्यास्त्रपूरैरभराविमावुभौ
शुभां पुरीं चक्रतुः सागरान्ते ॥ ५५ ॥

तस्यां विधायाश्च जनस्य वासं
हत्वा शृगालं हरिव्यवात्मा ।
दग्ध्वा महान्तं यवनं हुपाया-
द्वरं च दत्त्वा नृपतेर्जगाम ॥ ५६ ॥

रामोऽथ संशान्तसमस्तविग्रहः
सम्राट्प्य नन्दस्य पुनः स गोकुलम् ।
वृन्दावने गोपजनैः सुभाषितः
सीरेण रामो यमुनां चकर्ष ॥ ५७ ॥

पहलवानका, जो अपने बल और पराक्रमके कारण बहुत ही प्रसिद्ध था, कचुमर निकाल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उस जन-समाजमें दैत्य मल्ल चाणूरके साथ देतक युद्ध करनेके बाद उसका बध किया था। फिर वीरवर बलरामजीने युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठे हुए पुष्करको, जो 'मृत मुष्टिक' नामक मल्लका मित्र था, मुक्केसे ही मार डाला। इसके बाद श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित समस्त दैत्योंका मंहार करके कंसको पकड़ लिया और उसे मशके नीचे भूमिपर पटककर वे स्वयं भी उसके शरीरपर कूद पड़े। इस प्रकार कंसका बध करके श्रीकृष्णने उसके मृत देहको भूमिपर घसीटा। श्रीकृष्णद्वारा कंसके मारे जानेपर उसका बलवान् एवं पराक्रमी भ्राता सुनाभ आपना क्रोधपूर्वक युद्धके लिये उठा; किंतु उसे भी बलरामजीने तुरंत ही मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ५०—५२ ॥

तदनन्तर समस्त यदुवंशियोंसे घिरे हुए उन दोनों भाइयोंने अत्यन्त प्रसन्न हुए माता-पिताको वन्दना करके श्रोतप्रसेनको ही यदुवंशियोंका राजा बनाया और उन्हें इन्द्रको 'सुधर्मा' नामक दिव्य सभा प्रदान की ॥ ५३ ॥

यद्यपि बलराम और श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे, तो भी उन्होंने सांदीपनिसे अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी। फिर गुरुको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हो, 'पञ्चजन' दैत्यको मारा और यमराजको जातकर वे दीर्घकालके मरे हुए गुरुपुत्रको वहाँसे ले आये। यहाँ पुत्र उन्होंने गुरुजीको दक्षिणाके रूपमें अर्पित किया ॥ ५४ ॥

फिर बलरामजीने अपने ऊपर अनेकों बार चढ़ाई करनेवाले मगधराज जलसेणके समस्त सैनिकोंको दिव्यशस्त्रोंकी वर्षा करके मार डाला। इसके बाद उन दोनों देवेश्वरोंने समुद्रके भीतर एक सुन्दर पुरी द्वारकाका निर्माण कराया। उसमें मधुरवासो कुटुम्बीजनोंको बसकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने राजा शृगालका बध किया। फिर एक उपाय करके महान् यौद्धा यवनराजको भस्म कर, राजा मुचुकुन्दको वरदान दे, वे द्वारकामें लौट गये ॥ ५५—५६ ॥

वापश्छात् सारा यष्टेड़ा समाप्त हो जानेपर बलरामजी एक बार फिर नन्दके गोकुल (वृन्दावास)-में गये और वहाँ वृन्दावनमें गोपजनोंसे भली-भाँति प्रेमालाप आदिके द्वारा सम्मानित हुए। यहाँ उन्होंने अपने हमसे चगुनाजीका आकर्षण किया था।

सम्प्राप्य भार्यामथ रेवतीं च
रमे तथा द्वारवतीं स लाङ्गली।
क्षेत्रेण सम्प्राप्य तदा स रुक्मिणीं
कृष्णोऽपि रमे पुरुषः पुराणः ॥ ५८

द्यूते कलिङ्गराजस्य दन्तानुत्पादय लाङ्गली।
जघानापृषदेनैव रुक्मिणं चानृतान्वितम् ॥ ५९

कृष्णः प्राग्व्योतिषो दैत्यान् हयग्रीवादिकान् बहून्।
हत्वा तु नरकं चापि जग्गाह च महद्भनम् ॥ ६०

अदित्यं कुण्डले दत्त्वा जित्वेन्द्रं देवतैः सह।
गृहीत्वा पारिजातं तु ततो द्वारावतीं पुरीम् ॥ ६१

कुरुभिश्च धृतं साम्यं राम एको महाबलः।
कुरूणां भयमुत्पाद्य मोक्षयामास वीर्यवान् ॥ ६२

बाणबाहुवनं छिन्नं कृष्णेन युधि धीमता।
रामेण तद्वलं नीतं क्षयं कोटिगुणं क्षणान् ॥ ६३

देवापकारी रामेण निहतो वानरो महान्।
ततोऽर्जुनस्य साहाय्यं कुर्वता कंसशत्रुणा ॥ ६४

सर्वभूतबधाद्राजन् भुवो भारोऽवरोपितः।
तीर्थयात्रा कृता तद्द्वारामेण जगतः कृते ॥ ६५

रामेण निहता ये तु तात्र संख्यातुमुत्सहे।
एवं तौ रामकृष्णौ तु कृत्वा दुष्टवधं नृप ॥ ६६

अवतार्य भुवो भारं जग्मतुः स्वेच्छया दिवम्।
इत्येतां कथितौ दिव्यौ प्रादुर्भावी मया तव।

संक्षेपाद्रामकृष्णस्य काल्प्यं शृणु ममाधुना ॥ ६७

इत्थं हि शक्ती सितकृष्णरूपे
हरेरनन्तस्य महाबलाढ्ये।

कृत्वा तु भूमेर्नृप भारहानिं
पुनश्च विष्णुं प्रतिजग्मतुस्ते ॥ ६८

तदनन्तर द्वारकामें 'रेवती' नामकी भार्याको पाकर बलरामजी उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और पुराण-पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र भी क्षत्रियधर्मके अनुसार 'रुक्मिणी' नामक भार्याको हस्तगत करके उसके साथ सानन्द विहार करने लगे। तदनन्तर एक बार जूआ खेलते समय हलधरने कलिङ्गराजसे दोनोंको उखाड़ लिया और असत्यका आश्रय लेनेवाले लक्ष्मीको भी पालेसे ही मार गिराया। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्राग्व्योतिषपुरके हयग्रीव आदि बहुत-से दैत्योंको यमलोक पहुँचाया तथा नरकासुरका भी संहार करके वे उसके वहाँसे बहुत धन ले आये। वहाँसे श्रीकृष्ण इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने अदितिको उनके वे दोनों दिव्य कुण्डल दिये, जो नरकासुरने हड़प लिये थे। फिर देवताओंसहित इन्द्रको जोतकर पारिजात वृक्ष साथ ले, वे अपनी पुरी द्वारकाको लौट आये ॥ ५७—६१ ॥

तदनन्तर महाबली एवं महापराक्रमी बलरामजीने अकेले ही हस्तिनापुरमें जा कौरवोंको भय दिखाया और उनके द्वारा बंदी बन्नाये गये [श्रीकृष्णपुत्र] साम्बको छुड़ाया। फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें बाणासुरकी भुजओंको काट डाला और बलरामजीने उसके करोड़ों सैनिकोंका अलभामें ही संहार कर दिया। इसके बाद बलरामजीने देववैरो 'द्विगिद' नामक महान् वानरका वध किया। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी सहायता करके उनके द्वारा समस्त दुष्ट क्षत्रियोंका वध कराया और पृथ्वीका सारा भार उतार दिया। उन दिनों बलरामजी लोकहितके लिये तीर्थयात्रा कर रहे थे ॥ ६२—६५ ॥

राजन्! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने जितने दुष्टोंका वध किया था, उनकी गणना हम नहीं कर सकते। इस प्रकार दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने दुष्टोंका संहार करके भूमिका भार दूर किया। फिर वे स्वेच्छानुसार वैकुण्ठग्रामको पधार गये। इस तरह राम और श्रीकृष्णके इन दिव्य अवतारोंको मैंने तुम्हें संक्षेपसे कह सुनाया। अब मुझमें 'कल्कि-अवतार' का वर्णन सुनो। नरेश्वर! इस प्रकार अनन्त भगवान् विष्णुकी वे दोनों महाबलवती गौर और कृष्ण शक्तियाँ पृथ्वीका भार उतारकर पुनः अपने विष्णुस्वरूपमें लीन हो गयीं ॥ ६६—६८ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कृष्णप्रदुर्गाथो नाम विंशत्योऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीकृष्णका प्रदुर्गाथ' नामक विंशत्यो अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

कल्कि-चरित्र और कलि-धर्म

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ।
प्रादुर्भावं हरेः पुण्यं कल्क्याख्यं पापनाशनम् ॥ १

कलिकालेन राजेन्द्र नष्टे धर्मे महीतले ।
वृद्धिगते तथा पापे व्याधिसम्पीडिते जने ॥ २

देवैः सम्प्रार्थितो विष्णुः क्षीराब्धौ स्तुतिपूर्वकम् ।
साम्भलाख्ये महाग्रामे नानाजनसमाकुले ॥ ३

नाम्ना विष्णुयशःपुत्रः कल्की राजा भविष्यति ।
अश्वमारुह्य खड्गेन स्लेच्छानुत्सादयिष्यति ॥ ४

स्लेच्छान् समस्तान् क्षितिनाशभूतान्
हत्वा स कल्की पुरुषोत्तमांशः ।

कृत्वा च यागं बहुकाञ्चनाख्यं
संस्थाप्य धर्मे दिवमारुरोह ॥ ५

दशावताराः कथितास्तवैव
हरेर्मया पार्श्वे पापहन्तुः ।

इमं सदा यस्तु नृसिंहभक्तः
शृणोति नित्यं स तु याति विष्णुम् ॥ ६

राजोवाच

तव प्रसादाद्विप्रेन्द्र प्रादुर्भावाः श्रुता मया ।
नारायणस्य देवस्य शृण्वतां कल्मषापहाः ॥ ७

कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि सर्वविदां वरः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ ८

किमाहाराः किमाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे ।

मूल उवाच

शृणुध्वम्बयः सर्वे भरद्वाजेन संयुताः ॥ ९
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णे कृष्णत्वमागते ।

तस्मात् कलिर्महाघोरः सर्वपापस्य साधकः ॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इसके बाद मैं तुमसे

भगवान् विष्णुके 'कल्कि' नामक पावन अवतारका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; तुम सावधान होकर सुनो। राजेन्द्र! अब कलिकालद्वारा पृथ्वीपर धर्मका नाश हो जायगा, पाप बढ़ जायगा और सभी लोग नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होने लगेंगे, तब देवतालोग क्षीरसागरके तटपर जाकर वहाँ भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करेंगे। तदनन्तर भगवान् 'साम्भल' नामक महान् ग्राममें, जो बहुसंख्यक मनुष्योंसे परिपूर्ण होगा, विष्णुयशस्के पुत्ररूपसे अवतार ले, 'कल्कि' नामसे विख्यात राजा होंगे। फिर वे योद्धेपर चढ़कर, हाथमें तलवार ले, स्लेच्छोंका नाश करेंगे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके अंशभूत 'कल्कि' भूमण्डलका ध्वंस करनेवाले समस्त स्लेच्छोंका संहार कर, 'बहुकाञ्चन' नामक यज्ञ करके, धर्मकी स्थापना कर स्वर्गारूढ़ हो जायेंगे। राजेन्द्र! पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुके इन दस अवतारोंका मैंने वर्णन किया। जो भगवद्भक्त पुरुष इन अवतार-चरित्रोंका नित्य श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १-६ ॥

राजा बोले—विप्रेन्द्र! आपके प्रसादसे मैंने भगवान् नारायणके अवतारोंका, जो श्रोताओंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, श्रवण कर लिया। मुनिसत्तम! अब आप कल्किका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ महात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। कृपया बताइये कि कलिपुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे आहार और आचरण करते होंगे ॥ ७-८ ॥

मूलजी बोले—भरद्वाजसहित आप सभी ऋषियग सुनो। राजाके ये प्रेरणा करनेपर मार्कण्डेयजीने कलि-धर्मका इस प्रकार निरूपण किया। भगवान् कृष्णचन्द्रके परमधाम पधार जानेपर उनके अन्तर्धानके फलस्वरूप नमला पापोंका साधक महाघोर कलियुग प्रकट होगा;

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजदेवपराङ्मुखाः ॥ ११
व्याजधर्मरताः सर्वे दम्भाचारपरायणाः ।
असूयानिरताश्चैव बृथाहंकारदूषिताः ॥ १२
सर्वैः संक्षिप्यते सत्यं नरैः पण्डितगर्वितैः ।
अहमेवाधिक इति सर्व एव वदन्ति वै ॥ १३
अधर्मलोलुपाः सर्वे तथान्येषां च निन्दकाः ।
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ १४
अल्पायुष्मान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विजाः ।
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः ॥ १५
ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम् ।
कामक्रोधपरा मूढा बृथा संतापपीडिताः ॥ १६
ब्रह्मवैरा भविष्यन्ति परस्परबधेऽप्यसवः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सर्वे धर्मपराङ्मुखाः ॥ १७
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः ।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥ १८
राजानो ब्रह्मनिरतास्तथा लोभपरायणाः ।
धर्मकञ्चुकसंवीता धर्मविघ्नसंकारिणः ॥ १९
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मसमन्विते ।
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति ॥ २०
पितॄन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति बन्धुः शुश्रूश्च कर्मसु ।
पतीन् पुत्रान् वञ्छयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥ २१
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं श्रवाहुत्यं गवां क्षयः ।
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।
खण्डवर्षी च पर्जन्यः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वः सर्वं च जानाति वृद्धाननुपसेव्य च ॥ २२
न कश्चिदकविनाम सुरापा ब्रह्मवादिनः ।
किंकराश्च भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः ॥ २३

उस समय सभी धर्म नष्ट हो जायेंगे। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोग धर्म, ब्राह्मण तथा देवताओंसे विमुख हो जायेंगे। सभी किसी-न-किसी व्याजसे (स्वार्थसिद्धिके लिये) ही धर्ममें प्रवृत्त होंगे; दम्भ—होंगका आचरण करेंगे। एक-दूसरेमें दोष ढूँढ़नेवाले और व्यर्थ अभिमानसे दूषित विचारवाले होंगे। पण्डित्यका गर्व रखनेवाले सभी मनुष्य सत्यका अपलाप करेंगे और सब लोग यही कहेंगे कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ'। कलियुगमें सभी अधर्मलोलुप तथा दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे, अतः सबकी आयु बहुत थोड़ी होगी। द्विजगण! मनुष्योंकी आयु अल्प होनेसे ब्राह्मणलोग अधिक विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे। विद्याध्ययनसे शून्य होनेके कारण उनके द्वारा पुनः अधर्मकी ही प्रवृत्ति होगी ॥ १—१५ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। वे कामों, क्रोधों, मूर्ख और व्यर्थ संतापसे पीड़ित होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपसमें वैर बाँधकर एक-दूसरेका बध कर देनेकी इच्छावाले होंगे। वे सभी अपने-अपने धर्मसे विमुख होंगे। तप एवं सत्यभावणादिसे रहित होकर शूद्रके समान हो जायेंगे। उत्तम वर्णवाले नीचे गिरेंगे और नीचे वर्णवाले उत्तम बनेंगे। राजालोग लोभी तथा केवल भनोपार्जनमें ही प्रवृत्त रहेंगे। वे धर्मका चोला पहनकर उसीकी ओटमें धर्मका विध्वंस करनेवाले होंगे। समस्त जगत्में युक्त घोर कलियुगके आ जानेपर जो-जो थोड़े, रथ और हाथीसे सम्पन्न होंगे, वे-वे ही राजा कहे जायेंगे। पुत्र अपने पितासे काम करायेंगे और चहुँपे सामसे काम लेंगे। स्त्रियाँ पति और पुत्रको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास जाया करेंगी ॥ १६—२१ ॥

पुरुषोंकी संख्या कम और स्त्रियोंकी अधिक होगी। कुत्तोंकी अधिकता होगी और गौओंका ह्रास। सबके मनमें धनका ही महत्त्व रहेगा। सत्पुरुषोंके सदाचारका सम्मान नहीं होगा। मेघ कहीं वर्षा करेंगे, कहीं नहीं करेंगे। समस्त मार्ग चोरोंसे घिरे रहेंगे। गुरुजनोंकी सेवामें रहे बिना ही सभी लोग सब कुछ जाननेका अभिमान करेंगे। कोई भी ऐसा न होगा जो अपनेको कवि न मानता हो। शराय पीनेवाले लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय,

द्विपन्ति पितरं पुत्रा गुहं शिष्या द्विपन्ति च ।
 पतिं च वनिता द्वेष्टि कली घोरे समागते ॥ २४
 लोभाभिभूतमनसः सर्वे दुष्कर्मशीलिनः ।
 पराप्रलोलुपा नित्यं भविष्यन्ति द्विजातयः ॥ २५
 परस्त्रीनिरताः सर्वे परद्रव्यपरायणाः ।
 घोरे कलियुगे प्राप्ते नरं धर्मपरायणम् ॥ २६
 असूयानिरताः सर्वे उपहासं प्रकुर्वन्ते ।
 न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ॥ २७
 न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विकुत्सिताः ।
 द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २८
 न पात्रेष्वेव दानानि कुर्वन्ति च नरास्तथा ।
 क्षीरोपाधिनिमित्तेन गोषु प्रीतिं प्रकुर्वन्ते ॥ २९
 बध्नन्ति च द्विजानेव धनार्थं राजकिकराः ।
 दानयज्ञजपादीनां विक्रीणन्ते फलं द्विजाः ॥ ३०
 प्रतिग्रहं प्रकुर्वन्ति चण्डालादेरपि द्विजाः ।
 कलैः प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः ॥ ३१
 युगान्ते च हरेर्नाम नैव कश्चित् स्मरिष्यति ।
 शूद्रस्त्रीसङ्गनिरता विधवासंगलोलुपाः ॥ ३२
 शूद्राभोगनिरता भविष्यन्ति कली द्विजाः ।
 न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वधर्मप्रवर्तनम् ॥ ३३
 करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रव्रन्यातिद्विनोऽधमाः ।
 सुखाय परिचीताश्च जटिला भस्मभूर्धराः ॥ ३४
 शूद्रा धर्मान् प्रवक्ष्यन्ति कूटबुद्धिविशारदाः ।
 एते चान्ये च बहवः पाषण्डा विप्रसत्तमाः ॥ ३५
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भविष्यन्ति कली युगे ।
 गीतवाद्यरता विप्रा वेदवादपराश्चमुखाः ॥ ३६
 भविष्यन्ति कली प्राप्ते शूद्रमार्गप्रवर्तनः ।
 अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहंकारदूषिताः ॥ ३७
 हर्तारो न च दातारो भविष्यन्ति कली युगे ।
 प्रतिग्रहपरा नित्यं द्विजाः सन्मार्गशीलिनः ॥ ३८
 आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिन्दापरास्तथा ।
 विश्वासहीनाः पुरुषा देववेदद्विजातिषु ॥ ३९

और वैश्य शूद्रोंके सेवक होंगे। घोर कलिकाल आनेपर पुत्र पितासे, शिष्य गुरुसे और स्त्रियाँ अपने पतियोंसे द्वेष करेंगी। सबका चित लोभसे आक्रान्त होगा, अतएव सभी लोग दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होंगे। ब्राह्मण सदा दूसरोंके ही अन्नके लोभी होंगे। सभी परस्त्रीसेवा और परधनका अग्रहरण करनेवाले होंगे। घोर कलियुग आ जानेपर दूसरोंमें दोषदृष्टि रखनेवाले सभी लोग धर्मपरायण पुरुषोंका उपहास करेंगे। ब्राह्मणलोग वेदकी निन्दामें प्रवृत्त होकर व्रतोंका आचरण नहीं करेंगे। तर्कवादसे कुत्सित विचार हो जानेके कारण वे न तो यज्ञ करेंगे और न हवनमें ही प्रवृत्त होंगे। द्विजलोग दम्भके लिये ही पितृयज्ञ आदि क्रियाएँ करेंगे। मनुष्य प्रायः सत्पात्रको दान नहीं देंगे। लोग दूध आदिके लिये ही गौओंमें प्रेम रखेंगे। राजाके सिपाही धनके लिये ब्राह्मणोंको ही बाँधेंगे। द्विजलोग दान, यज्ञ और जप आदिका फल प्रायः बेच करेंगे। ब्राह्मणलोग चण्डाल आदि असूय्य जातियोंसे भी दान लेंगे। कलियुगके प्रथम चरणमें भी लोग भगवान्‌को निन्दा करनेवाले हो जायेंगे ॥ २२—३१ ॥

कलियुगके अन्तिम समयमें तो कोई भगवान्‌के नामका स्मरणतक न करेगा। कलियुगके द्विज शूद्रोंकी स्त्रियोंके साथ सहवास करेंगे और विधवा-संगमके लिये स्वास्वस्थ रहेंगे तथा वे शूद्रोंका भी अन्न भक्षण करनेवाले होंगे। उस समय अधम शूद्र संन्यासका चिह्न धारणकर न तो द्विजातियोंकी सेवा करेंगे और न उनकी स्वधर्ममें ही प्रवृत्ति होगी। वे अपने सुखके लिये जेबक पहनेंगे, जूता रखायेंगे और शरीरमें छाक-भभूत लपेटे फिरेंगे। विप्रचरो! कूटबुद्धिमें निपुण शूद्रगण धर्मका उपदेश करेंगे। ऊपर कहे अनुसार तथा और भी तरहके बहुत से पाषण्डी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे। कलियुग आनेपर विप्रगण वेदके स्वाध्यायसे विमुख हो गाने-बजानेमें मन लगायेंगे और शूद्रोंके मार्गका अनुसरण करेंगे। कलियुगमें लोग थोड़े धनवाले, जूता बेच धारण करनेवाले और मिथ्याभिमानसे दूषित होंगे। वे दूसरोंका धन हरण कर लेंगे, पर अपना किसीको नहीं देंगे। उस समय अच्छे पथपर चलनेवाले ब्राह्मण सदा दान लेते फिरेंगे। सभी लोग आत्मप्रशंसक और दूसरोंको निन्दा करनेवाले होंगे। देवता, वेद और ब्राह्मणोंपरसे सबका विश्वास उठ जायगा ॥ ३२—३९ ॥

असंश्रुतोक्तिवक्तारो द्विजद्वेषरतास्तथा ।
 स्वधर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः ॥ ४०
 याचकाः पिशुनाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ।
 परापवादनिरता आत्मस्तुतिपरायणाः ॥ ४१
 परस्वहरणोपायचिन्तकाः सर्वदा जनाः ।
 अत्याह्वादपरास्तत्र भुञ्जानाः परवेश्मनि ॥ ४२
 तस्मिन्नेव दिने प्रायो देवतार्चनतत्पराः ।
 तत्रैव निन्दानिरता भुक्त्वा चैकत्र संस्थिताः ॥ ४३
 द्विजाश्च क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जातयः ।
 अत्यन्तकामिनश्चैव संकीर्यन्ते परस्परम् ॥ ४४
 न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।
 न भार्या न पतिश्चैव भविता तत्र संकरे ॥ ४५
 शूद्रवृत्त्यैव जीवन्ति द्विजा नरकभोगिनः ।
 अनावृष्टिभयप्राया गगनासक्तदृष्टयः ॥ ४६
 भविष्यन्ति जनाः सर्वे तदा क्षुद्रयकातराः ।
 अत्रोपाधिनिमित्तेन शिष्यान् गृह्णन्ति भिक्षावः ॥ ४७
 उपाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्ठद्वयनं स्निग्धः ।
 कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञा धेत्यन्ति तद्दिताः ॥ ४८
 यदा यदा न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ।
 तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥ ४९
 सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत् ।

सूत उवाच

एवं कलेः स्वरूपं तत्कथितं विप्रसत्तमाः ॥ ५०
 हरिभक्तिपरानेव न कलिर्वाधते द्विजाः ।
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि ॥ ५१

सब लोग वेदविरुद्ध बचन बोलनेवाले और ब्राह्मणोंके द्वेषी होंगे। सभी स्वधर्मके त्यागनेवाले, कृतघ्न और अपने वर्णधर्मके विरुद्ध वृत्तिसे आजीविका चलावेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भिन्नमंगे, चुगलखोर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले और अपनी ही प्रशंसामें तत्पर होंगे। मनुष्य सदा दूसरोंके धनका अपहरण करनेके उपायको ही सोचते रहेंगे। यदि उन्हें दूसरोंके घरमें भोजन करनेका अवसर मिल जाय तो वे बड़े ही आनन्दित होंगे और प्रायः उसी दिन वे दूसरोंको दिखानेके लिये देवताकी पूजामें प्रवृत्त होंगे। दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले वे ब्राह्मण वहाँ ही सबके साथ एक आसनपर बैठकर भोजन करेंगे ॥ ४०—४३ ॥

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातिपोंके लोग आपस कलमी होंगे और एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित करके वर्ण-संकर हो जायेंगे। वर्ण-संकरताकी दृष्टमें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और पति-पत्नीका विचार नहीं रहेगा। नरकभोगी ब्राह्मणादि वर्ण प्रायः शूद्रवृत्तिसे ही जीविका चलायेंगे और नरकभोगी होंगे। लोगोंकी प्रायः सदा अनावृष्टिका भय बना रहेगा और वे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये वृष्टिकी ही प्रतीक्षा करते रहेंगे। उस समयके सभी लोग सदा भूखकी पीड़ामें कातर रहेंगे। संन्यासी लोग अन्न प्रातिके उदरेस्पसे ही लोगोंकी शिष्य बनते फिरेंगे। स्त्रियाँ दोनों ही हाथोंमें मिर खुजलाती हुई अपने पति तथा गुरुजनोंको हितभरो आज्ञाओंका तिरस्कार करेंगी। द्विजातिलोग ग्यों-ग्यों यज्ञ और हवन आदि कर्म छोड़ते जायेंगे, त्यों-ही-त्यों वृद्धिमानोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेसे यह सारा जगत् श्रेहीन हो जायगा ॥ ४४—४९ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवरों! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कलियुगके स्वरूपका वर्णन किया। द्विजगण! जो लोग भगवान्के भजनमें तत्पर रहेंगे, उन्हींको कलियुग काया नहीं दे सका। सत्ययुगमें तपस्या प्रधान है और त्रेतामें ध्यान।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलीं युगे ।
 यतते दशभिर्वर्षस्वेतायां हापनेन तत् ॥ ५२
 द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलीं ।
 ध्यायन् कृते यजन् यज्ञस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥ ५३
 यदाप्नोति तदाप्नोति कलीं संकीर्त्य केशवम् ।
 समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् ॥ ५४
 घोरं कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन् न सीदति ।
 अहोऽतीव महाभाग्याः सकृच्छे केशवार्चकाः ॥ ५५
 घोरं कलियुगे प्राप्ते सर्वकर्मबहिष्कृते ।
 न्यूनातिरिक्ता न म्यात्कलीं वेदोक्तकर्मणाम् ॥ ५६
 हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णफलदायकम् ।
 हरे केशव गोविन्द वामदेव जगन्माय ॥ ५७
 जनार्दन जगद्धाम पीताम्बरधराच्युत ।
 इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ॥ ५८
 अहो हरिपरा ये तु कलीं सर्वभयंकरे ।
 ते सभाग्या महात्मानस्तत्संगतिरता अपि ॥ ५९
 हरिनामपरा ये च हरिकीर्तनतत्पराः ।
 हरिपूजारता ये च ते कृतार्था न संशयः ॥ ६०
 इत्येतद् समाख्यातं सर्वदुःखनिवारणम् ।
 समस्तपुण्यफलदं कलीं विष्णोः प्रकीर्तनम् ॥ ६१

इति श्रीनर्मिहपुराणे कलिकल्पकोशे नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीनर्मिहपुराणमें 'कलियुगके लक्षणोंका वर्णन' नामक चौबीसवीं अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

शुक्राचार्यको भगवान्की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति

गुणेश्वर

मार्कण्डेय कथं शुक्रः पुरा बलिमखे गुरुः ।
 वामनेन स विद्वाक्षः स्तुत्वा तल्लब्धवान् कथम् ॥ १

द्वापरमें यज्ञको महान् बताया गया है और कलियुगमें एकमात्र दानको। सत्ययुगमें दस वर्षोंतक तप आदिके लिये प्रयत्न करनेसे जो फल मिलता है, वही त्रेतायुगमें एक ही वर्षके प्रयत्नसे सिद्ध होता है, द्वापरमें एक ही मासकी स्त्रधनासे सुलभ होता है और कलियुगमें केवल एक दिन-रात यत्न करनेसे प्राप्त हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे, जो फल मिलता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान्की कीर्तन करनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर समस्त जगत्के आधारभूत परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाले मनुष्यको कलियुगमें बाधा नहीं पहुँचाती। अहो! जिन्होंने एक बार भी भगवान् विष्णुका पूजन किया है, वे जड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ५०—५५ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंका बहिष्कार करनेवाले कलियुगके प्राप्त होनेपर किये जानेवाले वेदोक्त कर्मोंमें न्यूनता या अविश्वस्तता दोष नहीं होता। उसमें भगवान्का स्मरण ही पूर्ण फलदायक होता है। जो लोग हरे, केशव, गोविन्द, वामदेव, जगन्माय, जनार्दन, जगद्धाम, पीताम्बरधर, अच्युत इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, उन्हें कलियुग कभी बाधा नहीं पहुँचाता। अहो! सबको भय देनेवाले इस कलिकालमें जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहते हैं, अथवा जो उनके आराधकोंका संग हो करते हैं, वे महाभाग्यजन बड़े ही भाग्यशाली हैं। जो हरिनामका जप करते हैं, हरिकीर्तनमें लगे रहते हैं और सदा हरिकी पूजा हो किया करते हैं, वे मनुष्य कृतकृत्य हो गये हैं—इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह कलिका वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा। कलियुगमें भगवान् विष्णुका नामकीर्तन समस्त दुःखोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देनेवाला है ॥ ५६—६१ ॥

राजा बोले—मार्कण्डेयजी ! पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनेन जो दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी आँख छेद डाली थी, उसे उन्होंने पुनः भगवान्की स्तुतिद्वारा किस प्रकार प्राप्त किया ? ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

वामनेन स विद्वाक्षो बहुतीर्थेषु भार्गवः ।
जाह्नवीसलिले स्थित्वा देवमभ्यर्च्य वामनम् ॥ २

ऊर्ध्वबाहुः स देवेशं शंखचक्रगदाधरम् ।
हृदि संचिन्त्य तुष्टाव नरसिंहं सनातनम् ॥ ३

गुरु उवाच

नमामि देवं विश्वेशं वामनं विष्णुरुपिणम् ।
बलिदर्पहरं शान्तं शाश्वतं पुरुषोत्तमम् ॥ ४

धीरं शूरे महादेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
विशुद्धं ज्ञानसम्पन्नं नमामि हरिमच्युतम् ॥ ५

सर्वशक्तिमयं देवं सर्वगं सर्वभावनम् ।
अनादिमजरं नित्यं नमामि गरुडध्वजम् ॥ ६

सुरासुरैर्भक्तिमद्भिः स्तुतो नारायणः सदा ।
पूजितं च हृषीकेशं तं नमामि जगद्गुरुम् ॥ ७

हृदि संकल्प्य यद्रूपं ध्यायन्ति यतः सदा ।
ज्योतीरूपमनौपम्यं नरसिंहं नमाम्यहम् ॥ ८

न जानन्ति परं रूपं ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति नमामि तम् ॥ ९

एतत्समस्तं घेनादीं सृष्टे दुष्टवधात्पुनः ।
व्रातं यत्र जगद्दीनं तं नमामि जनार्दनम् ॥ १०

भक्तैरभ्यर्चितो यस्तु नित्यं भक्तप्रियो हि यः ।
तं देवममलं दिव्यं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥ ११

दुर्लभं चापि भक्तानां यः प्रयच्छति तोषितः ।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं प्रणमामि सनातनम् ॥ १२

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः पुरा शुक्रेण पार्थिव ।
प्रादुर्बभूव तस्याग्रे शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १३

उवाच शुक्रमेकाक्षं देवो नारायणस्तदा ।
किमर्थं जाह्नवीतीरे स्तुतोऽहं तद्ब्रवीहि मे ॥ १४

मार्कण्डेयजी बोले—वामनजीके द्वारा जब आँख छेद दो गयी, तब भृगुनन्दन मुकुटाचार्यजीने बहुत तीर्थोंमें भ्रमण किया। फिर एक जगह गङ्गाजीके जलमें खड़े हो भगवान् वामनको पूजा की और अपनी बाँहें ऊपर उठाकर शङ्ख-चक्र-गदाधारी सनातन देवेश्वर भगवान् नरसिंहका मन-ही-मन ध्यान करते हुए वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २-३ ॥

शुक्राचार्यजी बोले—मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी और श्रीविष्णुके अवतार उन देवदेव वामनजीको नमस्कार करता हूँ, जो बलिका अभिमान खूण करनेवाले, परम शान्त, सनातन पुरुषोत्तम हैं। जो धीर हैं, शूर हैं, सबसे बड़े देवता हैं, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, उन विशुद्ध एवं ज्ञानसम्पन्न भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन जरारहित, अनादिदेव भगवान् गरुडध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता और असुर सदा ही जिन नारायणकी भक्तिपूर्वक स्तुति किया करते हैं, उन सर्वपूजित जगद्गुरु भगवान् हृषीकेशको मैं नमस्कार करता हूँ। यतिजन अपने अन्तःकरणमें भावनाद्वारा स्थापित करके जिनके स्वरूपका सदा ध्यान करते रहते हैं, उन अतुलनीय एवं ज्योतिर्मय भगवान् नृसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि देवतागण जिनके परमार्थ स्वरूपको भलीभाँति नहीं जानते, अतः जिनके अवताररूपोंका ही वे सदा पूजन किया करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने प्रथम इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की थी, फिर जिन्होंने दुष्टोंका वध करके इसको रक्षा की है तथा जिनमें ही यह सारा जगत् लीन हो जाता है, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्तजन जिनका सदा अर्चन करते हैं तथा जो भक्तोंके प्रेमी हैं, उन परम निर्मल, दिव्य कान्तिमय जगदीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो प्रसन्न होनेपर अपने भक्तोंको दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करते हैं, उन सर्वसाक्षी सनातन विष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४-१२ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें मुकुटाचार्यजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् जगन्नाथ उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस समय भगवान् नारायणने एक आँखवाले मुकुटाचार्यजीके कहा—'ब्रह्मन्! तुमने गङ्गातटपर किसलिये मेरा स्तवन किया है? यह मुझसे बताओ' ॥ १३-१४ ॥

शुक उवाच

देवदेव मया पूर्वमपराधो महान् कृतः।
तद्दोषस्यापनुत्पद्यं स्तुतवानस्मि साम्प्रतम् ॥ १५

श्रीभगवानुवाच

ममापराधाव्रयनं नष्टमेकं तवाधुना।
संतुष्टोऽस्मि ततः शुक स्तोत्रेणानेन ते मुने ॥ १६

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तं मुनिं प्रहसन्निव।
पाञ्चजन्येन तच्छशुः पस्पर्श च जनार्दनः ॥ १७

स्मृष्टमात्रे तु शङ्खेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा।
बभूव निर्मलं चक्षुः पूर्ववत्पुष्पसत्तम ॥ १८

एवं दत्त्वा मुनेश्चक्षुः पूजितस्तेन माधवः।
जगामादर्शनं सद्यः शुकोऽपि स्वाश्रमं ययौ ॥ १९

इत्येतदुक्तं मुनिना महात्मना
प्राप्तं पुरा देववरप्रसादात्।
शुक्रेण किं ते कथयामि राजन्
पुनश्च मां पृच्छ मनोरथान्तः ॥ २०

इति श्रीनारमिहपुराणे शुकविरचिते राज्ञः पञ्चरात्रसंन्यासः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीनारमिहपुराणमें "शुक्राचार्यकी वरप्रदान" नामक उपपन्नकी अन्त्यमें पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

CHAPTER 56

छप्पनवाँ अध्याय

विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि

राजा उवाच

साम्प्रतं देवदेवस्य नरसिंहस्य शार्ङ्गिणः।
श्रोतुमिच्छामि सकलं प्रतिष्ठायाः परं विधिम् ॥ १

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्रतिष्ठाया विधिं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः।
प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं शृणु भूपाल पुण्यदम् ॥ २
कर्तुं प्रतिष्ठां यश्चात्र विष्णोरिच्छति पार्थिव।
स पूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूमिशोधनमारभेत् ॥ ३

शुक्राचार्यजी बोले—देवदेव! मैंने पहले (बलिके यज्ञमें) आपका बहुत बड़ा अपराध किया है; उसी दोषको दूर करनेके लिये इस समय आपका स्तवन किया है ॥ १५ ॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! मेरे प्रति किये गये अपराधसे ही तुम्हारा एक नेत्र नष्ट हो गया था। शुक! इस समय तुम्हारे इस स्तवनसे मैं तुमपर संतुष्ट हूँ ॥ १६ ॥

यह कहकर देवदेवेश जनार्दनने हँसते हुए से अपने पाञ्चजन्य शङ्खसे शुक्राचार्यके फूटे हुए नेत्रका स्पर्श किया। नृपसेन। शार्ङ्गधन्वा देवदेव विष्णुके द्वारा शङ्खका स्पर्श कराये जले हो शुक्राचार्यका यह नेत्र पहलेकी भाँति हो निर्मल हो गया। इस प्रकार शुक्राचार्यको नेत्र देकर और उनमें पूजित होकर भगवान् लक्ष्मीपति तुरंत अन्तर्धान हो गये और शुक्राचार्य भी अपने आश्रमकी चले गये। राजन्! इस प्रकार पुरुषोत्तममें मुनिवर महात्मा शुक्राचार्यने देवेश्वर भगवान् विष्णुको कृपासे अपना नेत्र प्राप्त कर लिया—यह प्रसङ्ग तुम्हारे व्रतानुसार मैंने सुना दिया। अब तुम्हें मैं और क्या सुनाऊँ? तुम्हारे मनमें और भी यदि कुछ पढ़नेकी इच्छा हो तो मुझसे प्रश्न करो ॥ १७—२० ॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! अब मैं शार्ङ्गधनुषधारी देवदेव नरसिंहके स्थापनकी समस्त उत्तम विधिकी सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—भूपाल! देवदेवेश्वर चक्रपाणि भगवान् विष्णुके स्थापनकी पुण्यदायिनी विधि सुनो; मैं शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन कर रहा हूँ। पृथिवीपते! जो भी इस लोकमें भगवान् विष्णुकी स्थापना करना चाहे, उसको चाहिये कि वह पहले स्थिर-संज्ञक* नक्षत्रोंमें भूमिशोधनका कार्य प्रारम्भ करे।

खात्वा पुरुषमात्रं तु बाहुद्वयमथापि वा ।
पूरयेच्छुद्धमृद्धिस्तु जलाक्तैः शर्करान्वितैः ॥ ४

अधिष्ठानं ततो युद्ध्वा पाषाणोष्टकमृण्मयम् ।
प्रासादं कारयेत्तत्र वास्तुविद्याविदा नृप ॥ ५

चतुरस्रं सूत्रमार्गं चतुःकोणं समन्ततः ।
शिलाभित्तिकमुत्कृष्टं तदलाभेष्टकामयम् ॥ ६

तदलाभे तु मुत्कुड्यं पूर्वद्वारं सुशोभनम् ।
जातिकाष्ठमयैः स्तम्भैस्तल्लम्बैः फलदान्वितैः ॥ ७

उत्पलैः पद्मपत्रैश्च पातितैश्चित्रशिल्पिभिः ।
इत्थं तु कारयित्वा हि हरेर्वेश्म सुशोभनम् ॥ ८

पूर्वद्वारं नृपश्चेष्ट सुकपाटं सुचित्रितम् ।
अतिवृद्धातिबालैस्तु कारयेत्तत्कृतिं हरेः ॥ ९

कुष्ठाद्युपहर्तव्यापि अन्यैर्वा दीर्घरोगिभिः ।
विश्वकर्मेक्षमाग्रेण पुराणोक्तां नृपोत्तम ॥ १०

कारयेत् प्रतिमां दिव्यां पुष्टाङ्गेन तु धीमता ।
सौम्यानां सुश्रवणां सुनासां च सुलोचनाम् ॥ ११

नाधोर्दृष्टिं नोर्ध्वदृष्टिं तिर्यग्दृष्टिं न कारयेत् ।
कारयेत् समदृष्टिं तु पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥ १२

सुभुवं सुललाटां च सुकपोलां मयां शुभाम् ।
विम्बोष्ठीं सुष्टुचिबुकां सुग्रीवां कारयेद्बुधः ॥ १३

उपबाहुकरे देवं दक्षिणे चक्रमर्कवत् ।
नाभिसंलग्नदिव्यारं परितो नेमिसंयुतम् ॥ १४

वामपार्श्वेत्युपभुजे देवं शङ्खं शशिप्रभम् ।
पाञ्चजन्यमिति ख्यातं दैत्यदर्पहरं शुभम् ॥ १५

एक पुरुषके बराबर अर्धात् साढ़े तीन हाथ अथवा दो हाथ नीचेतक उँग खोदकर उसमें जलसे भीगो हुई कंकड़ और बालूसहित शुद्ध मिट्टी भर दे। राजन्! फिर उसे ही आधार समझकर उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार पत्थर, ईंट अथवा मिट्टीसे गृहनिर्माण-विद्या के कुशल कारीगरोंके द्वारा मन्दिर तैयार कराये। वह मन्दिर चारों ओरसे बराबर और चौकोर हो। उसकी दीवार पत्थरकी हो तो बहुत उत्तम; पत्थर न मिलनेपर ईंटोंकी हो दीवार बनवा ले। यदि ईंट भी न मिल सकें तो मिट्टीकी ही भीत उठा ले। मन्दिर बहुत ही सुन्दर हो और उसका दरवाजा पूर्वकी ओर होना चाहिये। उस मन्दिरमें अच्छी जातिवाले काठके खंभे लगे हों और उनमें चित्रकला जाननेवाले शिल्पियोंके द्वारा फलपुष्प वृक्ष, कुमुद तथा कमलदल चित्रित कराने चाहिये ॥ २-७१/॥

नृपश्चेष्ट। इस प्रकार जिसमें सुन्दर कियाइ लगे हों और जिसका द्वार पूर्व दिशाकी ओर हो—ऐसा खेल-चूटोंमें भलीभाँति चित्रित भगवानुक्त परम सुहावना मन्दिर बनवाकर बुद्धिमान् एवं इष्टपुत्र शरीरवाले पुत्रोंके द्वारा विश्वकर्माकी आज्ञासे हुई पद्धतिके अनुसार पुराणोक्त दिव्य प्रतिमाका निर्माण कराये। जो कारीगर अल्पतः सुद्ध या चालक अथवा कंकड़ खाँद रोणोंसे दूषित या पुराना रोगी हो, उससे भगवत्प्रतिमाका निर्माण नहीं करना चाहिये। प्रतिमाका मुख सौम्य (प्रसन्न) तथा कान, नाक और नेत्र आदि अङ्ग सुन्दर होने चाहिये। उसकी दृष्टि न तो बहुत नीची हो, न बहुत ऊँची हो और न तिरछी हो। विद्वान् पुरुष ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसकी दृष्टि सम हो और जिसके नेत्र कमलदलके समान विस्तार हों। भौंहें, ललाट और कपोल सुन्दर हों, उसके समस्त विग्रह सुन्दर और सौम्य हों। उसके दोनों ओर लाल हों, दोड़ी (अधरके नीचेका भाग) मनोहर तथा कण्ठ सुन्दर हो। प्रतिमाकी भुजाएँ चार होनी चाहिये—दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ। उनमेंसे दाहिनी उपभुजाके हाथमें सूर्यके समान आकारवाला चक्र धारण करना चाहिये। चक्रकी नाभिके चारों ओर दिव्य अरे हों और उनके भी ऊपर सब ओरसे नेमि (हाथ) लगी हो। बायीं उपभुजाके हाथमें चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमय पाञ्चजन्य नामक शंख देना चाहिये, जो दैत्योंके मदको चूर्ण करनेवाला और कल्याणकर है ॥ ८-१५ ॥

हारापितवरां दिव्यां कण्ठे त्रिवलिसंयुताम् ।
 सुस्तनीं चारुहृदयां सुजठरां समां शुभाम् ॥ १६

कटिलग्रवामकरां पञ्चलग्नां च दक्षिणाम् ।
 केयूरबाहुकां दिव्यां सुनाभिवलिभङ्गिकाम् ॥ १७

सुकटीं च सुजङ्घुकं वस्त्रमेखलभूषिताम् ।
 एवं तां कारयित्वा तु प्रतिमां राजसत्तम ॥ १८

सुवर्णवस्त्रदानेन तत्कर्तुं पुन्य सत्तम ।
 पूर्वपक्षे शुभे काले प्रतिमां स्थापयेदबुधः ॥ १९

प्रासादस्याग्रतः कृत्वा यागमण्डपमुत्तमम् ।
 चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥ २०

सप्तधान्याङ्गुरैर्युक्तं शङ्खभेरीनिनादितम् ।
 प्रतिमां क्षात्य विद्वद्भिः षट्त्रिंशद्विधैर्घटोदकैः ॥ २१

प्रविश्य मण्डपे तस्मिन् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
 तत्रापि स्नापयेत्पश्चात् पञ्चगव्यैः पुथक् पुथक् ॥ २२

तथोष्णावारिणा स्नाप्य पुनः शीतोदकेन च ।
 हरिद्राकुङ्कुमाद्यैस्तु चन्दनैश्चोपलेपयेत् ॥ २३

पुष्पमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रैराच्छाद्य तां पुनः ।
 पुण्याहं तत्र कृत्वा तु ऋग्भिस्तां प्रोक्ष्य वारिभिः ॥ २४

स्नात्वा तां ब्राह्मणैर्भक्तैः शंखभेरीस्वनैर्युतम् ।
 वासयेत्समरात्रं तु त्रिरात्रं वा नदीजले ॥ २५

हृदे तु धिमले शुद्धे तडागे वापि रक्षयेत् ।
 अधिवास्य जले देवमेवं पाथिबपुद्गव ॥ २६

तत उत्थाप्य विप्रैस्तु स्थाप्यालङ्कृत्य पूर्ववत् ।
 ततो भेरीनिनादैस्तु वेदघोषैश्च केशवम् ॥ २७

आनीय मण्डपे शुद्धे पद्माकारविनिर्मिते ।
 कृत्वा पुनस्ततः स्नाप्य विष्णुभक्तैरलङ्कित्वा ॥ २८

उस दिव्य भगवत्प्रतिमाके कण्ठमें सुन्दर हार पहनाया गया हो, गलेमें त्रिवली-चिह्न हो, स्तनभाग सुन्दर, वक्षःस्थल लचिर और उदर मनोहर होना चाहिये। सम्पूर्ण अङ्ग बराबर और सुन्दर हों। वह प्रतिमा अपना बायाँ हाथ कमरपर रखे हो और दाहिनेमें कमल धारण किये हो। जाहुओंमें भुजबन्ध पहने हो और सुन्दर नाभि तथा चित्तोत्तरे सुशोभित एवं दिव्य ज्ञान पड़ती हो। उसके कटिभाग (नितम्ब), जाँघें और पिंडलियाँ मनोहर हों, वह कमरमें मेखला और पोतवस्त्रसे विभूषित हो। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराकर उसके बनानेवाले शिल्पियोंको सुवर्ण-दान एवं वस्त्र-दानके द्वारा सम्मानित करके विद्वान् पुरुष एवं पक्षमें शुभ समयपर उस प्रतिमाकी स्थापना करे ॥ १६-१९ ॥

मन्दिरके सामने एक उत्तम यज्ञमण्डप बनवाये। उसमें चारों ओर एक-एकके क्रमसे चार दरवाजे हों और सारा मण्डप चार तोरणों (बड़े बड़े फाटकों)-से घिरा हो। उसमें सप्तधान्यके अङ्गुर डगे हों तथा शंख और भेरी आदि बाजे बजते हों। विद्वानोंके द्वारा शरीर पड़े जलमें उस प्रतिमाका अभिषेक कराकर उसके साथ घेदोंके पारगामो ब्राह्मणोंको साथमें लिये उक्त मण्डपमें प्रवेश करे और फिर पञ्चगव्योंसे पुथक्-पुथक् स्नान कराये। इसी प्रकार गर्म जलसे बहलाकर फिर ठंडे जलमें स्नान कराये। तत्पश्चात्, हल्दी और कुङ्कुम आदिका तथा चन्दनोंका उसपर लेप करे, फिर फूलोंकी मालाओंसे विभूषितकर उसे वस्त्र धारण करा दे और पुण्याहवाचन करके वैदिक आचाओंसे उच्चारणपूर्वक जलसे प्रोक्षित कर भव ब्राह्मणोंद्वारा उस भगवद्ग्रहको महलाये। तत्पश्चात् शंख, भेरी आदि बाजे बजाते हुए उसे नदीके जलमें रखकर सात या तीन दिनोंतक उसे वहाँ रहने दे। अथवा किसी निर्मल जलस्थान या शुद्ध सरोवरमें ही रखकर उसकी रक्षा करे। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार भगवान्का जलविवास करके ब्राह्मणोंद्वारा उनको उठवाये और पालकों आदिमें बँटाकर पूर्ववत् उन्हें माला आदिसे विभूषित करे। तदनन्तर नगरोंको ध्वनि और वेदमन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ भगवान्को वहाँसे ले आये और कमलाकार घने हुए शुद्ध मण्डपमें रखे। वहाँ पुनः स्नान कराके विष्णुभक्तोंद्वारा उसका श्रद्धा कराये ॥ २०-२८ ॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विधिं वक्तुं षोडशर्त्विजः ।
चतुर्भिर्ध्ययनं कार्यं चतुर्भिः पालनं तथा ॥ २९

चतुर्भिस्तु चतुर्दिक्षु होमः कार्यो विचक्षणैः ।
पुण्याक्षतात्रमिश्रेण दद्याद्विषु बलीन् नृप ॥ ३०

एकेन दापयेत्तेषामिन्द्राद्याः प्रीयन्तामिति ।
प्रत्येकं सायंसंध्यायां मध्यरात्रे तद्योषसि ॥ ३१

उदिते च ततो दद्यान्मातृविप्रगणाय वा ।
जपन् पुरुषसूक्तं तु एकतस्तु पुनः पुनः ॥ ३२

एकतो मनसा राजन् विष्णोर्मन्दिरमध्यगः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा यजमानो द्विजैः सह ॥ ३३

प्रविश्य प्रतिमाद्वारं शुभलग्ने विचक्षणः ।
देवसूक्तं द्विजैः सायंमुपस्थाप्य च तां दुग्धम् ॥ ३४

संस्थाप्य विष्णुसूक्तेन पवमानेन वा पुनः ।
प्रोक्षयेद्देवदेवेशमाचार्यः कुशवारिणा ॥ ३५

तदग्रे चाग्निपादाय सम्परिस्तीर्य यत्नतः ।
जुहुयाज्जातकर्मादि गायत्र्या वैष्णवेन तु ॥ ३६

चतुर्भिराज्याहुतिभिरेकामेकां क्रियां प्रति ।
आचार्यस्तु स्वयं कुर्यादस्वीर्व्यं च कारयेत् ॥ ३७

ब्रातारमिति चैन्द्रयां तु कुर्यादान्यप्रणुब्रह्मम् ।
परोदिवेति याम्यायां यारुण्यां निषसेति च ॥ ३८

या ते रुद्रेति सौम्यां तु हुवेदाज्याहुतीर्नृप ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां सर्वत्राज्याहुतीर्नृप ॥ ३९

इसके बाद सोलह ऋत्विज् ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराये। उनमेंसे चार ब्राह्मणोंको तो वहाँ वेद-पुराणादिका स्वाध्याय (पाठ) करना चाहिये, चार विप्रोंको उस भगवाँद्विग्रहकी रक्षामें संलग्न रहना चाहिये तथा चार विद्वानोंको यज्ञमण्डपके भीतर चारों दिशाओंमें हवन करना चाहिये। राजन्! फिर एक ब्राह्मणके द्वारा फूल, अक्षत और अन्नसे समस्त दिशाओंमें बलि अर्पित कराये। यह बलि इन्द्रादि देवताओंकी प्रसन्नताके लिये होती है। प्रत्येक दिशाके अधिपतिको 'इन्द्रः प्रीयताम्' इत्यादि रूपसे उसके नामोच्चारणपूर्वक ही बलि दे। सायंकाल, आधी रात, उषःकाल तथा सूर्योदयके समय प्रत्येक दिक्पालको बलि अर्पित करना चाहिये। इसके बाद मातृकागणोंको बलि और ब्राह्मणोंको उपहार दे। राजन्! इसके पश्चात् यजमानको चाहिये कि भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एक ओर बैठकर एकाग्रचित्तसे बार-बार पुरुषसूक्तका जप करे। फिर पूरे एक दिन-रात उपवास करके शुभ लग्नमें वह जुड़िमान् पुरुष ब्राह्मणोंको साथ ले मण्डपमें, जहाँ प्रतिमा रखी गयी हो, उस द्वारसे मण्डपके भीतर प्रवेश करे और ब्राह्मणोंके साथ देवसूक्तका पाठ करते हुए भगवत्प्रतिमाका उपस्थान करके उसे मन्दिरमें लाये और विष्णुमूर्त अथवा पवमानसूक्तका पाठ करते हुए उसे वहाँ दृढ़तापूर्वक स्थापित करे। तत्पश्चात् आचार्य कुशमुक्त जलसे उन देवदेवेश्वर भगवान्का अभिषेक करे ॥ २९—३५ ॥

फिर भगवान्के सम्मुख अग्निस्थापन करे। अग्निके चारों ओर यज्ञपूर्वक कुशास्तरण करके गायत्री और विष्णुमन्त्रोंद्वारा ज्ञातकर्मादि संस्कारकी सिद्धिके निमित्त हवन करे। आचार्यको चाहिये कि प्रत्येक क्रियामें बार-बार जाँची आहुति दे तथा अन्नमन्त्र (अन्नाय फट्) बोलकर दिग्बन्ध कराये। 'ॐ ब्रातारमिन्द्रम्' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० २०।५०)—से अग्निवेदीपर पूर्वकी ओर घोंकी आहुति दे। 'परो दिक्वा०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १७।२९)—से दक्षिण दिशामें और 'निषसाद०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १०।२७)—से पश्चिममें घृतका हवन करे। हे नृप! 'या ते रुद्र०' (शु० यजु० १६।२)—इस मन्त्रसे उत्तर दिशामें और 'परो मात्रया०' (ऋग्वेद ७।६।९९) इत्यादि दो सूक्तोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें घोंकी आहुति दे। इस प्रकार विधिबत् हवन करके 'यदस्या०' (शु० यजु० २३।२८) इस

हुत्वा जपेच्च विधिवदस्येति च स्विष्टकृत् ।
ततः स दक्षिणां दद्यादुत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ॥ ४०
यस्त्रे द्वे कुण्डले चैव गुरवे चाङ्गुलीयकम् ।
यजमानस्ततो दद्याद्विभवे सति काञ्चनम् ॥ ४१
कलशाष्टसहस्रेण कलशाष्टशतेन वा ।
एकविंशतिना वापि स्नपनं कारयेद् बुधः ॥ ४२
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेदघोषैश्च मङ्गलैः ।
यवघ्नीहियुतैः पात्रैरुद्धतरुचिह्वाङ्कुरैः ॥ ४३
दीपयष्टिपताकाभिश्छत्रचामरतोरणैः ।
स्नपनं कारयित्वा तु यथाविभवविस्तरम् ॥ ४४
तत्रापि दद्याद्विप्रेभ्यो यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् ।
एवं यः कुरुते राजन् प्रतिष्ठां देवचक्रिणः ॥ ४५
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
विमानेन विचित्रेण त्रिःसप्तकुलजैर्वृतः ॥ ४६
पूजां सम्प्राप्य महतीमिन्द्रलोकादिषु कृमात् ।
बान्धवांस्तेषु संस्थाप्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४७
तत्रैव ज्ञानमासाद्य वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।
प्रतिष्ठाविधिरयं विष्णोर्मयैव ते प्रकीर्तितः ॥ ४८
पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनः ॥ ४९
यदा नृसिंहं नरनाथं भूमीं
संस्थाप्य विष्णुं विधिना ह्यनेन ।
तदा ह्यसौ याति हरेः पदं तु
यत्र स्थितोऽयं न निवर्तते पुनः ॥ ५०

मन्त्रका जप करे और घीसे 'स्विष्टकृत्' संज्ञक होम करे। तदनन्तर ऋत्विजोंको उनके सम्मानके अनुकूल सादर दक्षिणा दे। इसके बाद यजमान आचार्यको दो वस्त्र, दो सुवर्णमय कुण्डल और सोनेकी अंगूठी दे तथा यदि सामर्थ्य हो तो इसके अतिरिक्त भी सुवर्णदा करे ॥ ३६—४१ ॥

फिर विद्वान् पुरुष यथासम्भव एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा इक्कीस घड़े जलसे भगवान्को स्नान करावे। उस समय शंख और दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें, वेदमन्त्रोंका घोष और मङ्गलपाठ होता रहे। अपनी शक्तिके अनुसार जिनपर जौ आदिके अङ्कुर निकले हों, ऐसे जौ और द्रोहि (चावल)-से भरे पात्रोंद्वारा तथा दीप, यष्टि (छड़ी), पताका, छत्र, चैबर, तोरण आदि सामग्रियोंके साथ स्नान-विधि पूर्ण कराके वहाँ भी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। राजन्! इस प्रकार जो भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पश्चात् अपनेसहित इक्कीस पीढ़ीके पितरोंको साथ ले, सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित एवं विचित्र विमानपर आरुढ़ हो, क्रमशः इन्द्रादि लोकोंमें विशेष सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने बन्धुजनोंको उन लोकोंमें रखकर स्वयं विष्णुलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है। फिर वहाँ ही भगवत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर वह विष्णुस्वरूपमें लीन हो जाता है ॥ ४२—४७ ॥

राजन्! इस प्रकार तुमसे मैंने यह प्रतिष्ठा-विधि बताया। इसका पाठ और श्रवण करनेवाले लोगोंके सब पाप दूर हो जाते हैं। नरनाथ! जब मनुष्य इस पूर्वोक्त विधिसे पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहकी स्थापना कर लेता है, तब मृत्युके बाद वह भगवान् विष्णुके उस नित्यधामको प्राप्त होता है, जहाँ रहकर वह पुनः संसारमें नहीं लौटता ॥ ४८—५० ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे प्रतिष्ठाविधिर्नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'प्रतिष्ठाविधि' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय*

भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; ब्राह्मणधर्मका वर्णन

राजोवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि नरसिंहस्य मे द्विज ।
येषां संगतिमात्रेण विष्णुलोको न दूरतः ॥ १

श्रीमार्कण्डेय उवाच

विष्णुभक्ता महोत्साहा विष्ण्वर्चनविधौ सदा ।
संयता धर्मसम्पन्नाः सर्वाध्यान् साधयन्ति ते ॥ २
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणो रताः ।
वर्णाश्रमाचारयुताः सर्वेषां सुप्रियंवदाः ॥ ३
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञा गतरोषा गतस्मृहाः ।
शान्ताश्च सौम्यवदना नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ४
हितं मितं च वक्तारः काले शक्त्यातिधिप्रियाः ।
दम्भमायाविनिर्मुक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ५
ईदृग्विधा नरा धीराः क्षमायन्तो बहुश्रुताः ।
विष्णुकीर्तनसंज्ञातहर्षा रोमाञ्चिता जनाः ॥ ६
विष्ण्वर्चापूजने यत्तास्तत्कथायां कृतादराः ।
ईदृग्विधा महात्मानो विष्णुभक्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७

राजोवाच

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इति प्रोक्तं त्वया विद्वन् भृगुवर्यं गुरो मम ॥ ८
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं मे वक्तुमर्हसि ।
यैः कृतैस्तुष्यते देवो नरसिंहः सनातनः ॥ ९

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत्र ते वर्णायिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
मुनिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ १०
हारीतं धर्मतत्त्वज्ञमासीनं बहुपाठकम् ।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥ ११

राजा बोले—ब्रह्मन्! आप मुझसे भगवान् नृसिंहके भक्तोंका लक्षण बतलाइये, जिनका सङ्ग करनेमात्रसे विष्णुलोक दूर नहीं रह जाता ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! भगवान् विष्णुके भक्त उनको पूजा-अर्चा करनेमें महान् उत्साह रखते हैं। वे अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए धर्ममें तत्पर रहकर सारे मनोरथोंको सिद्ध कर लेते हैं। भगवद्भक्त जन सदा परोपकार और गुरु-सेवामें लगे रहते हैं, सबसे मीठे वचन बोलते और अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके सदाचारोंका पालन करते हैं। वे वेद और वेदार्थका तत्त्व जाननेवाले होते हैं, उनमें क्रोध और कामनाओंका अभाव होता है। वे सदा शान्त रहते हैं, उनके मुखपर सौम्यभाव लक्षित होता है तथा वे निरन्तर धर्मव्यवहारेमें लगे रहते हैं। थोड़ा किन्तु हितकारी वचन बोलते हैं, समयपर अपनी शक्तिके अनुसार सदा अतिथिकी सेवा करनेमें उनका प्रेम बना रहता है। वे दम्भ, कपट, काम और क्रोधसे रहित होते हैं। जो मनुष्य इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त एवं धीर हैं, बहुश्रुत और क्षमावान् हैं तथा विष्णुभगवान्के नामोंका कीर्तन अथवा स्तवन करते समय हर्षसे रोमाञ्चित हो जाते हैं, इसी तरह जो विष्णुपूजनमें तत्पर और भगवत्कथामें आदर रखनेवाले हैं, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् विष्णुके भक्त कहे गये हैं ॥ २-७ ॥

राजा बोले—विद्वन्! भृगुवर्य! मेरे गुरुदेव! आपने अभी कहा है कि जो अपने वर्ण और आश्रमके धर्ममें लगे रहते हैं, वे भगवान् विष्णुके भक्त हैं; अतः आप कृपा करके वर्णों और आश्रमोंके धर्म बताइये, जिनके पालन करनेसे सनातन भगवान् नृसिंह संतुष्ट होते हैं ॥ ८-९ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—इस विषयमें मुनियोंके साथ महात्मा हारीत ऋषिक संवाद हुआ था; उसी प्राचीन एवं उत्तम इतिहासका आज मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करूँगा ॥ १० ॥

एक समयकी बात है, धर्मका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले समस्त मुनियोंने एक जगह आसनपर आसीन, धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं बहुपाठ्य महात्मा हारीत ऋषिके पास आकर उन्हें प्रणाम

* यहाँसे 'हारीत-स्मृति' का आरम्भ है। अथवा उपलब्ध 'तत्त्व हारीत स्मृति' के अंत इसके पाठसे प्रायः मिलते हैं। कुछ-कुछ पाठान्तर भी उपलब्ध होते हैं।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं प्रवृद्धिं शाश्वतम् ॥ १२

हारीत उवाच

नारायणः पुरा देवो जगत्त्रया जलोपरि ।
सुध्वाप भोगिपर्यङ्गे शयने तु श्रिया सह ॥ १३

तस्य सुप्तस्य नाभौ तु दिव्यं पद्मभूतं किल ।
तन्मध्ये चाभवद्ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥ १४

स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान् मुखतोऽसृजत् ।
असृजत्क्षत्रियान् बाह्योर्वीश्यांस्तु ऊरुतोऽसृजत् ॥ १५

शूत्रास्तु पादतः सृष्टास्तेषां चैवानुपूर्वशः ।
धर्मशालं च मर्यादां प्रोवाच कमलोद्भवः ॥ १६

तद्वत्सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ १७

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव चोत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १८

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावात्तु प्रवर्तते ।
तस्मिन् देशे वसेधर्मं कुरु ब्राह्मणपुंगव ॥ १९

षट्कर्माणि च यान्याहुर्ब्राह्मणस्य मनीषिणः ।
तैरिव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखमेधते ॥ २०

अध्ययनाध्यापनं च यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चेति कर्मषट्कमिहोच्यते ॥ २१

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम् ।
शुश्रूषाकारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ २२

योग्यान्ध्यापयेच्छिष्यान् याज्यान्पि च याजयेत् ।
विधिना प्रतिगृह्यं गृहधर्मप्रसिद्धये ॥ २३

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं शुभे देशे समाहितः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात् प्रव्रजतः ॥ २४

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः ॥ २५

किया और कहा—'भगवन्! आप समस्त भूमिके जता और प्रवर्तक हैं; अतः आप हमलोगोंसे धर्म और आश्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सनातन धर्मका वर्णन कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

श्रीहारीतजी बोले—पूर्वकालमें जगत्त्रया भगवान् नारायण जलके ऊपर शेषनागकी शय्यापर श्रीलक्ष्मीजीके साथ शयन करते थे। कहते हैं, शयन-कालमें ही उन भगवान्की नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उस कमल-कोचमेंसे वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानसे विभूषित श्रीब्रह्मजी प्रकट हुए। उन ब्रह्मजीने सृष्टिके लिये भगवान् नारायणकी आज्ञा होनेपर सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया। फिर क्षत्रियोंको बाहुओंसे और वैश्योंको जाँघोंसे उत्पन्न किया। अन्तमें उन्होंने चरणोंसे शूद्रोंकी सृष्टि की। फिर कमलोद्भव ब्रह्मजीने क्रमशः उन्हीं ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मका उपदेश करनेवाले शास्त्र और वर्णोंकी मर्यादाका वर्णन किया। द्विजवरो! ब्रह्मजीने जो कुछ उपदेश किया, वह सब मैं आप लोगोंसे कह रहा हूँ; आप सुनें। यह धर्मशास्त्र धन, यज्ञ और आपुको बढ़ानेवाला तथा स्वर्ग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है ॥ १३-१७ ॥

जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके गर्भ और ब्राह्मणके ही बीरसे उत्पन्न हुआ है, वह 'ब्राह्मण' कहा गया है। अब मैं ब्राह्मणके धर्म और निवास-योग्य देशको बता रहा हूँ। ब्रह्मजीने ब्राह्मणको उत्पन्न करके उनसे कहा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ! जिस देशमें कृष्णसार मृग स्वभावतः निवास करता हो, उसी देशमें रहकर तुम धर्मका पालन करो।' मनीषियोंने जो ब्राह्मणके छः कर्म बताये हैं, उन्हींके अनुसार जो सदा व्यवहार करता है, वह सुखपूर्वक अभ्युदयशील होता है। अध्ययन (पढ़ना), अध्यापन (पढ़ाना), यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), दान करना और दान लेना—ये ही ब्राह्मणके छः कर्म कहे जाते हैं। इनमेंसे अध्ययन तीन प्रकारका बताया जाता है—पहला धर्मके लिये, दूसरा धनके लिये और तीसरा अपनी सेवा करनेके लिये होता है। ब्राह्मणको चाहिये कि योग्य शिष्योंको पढ़ाये, योग्य यजमानोंका यज्ञ कराने और गृहस्थधर्मकी सिद्धि (जीविका चलाने आदि)—के लिये विधिपूर्वक दूसरेका दान भी ग्रहण करे। शुभ स्थानपर रहकर, एकाग्रचित्त हो, प्रतिदिन वेदका ही अभ्यास करे तथा यज्ञपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि आत्मस्य त्यागकर उचित रूपसे गुरुजनोंकी सेवा करे और प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल विधिपूर्वक अग्निकी सेवा किया करे ॥ १८-२५ ॥

कृतस्नानस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
 अतिथिं चागतं भक्त्या पूजयेच्छक्तितो गृही ॥ २६
 अन्यानथागतान् दृष्ट्वा पूजयेदविरोधतः ।
 स्वदारनिरतो नित्यं परदारविबर्जितः ॥ २७
 सत्ययादी जितक्रोधः स्वधर्मनिरतो भवेत् ।
 स्वकर्मणि च सम्प्राप्ते प्रमादं नैव कारयेत् ॥ २८
 प्रियां हितां वदेद्वाचं परलोकाविरोधिनीम् ।
 एवं धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ।
 धर्ममेवं तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ २९
 इत्येष धर्मः कथितो मया वै
 विप्रस्य विप्रा अखिलाचहारी ।
 वदामि राजादिजनस्य धर्मं
 पृथक्पृथक्बोधत विप्रवर्याः ॥ ३०

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्राह्मणधर्मोपनिषत्सु सप्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'ब्राह्मणधर्मका वर्णन' नामक सप्तमोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

॥ ५८ ॥

अष्टावनवां अध्याय

क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन

हालात तक

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
 येन येन प्रवर्तन्ते विधिना क्षत्रियादयः ॥ १
 रान्यस्थः क्षत्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् ।
 कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥ २
 दद्याद्दानं द्विजाग्रेभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
 स्वदारनिरतो नित्यं परदारविबर्जितः ॥ ३
 नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
 देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४
 धर्मेणैव जयं काङ्क्षेदधर्मं परिवर्जयेत् ।
 उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽथैवमाचरन् ॥ ५

श्रीहारीत मुनि बोले—अब मैं क्रमशः क्षत्रियादि वर्णोंके लिये विहित नियमोंका यथावत् वर्णन करूँगा, जिनके अनुसार क्षत्रियादिको अपना व्यवहार निभाना चाहिये। राजपदपर स्थित क्षत्रियको उचित है कि वह धर्मपूर्वक प्रजास्य पालन करे। उसे भलीभाँति वेदाध्ययन और विधिपूर्वक यज्ञ भी करने चाहिये। धर्मबुद्धिसे युक्त हो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहकर परस्त्रीका त्याग करे, नीतिशास्त्रका अर्थ समझनेमें निपुण हो, संधि और विग्रहका तत्त्व समझे। देवताओं और ब्राह्मणोंमें भक्ति रखे, पितरोंका पूजन—ब्राह्मणिक कर्म करे। धर्मपूर्वक ही विजयको इच्छा करे, अधर्मको भलीभाँति त्याग दे। इस प्रकार आचरण करनेवाला क्षत्रिय उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १—५ ॥

गोरक्षाकृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि।
दानधर्मं यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा ॥ ६

लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७

धनैर्विप्रान् समर्चेत यज्ञकाले त्वरान्वितः।
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ ८

पितृकार्यं च तत्काले नरसिंहाचर्चनं तथा।
एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनुतिष्ठतः ॥ ९

एतदासेवमानस्तु स स्वर्गी स्यान्न संशयः।
वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥ १०

दासवद्ब्राह्मणानां च विशेषेण समाचरेत्।
अप्याचितं प्रदातव्यं कृषिं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥ ११

ग्राह्याणां मासिकं कार्यं पूजनं न्यायधर्मतः।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टमार्जनम् ॥ १२

स्वदारेषु रतिं कुर्यात् परदारविवर्जितः।
पुराणश्रवणं विप्रान्नरसिंहस्य पूजनम् ॥ १३

तथा विप्रनमस्कारं कार्यं श्रद्धासमन्वितम्।
सत्यसम्भाषणं चैव रागद्वेषविवर्जनम् ॥ १४

इत्थं कुर्वन् सदा शूद्रो मनोवाञ्छयकर्मभिः।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक् ॥ १५

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता
यथाक्रमं ब्राह्मणवर्यसाधिताः।

शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं
मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥ १६

हारीत उवाच

उपनीतो माणवको वसेदूरुकुले सदा।
गुरोः प्रियहितं कार्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥ १७

वैश्यको चाहिये कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि और व्यापार करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दानधर्म और गुरुसेवा भी करे। लोभ और दम्भसे सर्वथा दूर रहे, सत्यवादी हो, किसीके दोष न देखे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परस्त्रीका त्याग करे और अपनी ही स्त्री अनुसृत रहे। यज्ञ-कालमें शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणोंका धनसे सम्मान करे तथा आलस्य छोड़कर प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन और दान करता रहे। ब्राह्म-काल प्राप्त होनेपर पितृ-श्राद्ध अवश्य करे और नित्यप्रति भगवान् श्रीनृसिंहदेवका पूजन करे। अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्यके लिये यही कर्तव्य कर्म बतलाया गया है। पूर्वोक्त कर्मका पालन करनेवाला वैश्य निःसंदेह स्वर्गलोकका अधिकारी होता है ॥ ६-१५ ॥

शूद्रको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे और ब्राह्मणोंकी तो दासकी भाँति विशेषरूपसे दुरुष्ठा करे। किसीसे माँगकर नहीं, अपनी ही कमाईका दान करे। जीविकके लिये कृषि कर्म करे। प्रत्येक मासमें न्याय और धर्मके अनुसार ग्रहोंका पूजन करे, पुराना वस्त्र धारण करे। ब्राह्मणका जूटा बर्तन माँजे। अपनी स्त्रीमें अनुराग रखे। परस्त्रियोंको दूरसे ही त्याग दे। ब्राह्मणके मुखसे पुराणकथा श्रवण करे, भगवान् नरसिंहका पूजन करे। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे। राग-द्वेष त्याग दे और सत्यभाषण करे। इस प्रकार मन, वाणी, शरीर और कर्मसे आचरण करनेवाला शूद्र पापरहित हो पुण्यका भागी होता है और मृत्युके पश्चात् इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥ १०-१५ ॥

मुनीन्द्रगण! वर्णोंके ये नाना प्रकारके धर्म मैंने आप लोगोंसे क्रमशः कहे हैं। इन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने बतलाया है। अब मैं क्रमसे प्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म बतला रहा हूँ, आप लोग सुनें ॥ १६ ॥

श्रीहारीत मुनि बोले—उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद ब्रह्मचारी बालक सदा गुरुकुलमें निवास करे। उसको चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे गुरुका प्रिय और हित करे।

ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा बहुरुपासनम् ।
उदकुम्भं गुरोर्दद्यात्तथा चेन्धनमाहरेत् ॥ १८

कुर्यादध्ययनं पूर्वं ब्रह्मचारी यथाविधि ।
विधिं हित्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ १९

यत्किञ्चित् कुरुते कर्म विधिं हित्वा निरात्मकः ।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणो विधिविच्युतः ॥ २०

तस्मादेवं व्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये ।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधौ ॥ २१

अजिनं दण्डकाष्ठं च मेखलां चोपवीतकम् ।
धारयेदप्रमत्तस्तु ब्रह्मचारी समाहितः ॥ २२

सायं प्रातश्चोद्वैक्षं भोजनं संयतेन्द्रियः ।
गुरोः कुले न भिक्षेत न त्रातिकुलबन्धुषु ॥ २३

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वपूर्वं च वर्जयेत् ।
आचम्य प्रयतो नित्यमश्रीयाद्दुर्वनुज्ञया ॥ २४

शयनात् पूर्वमुत्थाय दर्भमृहन्तशोधनम् ।
वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत् ॥ २५

स्नाने कृते गुरौ पश्चात् स्नानं कुर्वीत यत्रवान् ।
ब्रह्मचारी व्रती नित्यं न कुर्यादन्तशोधनम् ॥ २६

छत्रोपानहमभ्यङ्गं गन्धमाल्यानि वर्जयेत् ।
नृत्यगीतकथालापं मैथुनं च विशेषतः ॥ २७

वर्जयेन्मधु मांसं च रसास्वादं तथा स्त्रियः ।
कायं क्रोधं च लोभं च परिवादं तथा नृणाम् ॥ २८

स्त्रीणां च प्रेक्षणात्मभ्युपघातं परस्य च ।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ॥ २९

स्वप्ने सिक्त्या ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्वात्कार्कमर्चयित्वाग्निं पुनर्पामित्युचं जपेत् ॥ ३०

यह ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन और अग्निकी उपासना करे। गुरुके लिये जलका भड़ा भरकर लाये और हवनके निमित्त समिधा ले आये। इस प्रकार सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहकर विधिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। जो विधिका त्याग करके अध्ययन करता है, उसे उस अध्ययनका फल नहीं प्राप्त होता (उसका विद्या सफल नहीं होती)। विधिकी अपहेलना करके वह जो कुछ भी कर्म करता है, विधिभट्ट एवं नास्तिक होनेके कारण उसे उसका फल नहीं मिलता। इसलिये गुरुकुलमें रहकर अपने अध्ययनकी सफलताके लिये उपयुक्त व्रतोंका आचरण करना चाहिये और गुरुके निकट समस्त शौचाचारोंको सीखना चाहिये। ब्रह्मचारी साधन और एकाग्रचित्त रहकर मृगधर्म, पलाशदण्ड, मेखला और उपवीत (जनेऊ) धारण करे। अपनी इन्द्रियोंको यत्नमें रखकर सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अन्न भोजन करे। गुरुके कुलमें और उनके कुटुम्बी बन्धु-बान्धवोंके घरमें भिक्षा न माँगे। दूसरेके घर न मिले तो पूर्वोक्त घरोंमेंसे भी भिक्षा ले सकता है; किन्तु यथासाध्य पूर्व-पूर्व गृहोंका त्याग करे। अर्थात् पहले कटे हुए गुरुगृह या गुरुकुलका त्यागकर अन्यत्र भिक्षा ले। नित्य आचमन करके शुद्धचित्त होकर गुरुकी आज्ञा से भोजन करे। रात्रि बीतनेपर गुरुसे पहले ही अपने आसनसे उठ जाय और गुरुके लिये कुश, मिट्टी, दौड़न और वस्त्र आदि अन्य सामान एकत्र करके उनको दे। गुरुजीके स्नान कर लेनेपर स्वयं वस्त्रपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मचारी सदा व्रत रखे और काठ आदिसे दन्तधावन न करे ॥ १७—२६ ॥

छाता, जूता, उबटन, गन्धयुक्त इत्र आदि और फूल माला आदिको त्याग दे। विशेषतः नाच, गान और ग्रन्थ कथा-वार्ता एवं मैथुनका सर्वथा त्याग करे। मधु, मांस और रसास्वाद (जिह्वाके स्वाद)-को त्याग दे। स्त्रियोंसे अलग रहे। काम, क्रोध, लोभ तथा दूसरे मनुष्योंके अपवाद (निन्दा)-का परित्याग करे। स्त्रियोंकी ओर देखने, उनका स्पर्श करने और दूसरे जीवोंकी हिंसा करने आदिसे बचकर रहे। सब जगह अकेले ही शयन करे, कभी कहीं भी वीर्यपात न करे। यदि कामभाव न होनेपर भी स्वप्नमें वीर्य-स्खलन हो जाय तो ब्रह्मचारी द्विजको चाहिये, वह स्नान करके सूर्य और अग्निकी आराधना करे तथा 'पुनर्पामेतिन्द्रियम्' इस

आस्तिकोऽहरहः संध्यां त्रिकालं संयतेन्द्रियः ।
उपासीत यथान्यायं ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥ ३१

अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत मातापित्रोस्तु भक्तितः ॥ ३२

एतेषु त्रिषु तृष्टेषु तृष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
तदेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ३३

अधीत्य चतुरो वेदान् वेदी वेदमथापि वा ।
गुरुवे दक्षिणां दत्त्वा तदा स्वस्वेच्छया वसेत् ॥ ३४

विरक्तः प्रव्रजेद्विद्वान् संरक्तस्तु गृही भवेत् ।
सरागो नरकं याति प्रव्रजन् हि ध्रुवं द्विजः ॥ ३५

यस्यैतानि सुशुद्धानि जिह्वोपस्थोदरं गिरः ।
संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥ ३६

एवं यो विधिमास्थाय नयेत् कालमतन्त्रितः ।
तेन भूयः प्रजायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ ३७

यो ब्रह्मचारी विधिमेतमास्थित-
श्चेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
सम्प्राप्य विद्यामपि दुर्लभां तां
फलं हि तस्याः सकलं हि विन्दति ॥ ३८

इति उपनिषद्

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
गुरोर्दत्तवरः सम्यक् समावर्तनमारभेत् ॥ ३९

असमाननामगोत्रां कन्यां धातृयुतां शुभाम् ।
सर्वावयवसंयुक्तां सद्गतामुद्देहततः ॥ ४०

नोद्देहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
वाचालामतिलोमां च न व्यङ्गां भीमदर्शनाम् ॥ ४१

श्रुत्याका जप करे। ईश्वर और परलोकके अस्तित्वपर विश्वास करता हुआ, ब्रह्मचारियोंके लिये उचित धर्मके पालनमें तत्पर रहकर, जितेन्द्रिय हो, प्रतिदिन न्यायतः प्रातः त्रिकालसंध्याको उपासना करे। संध्या-कर्म समाप्त होनेपर गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और यदि सुयोग प्राप्त हो तो माता-पिताके चरणोंमें भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न रहते हैं; इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि झाह छोड़कर इन तीनोंके शासनमें रहे। यथासम्भव चार, दो अथवा एक ही वेदका अध्ययन पूर्ण करके गुरुको दक्षिणा दे। फिर अपने इच्छानुसार कहीं भी निवास करे। यदि वह विद्वान् ब्रह्मचारी विरक्त हो, तब तो संन्यासी हो जाय; किंतु यदि उसका विषय-भोगोंके प्रति अनुराग हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। द्विजो! रागी पुरुष यदि संन्यासी हो जाय तो वह निश्चय ही नरकमें जाता है। जिसकी जिह्वा, उपस्थ (जवनोन्द्रिय), उदर और चाणी शुद्ध हों, अर्थात् जो स्वाद, काम और दुःखको जीत चुका हो और सत्यतादो या मौन रहता हो, वह पुरुष यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विवाह न करके संन्यास ले सकता है ॥ २७—३६ ॥

इस प्रकार जो आत्मन्य त्यागकर विधिका पालन करते हुए ही समय-यापन करता है, वह ब्रह्मचारी अधिकाधिक दृढ़ व्रतवाला होता है। जो ब्रह्मचारी पूर्वोक्त विधिका सहारा लेकर गुरु-सेवापरायण हो पृथ्वीपर भ्रमण करता है, वह दुर्लभ विद्याको भी सीखकर उसके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त कर लेता है* ॥ ३७—३८ ॥

श्रीहरीत मुनि कहते हैं—पूर्वोक्त रीतिसे वेदाध्ययन समाप्तकर कुति तथा अन्यान्य शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वका ज्ञान रखनेवाला ब्रह्मचारी विद्वान् गुरुसे आशौर्वाद प्राप्तकर विधिपूर्वक समावर्तन-संस्कार आरम्भ करे। फिर, जिसके नाम और गोत्र अपनेसे भिन्न हों, जिसके भाई भी हो, जो सुन्दरी एवं शुभ लक्षणोंवाली हो, जिसके शरीरके सभी अवयव अविकल हों और जिसका आचरण उत्तम हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे। जिसके शरीरका रंग कपिल हो, जो अधिकाङ्गी या रोगिणी हो, बहुत बोलनेवाली और अधिक रोमधराली हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या हीन हो और जिसकी

* इससे आगे 'हरीत उवाच' पुरुः दिव्य मया है। इसी ज्ञान पदार्थ है, यह अध्याय यहाँ पूर्ण हो गया है।

नक्षत्रवृक्षनदीनार्त्नी नान्तपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेक्ष्यनार्त्नी न च भीषणनामिकाम् ॥ ४२

अव्यङ्गाङ्गी सौम्यनार्त्नी हंसवारणगाभिनीम् ।
तन्वोष्ठकेशदर्शनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ४३

ब्राह्मेण विधिना कुर्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ।
यथायोगं तथा होषं विवाहं वर्णधर्मतः ॥ ४४

उषःकाले समुत्थाय कृतशीघ्रो द्विजोत्तमः ।
कुर्यात् स्नानं ततो विद्वान्दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४५

मुखं पर्युषिते नित्यं यतोऽपुतो भवेन्नरः ।
तस्याच्छुष्कमधार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ४६

खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा ।
अपामार्गं च बिल्वं च अर्कश्चोदुम्वरस्तथा ॥ ४७

एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ।
दन्तधावनकाष्ठं च वक्ष्यामि तत्प्रशस्तताम् ॥ ४८

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन तत्प्रमाणाभिहोच्यते ॥ ४९

प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान् विशोधयेत् ।
प्रतिपदशंषष्टीषु नवम्यां चैव सप्तमाः ॥ ५०

दन्तानां काष्ठसंयोगाद् दहत्यासप्तमं कुलम् ।
अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिपिष्टे च तद्दिने ॥ ५१

अपां द्वादशगण्डूषैर्मुंखशुद्धिर्विधीयते ।
स्नात्वा मन्त्रब्रह्मचर्य्य पुनराचमनं चरेत् ॥ ५२

मन्त्रवान् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम रक्षसाः ॥ ५३

सूत उवाच ॥ हो, ऐसी कन्यासे विवाह न करे। जिसका नाम पक्ष, वृक्ष या नदीके नामपर रखा गया हो, अथवा जिसके नामके अन्तमें पर्वतवाचक शब्द हो, अथवा जो पक्षी, साँप और राक्षस आदि अर्प्यवाले नामोंसे युक्त हो, या जिसका भयंकर नाम हो, ऐसी कन्यासे भी विवाह न करे। जिसके शरीरके सभी अवयव सुडौल हों, नाम कोमल और मधुर हो, जो हंस या गजराजके समान मन्द एवं लीलायुक्त गतिसे चलनेवाली हो, जिसके अक्षर, दंत और केश पतले हों एवं जिसका शरीर कोमल हो, ऐसी कन्यासे विवाह करे। श्रेष्ठ द्विजातिको चाहिये कि यथासम्भव सर्वोत्तम ब्राह्मविधिमें विवाह करे। इस प्रकार वर्णधर्मके अनुसार विवाह-संस्कार पूर्ण करना चाहिये ॥ ३९—४४ ॥

इसके बाद विद्वान् द्विजको चाहिये कि प्रतिदिन सूर्योदयमें पूर्ण उठकर शीघ्रादिके अनन्तर दन्तधावन करके नुतन स्नान कर ले। प्रतिदिन रातमें सोकर उठनेके बाद मुख पर्युषित होनेके कारण मनुष्य अपवित्र रहता है, अतः शुद्धिके लिये मूला या गीला दन्तधावन अवश्य करना चाहिये। दंतुनके लिये खदिर, कदम्ब, करञ्ज, वट, अपामार्ग, बिल्व, भटार और गुलर—ये वृक्ष उत्तम माने गये हैं। दन्तधावनके लिये उपयुक्त काष्ठ और उसकी उत्तमताका लक्षण बता रहा हूँ ॥ ४५—४८ ॥

जितने कौटुंबिक वृक्ष हैं, वे सभी पवित्र हैं। जितने दूधवाले वृक्ष हैं, वे सभी यश देनेवाले हैं। दंतुनकी लकड़ीकी लम्बाई आठ अंगुलकी बतायी जाती है। अथवा ब्रह्माम्बर उसकी लम्बाई होनी चाहिये। ऐसी दंतुनसे दंतोंको स्वच्छ करना चाहिये। परंतु साधुशिरोमणियों! प्रतिष्ठा, अमलास्या, पक्षी और नवमोको काठकी दंतुन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उक्त तिथियोंको यदि दंतसे काठका संपर्क हो जाय तो वह स्वतः पीढ़ीतकके कुलको दाघ कर डालता है। जिस दिन दंतुन न मिले या जिस दिन दंतुन करना निषिद्ध है, उस दिन बारह बार जलका कुल्ला करके मुखकी शुद्धि कर लेनेकी विधि है ॥ ४९—५१ ॥

दंतुनके बाद स्नान करे। फिर मन्त्रपाठपूर्वक आयमन करके पुनः आचमन करना चाहिये। मन्त्रपाठपूर्वक अपने ऊपर भी जल छिड़के और सूर्यके लिये अर्घ्यके तौरपर जलाञ्जलि भरकर ठाड़ले। अथकजन्म ब्रह्मजीके धरदानसे

युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 उदकाञ्जलिविक्षेपो गायत्र्या चाभिर्मन्त्रितः ॥ ५४
 तान् हन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहान् रविर्वरिणः ।
 ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणै रक्षितो दिवि ॥ ५५
 परीच्याद्यैर्महाभारैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ।
 तस्मात्र लङ्घयेत्संध्यां सायं प्रातर्द्विजः सदा ॥ ५६
 उलङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ।
 सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥ ५७
 दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ।
 पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि ॥ ५८
 गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदुक्षाणि पश्यति ।
 ततस्त्वावसथं प्राप्य होमं कुर्यात्स्वयं बुधः ॥ ५९
 संचिन्त्य भृत्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।
 ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥ ६०
 ईश्वरं चैव रक्षार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।
 कुशपुण्येन्धनादीनि गत्वा दूरात्समाहरेत् ॥ ६१
 माध्याह्निकीं क्रियां कुर्याच्छुची देशे समाहितः ।
 विधिं स्नानस्य वक्ष्यामि समासात् पापनाशनम् ॥ ६२
 स्नात्वा येन विधानेन सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ।
 सुधीः स्नानार्थमादाय शुक्लां कुशतिलैः सह ॥ ६३
 सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धां मनोरमाम् ।
 नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादल्पवारिषु ॥ ६४
 शुची देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशमृत्तिकां ।
 मृत्तोयेन स्वकं देहमभिप्रक्षाल्य यत्रतः ॥ ६५

प्रबल हुए 'मन्देह' नामके राक्षस प्रतिदिन प्रातःकाल आकर सूर्यके साथ युद्ध करते हैं; किंतु जब गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलजालि सूर्यदेवके सामने उछाली जाती है, तब वह उन समस्त सूर्य-वैरी मन्देह नामके राक्षसोंको मार भगती है।* तत्पश्चात् महाभाग मरोचि आदि ब्राह्मणों और सनकादिक योगियोंद्वारा रक्षित हो, भगवान् सूर्यदेव आकाशमें आगे बढ़ते हैं। इसलिये द्विजको चाहिये कि सायं और प्रातःकालकी संध्याका कभी उलङ्घन न करे। जो मोहवश संध्याका उलङ्घन करता है, वह अवश्य ही नरकमें पहुँचा है। यदि सायंकालमें मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके अपने ऊपर जल छिड़ककर फिर भगवान् सूर्यको जलजालि अर्पित की जाय और उनको परिक्रमा करके पुनः जलका स्पर्श किया जाय तो वह द्विज शुद्ध हो जाता है। प्रातःकालकी संध्या तारोके रहते-रहते विधिपूर्वक आरम्भ करे और जबतक तारोंका दर्शन हो, तबतक गायत्रीका जप करता रहे। तत्पश्चात् घरमें आकर विद्वान् पुरुषको स्वयं हवन करना चाहिये। फिर जो भृत्य—पालनीय कुटुम्बीजन तथा दास आदि हों, उनके भरण-पोषणके लिये विद्वान् गृहस्थ चिन्ता (आवश्यक प्रयत्न) करे। उसके बाद शिष्योंके हितके लिये कुछ देराफा स्वाध्याय करे। उत्तम द्विजको चाहिये कि अपनी रक्षाके लिये ईश्वरका सहारा ले। फिर दूर जाकर पूजाके लिये कुश, फूल और हवनके लिये समिधा आदि ले आये और पवित्र स्थानमें एकाग्रचित्तसे बैठकर माध्याह्निकी क्रिया (संध्यावासना आदि) करे ॥ ५३—६२½ ॥

अब हम धोड़ेमें स्नानकी विधि बतला रहे हैं जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है। उस विधिसे स्नान करके मनुष्य तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि स्नानके लिये कुश और तिलोंके साथ शुद्ध मिट्टी ले ले तथा प्रसन्नचित्त होकर शुद्ध और मनोहर नदीके तटपर जाय। नदीके होते हुए छोटे जलाशयोंमें स्नान न करे। जहाँ पवित्र स्थानपर उसे छिड़ककर कुश और मृत्तिका आदि रख दे। फिर विद्वान् पुरुष मिट्टी और जलसे अपने शरीरको

* यहाँ 'मन्देह' राक्षस आत्मव्यक्तके प्रतीक हैं। जिस देशमें जब रात होकर प्रातःकाल होता है, वहाँके लोगोंको इसी समय आत्मस्य दबाये रहता है। 'सूर्य आत्मा जगतः' के अनुसार सूर्य सबके आत्मा है, अतः किसी भी प्राणीपर आत्मव्यक्तका आक्रमण सूर्यपर मन्देहका आक्रमण है। स्नान और सूर्यार्पणसे इस मन्देह या आत्मव्यक्तका विनाश सबके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है।

स्नानाच्छरीरं संशोध्य कुर्यादाचमनं युधः ।
 शुभे जले प्रविश्याथ नमेद्वरुणमप्यतिम् ॥ ६६

हरिमेव स्मरंश्चित्ते निमज्जेच्च बहूदके ।
 ततः स्नानं समासाद्य अप आचम्य मन्त्रतः ॥ ६७

प्रोक्षयेद्वरुणं देवं तैर्मन्त्रैः पावमानिभिः ।
 कुशाग्रस्थेन तोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ६८

आलभेन्मृत्तिकां गात्रे इदं विष्णुरिति त्रिधा ।
 ततो नारायणं देवं संस्मरन् प्रविशेज्जलम् ॥ ६९

निमज्ज्यान्तर्जले सम्यक्त्रिः पठेदघमर्षणम् ।
 स्नात्वा कुशतिलैस्तद्वरेवर्षीन् पितृभिः सह ॥ ७०

तर्पयित्वा जलात्तस्मात्त्रिष्क्रम्य च समाहितः ।
 जलतीरं समासाद्य धीते शुक्ले च वाससी ॥ ७१

परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात्केशधूननम् ।
 न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं तद्वशास्यते ॥ ७२

मलाक्तं तु दशाहीनं वर्जयेदम्बरं युधः ।
 ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥ ७३

त्रिः पिबेद्वीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् ।
 पादौ शिरसि चाभ्युक्षेत्रिराचम्य तु संस्पृशेत् ॥ ७४

अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या नासिकां समुपस्पृशेत् ।
 अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभौ हृदि तलेन च ॥ ७५

शिरश्चाङ्गुलिभिः सर्वैर्बाहुं चैव ततः स्पृशेत् ।
 अनेन विधिनाऽऽचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥ ७६

दर्भे तु दर्भपाणिः स्यात् प्राङ्मुखः सुसमाहितः ।
 प्राणायामांस्तु कुर्वीत यथाशास्त्रमतन्त्रितः ॥ ७७

यत्नपूर्वक लिल्ल करके, शुद्ध स्नानके द्वारा उसे धोकर पुनः आचमन करे। तदनन्तर स्वच्छ जलमें प्रवेश करके जलसे वरुणको नमस्कार करे। फिर मन-ही मन भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए जहाँ कुछ अधिक जल हो, वहाँ डुबकी लगाये। इसके बाद स्नान समाप्तकर, मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके, वरुणसम्बन्धी पञ्चमान-मन्त्रोंद्वारा वरुणदेवका अभिषेक करे। फिर कुशके अग्रभागपर स्थित जलसे अपना पद्मपूर्वक मार्जन करे और 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मन्त्रका पाठ करते हुए अपने शरीरके तीन भागोंमें क्रमशः मृत्तिकाका लेप करे। तत्पश्चात् भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए जलमें प्रवेश करे। जलके भीतर भली प्रकार डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण पाठ करे। इस प्रकार स्नान करके कुश और तिलोंद्वारा देवताओं, ऋषियों और पिताओंका तर्पण करे। इसके बाद सम्प्रातिष्ठित हो, जलसे बाहर निकल, तटपर आकर धुले हुए दो स्वेत वस्त्रोंको धारण करे। इस प्रकार धोती और उत्तरीय धारणकर अपने केशोंको न फटकारे। अत्यधिक लाल और नील वस्त्र धारण करना भी उत्तम नहीं माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिस वस्त्रमें मल या दाग लगा हो, अथवा जिसमें किनारी न हो, उसका भी त्याग करे ॥ ६२—७२ १/२ ॥

इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष मिट्टी और जलसे अपने चरणोंको धोये। फिर खूब देख-भालकर शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करे। दो बार जल लेकर मुँह धोये। दैर और सिरपर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके क्रमशः अङ्गोंका स्पर्श करे। अँगूठे और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्श करे। अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिकासे नाभिका स्पर्श करे। हृदयका करतलसे स्पर्श करे। तदनन्तर समस्त अँगुलियोंसे पहले सिरका, फिर बाहुओंका स्पर्श करे। इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण शुद्धहृदय हो, हाथमें कुश ले, पूर्वकी ओर मुख करके एकाग्रतापूर्वक कुशासनपर बैठ जाय और आलस्यको त्यागकर शास्त्रोक्त विधिसे-तीन बार प्राणायाम करे ॥ ७३—७७ ॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्वायत्रीं वेदमातरम् ।
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ॥ ७८

वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ७९

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः ।
शब्दमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥ ८०

शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्टी प्रचालयेत् ।
किञ्चिन्मन्त्रं स्वयं विन्वादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥ ८१

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः ॥ ८२

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८३

यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सूर्यादिदूषणाः ।
जापिनं नोपसर्पन्ति दूरादेवापयान्ति ते ॥ ८४

ऋक्षादिकं परिज्ञाय जपयज्ञमतन्द्रितः ।
जपेदहरहः स्नात्वा सावित्रीं तन्मना द्विजः ॥ ८५

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते ॥ ८६

अथ पुण्याञ्जलिं दत्त्वा भानवे सोर्यवाहुकः ।
उदुत्यं च जपेन्मन्त्रं चित्रं तच्चक्षुरित्यपि ॥ ८७

प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुप्यादिवाकरम् ।
स्वेन तीर्थेन देवादीर्नद्धिः संतर्पयेद्बुधः ॥ ८८

देवान् देवगणांश्चैव ऋषीन्विगणांस्तथा ।
पितृन् पितृगणांश्चैव नित्यं संतर्पयेद्बुधः ॥ ८९

स्नानवस्त्रं ततः पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।
दर्भेषु दर्भपाणिः स्याद्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥ ९०

प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याद्बुद्धिसमन्वितः ।
ततोऽर्घं भानवे दद्यात्तिलपुष्पजलान्वितम् ॥ ९१

तत्पश्चात् वेदमाता गायत्रीका जप करती हुए जपयज्ञ करे। जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है; उसका भेद बताते हैं, आप लोग सुनें। वाचिक, उपांशु और मानस—तीनों प्रकारका जप कहा गया है। इन तीनों जपयज्ञोंमें उत्तरोत्तर जप श्रेष्ठ है, अर्थात् वाचिक जपको अपेक्ष उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है। अब इनके लक्षण बताते हैं। जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार ऊँचे, नीचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अक्षरोंद्वारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोच्चारण करता है, वह 'वाचिक जप' कहलाता है। इसी प्रकार जो तनिक सा ओढ़ेंको हिलाकर धीरे-धीरे मन्त्रका उच्चारण करता है और मन्त्रको स्वयं ही कुछ-कुछ सुनता या समझता है, उसका वह जप 'उपांशु' कहलाता है। बुद्धिके द्वारा मन्त्राक्षरसमूहके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो चिन्तन एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस जप' कहा गया है। जपके द्वारा प्रतिदिन जिसका स्तवन किया जाता है, वह देवता प्रसन्न होता है और प्रसन्न होनेपर वह विपुल भोग तथा नित्य मोक्ष-सुखको भी देता है। यक्ष-रक्षस पिशाच आदि और सूर्यादि देवताओंको दुषित करने वाले अन्य (रक्ष-वेद आदि) ग्रह भी जप करनेवाले पुरुषके निकट नहीं जाते, दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ७८—८४ ॥

द्विजको चाहिये कि वह आलस्यका त्याग करके प्रतिदिन तारोंको देखकर अर्थात् तारोंके रहते-रहते स्नान करके, गायत्रीके अर्थमें मन लगा गायत्री-मन्त्रका जप करे। जो द्विज अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, वह पापोंसे तिस नहीं होता ॥ ८५—८६ ॥

इसके बाद सूर्यदेवको पुण्याञ्जलि अर्पित करके अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर 'ॐ उदुत्यं जातवेदसम्' तथा 'ॐ तच्चक्षुर्देवाहितम्' इन मन्त्रोंका जप करे। फिर प्रदक्षिणा करके सूर्यदेवको प्रणाम करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष प्रतिदिन देवतीर्थसे (कैलासीयोंद्वारा) देवताओंका तर्पण करे। विज्ञ पुरुषको देवताओं और उनके गणोंका, ऋषियों और उनके गणोंका तथा पितरों और पितृगणोंका प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर स्नानके बाद उतरे हुए वस्त्रको निचोड़कर पुनः आचमन करे। फिर हाथमें कुश लेकर कुशासनपर बैठ जाय और ब्रह्मयज्ञकी विधिसे अनुसार पूर्वाभिमुख हो बुद्धिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ (वेदका स्वाध्याय) करे। तदनन्तर खड़ा होकर तिल, फूल और जलसे युक्त अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकतक

उत्थाय मूर्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्युच्चा।
जले देवं नमस्कृत्य ततो गृहगतः पुनः ॥ ९२

विधिना पुरुषसूक्तेन तत्र विष्णुं समर्चयेत्।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म यथाविधि ॥ ९३

गोदोहमात्रमतिथिं प्रतिवीक्षेत वै गृही।
अदृष्टपूर्वमतिथिमागतं प्राक् समर्चयेत् ॥ ९४

आगत्य च पुनर्द्वारं प्रत्युत्थानेन साधुना।
स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाम् ॥ ९५

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट्।
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति तस्य च ॥ ९६

अन्नाद्येन च दत्तेन तृप्यतीह प्रजापतिः।
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥ ९७

भक्त्या च भक्तिमाश्रित्य विष्णुमभ्यर्च्य चिन्तयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिवाङ्मन्त्राचारिणे ॥ ९८

आकल्पितान्नादुद्धृत्य सर्वव्यञ्जनसंयुतम्।
दद्याच्च मनसा नित्यं भिक्षां भिक्षोः प्रयत्नतः ॥ ९९

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षी भिक्षार्थमागते।
अवश्यमेव दातव्यं स्वर्गसोपानकारकम् ॥ १००

उद्धृत्य वैश्वदेवाग्रं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्।
वैश्वदेवाकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्वपोहितुम् ॥ १०१

सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वाऽऽतुरानपि।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुङ्गीत वै गृही ॥ १०२

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मीनी च मितभाषणः।
अन्नं पूर्वं नमस्कृत्य ग्रहष्टेनान्तरात्मना ॥ १०३

पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यात्समन्त्रेण पृथक् पृथक्।
ततः स्वादुकरं चान्नं भुङ्गीत सुसमाहितः ॥ १०४

ऊँचे उठा 'हंसः शुचिषत्'— इस ऋचाका पाठ करते हुए सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। फिर जलमें स्थित वरुणदेवको नमस्कार कर पुनः घरपर आ जाय और वहाँ पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुका विधिबत् पूजन करे। तदनन्तर विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव कर्म करे ॥ ८७—९३ ॥

इसके बाद जितनी देरमें गौ दुही जाती है, उतनी देरतक द्वारपर अतिथिके आनेकी प्रतीक्षा करे। यदि कई अतिथि आ जायें तो उनमेंसे जिसे पहले कभी न देखा हो, उसका सम्मान सबसे पहले करना चाहिये। द्वारपर आकर अतिथिकी खड़े होकर भलीभाँति अगवाणी करनेसे गृहस्थके ऊपर दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय—तीनों अग्नि प्रसन्न होते हैं; आसन देनेसे देवराज इन्द्रको प्रसन्नता होती है, अतिथिके पैर धोनेसे उस गृहस्थके पित्रृगण तृप्त होते हैं, अन्न आदि भोग्य पदार्थ अर्पण करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इसलिये गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह अतिथिका पूजन करे ॥ ९४—९७ ॥

इसके पश्चात् भक्तिमान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके उनका चिन्तन करे। फिर संन्यासी, विरक्त एवं ब्रह्मचारीको भिक्षा दे। सब प्रकारसे तैयार किये हुए अन्नमेंसे समस्त व्यञ्जनोंसे युक्त कुछ अन्न निकालकर प्रतिदिन यत्नपूर्वक भिक्षु (संन्यासी) को देना चाहिये। बलिवैश्वदेव करनेके पहले भी यदि भिक्षु भिक्षाके लिये आ जाय तो उसे अवश्य भिक्षा देनी चाहिये; क्योंकि यह दान स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ीका काम देता है। विश्वेदेवसम्बन्धी अन्नमेंसे लेकर भिक्षुको भिक्षा देकर उसे विद्या करे। वैश्वदेव कर्म न करनेके दोषको वह भिक्षु दूर कर सकता है। फिर सुवासिनी (सुहागिन) और कुमारी कन्याओं तथा रोगी व्यक्तियोंको और बालकों एवं वृद्धोंको पहले भोजन कराके उनसे बचे हुए अन्नको गृहस्थ पुरुष स्वयं भोजन करे ॥ ९८—१०२ ॥

भोजन करते समय पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन रहे अथवा कम बोले। भोजनसे पहले प्रसन्नचित्तसे अन्नको नमस्कार करके पृथक्-पृथक् पाँच प्राणवायुओंके नाम-मन्त्रसे अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा'—इस प्रकार उच्चारण करते हुए पाँच बार प्राणाग्निलोच करे। इसके बाद एकाग्रचित्त होकर उस स्वादिष्ट अन्नको स्वयं भोजन करे।

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरेदुदरं स्पृशन् ।
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥ १०५

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ।
कृतहोमश्च भुञ्जीत रात्रावतिथिर्मर्चयेत् ॥ १०६

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ १०७

शिष्यानध्यापयेत्तद्वदनध्यायं विवर्जयेत् ।
स्मृत्युक्तान् सकलान् पूर्वपुण्योक्तानपि द्विजः ॥ १०८

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि ।
तथाक्षय्यतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः ॥ १०९

माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यामध्ययनं त्यजेत् ।
अध्यापनमथाध्ययनं स्नानकाले विवर्जयेत् ॥ ११०

दानं च विधिना देयं गृहस्थेन द्विर्द्विषणा ।
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं विशेषतः ॥ १११

एतानि चः प्रयच्छेत् श्रोत्रियेभ्यो द्विजोत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ ११२

मङ्गलाचारयुक्तश्च शुचिः श्रद्धापरः गृही ।
श्राद्धं च श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ११३

जातावुत्कर्षमायाति नरसिंहप्रसादतः ।
स तस्मान्मुक्तिमाप्नोति ब्रह्मणा सह सत्तमाः ॥ ११४

एवं हि विप्राः कथितो मया वः
समासतः शाश्वतधर्मराशिः ।
सम्यग्गृहस्थस्य सतो हि धर्मं
कुर्वन् प्रयत्नाद्धरिमेति मुक्तः ॥ ११५

भोजनके बाद मुँह-हाथ धो, आचमन (कुत्ला) करके, अपने उदरका स्पर्श करते हुए इष्टदेवका स्मरण करे। फिर विद्वान् पुरुष इतिहास-पुराणोंके अध्ययनमें कुछ समय व्यतीत करे। तदनन्तर सायंकाल आनेपर बाहर (नदी या जलाशयके तटपर) जाकर विधिपूर्वक संन्योपास करे। पुनः रात्रिकालमें हवन करके अतिथि-सत्कारके पश्चात् भोजन करे। द्विजातियोंके लिये प्रातः और सायं—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है; इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे अग्निहोत्र प्रातः और सायंकालमें किया जाता है, वैसे ही दो ही समय भोजनकी भी विधि है ॥ १०३—१०७ ॥

इसके अतिरिक्त विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ावे, परंतु अध्ययनके लिये वर्जित समयका त्याग करे। स्मृतिमें बताया है हुए तथा पहलेके पुराणोंमें वर्णित सम्पूर्ण अनध्याय-कालको त्याग दे। महानवमी (आश्विन शुक्ल नवमी) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र और क्षय्यतृतीयामें विद्वान् पुरुष शिष्योंको न पढ़ावे। माघ मासकी सप्तमीको अध्ययन न करे, सड़कपर चलते समय और उषदन लगाकर स्नान करते समय भी अध्ययनका त्याग करे ॥ १०८—११० ॥

अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको चाहिये कि विधिपूर्वक दान करे। विशेषतः सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान करे। जो द्विजश्रेष्ठ सुवर्ण आदि पूर्वोक्त वस्तुएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दानमें देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो गृहस्थ शुभाचरणोंमें पुक्त, पवित्र और श्रद्धालु रहकर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वह भगवान् नरसिंहकी कृपासे जातिमें उत्कर्ष प्राप्त करता है और सत्तमो! ब्रह्माजोंके साथ ही वह मुक्त हो जाता है। विप्रगण! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे यह सनातन धर्मसमूहका संक्षेपसे वर्णन किया। जो पुरुष सद्गृहस्थके उक्त धर्मका भलीभाँति प्रयत्नपूर्वक पालन करता है, वह मुक्त होकर भगवान् श्रीहरिको प्राप्त करता है ॥ १११—११५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे गृहस्थधर्मोऽध्यायः ५८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें "गृहस्थधर्म" नामक अष्टाध्यायी अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवां अध्याय

वानप्रस्थ-धर्म

शारीर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य लक्षणम् ।
धर्ममायं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्ट्वा पलितमात्मनः ।
स्वभार्या तनये स्थाप्य स्वशिष्यैः प्रविशेद्वनम् ॥ २

जटाकलापचीराणि नखपात्ररुहाणि वा ।
धारयद्बहुयादग्री वैतानविधिना स्थितः ॥ ३

भूतपर्णीर्मुत्सम्भूतेर्नीवाराक्षीरतन्द्रितः ।
कंदमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यक्रियं बुधः ॥ ४

त्रिकालं स्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीक्ष्णं तपः सदा ।
पक्षे गते वा अश्नीयान्मासान्ते वा पराकृन् ॥ ५

चतुःकालेऽपि चाश्नीयात्कालेऽप्युत तच्चाष्टमे ।
पञ्चाह्निकाले ह्यथवा अथवा वायुभक्षकः ॥ ६

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो धारावर्षासु वै नयेत् ।
हैमन्तिके जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७

एवं स्वकर्मभोगेन कृत्वा शुद्धिमवात्मनः ।
अग्निं चात्मनि वै कृत्वा व्रजेद्वाधोत्तरं दिशम् ॥ ८

आदेहपाताद्वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९

तपो हि यः सेवति काननस्थो
वसेन्महत्सत्त्वसमाधियुक्तः ।

विमुक्तपापो हि मनःप्रशान्तः
प्रयाति विष्णोः सदनं द्विजेन्द्रः ॥ १०

श्रीहारीत मुनि बोले—महाभागगण ! इसके बाद मैं वानप्रस्थका लक्षण और श्रेष्ठ धर्म बताऊँगा; आप लोग मेरे द्वारा बताये जानेवाले इस धर्मको सुनें ॥ १ ॥

गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे पुत्र-पौत्र हो गये हैं तथा बाल भी पक गये हैं, तब वह अपनी भार्याको पुत्रोंकी देख-रेखमें सौंपकर स्वयं अपने शिष्योंके साथ वनमें प्रवेश करे। जटा, चीर (यल्कल) वस्त्र, नख, लोम आदि धारण किये हुए ही यज्ञोक्त विधिसे अग्निमें हवन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पत्नीवाले साग आदिसे या धरतीसे स्वयं उत्पन्न हुए नीवार आदिसे अथवा कंद-मूल-फल आदिसे प्रतिदिन आहारक्रियाका निर्वाह करे। प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों कालोंमें स्नान करके सदा कठोर तपस्या करे। 'पराक' आदि व्रतोंका पालन करता हुआ वानप्रस्थ पुरुष एक पक्ष या एक मासके बाद भोजन करे अथवा दिन-रातके बीच या आठवें भागमें एक बार भोजन करे। अथवा छठे दिन कुछ भोजन करे या वायु पीकर ही रहे ॥ २-६ ॥

ग्रीष्म-कालमें पञ्चाग्निके मध्य कैटे, वर्षाकालमें धारावृष्टि होनेपर बाहर आकाशके ही बीच समय व्यतीत करे और हेमन्त-श्रद्धुमें वन करते हुए वह जलमें खड़ा रहकर समन बिताने। इस प्रकार कर्मभोगद्वारा आत्मशुद्धि करके, अग्निके भावनद्वारा अन्तःकरणमें स्थापितकर उत्तरदिशाकी चला जाय। वह तपस्वी देहपात होनेतक वनमें मौन रहकर इन्द्रियातीत ब्रह्मका स्मरण करता हुआ देह त्यागकर ब्रह्मलोकमें युक्ति होता है। जो द्विजश्रेष्ठ वनवासी (वानप्रस्थ) होकर महान् सत्त्वगुण और समाधिसे युक्त हो तपका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित और प्रशान्तचित्त होकर विष्णुधामको प्राप्त होता है ॥ ७-१० ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वानप्रस्थधर्म' नामक उनसठवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

साठवाँ अध्याय

यतिधर्म

हारीत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतिधर्ममनुत्तमम् ।
 श्रद्धया यदनुष्ठाय यतिर्मुच्येत बन्धनात् ॥ १

एवं बन्धनाश्रमे तिष्ठंस्तपसा दग्धकित्त्वियः ।
 चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यस्य विधिना द्विजः ॥ २

दिव्यं ऋषिभ्यो देवेभ्यः स्वपितृभ्यश्च यत्नतः ।
 दत्त्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाऽऽत्मने ॥ ३

इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमद्यापि वा ।
 अग्निं स्वात्मनि संस्थाप्य मन्त्रवत्प्रब्रजेत् पुनः ॥ ४

ततः प्रभृति पुत्रादौ सुखलोभादि वर्जयेत् ।
 दद्याच्च भूमावुदकं सर्वभूताभयंकरम् ॥ ५

त्रिदण्डं वैणवं सीम्यं सत्त्वचं समपर्वकम् ।
 वेष्टितं कृष्णगोवालरज्ज्वा च चतुरङ्गुलम् ॥ ६

ग्रन्थिभिर्वा त्रिभिर्युक्तं जलपूतं च धारयेत् ।
 गृहीयाद्दक्षिणे हस्ते मन्त्रेणैव तु मन्त्रवित् ॥ ७

कौपीनाच्छादनं वासः कुथां शीतनिवारिणीम् ।
 पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ ८

एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि धर्मतः ।
 संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ ९

स्नात्वा ह्याचम्य विधिवज्जलयुक्तांशुकेन वै ।
 वारिणा तर्पयित्वा तु मन्त्रवद्भास्करं नमेत् ॥ १०

आसीनः प्राङ्मुखो मीनी प्राणायामत्रयं चरेत् ।
 गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥ ११

स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमद्याचरेत् ।
 सायाह्निकाले विप्राणां गृहाणि विचरेच्छतिः ॥ १२

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—इसके बाद अब मैं संन्यासियोंका सर्वोत्तम धर्म बतलाना, जिसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करके संन्यासी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। द्विजको चाहिये कि पूर्वोक्त रीतिसे वानप्रस्थ-आश्रममें रहते हुए तपस्याद्वारा पापोंको भस्म करके, विधिपूर्वक संन्यास ले चौथे आश्रममें प्रवेश करे। पहले यत्नपूर्वक देवताओं, ऋषियों और अपने पितरोंके लिये दिव्य व्याघ्र-सामग्रीका दान करे; इसी प्रकार ऋषियों, मनुष्यों तथा अपने लिये भी श्राद्धीय वस्तुका दान करे। फिर वैश्वानर अथवा प्राजापत्य याग करके, मन्त्रपाठपूर्वक अपने अन्तःकरणमें अग्निस्थापन करके संन्यासी हो, वहाँसे चला जाय। उस दिनसे पुत्र आदिके प्रति आसक्तिको और सुख-लोभ आदिको त्याग दे। पृथ्वीपर समस्त प्राणियोंको अभय देनेके निमित्त जलकी अञ्जलि दे। वेणु (बाँस)-का बना हुआ त्रिदण्ड धारण करे, जो सुन्दर और तपस्वानुक्त हो, उसके पीर बराबर हों, काली गीके बालोंकी रस्सीसे वह चार अंगुलतक लपेटा गया हो। अथवा वह दण्ड तीन गौँसे युक्त हो, उसे जलसे पवित्र करके धारण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह मन्त्रपाठपूर्वक ही उस दण्डको दाहिने हाथमें ग्रहण करे ॥ १-७ ॥

कौपीन (सैगोटी), चादर, जूड़ा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा छड़ाई—इन्हीं वस्तुओंकी अपने पास रखे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे। संन्यासीके ये ही विद्वां बतलाने गये हैं। इन वस्तुओंका धर्मतः संग्रह करके संन्यासी पुरुष उत्तम तीर्थमें जा, स्नान करके विधिपूर्वक आचमन करे। स्नानके बाद भीगे वस्त्रके जलसे सूर्यदेवका मन्त्रपाठपूर्वक तर्पण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर पूर्वाभिमुख बैठकर, मौन हो, तीन प्राणायाम—पूरक, कुम्भक और रेचक करे तथा यथाशक्ति गायत्रीका अप करके परब्रह्मका ध्यान करे। शरीरकी स्थिति (रक्षा)-के लिये प्रतिदिन भिक्षाटन करे। यतिको चाहिये कि संन्यासके समय ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षाके लिये भ्रमण करे ॥ ८-१२ ॥

स्यादर्थी यावतात्रेन तावद्भिक्षं समाचरेत् ।
ततो निवृत्त्य तत्पात्रमभ्युक्ष्याचम्य संयमी ॥ १३

सूर्यादिदेवतेभ्यो हि दत्त्वात्रं प्रोक्ष्य वारिणा ।
भुञ्जीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्वतो यतिः ॥ १४

वटकाश्वत्थपात्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः ।
कोविदारकरञ्जेषु न भुञ्जीत कदाचन ॥ १५

भुक्त्वाऽऽचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत् भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैस्तु दिनशेषं नयेद्यतिः ॥ १६

पलाशाः सर्वं उच्यन्ते यतः कांस्यभोजिनः ।
कांस्यस्येव तु यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्यभोजी यतिः सर्वं प्राप्नुयात्किल्बिषं पुनः ।
भुक्तपात्रे यतिर्नित्यं भक्षयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ।
कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नवेदेवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यापन्नाराधनं हरिम् ।
तत्पदं समवाप्नोति यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ १७

जितने अन्नको उसे उस समय आवश्यकता हो, उतनी ही भिक्षा माँगे। फिर लौटकर उस भिक्षापात्रपर जलके छीटि देकर संयमी यति स्वयं भी आचमन करे। इसके बाद उस अन्नपर भी जलके छीटि देकर, उसे सूर्य आदि देवताओंको निवेदन कर, पत्तेके दोने या पत्तलमें रखकर, वह संन्यासी पुरुष मौनभावसे भोजन करे। वट, पीपल, जलकुम्भी और तिन्दुकके पत्तोंपर तथा कोविदार और करंजके पत्तोंपर भी कभी भोजन न करे। भोजन समाप्त करके मुँह-हाथ धो, आचमन करके, प्राणवायुको रोक, सूर्यदेवको प्रणाम करे। नैतिक नियमोंके बाद जितना दिन शेष रहे, उसे संन्यासी पुरुष जप, ध्यान और इतिहास-पाठ आदिके द्वारा व्यतीत करे। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। यदि संन्यासी काँसेका पात्र रखे तो वह गृहस्थके ही समान है; क्योंकि गृहस्थका भी तो वैसा ही पात्र होता है। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाला यति समस्त पापोंका भागी होता है। यति जिस काष्ठ या मिट्टी आदिके पात्रमें एक बार भोजन कर चुका है, उसे भोजन पुनः उसमें मन्त्रपाठपूर्वक भोजन कर सकता है; उसका वह पात्र यज्ञ-पात्रोंके समान कभी दूषित नहीं होता। इसके बाद यथासमय संध्याकार्तिक नियमोंका पालन करके देवमन्दिर आदिमें रात्रि व्यतीत करे और अपने हृदय-कमलके आसनपर भगवान् नारायणका ध्यान करे। यों करनेसे वह यति उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़ता ॥ १३—१७ ॥

इति श्रीहरसिंहपुराणे योगिपर्वो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीहरसिंहपुराणमें 'योगिपर्वका चतुर्विंशोऽध्याय' नामक सप्तविंशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

योगसार

इतिहास

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ।
यतः स्वर्गापवर्गा तु प्राप्नुयुस्ते द्विजादयः ॥ १

योगशास्त्रस्य वक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ।
यस्याभ्यासबलाद्यान्ति मोक्षं चेह मुमुक्षवः ॥ २ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—मुनियो! मैंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके धर्मका स्वरूप बतलाया, जिसके पालनसे उपपुंक्त ब्राह्मणादि वर्णके लोग स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। अब मैं संक्षेपमें योगशास्त्रका उत्तम सारांश वर्णन करूँगा, जिसके अभ्याससे मुमुक्षु पुरुष इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १—२ ॥

योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च ।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियान्तरे ॥ ३

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
धारणाभिवर्धनीकृत्य पुनर्दुर्धर्षणं मनः ॥ ४

एकं कारणमानन्दबोधं च तमनामयम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५

आत्मानमरविन्दस्थं तमचामीकरप्रभम् ।
रहस्येकान्तमासीत् ध्यायेदात्महृदि स्थितम् ॥ ६

यः सर्वप्राणचित्तज्ञो यः सर्वेषां हृदि स्थितः ।
यश्च सर्वजनैर्ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥ ७

आत्मलाभसुखं यावत्तावद्विज्ञानमुदाहृतम् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तत्तदूर्ध्वं समाचरेत् ॥ ८

यथाश्वा रथहीनाश्च यथाह्याक्षैर्विना यथा ।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः ॥ ९

यथात्रं मधुसंयुक्तं मधु चात्रेन संयुतम् ।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत् ॥ १०

द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः ।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ११

विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ।
देहद्वन्द्वं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ॥ १२

न देवयानमार्गेण यावत्प्राप्तं परं पदम् ।
न तावदेहलिङ्गस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥ १३

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागज्ञः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १४

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वैवमृषयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदितास्ते स्वमात्मनः ॥ १५

योगाभ्यासपरायण पुरुषके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कर्तव्य कर्मसे अवकाश मिलनेपर प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर भ्यान करना चाहिये। पहले प्राणायामके द्वारा वाणीको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणाके द्वारा दुर्धर्म मनको वशमें करे। तत्पश्चात् जो सबके एकमात्र कारण, ज्ञानानन्दस्वरूप, अनामय और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन जगदाधार अच्युतका ध्यान करे। एकान्त स्थानमें अकेले बैठकर अपने हृदयमें कमलके आसनपर विराजमान, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अपने आत्मस्वरूप भगवान्का चिन्तन करे। जो सबके प्राणों और चित्तकी पेशाओंको जानता है, सभीके हृदयमें विराजमान है तथा समस्त प्राणियोंद्वारा जाननेयोग्य है—वह परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसे भावना करे। जबतक अक्षरपराशक्तकारणत्व सुखकी प्रतीति हो, तभीतक ध्यान करना आवश्यक बताया गया है। उसके उपरान्त श्रौत और स्मार्त कर्मोंका आचरण सुग्राह्यरूपसे करे ॥ ३-८ ॥

जैसे रथके बिना घोड़े और घोड़ोंके बिना रथ उपयोगी नहीं हो सकते, उसी प्रकार तपस्वीके तप और विद्याकी सिद्धि भी एक-दूसरेके आश्रित हैं। जिस प्रकार अन्न मधु (धोनी आदि)-से युक्त होनेपर घोंटा होता है और मधु भी अन्नेके साथ ही सुस्वादु प्रतीत होता है, उसी प्रकार तप और विद्या—दोनों साथ रहकर ही भक्तरोगके महान् औषध होते हैं। जिस प्रकार पक्षी दोनों पंखोंसे ही उड़ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनोंसे ही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है। विद्या और तपसे सम्पन्न योगतत्पर ब्राह्मण दैहिक द्वन्द्वोंको शीघ्र ही त्यागकर भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। जबतक देवयानमार्गसे जाकर जीवको परमपदकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक लिङ्गशरीरका विनाश कभी हो नहीं सकता। द्विजवरों! इस प्रकार वर्णों और आश्रमोंके विभागपूर्वक मैंने उन आश्रमोंके सम्पूर्ण सनातन धर्मका संक्षेपसे वर्णन कर दिया ॥ १-१४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार हारीत मुनिके मुखसे स्वर्ग और मोक्षरूप फलको देनेवाले धर्मका वर्णन सुनकर ये त्रिपिण्ड धन मुनीश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने स्थानको चले गये।

धर्मशास्त्रमिदं यस्तु हारीतमुखनिस्सृतम् ।
श्रुत्वा च कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १६

मुखजस्य तु यत्कर्म कर्म यद्बाहुजस्य तु ।
ऊरुजस्य तु यत्कर्म पादजस्य तथा नृप ॥ १७

स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वाणा विप्राद्या यान्ति सद्गतिम् ।
अन्यथा वर्तमानो हि सद्यः पतति यात्यधः ॥ १८

यस्य येऽभिहिता धर्माः स तु तैस्तैः प्रतिष्ठितः ।
तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत नित्यमेवमनापदि ॥ १९

चतुर्वर्णाश्च राजेन्द्र चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २०

स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रतुष्यति ।
वर्णधर्मानुसारेण नरसिंहं तथाचंयेत् ॥ २१

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगाद्
ध्यायेत् परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।
सत्यात्मकं चित्सुखरूपमाद्यं
विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२

जो भी हारीत मुनिके मुखसे निर्गत इस धर्मशास्त्रका
व्रजन करके इसके अनुसार आचरण करता है वह
परमगतिको प्राप्त होता है। नरेश्वर! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
और शूद्रके जो-जो कर्म बताये गये हैं, उन-उन अपने-
अपने वर्णोचित कर्मोंका पालन करनेवाले ब्राह्मण आदि
सद्गतिको प्राप्त होते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेवाला
पुरुष तत्काल नीचे गिर जाता है। जिसके लिये जो धर्म
बताये गये हैं, वह पुरुष उन्हीं धर्मोंसे प्रतिष्ठित होता है।
इसलिये आपत्तिकालके अतिरिक्त सदा ही अपने धर्मका
पालन करना चाहिये। राजेन्द्र! चार ही वर्ण और चार
ही आश्रम हैं। जो लोग अपने वर्ण एवं आश्रमके उचित
धर्मका पूर्णतया पालन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त
होते हैं। भगवान् नरसिंह जिस प्रकार स्वधर्मका आचरण
करनेसे मनुष्यपर प्रसन्न होते हैं, वैसे दूसरे प्रकारसे नहीं;
इसलिये वर्णधर्मके अनुसार भगवान् नरसिंहका पूजन
करना चाहिये। जो पुरुष स्वकर्ममें तत्पर रहकर उत्पन्न
हुए वैराग्यके बलसे योगाभ्यासपूर्वक सदा सच्चिदानन्दरूप
अर्थात् ब्रह्मका ध्यान करता है, वह देह त्यागकर साक्षात्
श्रीविष्णुपदको प्राप्त होता है ॥ १५—२२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे योगध्यानेऽधिकशतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'योगध्यान' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय

श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

श्रीमहाकण्ठेय उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तव ।
भूयः कथय राजेन्द्र शुश्रूषा तव का नृप ॥ १

सहस्रनामक उवाच

स्नात्वा वेश्मनि देवेशमर्चयेदच्युतं त्विति ।
त्वयोक्तं मम विप्रेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत् ॥ २
धैर्मन्त्रैरर्च्यते विष्णुर्येषु स्थानेषु वै मुने ।
तानि स्थानानि तान्मन्त्रांस्त्वमाचक्ष्व महामुने ॥ ३

श्रीमहाकण्ठेयजी कहते हैं—राजन्! मैंने तुम्हें वर्णों
और आश्रमोंका स्वरूप बताया। राजेन्द्र! अब कहो,
तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥

सहस्रनामक बोले—विप्रेन्द्र! आपने बताया कि
प्रतिदिन स्नान करके अपने घरमें भगवान् अच्युतका
पूजन करना चाहिये। अतः वह पूजन किस प्रकार होना
चाहिये? महामुने! जिन मन्त्रोंद्वारा और जिन आधारोंमें
भगवान् विष्णुकी पूजा होती है, वे आधार और वे मन्त्र
आप मुझे बताइये ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ ४

अग्री क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥ ५

अतोऽग्री हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च।
एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ६

तस्य सर्वमयत्वाच्च स्थण्डिले प्रतिमासु च।
आगुष्टभस्य सूक्तस्य विष्णुस्तस्य च देवता ॥ ७

पुरुषो यो जगद्बीजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः।
दद्यात्पुरुषसूक्तं यः पुष्पाण्यप एव च ॥ ८

अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेन वै सचराचरम्।
आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमुवा तु पुरुषोत्तमम् ॥ ९

द्वितीययाऽऽसनं दद्यात्पाद्यं दद्यान्तृतीयया।
चतुर्थ्यार्घ्यं प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनीयकम् ॥ १०

षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च।
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ॥ ११

दशम्या पुष्पदानं स्यादेकादश्या च धूपकम्।
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्यार्चनं तथा ॥ १२

चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम्।
षोडश्याद्वासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत् ॥ १३

स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम्।
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्चयन् ॥ १४

संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति।
हविषाग्री जले पुष्यर्घ्यानेन हृदये हरिम् ॥ १५

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा— अच्छा, मैं अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके पूजनकी विधि बता रहा हूँ, जिसके अनुसार पूजन करके सभी मुनिगण परम निर्वाण (मोक्ष) पदको प्राप्त हुए हैं। अग्रिमें हवन करनेवालेके लिये भगवान्का वास अग्रिमें है। ज्ञानियों और योगियोंके लिये अपने-अपने हृदयमें ही भगवान्की स्थिति है तथा जो थोड़ी बुद्धिवाले हैं, उनके लिये प्रतिमार्थ भगवान्का न्यास है। इसलिये अग्रि, सूर्य, हृदय, स्थण्डिल (वेदी) और प्रतिमा—इन सभी आधारोंमें भगवान्का विधिपूर्वक पूजन मुनिर्षोंद्वारा बताया गया है। भगवान् सर्वमय हैं, अतः स्थण्डिल और प्रतिमाओंमें भी भगवत्पूजन उत्तम है ॥ ४-६ ॥

अब पूजनका मन्त्र बताते हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें जो पुरुषसूक्त है, उसका उच्चारण करते हुए भगवान्का पूजन करना चाहिये। पुरुषसूक्तका अनुष्टुप् छन्द है, जगत्के कारणभूत परम पुरुष भगवान् विष्णु देवता हैं, नारायण ऋषि हैं और भगवत्पूजनमें उसका विनियोग है। जो पुरुषसूक्तसे भगवान्को फूल और जल अर्पण करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् पूजित हो जाता है। पुरुषसूक्तकी पहली ऋचासे भगवान् पुरुषोत्तमका आवाहन करना चाहिये। दूसरी ऋचासे आसन और तीसरीसे पाद्य अर्पण करे। चौथी ऋचासे अर्घ्य और पाँचवींसे आचमनीय निवेदित करे। छठी ऋचासे स्नान कराये और सातवींसे वस्त्र अर्पण करे। आठवींसे यज्ञोपवीत और नवमी ऋचासे गन्ध निवेदन करे। दसवींसे फूल चढ़ाये और ग्यारहवीं ऋचासे धूप दे। बारहवींसे दीप और तेरहवीं ऋचासे नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजन-सामग्री निवेदित करे। चौदहवीं ऋचासे स्तुति करके पंद्रहवींसे प्रदक्षिणा करे। अन्तमें सोलहवीं ऋचासे विसर्जन करे। पूजनके बाद शेष कर्म पहले बताये अनुसार ही पूर्ण करे। भगवान्के लिये स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि निवेदन करे। इस प्रकार देवदेव परमात्माका पूजन करनेवाला पुरुष छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसी क्रमसे यदि एक वर्षतक पूजन करे तो यह भक्त सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है ॥ ७-१४ ॥

विद्वान् पुरुष अग्निमें आहुतिके द्वारा, जलमें पुष्पके

अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले ।
आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यात्वा विष्णुमुपासते ॥ १६

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्यवधुर्धृतशङ्खचक्रः ॥ १७

एतत्पठन् केवलमेव सूक्तं
दिने दिने भावितविष्णुबुद्धिः ।
स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं
पदं प्रयात्यध्युततुष्टिकन्नरः ॥ १८

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यत्नः ॥ १९

इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-
रर्चाविधिस्तेऽद्य यथा नृपेन्द्र ।
अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां
प्राप्तुं तदिष्टे यदि वैष्णवं पदम् ॥ २०

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोरर्चाविधिर्नमः द्विःशतकोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि' नामक आसन्नार्थ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

तिरसठवाँ अध्याय

अष्टाक्षर-मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्वीयोनिसे उद्धार

सहस्रनाम उवाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः ।
विष्णोर्देवातिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना ॥ १
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः
वेदत्रैरेव नान्यस्तु तस्मात्सर्वहितं वद ॥ २

द्वारा, हृदयमें ध्यानद्वारा और सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। वे भक्तजन सूर्यमण्डलमें दिव्य, अनामय, देवदेव शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं। जो केयूर, मकराकृतिकुण्डल, किरीट, हार आदि आभूषणोंसे भूषित हो, हाथमें शङ्ख-चक्र धारण किये कमलासनपर विराजमान हैं तथा जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान दंढीयमान है, सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान उन भगवान् नारायणका सदा ध्यान करे। जो प्रतिदिन बुद्धिमें भगवान् विष्णुकी भावना करके केवल इस 'ध्येयः सदा-----' इत्यादि सूक्तका पाठमात्र ही कर लेता है, वह भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको पहुँच जाता है। बिना मूल्यके ही मिलनेवाले पूजनोपचार—पत्र, पुष्प, फल और जलके सदा रहते हुए तथा एक मात्र भक्तिसे ही सुलभ होनेवाले भगवान् पुराण-पुरुषके होते हुए मनुष्यद्वारा मुक्तिके लिये प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता? अर्थात् उक्त सुलभ उपचारोंसे भगवान्का पूजन करके लोग मोक्ष पानेके लिये क्या क्यों नहीं करते? ॥ १५-१९ ॥

नृपवर! इस प्रकार यह परमपुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि आज मैंने तुम्हें बतायी है। यदि तुम्हें वैष्णव-पद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो इस विधिके द्वारा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करो ॥ २० ॥

सहस्रनाम बोले—ब्रह्मन्! इस समय आपने देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके पूजनकी यह उत्तम वैदिक विधि बतायी, वह बिल्कुल ठीक है; परंतु ब्रह्मन्! इस विधिसे तो केवल वेदत्र पुरुष ही मधुसूदनकी पूजा कर सकते हैं, दूसरे लोग नहीं; इसलिये आप ऐसी कोई विधि बताइये, जो सबके लिये उपयोगी हो ॥ १-२ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः ॥ ३

राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः ।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकारः शुभः ॥ ४

ॐ नमो नारायणाय ।

गन्धपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत् ।
अनेनाभ्यर्चितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥ ५

किं तस्य बहुभिर्घन्तैः किं तस्य बहुभिर्वस्त्रैः ।
ॐ नमो नारायणायैति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ६

इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७

सर्वतीर्थफलं ह्येतत् सर्वतीर्थवरं नृप ।
हरेरर्चनमव्ययं सर्वयज्ञफलं नृप ॥ ८

तस्मात्कुरु नृपश्रेष्ठ प्रतिमादिषु चार्चनम् ।
दानानि विप्रमुखेभ्यः प्रयच्छ विधिना नृप ।

एवं कृते नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥ ९

पुरा पुरंदरो राजन् स्वीत्वं प्राप्नोऽप्यधर्मतः ।
तृणविन्दुमुनेः शापान्मुक्तो ह्यष्टाक्षराजपात् ॥ १०

सहस्राक्षीक उवाच

एतत्कथय भूदेव देवेन्द्रस्याधमोचनम् ।
कौऽप्यधर्मः कथं स्वीत्वं प्राप्नो मे वद कारणम् ॥ ११

श्रीमार्कण्डेय उवाच

राजेन्द्र महदाख्यानं शृणु कौतूहलान्वितम् ।
विष्णुभक्तिप्रजननं शृण्वतां पठतामिदम् ॥ १२

पुरा पुरंदरस्यैव देवराज्यं प्रकुर्वतः ।
वैराग्यस्यापि जननं सम्भूतं बाह्यवस्तुषु ॥ १३

इन्द्रस्तदाभूद्विषमस्वभावो
राज्येषु भोगेष्वपि सोऽप्यचिन्तयत् ।

ध्रुवं विरागीकृतमानसानां
स्वर्गस्य राज्यं न च किंचिदेव ॥ १४

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—मनुष्यको चाहिये कि वह अष्टाक्षर मन्त्रसे निरामय देवेश्वर भगवान् नरसिंहका गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा प्रतिदिन पूजन करे। राजन्! यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पापोंको हर देनेवाला, समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला, सब प्रकारकी शान्ति प्रदान करनेवाला एवं परम शुभ है। मन्त्र यों है—‘ॐ नमो नारायणाय’। इसी मन्त्रसे गन्ध आदि समस्त सामग्रियोंको अर्पित करे। इस मन्त्रसे पूजा करनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके लिये अन्य बहुत-से मन्त्रों और व्रतोंकी क्या आवश्यकता है। केवल ‘ॐ नमो नारायणाय’—यह मन्त्र ही समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो छानादिसे पवित्र होकर एकाग्रचित्तसे इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है ॥ ३—७ ॥

नरेश्वर! ज्ञानभावसे भगवान् विष्णुका पूजन करना ही सब तीर्थों और यज्ञोंका फल है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंसे बढ़कर पवित्र है। अतः नरेश्वर! तुम प्रतिमा आदिमें विधिपूर्वक भगवान्का पूजन करो और श्रेष्ठ बाह्यपदोंको दान दो। नृपश्रेष्ठ! यों करनेसे भक्त पुरुष उस तेजोमय वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं, जिसको मुमुक्षुलोग सदा अभिलाषा किया करते हैं। राजन्! पूर्वकालमें इन्द्र धर्मके विपरीत आचरण करके तृणविन्दु मुनिके शापसे स्त्री-धोनि को प्राप्त हो गये थे; परन्तु इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे वे पुनः उस धोनिसे मुक्त हो गये ॥ ८—१० ॥

सहस्राक्षीक बोले—भूमिदेव! देशराज इन्द्रको जो पाप एवं शापसे छुटकारा मिला, उस प्रसङ्गका वर्णन कीजिये। उन्होंने जौन-सा अधर्म किया था और किस कारण स्त्रीधोनि को प्राप्त हुए—वह सब भी बताइये ॥ ११ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! सुनो, यह उपाख्यान बहुत बड़ा तथा कौतूहलसे भरा हुआ है। जो लोग इसे सुनते और पढ़ते हैं उनके हृदयमें यह आख्यान विष्णुभक्ति उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

पूर्वकालकी बात है, एक समय देवलोकका राज्य भोगते हुए इन्द्रके लिये उनका यह राज्य ही बाह्य वस्तुओंमें वैराग्यका कारण बन गया। उस समय इन्द्रका स्वभाव राज्य-कार्यों और भोगोंके प्रति विषम (वैराग्यपूर्ण) हो गया। वे सोचने लगे—‘यह निश्चित है कि विरक्त

राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो
भोगस्य चान्ते न च किञ्चिदस्ति ।
विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्रं
मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥ १५
सदैव भोगाय तपःप्रवृत्ति-
भोगावसाने हि तपो विनष्टम् ।
मैत्र्यादिसंयोगपराङ्मुखाणां
विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥ १६
विमृश्य चैतत् स सुराधिनाथो
विमानमारुह्य सकिङ्किणीकम् ।
नूनं हराराधनकारणेन
कैलासमभ्येति विमुक्तिकामः ॥ १७
स एकदा मानसमागतः सन्
संवीक्ष्य तां यक्षपतेश्च कान्ताम् ।
समर्चयन्तीं गिरिजां प्रियुषम्
ध्वजामिवानङ्गमहारथस्य ॥ १८
प्रधानजाम्बूनदशुद्धवर्णां
कर्णान्तसंलग्नमनोज्ञनेत्राम् ।
सुसूक्ष्मवस्त्रान्तरदृश्यगात्रां
नीहारमध्यादिव चन्द्रलेखाम् ॥ १९
तां वीक्ष्य वीक्षणसहस्रभरेण कामं
कामाङ्गमोहितमतिर्न ययौ तदानीम् ।
दूराध्वगं स्वगृहमेत्य सुसंघिताय-
स्तस्थी तदा सुरपतिर्विषयाभिलाषी ॥ २०
पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म
ततो हि सर्वाङ्गशरीररूपम् ।
ततो धनं दुर्लभमेव पश्चा-
द्दनाधिपत्यं सुकृतेन लभ्यम् ॥ २१
स्वर्गाधिपत्यं च मया प्रलब्धं
तथापि भोगाय न चास्ति भाग्यम् ।
यः स्वं परित्यज्य विमुक्तिकाम-
स्तिष्ठामि मे दुर्मतिरस्ति चित्ते ॥ २२

हृदयवाले पुरुषोंकी दृष्टिमें स्वर्गका राज्य कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। राज्यका सार है—विषयोंका भोग तथा भोगके अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता। यही सोचकर मुनिगण सदा ही मोक्षाधिकारके विषयमें ही विचार करते हैं। लोगोंकी सदा भोगके लिये ही तपमें प्रवृत्ति हुआ करती है और भोगके अन्तमें तप नष्ट हो जाता है। परंतु जो लोग मैत्री आदिके द्वारा विषय-सम्पर्कसे विमुक्त हो गये हैं, उन मोक्षभागी पुरुषोंको न तपकी आवश्यकता होती है न योगकी। इन सब बातोंका विचार करके देवराज इन्द्र भुवर्चस्पृष्टकाओंकी ध्वनिसे युक्त विमानपर आरुढ़ हो भगवान् शंकरकी आराधनाके लिये कैलासपर्वतपर चले आये। उस समय उनके मनमें एकमात्र मोक्षकी कामना रह गयी थी ॥ १३—१७ ॥

कैलासपर रहते समय इन्द्र एक दिन भूमते हुए मानससरोवरके तटपर आये। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीके सुगलवरभारविन्दोंका पूजन करती हुई पक्षराज कुबेरकी प्राणवत्प्रभा चित्रसेनाको देखा। जो कामदेवके महा-रथकी ध्वजा सी जान पड़ती थी। उत्तम 'जाम्बूनद' नामक सुवर्णके समान उसके अङ्गोंकी दिव्य कान्ति थी। आँखें बड़ी-बड़ी और मनोहर थीं, जो वानके पासतक पहुँच गयी थीं। महीन साड़ीके भीतरसे उसके मनोहर अङ्ग इस प्रकार झलक रहे थे, मानों कुहासेके भीतरसे चन्द्रलेखा दृष्टिगोचर हो रही हो। अपने हजार नेत्रोंसे उस देवीको इच्छानुसार निहारते ही इन्द्रका हृदय कामसे मोहित हो गया। उस समय वे दूरके रास्तेपर स्थित अपने आश्रमपर नहीं गये और सम्पूर्ण मनोरथोंकी मनमें लिये देवराज इन्द्र विषयाभिलाषी हो खड़े हो गये। वे सोचने लगे—'पहले तो उत्तम कुलमें जन्म पा जाना ही बहुत बड़ी बात है, उसके बाद सर्वाङ्ग-सौन्दर्य और उसपर भी धन तो सर्वथा ही दुर्लभ है। इन सबके बाद धनाधिप (कुबेर) होना तो पुण्यसे ही सम्भव है। मैंने इन सबसे बड़े स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त किया है, फिर भी मेरे भाग्यमें भोग भोगना नहीं बढ़ा है। मेरे चित्तमें ऐसी दुर्बुद्धि आ गयी है कि मैं स्वर्गका सुखभोग छोड़कर यहाँ मुक्तिकी इच्छासे आ पड़ा हूँ।

मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो
मोक्षेऽपि किं कारणमस्ति राज्ये ।
क्षेत्रं सुपङ्कं परिहृत्य द्वारे
किं नाम चारण्यकृषिं करोति ॥ २३
संसारदुःखोपहता नरा ये
कर्तुं समर्था न च किंचिदेव ।
अकर्मिणो भाग्यविवर्जिताश्च
वाञ्छन्ति ते मोक्षपथं विमूढाः ॥ २४
एतद्विमुश्य बहुधा मतिमान् प्रवीरो
रूपेण मोहितमना धनदाङ्गनाथाः ।
सर्वाधिराकुलमतिः परिमुक्तधैर्यः
सस्मार मारममराधिपचक्रवर्ती ॥ २५
समागतोऽसौ परिमन्दमन्दं
कामोऽतिकामाकुलचित्तवृत्तिः ।
पुरा महेशेन कृताङ्गनाशो
धैर्याश्रयं गच्छति को विशङ्कः ॥ २६
आदिश्यतां नाथ यदस्ति कार्यं
को नाम ते सम्प्रति शत्रुभूतः ।
शीघ्रं समादेशाय मा विलम्बं
तस्यापदं सम्प्रति भो दिशामि ॥ २७
श्रुत्वा तदा तस्य वचोऽभिरामं
मनोगतं तत्परमं तुतोष ।
निष्पन्नमर्थं सहसैव भत्वा
जगाद वाक्यं स विहस्य वीरः ॥ २८
रुद्रोऽपि येनार्धशरीरमात्र-
श्रक्लेऽप्यनङ्गत्वमुपागतेन ।
सोढुं समर्थोऽद्य परोऽपि लोके
को नाम ते मार शराभिघातम् ॥ २९
एकाग्रचित्ता गिरिजार्चनेऽपि
या मोहयत्येव ममात्र चित्तम् ।
एतामनङ्गायतलोचनाख्यां
मदङ्गसङ्गैकरसां विधेहि ॥ ३०
स एवमुक्तः सुरवाजधेन
स्वकार्यभावाधिकगौरवेण ।
संथाय वाणं कुसुमायुधोऽपि
सस्मार मारः परिमोहनं सुधीः ॥ ३१

मोक्ष-सुख तो इस राज्य-भोगद्वारा मोह लिया जा सकता है, परंतु क्या मोक्ष भी राज्य-प्राप्तिका कारण हो सकता है? भला, अपने द्वारपर पके अन्नसे युक्त खेतको छोड़कर कोई जंगलमें खेती करने क्यों जायगा? जो सांसारिक दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं और कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखते, वे ही अकर्मण्य, भाग्यहीन एवं मूढ़जन मोक्षमार्गको इच्छा करते हैं ॥ २८—२४ ॥

इन सब बातोंपर धारदार विचार करके देवेश्वरोंके चक्रवर्ती सम्राट् बुद्धिमान् वीरवर इन्द्र कुबेरपत्नी चित्रसेनाके रूपपर मोहित हो गये। समस्त मानसिक वेदनाओंसे व्याकुल हो, धैर्य छोड़कर वे कामदेवका स्मरण करने लगे। इन्द्रके स्मरण करनेपर अत्यन्त कामनाओंमें व्याप्त चित्तवृत्तिवाला कामदेव बहुत धीरे-धीरे डरता हुआ वहाँ आया; क्योंकि वहाँ पूर्वकालमें शंकरजीने उसके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था। क्यों न हो, प्राणसंकटके स्थानपर भीरतापूर्वक और निर्भय होकर कौन जा सकता है? कामदेवने आकर कहा—'नाथ! मुझसे जो कार्य लेना हो, आज्ञा कीजिये; बताइये तो सही, इस समय कौन आपका शत्रु बना हुआ है? शीघ्र बताइये, विलम्ब न कीजिये; मैं अभी उसे आपत्तिमें डालता हूँ' ॥ २५—२७ ॥

उस समय कामदेवके उस मनोभिराम वचनको सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके इन्द्र बहुत संतुष्ट हुए। अपने मनोरथको सहसा सिद्ध होते जान वीरवर इन्द्रने हैसकर कहा—'कामदेव! अनङ्ग बन जानेपर भी तुमने जब शंकरजीको भी आधे शरीरका बना दिया, तब संसारमें दूसरा कौन तुम्हारे उस शरघातको सह सकता है? अनङ्ग! जो गिरिजापूजनमें एकाग्रचित्त होनेपर भी मेरे मनको निक्षय ही मोहे लेती है, उस विशाल नयनोंवाली सुन्दरीको तुम एकमात्र मेरे अङ्ग-सङ्गकी सरस भावनासे युक्त कर दो' ॥ २८—३० ॥

अपने कार्यको अधिक महत्त्व देनेवाले सुरवाज इन्द्रके यों कहनेपर उत्तम बुद्धिवाले कामदेवने भी अपने पुष्पमय धनुषपर बाण रखकर मोहन-मन्त्रका स्मरण किया।

सम्प्रीहिता पुष्पशरेण बाला
 कामेन कामं मदविह्वलाङ्गी ।
 विहाय पूजां हसते सुरेशं
 कः कामकोदण्डरथं सहेत ॥ ३२
 विलोलनेत्रे अयि कासि बाले
 सुराधिपो वाक्यमिदं जगाद ।
 सम्प्रीहयन्तीव मनांसि पुंसां
 कस्येह कान्ता वद पुण्यभाजः ॥ ३३
 उक्तापि बाला मदविह्वलाङ्गी
 रोमाञ्चसंस्वेदसकम्पगात्रा ।
 कृताकुला कामशिलीमुखेन
 सगाद्रदं वाक्यमुवाच मन्दम् ॥ ३४
 कान्ता धनेशस्य च यक्षकन्या
 प्राप्ता च गौरीचरणार्चनाय ।
 प्रबृद्धि कार्यं च तवास्ति नाद्य
 कस्त्वं वदेस्तिष्ठसि कामरूपः ॥ ३५
 इन्द्र उवाच
 सा त्वं समागच्छ भजस्व मां चिरा-
 न्मदङ्गसङ्गोत्सुकतां व्रजाशु ।
 त्वया विना जीवितमप्यनल्पं
 स्वर्गस्य रान्यं मम निष्फलं स्यात् ॥ ३६
 उक्ता च सैवं मधुरं च तेन
 कंदर्पसंतापितचारुदेहा ।
 विमानमारुह्य चलत्पताकं
 सुरेशकण्ठग्रहणं चकार ॥ ३७
 जगाम शीघ्रं स हि नाकनाद्यः
 साकं तथा मन्दरकन्दरासु ।
 अदृष्टदेवासुरसंचरासु
 विचित्ररत्नाङ्कुरभासुरासु ॥ ३८
 रमे तथा साकमुदारवीर्य-
 क्षिप्रं सुरैश्चर्यगतादरोऽपि ।
 स्वयं च यस्या लघुपुष्पशय्यां
 चकार चातुर्पनिधिः सकामः ॥ ३९
 जातः कृतार्थोऽमरवृन्दनाथः
 सकामभोगेषु सदा विदग्धः ।
 मोक्षाधिकं स्नेहरसातिमृष्टं
 पराङ्गनालिङ्गनसङ्गसीख्यम् ॥ ४०

तब कामदेवद्वारा पुष्पबाणसे मोहित को हुई वह बाला
 अपने सम्पूर्ण अङ्गमें मदके उद्रेकसे विह्वल हो गयी
 और पूजा छोड़ इन्द्रकी ओर देखकर मुस्काने लगी ।
 भला, कामदेवके धनुषकी टंकार कौन सह सकता
 है ॥ ३१-३२ ॥

इन्द्र उसको अपनी ओर निहारते देखकर यह वचन
 बोले—'बहल नेत्रोंवाली बाले! तुम कौन हो, जो पुरुषोंके
 मनको इस प्रकार मोह लेती हो? बताओ तो, तुम किस
 पुण्यात्माकी पत्नी हो?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उसके
 अङ्ग मदसे विह्वल हो उठे। सरीमें रोमाञ्च, स्वेद और
 कम्प होने लगे। वह कामबाणसे व्याकुल हो गद्गद-
 कण्ठसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोली—'नाथ! मैं धनाधिप
 कुबेरकी पत्नी एक यक्षकन्या हूँ। पार्वतीजीके चरणोंकी
 पूजा करनेके लिये यहाँ आयी थी। आप अपना कार्य
 बताइये; आप कौन हैं? जो साक्षात् कामदेवके समान रूप
 धारण किये यहाँ खड़े हैं?' ॥ ३३-३५ ॥

इन्द्र बोले—प्रिये! मैं स्वर्गका राजा इन्द्र हूँ। तुम मेरे
 पास आओ और मुझे अपनाओ तथा चिरकालतक मेरे
 अङ्ग-सङ्गके लिये शीघ्र ही उत्सुकता धारण करो। देखो,
 तुम्हारे बिना मेरा यह जीवन और स्वर्गका विशाल राज्य
 भी व्यर्थ हो जायगा ॥ ३६ ॥

इन्द्रने मधुर वाणीमें जब इस प्रकार कहा, तब उसका
 सुन्दर शरीर कामवेदनासे पीड़ित होने लगा और वह
 फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित विमानपर आरुढ़ हो
 देवराजके कण्ठसे लग गयी। तब स्वर्गिक राजा इन्द्र शीघ्र
 ही उसके साथ मन्दराचलकी उन कन्दराओंमें चले गये,
 जहाँका मार्ग देवता और असुर—दोनोंकी ही दृष्टिमें नहीं
 आया था और जो विचित्र रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित थी।
 आश्चर्य है कि देवताओंके राज्यके प्रति आदर न रखते हुए
 भी वे उदारपराक्रमी इन्द्र उस सुन्दरी यक्ष-बालाके साथ
 वहाँ रमण करने लगे तथा कामके वशीभूत हो परम चतुर
 इन्द्रने अपने हाथों विप्रसेनाके लिये शीघ्रतापूर्वक छोटी-
 सी पुष्पहाव्या तैयार की। कामोपभोगमें परम चतुर देवराज
 इन्द्र विप्रसेनाके समगमसे कृतार्थताका अनुभव करने
 लगे। स्नेहरससे अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाला वह परस्त्रीके
 आलिङ्गन और समागमका सुख उन्हें मोक्षसे भी बढ़कर
 जान पड़ा ॥ ३७-४० ॥

अथागता यक्षपतेः समीपं
 नार्योऽनुवर्त्यैव च चित्रसेनाम् ।
 ससम्भ्रमाः सम्भ्रमखिन्नगात्राः
 सगद्गदं प्रोचुरसाहसज्ञाः ॥ ४१
 नूनं समाकर्णय यक्षनाथ
 विमानमारोप्य जगाम कश्चित् ।
 संवीक्षमाणः ककुभोऽपि कान्तां
 विगृह्य वेगादिह सोऽपि तस्करः ॥ ४२
 वचो निशम्याद्य धनाधिनाथो
 विषोपमं जातमपीनिभाननः ।
 जगाद भूयो न च किञ्चिदेव
 बभूव वै वृक्ष इवाग्निदग्धः ॥ ४३
 विज्ञापितार्थो वरकन्यकाभि-
 र्यक्षित्रसेनासहचारिणीभिः ।
 मोहापनोदाय मतिं दधानः
 स कण्ठकुब्जोऽपि समाजगाम ॥ ४४
 श्रुत्वाऽऽगतं वीक्ष्य स राजराज
 उन्मीलिताक्षो वचनं जगाद ।
 विनिःश्वसन् गदसकम्पगात्रः
 स्वस्थं मनोऽप्याशु विधाय दीनः ॥ ४५
 तद्दीचनं यद्युवतीविनोदो
 धनं तु चैतत्स्वजनोपयोगि ।
 तज्जीवितं यत्क्रियते सुधर्म-
 स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम् ॥ ४६
 धिह्मे धनं जीवितमत्यन्तं
 रान्यं बृहत्सम्प्रति गुह्यकानाम् ।
 विशामि चाग्निं न च वेद कश्चित्
 पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम् ॥ ४७
 पार्श्वे स्थितस्यापि च जीवतो मे
 गता तद्भागं गिरिजार्चनाय ।
 हता च केनापि वयं न विप्रो
 धुवं न तस्यास्ति भयं च मृत्योः ॥ ४८
 जगाद वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
 मोहापनोदाय विप्रोः स मन्त्री ।
 आकर्ण्यतां नाथ न चास्ति योग्यः
 कान्तावियोगे निजदेहघातः ॥ ४९

इधर, इन्द्र जब चित्रसेनाको लेकर मन्दराचलपर चले
 आये, तब उसकी सङ्घिनी स्त्रियाँ उसे साथ लिये बिना
 ही यक्षराज कुबेरके समीप वेगपूर्वक आयीं। वे दुस्साहससे
 अर्धभिन्न थीं, अतः घबराहटके कारण उनके सारे शरीरमें
 व्यथा हो रही थी। वे गद्गद कण्ठसे बोलीं—'यक्षपते!
 निश्चय ही आप हमारे यह बात सुनें—आपकी भाया
 चित्रसेनाको किसी अज्ञात पुरुषने पकड़कर विमानपर
 बिठा लिया और चारों ओर ससङ्खुदृष्टिसे देखता हुआ वह
 चोर बड़े वेगसे कहीं चला गया है' ॥ ४१-४२ ॥

विष्णुके समान दुस्साह प्रतीत होनेवाली इस बातको
 सुननेसे धनाधिप कुबेरका मुँह काला पड़ गया। वे
 अग्निसे जले हुए वृक्षके समान हो गये। उस समय
 उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली। इसी समय
 चित्रसेनाकी सहचरी व्रेह यक्ष-कन्याओंसे यह समाचार
 जानकर कुबेरका मन्त्री कण्ठकुब्ज भी अपने स्वामीका
 मोह दूर करनेके विचारसे वहाँ आया। उसका आगमन
 सुन राजराज कुबेरने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा
 और लंबी साँस खींचते हुए अपने चित्तको यथासम्भव
 शीघ्र संभालकर वे दीनभावसे बोले। उस समय उनका
 शरीर अत्यन्त कम्पित हो रहा था ॥ ४३-४५ ॥

वे कहने लगे—'यही यौवन सफल है, जिससे
 पुत्रताका मनोरञ्जन हो सके; धन भी यही स्पर्धक है,
 जो आत्मीय जनके उपयोगमें आ सके। जीवन वह
 सफल है, जिससे सद्धर्म किया जाय और प्रभुत्व वही
 स्पर्धक है, जिसमें युद्ध और कलहके मूल नष्ट हो गये
 हों। इस समय मेरे इस विपुल धनको, गुह्यकोंके इस
 विताल राज्यको और मेरे इस जीवनको भी धिक्कार है।
 अभीतक मेरे इस अपमानको कोई नहीं जानता; अतः
 इसी समय अग्निमें जल भरूँगा। पीछे यदि इस समाचारको
 लोग जान भी लें तो क्या? मृत पुरुषोंका क्या अपमान
 होगा? हा! वह धनसरोवरके तटपर गिरिजा-पूजनके
 लिये गयी थी। यहाँ निकट हो था और जीवित भी रहा;
 तो भी किसीने उसे हर लिया। हम नहीं जानते वह कौन
 है। मैं समझता हूँ, अवश्य ही उस दुष्टको मृत्युका भय
 नहीं है' ॥ ४६-४८ ॥

स्वामीकी यह बात सुनकर उनका मोह दूर
 करनेके लिये कुबेरके उस मन्त्री कण्ठकुब्जने
 यह वचन कहा—'नाथ! सुनिये, स्त्रीके वियोगमें
 शरीर-त्याग करना आपके लिये उचित नहीं है।

एका पुरा रामवधूर्ध्वता च
निशाचरेणापि मृतो न सोऽपि ।
अनेकशः सन्ति तवात्र नार्यः
को नाम चित्ते क्रियते विवादः ॥ ५०
विमुच्य शोकं कुरु विक्रमे मतिं
धैर्यं समालम्ब्य यक्षराज ।
भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः
पराभवं बाह्यकृतं सहन्ते ॥ ५१
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति
सहायवान् विलप क्रातयेऽसि किम् ।
सहायकार्यं कुरुते हि सम्प्रति
स्वयं हि यस्यावरजो विभीषणः ॥ ५२

अथ उवाच

विभीषणो मे प्रतिपक्षभूतो
दायादभावं न विमुञ्चतीति ।
धुवं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः
कृतोपकारा हरिवन्निहुराः ॥ ५३
न चोपकारिणं गुणैर्न सीदतेः
प्रसादमावाति मनो हि गोत्रिणः ।
उवाच वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
युक्तं त्वयोक्तं च धनाधिनाथ ॥ ५४
परस्परं घ्नन्ति च ते विरुद्धा-
स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति ।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते
नोष्णां जलं ज्वालयते तृणानि ॥ ५५
तस्मात्समागच्छ धनाधिनाथ
पार्श्वं च खेगेन विभीषणस्य ।
स्वबाहुवीर्यार्जितवित्तभोगिनां

स्वबन्धुवर्गेषु हि को विरोधः ॥ ५६
इत्युक्तः स तदा तेन कण्ठकुब्जेन मन्त्रिणा ।
विभीषणस्य सामीप्यं जगामाशु विचारयन् ॥ ५७
ततो लङ्काधिपः श्रुत्वा बान्धवं पूर्वजं तदा ।
प्राप्तं प्रत्याजगामाशु विनयेन समन्वितः ॥ ५८
ततो विभीषणो दृष्ट्वा तदा दीनं च बान्धवम् ।
संतप्तमानसो भूप जगादेदं वचो महत् ॥ ५९

पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी एकमात्र पत्नी सीताको भी निशाचर रावणने हर लिया था, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने प्राण नहीं त्यागा। आपके यहाँ तो अनेक स्त्रियाँ हैं, फिर आप मनमें यह कैसा विवाद ला रहे हैं? यक्षराज! शोक त्यागकर पराक्रममें मन लगाइये; धैर्य धारण कीजिये। साधु पुरुष बहुत बातें नहीं बनाते और न बैठकर रोते ही हैं; वे दूसरोंके द्वारा परोक्षमें किये हुए अपने अपमानको उस समय चुपचाप सह लेते हैं। वित्तपते! महापुरुष समय आनेपर महान् कार्य कर दिखाते हैं। आपके तो अनेक सहायक हैं, आप क्यों कातर हो रहे हैं? इस समय तो आपके छोटे भाई विभीषण स्वयं ही आपकी सहायता कर रहे हैं ॥ ४९—५२ ॥

कुबेर बोले—विभीषण तो मेरे विपक्षी ही बने हुए हैं, वे अब भी मेरे साथ कौटुम्बिक विरोधका त्याग नहीं करते। यह विद्वित बात है कि दुर्जन पुरुष उपकार करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते, वे इन्द्रके वज्रके सदृश कटोर होते हैं। सगोत्रका मन उपकारोंमें, गुणोंसे अथवा मैत्रीसे भी प्रायः प्रसन्न नहीं होता ॥ ५३ ॥

यह सुनकर कण्ठकुब्जने कहा—‘धनाधिनाथ। आपने ठीक कहा है। विरोध होनेपर सगोत्र पुरुष अवश्य ही परस्पर घात-प्रतिघात करते हैं, तथापि लोकमें उनका पराभव नहीं देखा जाता; क्योंकि कुटुम्बीजन दूसरोंके द्वारा किये हुए अपने बन्धुजनके अपमानको नहीं सह सकते। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे तप्त हुआ जल अपने भीतरके तृणोंको नहीं जलाता, उसी प्रकार दूसरोंसे अपमानित कुटुम्बी जन अपने पार्श्ववर्ती बन्धुओंको नहीं सताते। इसीलिये धनाधिप! आप बहुत शीघ्र विभीषणके पास जातिये। जो लोग अपने बाहुबलसे उपाजित धनका उपभोग करते हैं, उन्हें भाई-बन्धुओंके साथ क्या विरोध हो सकता है’ ॥ ५४—५६ ॥

अपने मन्त्री कण्ठकुब्जके इस प्रकार कहनेपर कुबेर मन-ही-मन उसपर विचार करते हुए शीघ्र ही विभीषणके पास गये। लङ्कापति विभीषणने जब अपने ज्येष्ठ भ्राताका आगमन सुना, तब उन्होंने बड़ी विनयके साथ उनकी आगवानी की। राजन्! फिर विभीषणने अपने भाईको जब दोनदृष्टमें देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन दुःखी होकर उनसे यह महत्वपूर्ण बात कही ॥ ५७—५९ ॥

विभीषण उवाच

कथं दीनोऽसि यक्षेश किं कष्टं तव चेतसि ।
निवेदयाधुनास्माकं निश्चयान्मार्जयामि तत् ॥ ६०
तदैकान्तं समासाद्य कथयामास वेदनाम् ।

धनद उवाच

गृहीता किं स्वयं याता निहता केनचिद्विधा ॥ ६१
भ्रातः कान्तां न पश्यामि चित्रसेनां मनोरमाम् ।
एतद्वन्धो महत्कष्टं मम नारीसमुद्भवम् ॥ ६२
प्राणान् वै घातयिष्यामि अनासाद्य च वल्लभाम् ।

विभीषण उवाच

आनयिष्यामि ते कान्तां यत्र तत्र स्थितां विभो ॥ ६३
कः समर्थोऽधुनास्माकं हर्तुं नाथ तृणस्य च ।
ततो विभीषणस्तत्र नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥ ६४
भृशं संजल्पयामास नानामायागरीयसीम् ।
धनदस्य च या कान्ता चित्रसेनाभिधानतः ॥ ६५
सा च केन हुता लोके मानसे सरसि स्थिता ।
तां च जानीहि संवीक्ष्य देवराजादिवेश्मसु ॥ ६६
ततो निशाचरी भूप कृत्वा मायामयं वपुः ।
जगाम त्रिदिवं शीघ्रं देवराजादिवेश्मसु ॥ ६७
यया दृष्ट्वा क्षणं दृष्टो मोहं यास्यति चोपलः ।
यस्याः समं ध्रुवं रूपं विद्यते न चराचरे ॥ ६८
एतस्मिन्नेव काले च देवराजोऽपि भूपते ।
सम्प्राप्तो मन्दराच्छीघ्रं प्रेरितश्चित्रसेनया ॥ ६९
ग्रहीतुं दिव्यपुष्पाणि नन्दनप्रभवाणि च ।
तत्र पश्यन् स तां तन्वीं निजस्थाने समागताम् ॥ ७०
अतीव रूपसम्पन्नां गीतगानपरायणाम् ।
तां वीक्ष्य देवराजोऽपि स कामवशगोऽभवत् ॥ ७१
ततः सम्प्रेरयामास देववैद्यौ सुराधिपः ।
तस्याः पार्श्वं समानेतुं ध्रुवं चान्तःपुरे तदा ॥ ७२
देववैद्यौ तदाऽऽगत्य जल्पतश्चाग्रतः स्थितौ ।
आगच्छ भव तन्वाङ्गि देवराजसमीपगा ॥ ७३

विभीषण बोले—'यक्षराज! आप दीन क्यों हो रहे हैं? आपके मनमें क्या कष्ट है? इस समय आप उस कष्टको मुझे बताइये। मैं निश्चय ही उसका मार्जन करूँगा' तब कुबेरने एकान्तमें जाकर विभीषणसे अपनी मनोवेदना बतलायी ॥ ६० १/२ ॥

कुबेर बोले—'भाई! कुछ दिनोंसे मैं अपनी मनोरमा भार्या चित्रसेनाको नहीं देख रहा हूँ। न जाने उसे किसीने पकड़ लिया या वह स्वयं किसीके साथ चली गयी अथवा किसी जत्रुने उसे मार डाला। बन्धो। मुझे अपनी स्त्रीके वियोगका महान् कष्ट हो रहा है। यदि वह प्राणवशभा न मिली तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा ॥ ६१-६२ १/२ ॥

विभीषण बोले—'प्रभो! आपको भार्या जहाँ-कहाँ भी होगी, मैं उसे ला दूँगा। नाथ। इस समय संसारमें किसीकी सामर्थ्य है जो हमारा तृण भी चुरा सके।' यह कहकर विभीषणने नाना प्रकारकी मायाके ज्ञानमें बड़ी-बड़ी 'नाडीजङ्घा' नामकी निशाचरीसे बहुत कुछ कहा और बताया—'कुबेरकी जो 'चित्रसेना' नामकी पत्नी है, वह एक दिन जब मानससरोवरके तटपर थी, तभी वहाँसे किसीने उसे हर लिया। तुम इन्द्र आदि लोकपालोंके भयनोंमें देखकर उसका पता लगाओ' ॥ ६३-६६ ॥

भूप। तब वह निशाचरी मायामय शरीर धारणकर इन्द्रादि देवताओंके भयनोंमें खोज करनेके लिये शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गयी। उस निशाचरीने ऐसा सुन्दर रूप बनाया था, जिसकी एक ही दृष्टि पड़नेसे पत्थर भी मोहित हो सकता था। अवश्य ही उस समय वैसा मोहन रूप बराबर जगत्में कहीं नहीं था। भूपते। इसी समय देवराज इन्द्र भी चित्रसेनाके भेजनेसे उतावलीके साथ नन्दनवनके दिव्य पुष्प लेनेके लिये मन्दराचलसे स्वर्गलोकमें आये थे। वहाँ अपने स्थानपर आयी हुई उस अत्यन्त रूपवती रमणीको ओ मधुर गान गा रही थी, देख देवराज भी कामके वशीभूत हो गये। तब देवेन्द्रने उसे जैसे भी हो, अपने अन्तःपुरमें बुला लानेके लिये देववैद्य आश्विनीकुमारोंको उसके पास भेजा। दोनों आश्विनीकुमार उसके सामने जाकर खड़े हुए और कहने लगे—'कृशाङ्गि! आओ, देवराज इन्द्रके निकट चलो।' ॥

इत्युक्त्वा सा तदा ताभ्यां जगाद मधुराक्षरम् ।

नाडीजङ्घेवाच

देवराजः स्वयं यन्मे पार्श्वं चात्रागमिष्यति ॥ ७४

तस्य याच्यं च कर्तव्यं नान्यथा सर्वथा मया ।

तौ तदा वासवं गत्वा ऊचतुर्वचनं शुभम् ॥ ७५

वासव उवाच

समादेशय तन्वङ्गि किं कर्तव्यं मयाधुना ।

सर्वदा दासभूतस्ते याचसे तद्दाम्यहम् ॥ ७६

तन्वङ्गपुराण

याचितं यदि मे नाथ दास्यसीति न संशयः ।

ततोऽहं वशगा देव भविष्यामि न संशयः ॥ ७७

अद्य त्वं दर्शयास्माकं सर्वः कान्तापरिग्रहः ।

मम रूपसमा रामा कान्ता ते चास्ति वा न वा ॥ ७८

तथा चोक्ते च वचने स भूयो वासवोऽवदत् ।

दर्शयिष्यामि सर्वं ते देवि कान्तापरिग्रहम् ॥ ७९

स सर्वं दर्शयामास वासवोऽन्तःपुरं तदा ।

ततो जगाद भूयः सा किञ्चिद्गूढं मम स्थितम् ॥ ८०

विमुख्यैका च युवती सर्वं ते दर्शितं मया ।

इन्द्र उवाच

सा रामा मन्दरे चास्ति अविज्ञाता सुरासुरैः ॥ ८१

तां च ते दर्शयिष्यामि नाख्येयं कस्यचित्त्वया ।

ततः स देवराजोऽपि तथा सार्धं च भूपते ॥ ८२

गच्छन्नेवाम्बरे भूप मन्दरं प्रति भूधरम् ।

तस्य वै गच्छमानस्य विमानेनार्कवर्चसा ॥ ८३

दर्शनं नारदस्यापि तस्य जातं तदाप्यरे ।

तं वीक्ष्य नारदं वीरो लज्जमानोऽपि वासवः ॥ ८४

नमस्कृत्य जगादोच्चैः क्व यास्यसि महामुने ।

ततः कृताशीः स मुनिरवदत्त्रिदिवेश्वरम् ॥ ८५

गच्छामि मानसे स्नातुं देवराज सुखी भव ।

नाडीजङ्घेऽस्ति कुशलं राक्षसानां महात्मनाम् ॥ ८६

उन दोनोंके द्वारा यों कही जानेपर उस सुन्दरीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥ ६७—७३ १/४ ॥

नाडीजङ्घा बोली—यदि देवराज इन्द्र स्वयं हो मेरे पास आयेंगे तो मैं उनकी बात मान सकती हूँ; अन्यथा बिलकुल नहीं ॥ ७४ १/४ ॥

तब अश्विनीकुमारोंने इन्द्रके पास जाकर उसका शुभ संदेश कहा ॥ ७५ ॥

तब इन्द्र स्वयं आकर बोले—कुशाग्रि! आता दो, मैं इस समय तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ? मैं सदाके लिये तुम्हारा दास हो गया हूँ; तुम जो कुछ माँगी, वह सब दूँगा ॥ ७६ ॥

कुशाग्रिने कहा—नाथ! यदि आप मेरी माँगी हुई वस्तु अवश्य दे देंगे, तो निःसंदेह मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। आज आप अपनी समस्त भार्याओंको मुझे दिखाइये; देखूँ, आपकी कोई भी स्त्री मेरे रूपके सदृश है या नहीं? ॥ ७७—७८ ॥

उसके यों कहनेपर इन्द्रने पुनः कहा—“देवि! चलो, मैं तुम्हें अपनी समस्त भार्याओंको दिखाऊँगा।” यह कहकर इन्द्रने उसी समय उसे अपना सारा अन्तःपुर दिखाया। तब उस सुन्दरीने पुनः कहा—‘अभी मुझसे कुछ छिपाया गया है। केवल एक युवतीको छोड़कर और सब कुछ आपने दिखा दिया’ ॥ ७९—८० १/४ ॥

इन्द्रने कहा—“वह रमणी मन्दराचलपर है। देवता और असुर—किसीको भी उसका पता नहीं है। मैं उसे भी तुम्हें दिखा दूँगा, परंतु वह रहस्य किसीपर प्रकट न करना।” भूचल! यह कहकर देवराज इन्द्र उसके साथ आकाशमार्गसे मन्दराचलकी ओर चले। जिस समय वे सुनिके समान कान्तिमान् विमानसे चले जा रहे थे, उसी समय उन्हें आकाशमें देवर्षि नारदका दर्शन हुआ। नारदजीको देखकर वीरवर इन्द्र यद्यपि लज्जित हुए, तथापि उन्हें नमस्कार करके पूछा—‘महामुने! आप कहाँ जायेंगे?’ ॥ ८१—८४ १/४ ॥

तब मुनिवर नारदजीने आशीर्वाद देते हुए स्वर्गाधिपति इन्द्रसे कहा—‘देवराज! आप सुखी हों, मैं इस समय मानससरोवरपर स्नान करने जा रहा हूँ।’ [फिर उन्होंने नाडीजङ्घाको पहचानकर कहा—] ‘नाडीजङ्घे! कहो तो महात्मा राक्षसोंका कुशल तो है न?’

विभीषणोऽपि ते धाता सुखी तिष्ठति सर्वदा ।
 एवमुक्ता च मुनिना सा कृष्णवदनाभवत् ॥ ८७
 विस्मितो देवराजोऽपि छलितो दुष्टयानया ।
 नारदोऽपि गतः स्नातुं कैलासे मानसं सरः ॥ ८८
 इन्द्रस्तां हन्तुकामोऽपि आगच्छन्मन्दिराचलम् ।
 यत्राश्रमोऽस्ति वै नूनं तृणबिन्दोर्महात्मनः ॥ ८९
 क्षणं विश्रम्य तत्रैव धृत्वा केशेषु राक्षसीम् ।
 हन्तुमिच्छति देवेशो नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥ ९०
 तावत्तत्र समायातस्तृणबिन्दुर्निजाश्रमात् ।
 धृता क्रन्दति सा राजत्रिन्द्रेणापि निशाचरी ॥ ९१
 मा मां रक्षति पुण्यात्मा हन्यमानां च साम्प्रतम् ।
 तदाऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठस्तृणबिन्दुर्महातमाः ॥ ९२
 जगाद पुरतः स्थित्वा मुञ्चेमां महिलां वने ।
 जल्पत्येवं मुनी तस्मिन् महेन्द्रेण निशाचरी ॥ ९३
 वज्रेण निहता भूयः कोपयुक्तेन चेतसा ।
 स चुकोप मुनिश्रेष्ठः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ९४
 यदेवा युवती दुष्ट निहता मे तपोवने ।
 ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात् स्त्री भविष्यसि ॥ ९५

इन्द्र उवाच

एषा नाश्व महादुष्टा राक्षसी निहता मया ।
 अहं स्वामी सुराणां च शार्प मा देहि मेऽधुना ॥ ९६

मुनि उवाच

नूनं तपोवनेऽस्माकं दुष्टास्तिष्ठन्ति साधवः ।
 ममात्र तपसो भावान्न निघ्नन्ति परस्परम् ॥ ९७
 इत्युक्तो हि तदा चेन्द्रः प्राप्तः स्त्रीत्वं न संशयः ।
 जगाम त्रिदिवं भूय हतशक्तिपराक्रमः ॥ ९८
 नासीनो हि भवत्येव सर्वदा देवसंसदि ।
 देवा दुःखं समापन्ना दृष्ट्वा स्त्रीत्वं गतं हरिम् ॥ ९९

तुम्हारे भाई विभीषण तो सुखपूर्वक हैं न?' नारदजीकी यह बात सुनते ही उसका मुख भयसे कांसा पड़ गया। देवराज इन्द्र भी बहुत आश्चर्यमें पड़े और मन-ही-मन कहने लगे—'इस दुष्टने मुझे छल लिया।' नारदजी भी वहाँसे कैलास पर्वतके निकट मानससरोवरमें स्नान करनेके लिये चले गये। तब इन्द्र भी उस राक्षसीका वध करनेके लिये मन्दिराचलपर, जहाँ महात्मा तृणबिन्दुका आश्रम था, आये और वहाँ थोड़ी देरतक विश्राम करके वे उस नाडीजङ्घा राक्षसीके केश पकड़कर उसे मारना ही चाहते थे कि इतनेमें महात्मा तृणबिन्दु अपने आश्रमसे निकलकर वहाँ आ गये ॥ ८५—९० ॥

राजन्! इधर इन्द्रके द्वारा पकड़ी जानेपर वह राक्षसी भी करुण विलाप करने लगी—'हा! मैं मारी जा रही हूँ; इस समय कोई भी पुण्यात्मा पुरुष मुझ दीनाको नहीं बचा रहा है' ॥ ९१ ॥

उसी समय महातपस्वी तृणबिन्दु मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रके सामने खड़े हो बोले—'हमारे तपोवनमें इस महिलाको न मारो, छोड़ दो' ॥ ९२ ॥

भूप! तृणबिन्दु मुनि यों कह ही रहे थे कि महेन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रसे उस राक्षसीको मार ही तो डाला। तब वे मुनिवर इन्द्रकी ओर बार-बार देखते हुए बहुत ही क्रुपित हुए और बोले—'रे दुष्ट! तूने मेरे तपोवनमें इस पुण्यतीका वध किया है, इसलिये तू मेरे शापसे निहत हो स्त्री हो जायगा' ॥ ९३—९५ ॥

इन्द्र बोले—नाथ! मैं देवताओंका स्वामी इन्द्र हूँ और यह स्त्री महादुष्टा राक्षसी थी; इसलिये मैंने इसका वध किया है। आप इस समय मुझे शाप न दें ॥ ९६ ॥

मुनि बोले—अवश्य ही मेरे तपोवनमें भी दुष्ट और साधु पुरुष भी रहते हैं, परंतु वे मेरी तपस्याके प्रभावसे परस्पर किसीका वध नहीं करते। (तूने मेरे तपोवनकी मर्यादा भङ्ग की है, अतः तू शापके ही योग्य है।) ॥ ९७ ॥

भूप! मुनिके यों कहनेपर इन्द्र निःसंदेह स्त्रीयोनिके प्राप्त हो गये और पराक्रम तथा शक्ति खोकर स्वर्गको लौट आये। उन्होंने सदा ही लज्जा और दुःखसे खिन्न रहनेके कारण देवताओंको सभामें बैठा ही छोड़ दिया। इधर देवता भी इन्द्रको स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हुआ देखकर बहुत दुःखी हुए।

ततो देवगणाः सर्वे वासवेन समन्विताः ।
जग्मुश्च ब्रह्मसदनं तथा दीना शची तदा ॥ १००
ब्रह्मा भग्नसमाधिश्च तावत् तत्रैव संस्थिताः ।
देवा ऊचुश्च ते सर्वे वासवेन समन्विताः ॥ १०१
तृणविन्दोर्मुनेः शापाद्वातः स्त्रीत्वं सुराधिपः ।
स मुनिः कोपवान् ब्रह्मवैव गच्छत्यनुग्रहम् ॥ १०२

पितामह उवाच

न मुनेरपराधः स्यात्तृणविन्दोर्महात्मनः ।
स्वकर्मणोपयातोऽसौ स्त्रीत्वं स्वीयधकारणात् ॥ १०३
चकार दुर्नयं देवा देवराजोऽपि दुर्मदः ।
जहार चित्रसेनां च सुगुप्तां धनदाङ्गनाम् ॥ १०४
तथा जघान युवतीं तृणविन्दोस्तपोवने ।
तेन कर्मविपाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः ॥ १०५

देव उचुः

यदसौ कृतयाज्ञाभ्योर्दुर्नयं नाथ दुर्मतिः ।
तत्सर्वं साधयिष्यामि वयं श्रद्धा समन्विताः ॥ १०६
कान्ता धनाधिनाथस्य गूढा तिष्ठति या विभो ।
तां च तस्मै प्रदास्यामः सर्वे कृत्वा परां मतिम् ॥ १०७
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां देवराजः शचीयुतः ।
नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम् ॥ १०८
ततः शची तदा गूढं चित्रसेनां विगृह्य च ।
मुपोच यक्षभवनं प्रियकष्टानुवर्तिनीम् ॥ १०९
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽकाले लङ्कां समागतः ।
धनेशं कथयामास चित्रसेनासमागमम् ॥ ११०
शच्या साकं समायाता तव कान्ता धनाधिप ।
सखी स्वामतुलां प्राप्य चरितार्था बभूव सा ॥ १११
धनेशोऽपि कृतार्थोऽभूजगाम निजवेश्मनि ।

देव उचुः

सर्वमेतत्कृतं ब्रह्मन् प्रसादात्ते न संशयः ॥ ११२

तत्पश्चात् सधी देवता और दीना शची इन्द्रको साथ लेकर
ब्रह्माजीके धामको गये। जबतक ब्रह्माजी समाधिसे विरत
हुए, तबतक वे सभी वहीं ठहरे रहे और इन्द्रके साथ ही
सब देवता ब्रह्माजीसे बोले ॥ ९८—१०१ ॥

'ब्रह्मन्! सुरराज इन्द्र तृणविन्दु मुनिके शापसे स्त्रीयोनिक
प्राप्त हो गये हैं; वे मुनि बड़े क्रोधी हैं, किसी प्रकार
अनुग्रह नहीं करते' ॥ १०२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसमें उन महात्मा तृणविन्दु मुनिका
कोई अपराध नहीं है। इन्द्र स्त्रीवधरूपी अपने ही कर्मसे
स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं। देवताओ! देवराज इन्द्रने भी
मदमत होकर ब्रह्मा ही अन्याय किया है, जो कुबेरकी
पत्नी चित्रसेनाका गुप्तरूपसे अपहरण कर लिया। यही
नहीं, इन्होंने तृणविन्दुके तपोवनमें एक युवतीका वध
किया है, अतः अपने इस विन्द कर्मके परिणामस्वरूप
ही ये इन्द्र स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं ॥ १०३—१०५ ॥

देवगण बोले—नाथ इन्होंने दुर्बुद्धिसे प्रेरित होकर
जो शंकरप्रिय कुबेरका अपमान किया है, उसके लिये
हम सब लोग शचीके साथ कुबेरको प्रसन्न करनेका यत्न
करेंगे। विभो! कुबेरकी पत्नी चित्रसेना मन्दराचलपर
गुप्तरूपसे रहती है, हम सभी लोग सम्मति करके उसे
कुबेरको अर्पित कर देंगे। देवराज इन्द्र भी प्रति त्रयोदशी
और चतुर्दशीको नन्दनवनमें शचीको साथ लेकर यक्ष
और राक्षसोंकी पूजा करेंगे ॥ १०६—१०८ ॥

तत्पश्चात् शची अपने प्रियतमको कष्टमें डालनेवाली
चित्रसेनाको गुप्तरूपसे ले जाकर यक्षराज कुबेरके भवनमें
छोड़ आयीं। इसी समय कुबेरका दूत असमयमें ही
लङ्कामें पहुँचा और कुबेरसे चित्रसेनाके लौट आनेका
समाचार सुनया—'हे भनाधिप! आपकी प्रिय पत्नी चित्रसेना
शचीके साथ घर लौट आयी है। वह शची-जैसी
अनुपम सखीको पाकर कृतार्थ हो चुकी है।' तब कुबेर
भी कृतकृत्य होकर अपने घरको लौट आये। इसके
बाद देवगण पुनः ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना
करने लगे ॥ १०९—११२ ॥

देवगण बोले—ब्रह्मन्! आपको कृपासे
यह सारा काम तो हो गया—इसमें संदेह नहीं।

पतिहीना यथा नारी नाथहीनं यथा बलम् ।
गोकुलं कृष्णाहीनं तु तथेन्द्रेणामरावती ॥ ११३
जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थं च वै प्रभो ।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वाद्विमुच्यते ॥ ११४

ब्रह्मयोग्य

निहन्तुं न मुनेः शापं समर्थोऽहं न शङ्करः ।
तीर्थं चान्यत्र पश्यामि मुक्त्यैकं विष्णुपूजनम् ॥ ११५
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण पूजनं च तथा जपम् ।
करोतु विधिवच्छक्रः स्त्रीत्वाद्येन च मुच्यते ॥ ११६
एकाग्रमनसा शक्रं स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ।
ॐ नमो नारायणायेति जप त्वमात्मशुद्धये ॥ ११७
लक्षद्वये कृते जाप्ये स्त्रीभावान्मुच्यसे हरे ।
इति श्रुत्वा तथाकार्षीद्ब्रह्मोक्तं वचनं हरिः ।
स्त्रीभावाच्च विनिर्मुक्तस्तदा विष्णोः प्रसादतः ॥ ११८

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितं सर्वं विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
मया भृगुनियुक्तेन कुठु सर्वमतन्द्रितः ॥ ११९
शृण्वन्ति ये विष्णुकथामकल्मषा
वीर्यं हि विष्णोऽखिलकारणस्य ।
ते मुक्तपापाः परदारगामिनो
विशन्ति विष्णोः परमं पदं ध्रुवम् ॥ १२०

सूत उवाच

इति सम्बोधितस्तेन मार्कण्डेयेन पार्थिवः ।
नरसिंहं समाराध्य प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥ १२१
एतने कथितं सर्वं भरद्वाज मुने मया ।
सहस्रानीकचरितं किमन्यत् कथयामि ते ॥ १२२
कथामिमां यस्तु शृणोति मानवः
पुरातनीं सर्वविमुक्तिदां च ।
सम्प्राप्य स ज्ञानमतीव निर्मलं
तेनैव विष्णुं प्रतिपद्यते जनः ॥ १२३

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरितेऽष्टाध्यायमन्त्रकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरितके अन्तर्गत 'अष्टाक्षर-मन्त्रकी महिमाका कथन' नामक विंशतितमोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

परंतु अब जैसे पतिके बिना नारी, सेनापतिके बिना सेना और श्रीकृष्णके बिना व्रजकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार इन्द्रके बिना अमरावती सुशोभित नहीं होती। प्रभो! अब इन्द्रके लिये कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभावसे इनका उद्धार हो सके ॥ ११२-११४ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस मुनिके शापको अन्यथा करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न भगवान् शङ्कर ही। इसके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुके पूजनको छोड़कर दूसरा कोई उपाय भी सफल नहीं दोख पड़ता। वस, इन्द्र अष्टाक्षर-मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करें और उस मन्त्रका जप करते रहें; इससे वे स्त्रीभावसे मुक्त हो सकते हैं। इन्द्र! खान करके, ब्रह्मायुक्त हो, आत्मशुद्धि-के लिये एकाग्रचित्तसे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका जप करो। देवेन्द्र! इस मन्त्रका दो लाख जप हो जानेपर तुम स्त्री-योनिसे मुक्त हो सकते हो। यह सुनकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया, तब वे भगवान् विष्णुकी कृपासे स्त्रीभावसे छुटकारा पा गये ॥ ११५-११८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मैंने भृगुजीकी आज्ञासे तुम्हारे समक्ष परम उत्तम भगवान् विष्णुके माहात्म्यको पूर्णरूपसे सुना दिया। अब तुम आत्मसम्यक्कर भगवान् विष्णुकी आराधना करो। जो लोग अखिल जगत्के कारणभूत भगवान् विष्णुके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी कथाको सुनते हैं, वे यदि परस्त्रीगामी रहे हों तो भी पापहीन एवं कल्मषरहित होकर निरक्षय हो भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर मार्कण्डेयजीके द्वारा इस तरह सम्पूर्ण प्रकारसे उपदिष्ट होकर राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंहकी आराधना करके विष्णुके अविनाशी पदको प्राप्त हो गये। भरद्वाज मुने! इस प्रकार मैंने आपको यह सम्पूर्ण सहस्रानीक-चरित्र सुनाया; इसके बाद आपसे और क्या कहूँ? ॥ १२१-१२२ ॥

जो मानव सब प्रकारसे मोक्ष देनेवाली इस प्राचीन कथाका श्रवण करता है, वह अत्यन्त निर्मल ज्ञान प्राप्त करके उसीके द्वारा भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२३ ॥

चौंसठवाँ अध्याय

भगवद्भजनकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान

श्रीभरद्वाज उवाच

सत्यं केचित्प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ।
सांख्यं केचित्प्रशंसन्ति योगमन्ये प्रचक्षते ॥ १

ज्ञानं केचित्प्रशंसन्ति समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ।
क्षमां केचित्प्रशंसन्ति तथैव च दयार्जवम् ॥ २

केचिद्ज्ञानं प्रशंसन्ति केचिदाहुः परं शुभम् ।
सम्यग्ज्ञानं परं केचित्केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३

अग्निष्टोमादिकर्माणि तथा केचित्परं विदुः ।
आत्मध्यानं परं केचित्सांख्यतत्त्वाध्यायवेदिनः ॥ ४

धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामिह केवलम् ।
उपायः पदभेदेन बहुधैवं प्रचक्ष्यते ॥ ५

एवं चावस्थिते लोके कृत्याकृत्यविधौ नराः ।
व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ६

यदेतेषु परं कृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मम सर्वार्थसाधकम् ॥ ७

सूत उवाच

श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम् ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ८

पुण्डरीकस्य संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ।
ब्राह्मणः श्रुतसम्पन्नः पुण्डरीको महामतिः ॥ ९

आश्रमे प्रथमे तिष्ठन् गुरुणां वशगः सदा ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः संध्योपासनधिष्ठितः ॥ १०

वेदवेदाङ्गनिपुणः शास्त्रेषु च विचक्षणः ।
समिद्धिः साधुयत्नेन सायं प्रातर्हुताशनम् ॥ ११

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी! कुछ लोग 'सत्य' को ही पुरुषार्थका साथक बताकर उसको प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग 'तपस्या' और 'पवित्रता' को उत्तम बताते हैं। कुछ लोग 'सांख्य' और कुछ लोग 'योग' की प्रशंसा करते हैं। डोले, पत्थर और सोनेको समान समझनेवाले कुछ अन्य लोग 'ज्ञान' को ही पुरुषार्थ-साधनके लिये उत्तम मानते हैं। कुछ लोग 'क्षमा' की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग 'दया' और 'सरलता' की। कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'दान' को उत्तम बताते हैं, कुछ लोग और ही किसी उपायको शुभ कहते हैं। दूसरे लोग 'सम्यग्ज्ञान' को उत्तम मानते हैं और अन्य जन 'वैराग्य' को श्रेष्ठ बताते हैं। कुछ पात्रिक लोग 'अग्निष्टोम' आदि यज्ञोंको ही सबसे बढ़कर मानते हैं। सांख्यतत्त्वका मर्म जाननेवाले कुछ लोग 'आत्मके ध्यान' को श्रेष्ठ मानते हैं। इस प्रकार यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका उपाय ही नाम-भेदसे नाना प्रकारका बताया जाता है। ऐसी स्थितिमें जगत्में पापकर्मसे विमुक्त पुण्य भी कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें कुछ निश्चय न हो सकनेके कारण मोहमें ही पड़े रहते हैं। सर्वज्ञ! इन उपर्युक्त 'सत्य' आदि उपायोंमें जो सबसे उत्तम उपाय हो और महात्माओंद्वारा अवश्यकर्तव्य हो, सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस उपायका आप हमसे वर्णन करें ॥ १—७ ॥

सूतजी कहते हैं—संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले इस अत्यन्त गूढ उपायको लोग सुनें। इस विषयमें महात्माजन देवर्षि नारद और भक्तवर पुण्डरीकके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं ॥ ८ ॥ १/४ ॥

महामति पुण्डरीकजी एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे सदा गुरुजनोंके वशमें रहते हुए ब्रह्मचर्य आश्रमके नियमोंका पालन करते थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों और प्रीतिधर्मोंको जीत लिया था तथा वे नियमानुसार संध्योपासन किया करते थे। वेद और वेदाङ्गोंमें वे निष्णात थे तथा अन्य शास्त्रोंके भी पण्डित थे। वे प्रतिदिन समिधा एकत्रकर सायं और प्रातःकाल अत्यन्त यत्नपूर्वक अग्निकी उपासना किया

ध्यात्वा यज्ञपतिं विष्णुं सम्यगाराधयन् विभुम् ।
 तपःस्वाध्यायनिरतः साक्षाद्ब्रह्मसुतो यथा ॥ १२
 उदकेन्यनपुष्पाथैरसकृत्तर्पयन् गुरून् ।
 मातापितृभ्यां शुश्रूषुर्भिक्षाहारी जनप्रियः ॥ १३
 ब्रह्मविद्यामभ्यासान्नः प्राणायामपरायणः ।
 तस्य सर्वाशंभूतस्य संसारेऽत्यन्तनिःस्पृहा ॥ १४
 बुद्धिरासीन्महाराज संसारार्णवतारणी ।
 पितरं मातरं चैव धातूनथ पितामहान् ॥ १५
 पितृव्यान्मातुलांश्चैव सखीन् सम्बन्धिनश्चवान् ।
 परित्यज्य महोदारस्तृणानीव यथासुखम् ॥ १६
 विचचार महीमेतां शाकमूलफलाशनः ।
 अनित्यं यौवनं रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम् ॥ १७
 इति संचिन्तयानेन त्रैलोक्यं लोभुवत् स्मृतम् ।
 पुराणोदितमार्गेण सर्वतीर्थानि वै मुने ॥ १८
 गमिष्यामि यथाकालमिति निश्चितमानसः ।
 गङ्गां च यमुनां चैव गोमतीमथ गण्डकीम् ॥ १९
 शतद्रुं च पयोष्णीं च सरयुं च सरस्वतीम् ।
 प्रयागं नर्मदां चैव महानद्यो नदानपि ॥ २०
 गयां च विन्ध्यतीर्थानि हिमवत् प्रभवाणि च ।
 अन्यानि च महातेजास्तीर्थानि स महाव्रतः ॥ २१
 संचचार महाबाहुयथाकालं यथाविधि ।
 कदाचित् प्राप्तवान् वीरः शालग्रामं तपोधनः ॥ २२
 पुण्डरीको महाभागः पुण्यकर्मवशानुगः ।
 आसेव्यमानमृषिभिस्तत्त्वविद्विस्तपोधनैः ॥ २३
 मुनीनामाश्रमं रम्यं पुराणेषु च विश्रुतम् ।
 भूषितं चक्रनद्या च चक्राङ्कितशिलातलम् ॥ २४
 रम्यं विविक्तं विस्तीर्णं सदा चित्तप्रसादकम् ।
 केचिच्चक्राङ्कितस्तस्मिन् प्राणिनः पुण्यदर्शनाः ॥ २५
 विचरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रसङ्गिनः ।
 तस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महापतिः ॥ २६

करते थे। साक्षात् ब्रह्मपुत्र चारदजीके समान वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक आराधना करते हुए उनका ध्यान किया करते थे और सदा तपस्या तथा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे। जल, ईधन और फूल आदि आवश्यक सामान लाकर वे सदा ही गुरुजनोंको संतुष्ट रखते और उनकी अपने माता-पिताके समान श्रद्धा किया करते थे। भिक्षा माँगकर भोजन करते थे और अपने सद्गुरुवहाराके कारण लोगोंके परम प्रिय हो गये थे। वे सदा ब्रह्मविद्याका अध्ययन और प्राणायामका अभ्यास करते रहते थे। महाराज! समस्त पदार्थोंको वे अपना स्वरूप ही समझते थे; अतः संसारके विषयोंमें उनकी बुद्धि अत्यन्त निःस्पृह हो भवसागरसे पार उतारनेवाली हो गयी थी ॥ १-१४ ॥

भट्टावजी! उनका वैराग्य यहाँतक बढ़ गया कि वे महान् उदार पुण्डरीकजी पिता, माता, भाई, पितामह, चाचा, मामा, मित्र, सम्बन्धी तथा बान्धवजनोंको तुम्हारे समान त्यागकर, शाक और मूल-फलदिकार आहार करते हुए इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विचरने लगे। उन्होंने यौवन, रूप, आयु और धन-संग्रहको अनिष्टताका विचार करके समस्त जिभुवनको मिट्टीके ढेरोंके समान तुच्छ समझ लिया था और अपने मनमें यह निश्चय करके कि 'मैं पुराणोक्त मार्गसे यथासमय सभी तीर्थोंकी यात्रा करूँगा', वे महाबाहु, महोदरस्वी और महाव्रतो पुण्डरीकजी गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रु, पयोष्णी, सरयू और सरस्वतीके तटपर, प्रयागमें, नर्मदा आदि महानदियों तथा नदोंके तटपर, गयामें तथा विन्ध्याचल और हिमालयके तीर्थोंमें एवं इनके अतिरिक्त अन्यत्र तीर्थोंमें भी यथासमय विधिपूर्वक भ्रमण करते रहे। इसी तरह चले हुए, पुण्यकर्मोंके अधीन हो वे तपस्वी वीर महाभाग पुण्डरीक शालग्रामक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥ १५-२२ ॥

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानो तपस्वी श्रद्धिपूर्वक सेविका था। वहाँ मुनियोंके सुरम्य आश्रम थे, जो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। वह तीर्थ चक्रनदोसे भूषित है और वहाँके शिलाखण्ड भगवान्के चक्रसे चिह्नित हैं। वह तीर्थ जितना ही सुरम्य था, उतना ही एकान्त। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ चित्त स्वतः प्रसन्न रहता था। वहाँपर कुछ चक्रसे चिह्नित प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पावन था। वहाँ पुण्यतीर्थके यात्री यथेष्ट विचरते रहते थे। उस महापवित्र शालग्रामक्षेत्रमें महामति पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त हो तीर्थ सेवन करने लगे।

पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा तीर्थानि समसेवतः ।
 स्नात्वा देवहृदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुव्रतः ॥ २३
 जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्यामृतेष्वपि ।
 तथान्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥ २८
 ततः क्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा ।
 मनः प्रसादमगमत्तस्य तस्मिन्महात्मनः ॥ २९
 सोऽपि तीर्थे विशुद्धात्मा ध्यानयोगपरायणः ।
 तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन् समाराध्य जगत्पतिम् ॥ ३०
 शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्त्या परमया युतः ।
 उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वः संयतेन्द्रियः ॥ ३१
 शाकमूलफलाहारः संतुष्टः समदर्शनः ।
 यमैश्च नियमैश्चैव तथा चासनबन्धनैः ॥ ३२
 प्राणायामैः सुतीक्ष्णैश्च प्रत्याहारैश्च संततैः ।
 धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्त्रितः ॥ ३३
 योगाभ्यासं तदा सम्यक् चक्रे विगतकल्मषः ।
 आराध्य देवदेवेशं तद्गतेनान्तरात्मना ॥ ३४
 पुण्डरीको महाभागः पुरुषार्थविशारदः ।
 प्रसादं परमाकाङ्क्षन् विष्णोस्तद्गतमानसः ॥ ३५
 तस्य तस्मिन्निवसतः शालग्रामे महात्मनः ।
 पुण्डरीकस्य राजेन्द्र कालोऽगच्छन्महांस्ततः ॥ ३६
 मुने कदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ।
 जगाम सुमहातेजाः साक्षादादित्यसंनिभः ॥ ३७
 तं ब्रह्मकामो देवर्षिः पुण्डरीकं तपोनिधिम् ।
 विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हिते रतः ॥ ३८
 स दृष्ट्वा नारदं प्राप्तं सर्वतेजःप्रभान्वितम् ।
 महामतिं महाप्राज्ञं सर्वागमविशारदम् ॥ ३९
 प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
 अर्धं दत्त्वा यथायोग्यं प्रणाममकरोत् ततः ॥ ४०
 कोऽयमत्यद्भुताकारस्तेजस्वी हृद्यवेषधृक् ।
 आतोद्यहस्तः सुमुखो जटामण्डलभूषणः ॥ ४१
 विवस्वानथ वा वहिरिन्द्रो वरुण एव वा ।
 इति संचिन्तयन् विप्रः पप्रच्छ परमयुतिः ॥ ४२

वे नियमपूर्वक वहाँ देवहृद तीर्थमें, पूर्वजन्मकी स्मृति
 दिलवनेवाली सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्डमें और चक्र-
 नदी (नारायणी)-के जलमें भी स्नान करके उसी क्षेत्रके
 अन्तर्गत अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे ॥ २३—२८ ॥

तदनन्तर उस क्षेत्रके प्रभावसे और वहाँके तीर्थोंमें
 तेजसे उन महात्माका चित्त वहाँ बहुत ही शुद्ध एवं प्रसन्न हो
 गया । इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर हो, वहाँ
 ही मिट्टिकी इच्छासे परमभक्तियुक्त हो, वे शास्त्रोक्त विधिसे
 जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे । अपनी
 इन्द्रियोंको यशमें करके निर्द्वन्द्व रहते हुए उन्होंने अकेले ही
 बहुत दिनोंतक वहाँ निवास किया । वे शाक और मूल-
 फलादिका आहार करते और सदा संतुष्ट रहते थे । उनकी
 सर्वत्र समान दृष्टि थी । वे यम, नियम, आसन-बन्ध, तीव्र
 प्राणायाम, निरन्तर प्रत्याहार, धारण, ध्यान तथा समाधिके
 द्वारा निरालस्यभावमें भलीभाँति योगाभ्यास करते रहे । इस
 प्रकार समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्ठाप महापुरुष पुण्डरीकजीने
 देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना
 की और उन्होंने मन लगाये हुए वे उनके परम अनुग्रहकी
 आकाङ्क्षासे भजन करने लगे ॥ २९—३५ ॥

राजेन्द्र ! महात्मा पुण्डरीकजी उस शालग्रामक्षेत्रमें
 निवास करते बहुत समय जीत गया । तब एक दिन
 साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, वैष्णवहितकारी,
 परमाभवेत्ता एवं विष्णुभक्तिपरायण देवर्षि नारदजी तपोनिधि
 पुण्डरीक मुनिकी देखनेकी इच्छासे उक्त क्षेत्रमें गये ।
 समस्त आगमोंके ज्ञाता, महाबुद्धिमान्, महाप्राज्ञ, पूर्णतेजस्वी
 एवं प्रभापुत्रसे उपलक्षित नारदजीको वहाँ आया देख
 पुण्डरीकके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने विनीतभावसे
 हाथ जोड़कर उन्हें अर्घ्य निवेदन किया, फिर यथोचितरूपसे
 उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया । तत्पश्चात् परम कान्तिमान्
 विप्रवर पुण्डरीकजी मन-ही-मन यह सोचने लगे कि
 'ये अद्भुत दिव्य शरीरवाले, मनोरमवेषधारी, तेजस्वी
 महापुरुष कौन हैं ? अहो ! इनका मुखमण्डल कितना
 प्रसन्न है ! इनके मस्तकपर जटा-जूट सुशोभित हो रहा है ।
 इन्होंने हाथमें बाँधा ले रखी है । इस रूपमें ये साक्षात् सूर्य
 ही तो नहीं हैं ? अथवा अग्निदेव, इन्द्र और वरुणमेंसे तो
 कोई नहीं है ?' सो सोचते हुए किसी निश्चयपर न
 पहुँचनेके कारण उन्होंने कृष्ट ॥ ३६—४२ ॥

पुण्डरीक उवाच

को भवानिह सम्प्राप्तः कुतो वा परमद्युते ।
त्वद्दर्शनं ह्यपुण्यानां प्रायेण भुवि दुर्लभम् ॥ ४३

नारद उवाच

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात् ।
पुण्डरीक हरेर्भक्तस्त्वादृशः सततं द्विज ॥ ४४

स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया ॥ ४५

दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
इत्युक्तो नारदेनासौ भक्तिपर्याकुलात्मना ॥ ४६

प्रोवाच मधुरं विप्रस्तद्दर्शनमुविस्मितः ।

पुण्डरीक उवाच

धन्योऽहं देहिनामद्य सुपूज्योऽहं सुरैरपि ॥ ४७

कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनः फलम् ।
अनुगृहीष्व देवर्षे त्वद्भक्तस्य विशेषतः ॥ ४८

किं किं करोम्यहं विद्वन्भ्राम्यमाणः स्वकर्मभिः ।
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ ४९

त्वं गतिः सर्वलोकानां वैष्णवानां विशेषतः ।

नारद उवाच

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तद्या द्विज ॥ ५०

धर्ममार्गाश्च बहवस्तथैव प्राणिनः स्मृताः ।
वैलक्षण्यं च जगत्स्तस्मादेव द्विजोत्तम ॥ ५१

पुण्डरीकजी बोले—परम कान्तिमान् दिव्य पुरुष ! आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं ? इस पृथ्वीपर जिन्होंने कभी पुण्य नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये आपका दर्शन प्रायः दुर्लभ ही है ॥ ४३ ॥

नारदजी बोले—पुण्डरीक ! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनकी उत्कण्ठासे ही यहाँ आया हूँ। तुम—जैसा निरन्तर भगवद्भक्तिपरायण पुरुष दुर्लभ है। द्विजोत्तम ! भगवद्भक्त पुरुष यदि जातिका चण्डाल हो तो भी वह स्मरणमात्रसे, वार्तालापसे अथवा सम्मानित होकर, अथवा स्वेच्छासे ही लोगोंको पवित्र कर देता है; फिर तुम्हारे—जैसे भक्त ब्राह्मणके सत्सङ्गकी पावनताके विषयमें तो कहना ही क्या है। द्विज ! मैं शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवदेव भगवान् वासुदेवका दास हूँ ॥ ४४-४५ ॥

नारदजीके इस प्रकार अपना परिचय देनेपर उनके दर्शनसे अत्यन्त विस्मित हुए विप्रवर पुण्डरीकजी प्रेम-भक्तिसे विह्वलचित्त होकर मधुर वाणीमें बोले ॥ ४६ ॥

पुण्डरीकजीने कहा—आज मैं समस्त देहधारियोंमें धन्य हूँ, देवताओंद्वारा भी सम्माननीय हूँ। आज मेरे पितर कृतार्थ हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। देवर्षे ! मैं आपका भक्त हूँ; आप मुझपर अब विशेषरूपसे अनुग्रह करें। विद्वन् ! मैं अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंसे प्रेरित हो संसारमें भटक रहा हूँ। बताइये, इससे छुटकारा पानेके लिये मैं क्या-क्या करूँ ? मेरे लिये जो परम कर्तव्य हो, वह गोपनीय हो तो भी आप मुझे उसका उपदेश कीजिये। मुने ! यों तो आप समस्त लोकोंकी ही सहायता देनेवाले हैं, परंतु वैष्णवोंके लिये तो आप विशेषरूपसे शरणदाता हैं ॥ ४७-४९ ॥

नारदजी बोले—द्विज ! इस जगत्में अनेक शास्त्र और अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेकों प्राणी हैं और उनके लिये धर्मके मार्ग भी बहुत हैं। द्विजोत्तम ! इसीसे इस जगत्में विचित्रता दिखायी देती है ॥ ५०-५१ ॥

अव्यक्ताज्जायते सर्वं सर्वात्मकमिदं जगत् ।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेव च ॥ ५२

आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ।
अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठ तत्त्वालोकनतत्परैः ॥ ५३

एवमाद्यनुसंचिन्त्य यथा मतिं यथा श्रुतम् ।
यदन्ति श्रूयः सर्वे नानामतविशारदाः ॥ ५४

शृणुष्व्वावहितो ब्रह्मन् कथयामि तवानघ ।
परमार्थमिदं गुह्यं घोरसंसारमोचनम् ॥ ५५

अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत् ।
न गृह्णाति नृणां दृष्टिर्वर्तमानार्थनिश्चिता ॥ ५६

शृणुष्व्वावहितं तात कथयामि तवानघ ।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत ॥ ५७

कदाचिद्ब्रह्मलोकस्य पश्योनिं पितामहम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायं पृष्टवानहमव्ययम् ॥ ५८

नारद उवाच

किं तद्ज्ञानं परं देव कश्च योगः परस्तथा ।
एतन्मे तत्त्वतः सर्वं त्वमाचक्ष्व पितामह ॥ ५९

ब्रह्मोवाच

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एव सर्वभूतानां नर इत्यभिधीयते ॥ ६०

नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६१

नारायणाज्जगत्सर्वं सर्गकाले प्रजायते ।
तस्मिन्नेव पुनस्तच्च प्रलये सम्प्रलीयते ॥ ६२

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम् ।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥ ६३

कुछ लोगोंका मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् सर्वथा अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और समय आनेपर उसीमें लीन भी हो जाता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ। कुछ अन्य तत्त्वदर्शी पुरुष आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र व्यापक मानते हैं। अनघ! ब्रह्मन्! इन सब बातोंपर विचार करके नाना मतोंका ज्ञान रखनेवाले समस्त ऋषिगण अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं, उसे सावधान होकर सुनो; वह सब मैं तुमसे बतलाता हूँ। यह बताया जानेवाला गोप्य परमार्थतत्त्व इस घोरतर संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी दृष्टि प्रायः वर्तमान विषयोंको ही निश्चितरूपसे ग्रहण करती है; वह सुदूरवर्ती भूत और भविष्यको नहीं ग्रहण कर सकती। उतम व्रतके पालक एवं पापशून्य तात पुण्डरीक! इस विषयमें श्रीब्रह्माजीने पहले मेरे प्रश्न करनेपर मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। एक समयको बात है, ब्रह्मलोकमें विराजमान अविनाशी कमलयोगि ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैंने उनसे यथोचित-रूपसे प्रश्न किया ॥ ५२—५८ ॥

नारदजी बोले—देव! लोकपितामह! सबसे उतम ज्ञान और सबसे उत्कृष्ट योग कौन-सा है? इस विषयमें सारी बातें आप मुझे ठीक-ठीक बतायें ॥ ५९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जो तेईस विकारोंके कारणभूत चीथीसवें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पचीसवाँ तत्त्व है, वही सम्पूर्ण प्राणिशरीरोंमें 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाता है। सम्पूर्ण तत्त्व नरसे उत्पन्न हैं, इसलिये 'नार' कहलाते हैं। ये नार जिनके अयन (आश्रय) हैं, अर्थात् जो इनमें व्यापक हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयके समय फिर उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं।

परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने।
यच्च किञ्चिज्जगत्स्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ ६४
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।
एवं विदित्वा तं देवाः साकारं व्याहरन्मुहुः ॥ ६५
नमो नारायणायेति ध्यात्वा चानन्यमानसाः।
किं तस्य दानैः किं तैर्घैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ ६६
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः।
एतज्ज्ञानं खरं नातो योगश्चैव परस्तथा ॥ ६७
परस्परविरुद्धार्थैः किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
ब्रह्मैवेऽपि यथा मार्गं विशन्त्येकं महत्पुरुम् ॥ ६८
तथा ज्ञानानि सर्वाणि प्रविशन्ति तपीश्वरम्।
स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥ ६९
जगद्वादिनाद्यन्तः स्वयम्भूर्भूतभावनः।
विष्णुर्दिभुरचिन्त्यात्मा नित्यः सदसदात्मकः ॥ ७०
वासुदेवो जगद्वासः पुराणः कविराज्ययः।
यस्मात्प्राप्तं स्थितिं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सञ्जगच्चरम् ॥ ७१
तस्मात् स भगवान्देवो विष्णुरित्यभिधीयते।
यस्माद्वा सर्वभूतानां तत्त्वाद्यानां युगक्षये ॥ ७२
तस्मिन्निवासः संसर्गं वासुदेवस्ततस्तु सः।
तमाहुः पुरुषं केचित्केचिदीश्वरपण्ययम् ॥ ७३
विज्ञानमात्रं केचिच्च केचिद्ब्रह्म परं तथा।
केचित्कालमनाद्यन्तं केचिज्जीवं सनातनम् ॥ ७४
केचिच्च परमात्मानं केचिच्चैवमनामयम्।
केचित्क्षेत्रज्ञमित्याहुः केचित्पञ्चविंशकं तथा ॥ ७५
अङ्गुष्ठमात्रं केचिच्च केचित्पञ्चरजोपमम्।
एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदाः पृथग्विधाः ॥ ७६

मुने! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस जगत्में जो कुछ देखा या सुना जाता है, सबको बाहर और भीतरसे व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। इस प्रकार उन्हें साकार वस्तुओंमें व्यापक जानकर ही देवताओंने बार-बार उनको 'साकार' कहा है तथा 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका ध्यान (मानसिक जप) करते हुए अनन्यभावसे उनमें मन लग गया है। जो अनन्यचित हो सदा भगवान् नारायणका ध्यान करता है, उसको दान, तीर्थसेवन, तपस्या और यज्ञोंसे क्या काम है? भगवान् नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है तथा इससे बढ़कर दूसरा कोई योग भी नहीं है। परस्परविरुद्ध अर्थको व्यक्त करनेवाले दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके विस्तरसे क्या लाभ? जिस प्रकार एक ही बड़े नगरमें बहुत-से मार्गोंका प्रवेश होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञान उन परमेश्वर नारायणमें प्रवेश करते हैं ॥ ६०—६८ ॥

वे भगवान् विष्णु अत्यन्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्त्व हैं, सदा रहनेवाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण हैं; परंतु उनका न तो आदि है न अन्त ही। स्वयं वे किसी दूसरेसे उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' है, किंतु इस सम्पूर्ण भूतजीवियोंको स्वयं ही प्रकट करते हैं। वे विभु, अचिन्त्य, नित्य और कार्य-कारणस्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत्का उनमें ही निवास है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। वे पुराणपुरुष, त्रिकलदाता और अधिकारी हैं। यह सम्पूर्ण पञ्चचरमय त्रिभुवन उन्हीं भगवान्के द्वारा व्याप्त होनेसे स्थित है, इसलिये वे 'विष्णु' कहलाते हैं। अथवा युगका क्षय होनेपर महत्तत्त्व आदि समस्त भूतोंका उन्हीं सृष्टिके आश्रयभूत परमात्मामें निवास होता है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। कुछ लोग उनको पुरुष (आत्मा) कहते हैं और कुछ लोग अविनाशी ईश्वर बताते हैं। कुछ अन्य लोग उन्हें केवल 'विज्ञानस्वरूप' मानते हैं, कितने ही उन्हें परब्रह्म कहते हैं। कुछ विचारक उन्हें आदि-अन्तरहित 'काल' कहते हैं और कुछ मनुष्य उनको 'सनातन जीव' मानते हैं। कुछ लोग 'परमात्मा' कहते हैं, कुछ उन्हें एक 'निरामय तत्त्व' मानते हैं, कुछ विद्वान् उन्हें 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं और कुछ उन्हें तेईस विकासोंके कारण चौबीसवें तत्त्व प्रकृति और पचीसवें तत्त्वरूप पुरुषसे भिन्न 'छव्योसर्वा तत्त्व' (पुरुषोत्तम) मानते हैं। कुछ लोग आत्माको अँगूठके बराबर बताते हैं और कुछ विद्वान् कमल-पुष्पकी मूलिके एक कणके

शास्त्रेषु कथिता विष्णोर्लोकव्यामोहकारकाः ।
 एकं यदि भवेच्छास्त्रं ज्ञानं निस्संशयं भवेत् ॥ ७३

बहुत्वादिव शास्त्राणां ज्ञानतत्त्वं सुदुर्लभम् ।
 आलोक्ष्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ ७४

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।
 त्यक्त्वा व्यामोहकान्सर्वान् तस्माच्छास्त्रार्थविस्तरान् ॥ ७५

अनन्यचेता ध्यायस्व नारायणमतन्त्रितः ।
 एवं ज्ञात्वा तु सततं देवदेवं तमव्ययम् ॥ ७६

क्षिप्रं यास्यसि तत्रैव साधुन्यं नात्र संशयः ।
 श्रुत्वेदं ब्रह्मणा प्रोक्तं ज्ञानयोगं सुदुर्लभम् ॥ ७७

ततोऽहमासं विप्रेन्द्र नारायणपरायणः ।
 नमो नारायणायेति ये विदुर्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ७८

अन्तकाले जपन्तस्ते यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
 तस्मान्नारायणस्तात परमात्मा सनातनः ॥ ७९

अनन्यमनसा नित्यं ध्येयस्तत्त्वविचिन्तकैः ।
 नारायणो जगद्ग्रापी परमात्मा सनातनः ॥ ८०

जयतां सृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ।
 श्रवणात्पठनाच्चैव निदिध्यासनतत्परैः ॥ ८१

आराध्यः सर्वथा ब्रह्मन् पुरुषेण हितैषिणा ।
 निःस्पृहा नित्यसंतुष्टा ज्ञानिनः संयतेन्द्रियाः ॥ ८२

निर्ममा निरङ्कारा रागद्वेषविवर्जिताः ।
 अपक्षपतिताः शान्ताः सर्वसंकल्पवर्जिताः ॥ ८३

ध्यानयोगपरा ब्रह्मन् ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
 त्यक्तप्रया महात्मानो वासुदेवं हरिं गुरुम् ॥ ८४

कीर्तयन्ति जगन्नार्थं ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
 तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र नारायणपरो भव ॥ ८५

बराबर 'अणु' मानते हैं। ऊपर भगवान् विष्णुके जिन नामोंका उल्लेख किया गया है, ये तथा अन्य भी बहुत-से भिन्न-भिन्न नाम मुनियोंद्वारा शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो साधारण लोगोंमें भेद-भ्रमका उत्पादन कर उन्हें मोहमें डालनेवाले हैं। यदि एक ही शास्त्र होता तो सबको संदेह रहित निष्ठयात्मक ज्ञान होता। किंतु यहाँ तो बहुतेरे शास्त्र हैं और सबका अलग-अलग सिद्धान्त है; अतः ज्ञानका तत्त्व बड़ा ही दुर्ज्ञेय हो गया है। परंतु मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका मथन करके विचार किया तो एक यही बात सब सिद्धान्तोंके साररूपसे ज्ञात हुई कि सदा 'भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।' इसलिये मोहमें डालनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र-विस्तारोंका त्याग करके एकचित्त होकर उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो। इस प्रकार सतत चिन्तनके द्वारा उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही उनमें सापुण्य-मुक्ति प्राप्त कर लोगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६९-८० ॥

विप्रेन्द्र। इस प्रकार ब्रह्मजीके कहे हुए इस परम दुर्लभ ज्ञानयोगको सुनकर मैं तभीसे भगवान् नारायणकी परिचर्यामें लग गया। जो लोग 'ॐ नमो नारायणाय'— इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानते हैं, वे अन्तकालमें इसका जप करते हुए विष्णुके परमधामको प्राप्त कर लेते हैं। अतः तात! तत्त्व-विचार करनेवाले पुरुषोंको सदा ही सनातन परमात्मा नारायणका अनन्यचित्तसे ध्यान करना चाहिये। भगवान् नारायण जगद्ग्रापी सनातन परमेश्वर हैं। वे भिन्न-भिन्न रूपसे सम्पूर्ण लोकोंके सृष्टि, पालन तथा संहार-कार्यमें लगे रहते हैं। इनके नाम, गुण एवं लीलाओंका श्रवण और कीर्तन करते हुए उनके ध्यानमें संलग्न हो उनकी आराधना करनी चाहिये। ब्रह्मन्! अपना हित चाहनेवाले पुरुषके लिये सर्वथा भगवान् नारायणकी आराधना ही कर्तव्य है। विप्रवर! जो लोग निःस्पृह, नित्य-संतुष्ट, ज्ञानी, श्लेन्द्रिय और ममता-अहंता, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित हैं तथा जो पक्षपातशून्य, शान्त एवं सब प्रकारके संकल्पोंसे वर्जित हैं, वे भगवान्के ध्यानयोगमें तत्पर हो उन जगदीश्वरका साक्षात्कार कर लेते हैं। जो महत्तमा त्रिभुवनसे बड़ा खेड़कर जगद्गुरु जगन्नाथ भगवान् वासुदेवका कीर्तन करते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन पा जाते हैं। इसलिये विप्रवर! तुम भी भगवान् नारायणकी समाराधनामें तत्पर हो जाओ ॥ ८१-८९ ॥

तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमीश्वरः।
 हेलया कीर्तितो यो वै स्वं पदं दिशति द्विज ॥ ९०
 अपि कार्यस्त्वया चैव जपः स्वाध्याय एव च।
 तमेवोद्दिश्य देवेशं कुरु नित्यमनन्तरितः ॥ ९१
 किं तत्र बहुभिर्मनैः किं तत्र बहुभिर्व्रतैः।
 नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ९२
 चीरधासा जटाधारी त्रिदण्डी मुण्ड एव वा।
 भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ९३
 ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतः सदा।
 तेऽपि यान्ति परं स्थानं नरा नारायणाश्रयाः ॥ ९४
 जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्यादबुद्धिरीदृशी।
 दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ९५
 प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः।
 किं पुनस्तद्वतप्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियः ॥ ९६

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत।
 परोपकारनिरतस्त्रैलोक्यस्यैकभूषणः ॥ ९७
 पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः।
 नमोऽस्तु केशवायेति पुनः पुनरुदीरयन् ॥ ९८
 प्रसीदस्व महायोगिप्रिदमुच्चार्य सर्वदा।
 हत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥ ९९
 तपःसिद्धिकरेऽरण्ये शालग्रामे तपोधनः।
 उवास चिरमेकाकी पुरुषार्थविचक्षणः ॥ १००
 स्वप्नेऽपि केशवादन्यत्र पश्यति महातपः।
 निद्रापि तस्य नैवासीत्पुरुषार्थविरोधिनी ॥ १०१
 तपसा ब्रह्मचर्येण शौचेन च विशेषतः।
 जन्मजन्मान्तरारूढसंस्कारेण च स द्विजः ॥ १०२
 प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वलोकैकसाक्षिणः।
 अवाप परमां सिद्धिं वैष्णवीं वीतकल्मषः ॥ १०३

द्विज! जो अबहेतुपूर्वक नाम लेनेपर भी भक्तको अपना परमाश्रम दे देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन ऐसा महान् उदार है, जो माँगी हुई वस्तुको देनेमें समर्थ हो? तुम्हें जप अथवा स्वाध्याय—जो कुछ भी करना हो, उसे उन देवेशर भगवान् नारायणके उदेश्यसे ही सदा आलस्य त्यागकर करते रहो। बहुत-से मन्त्र और व्रतोंसे क्या काम? 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। द्विजश्रेष्ठ! कोई चीर वस्त्र पहननेवाला, जटा धारण करनेवाला, त्रिदण्डी, सदा माथा मुँहाये रहनेवाला अथवा तरह-तरहके उपकरणोंसे विभूषित ही क्यों न हो, उसके ये बाह्य चिह्न धर्मके कारण नहीं हो सकते; किंतु जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरणमें जा चुके हैं, वे पहले निर्दयी, दुष्ट और सदा फफर रहे हों तो भी भगवान् के परमाश्रमको पधारते हैं। हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाय कि 'मैं देवदेव, शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् वासुदेवका दास हूँ', वह मनुष्य निःसंदेह भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है; फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवान् में ही अपने प्राणोंको लगाये रहता है, उसके लिये तो जड़ना ही क्या है ॥ ९०—९६ ॥

सूतजी कहते हैं—सदा दूसरेके ही उपकारमें लगे रहनेवाले त्रिभुवनभूषण देवर्षि नादजी उपर्युक्त बातें बताकर वहींपर अन्तर्धान हो गये। अब धर्मरत्न पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान् नारायणके भजनमें तत्पर हो बार-बार इस प्रकार उच्चारण करने लगे—'भगवान् केशवके नमस्कार है; हे महायोगिन्! आप मुझसे प्रसन्न हों।' निरन्तर यों कहते हुए पुरुषार्थ-साधनमें कुशल वे तपस्वी पुण्डरीकजी अपने हृदय-कमलके आसनपर जनार्दन भगवान् गोविन्दको स्थापितकर तपस्वकी सिद्धि करनेवाले उस 'शालग्राम' नामक तपोवनमें बहुत कलत्रक अकेले ही रहे। महातपस्वी पुण्डरीक स्वप्नमें भी भगवान् केशवके सिवा दूसरा कुछ नहीं देखते थे। उनकी नींद भी उन्हें पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी। उन पापारहित द्विजवर पुण्डरीकने तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे और जन्म-जन्मान्तरोंकी साधनासे मुद्ध हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारसे सम्पूर्ण लोकैक एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान् विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली।

सिंहव्याघ्रस्तव्यायेऽपि मृगाः प्राणिविहिंसकाः ।
विरोधं सहजं हित्वा समेतास्तस्य संनिधौ ।
निवसन्ति द्विजश्रेष्ठ प्रशान्तेन्द्रियवृत्तयः ॥ १०४

ततः कदाचिद्भगवान् पुण्डरीकस्य धीमतः ।
प्रादुरासीजगन्नाथः पुण्डरीकायतैक्षणः ॥ १०५

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः स्वगुञ्जलः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः कौस्तुभेन विभूषितः ॥ १०६

आरुह्य गरुडं श्रीमान्भुवनाचलसंनिभः ।
मेरुभृङ्गमिवारुहः कालमेघस्तडिहपुतिः ॥ १०७

राजतेनातपत्रेण मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजमानो देवेशश्चाप्रव्यजनादिभिः ॥ १०८

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुण्डरीकः कृताञ्जलिः ।
पपात शिरसा भूमौ साध्वसावनतो द्विजः ॥ १०९

पिबन्निव इषीकेशं नयनाभ्यां समाकुलः ।
जगाम महतीं तृप्तिं पुण्डरीकस्तदानधः ॥ ११०

तमेवालोकयन् वीरश्चिरप्रार्थितदर्शनः ।
ततस्तमाह भगवान् पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ॥ १११

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीक महामते ।
वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ११२

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवेन भाषितम् ।
इदं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥ ११३

उनके निकट सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे-दूसरे हिंसक जीव आपसके स्वाभाविक वैर-विरोधको त्याग एक साथ मिलकर रहते थे। द्विजवर भट्टाजजी। उनके समीप उन हिंसक जन्तुओंकी इन्द्रियवृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं ॥ १७—१०४ ॥

तत्पश्चात् एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकजीके समक्ष जगदीश्वर भगवान् नारायण प्रकट हुए। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुसोभित थी। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। दिव्य पुष्पोंको माला उनको शोभा बढ़ा रही थी। उनके वक्षःस्थलमें श्रोवत्स-चिह्न और लक्ष्मीका निवास था। वे कौस्तुभपथिते विभूषित थे। कञ्जलगिरिके समान स्वामन्वर्ण एवं पीताम्बरभारी भगवान् विष्णु सुनहली कान्तिवाले गरुडपर आरुढ़ हो इस प्रकार सुसोभित होते थे, मानो मेरुगिरिके शिखरपर भिजलीकी कान्तिसे युक्त स्वामन्वर्ण शोभा पा रहा हो। भगवान्के ऊपर रजतमय श्वेत छत्र तना था, जिसमें मोतियोंकी झालरें लगी थीं। उस समय उस छत्रसे तथा चैतन्य-व्यजन आदिसे उन देवेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १०५—१०८ ॥

उन देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकने दोनों हाथ जोड़ लिये। आदरमिश्रित भयसे उनका मस्तक झुक गया। उन्होंने धरतीपर माथ टेक दिया—साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ये विह्वल होकर उन भगवान् इषीकेशकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें पी जायेंगे। जिनके दर्शनके लिये वे चिरकालसे प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवान्को आज सामने पाकर उनकी ओर निर्निमेष नयनोंसे देखते हुए पापहित धीरचित्त पुण्डरीकजीको आज यही तृप्ति हुई। तब तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाथ लेनेवाले भगवान् पद्मनाभने पुण्डरीकसे कहा— ॥ १०९—१११ ॥

'वत्स पुण्डरीक। तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसीको वरके रूपमें मँग लो; उसे मैं अवश्य दूँगा' ॥ ११२ ॥

सूतजी कहते हैं—देवदेव नारायणके कहे हुए इस वचनको सुनकर महामति पुण्डरीकने उनसे यों निवेदन किया ॥ ११३ ॥

पुण्डरीक उवाच

क्राहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क चात्यहितवीक्षणम्।
यद्वितं मम देवेश तदाज्ञापय माधव॥ ११४
एवमुक्तोऽथ भगवान् सुप्रीतः पुनरब्रवीत्।
पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम्॥ ११५

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुव्रत।
मद्वपधारी नित्यात्मा ममैव पार्षदो भव॥ ११६

सूत उवाच

एवमुक्तवति प्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले।
देवदुन्दुभवो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च॥ ११७
देवाः सेन्द्रस्तथा सिद्धाः साधुसन्धिक्यधाम्नुवन्।
जगुश्च सिद्धगन्धर्वाः किंनराश्च विशेषतः॥ ११८
अथैनं समुपादाय वासुदेवो जगत्पतिः।
जगाम गरुडारूढः सर्वदेवनमस्कृतः॥ ११९
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः।
तच्चित्तस्तद्व्रतप्राणस्तद्भक्तानां हिते रतः॥ १२०
अर्चयित्वा यथायोगं भजस्व पुरुषोत्तमम्।
शृणुष्व तत्कथाः पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः॥ १२१
येनोपायेन विप्रेन्द्र विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम्॥ १२२
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैरपि।
नाप्नुवन्ति गतिं पुण्यां नारायणपराङ्मुखाः॥ १२३
अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणविगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम्।
निरुपममुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो॥ १२४

पुण्डरीक बोले—देवेश! कहीं मुझ-जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धि पुण्य और कहीं अपने वास्तविक हितको देखनेका कार्य? अतः माधव! मेरे लिये जो हितकर हो, उसके लिये आप ही कृपापूर्वक आज्ञा करें॥ ११४॥

उनके यों कहनेपर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए महाभाग पुण्डरीकसे बोले॥ ११५॥

श्रीभगवान्ने कहा—सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो; तुम मेरे साथ ही आ जाओ और मेरे ही समान रूप धारणकर मेरे नित्य-पार्षद हो जाओ॥ ११६॥

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरके प्रेमपूर्वक यों कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस समय इन्द्र आदि सभी देवता और सिद्धगण 'यह बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ'—इस प्रकार कहकर साधुवाद देने लगे। सिद्ध, गन्धर्व और किंनरगण विशेषरूपसे यशोगान करने लगे। इधर सर्वदेववन्दित जगदीश्वर भगवान् वासुदेव पुण्डरीकको साथ ले, गरुडपर आरुढ़ हो, वैकुण्ठधामको चले गये। इसलिये विप्रवर भरद्वाज। आप भी विष्णुभक्तसे युक्त हो, अपने मन और प्राणोंको भगवान्में ही लगाकर उनके भक्तोंके हित-साधनमें तत्पर रहिये और यथाशक्ति भगवान्का पूजन करते हुए उन पुरुषोत्तमका भजन कीजिये। समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान्की कथाएँ सदा सुनते रहिये। विप्रवर। अधिक क्या कहें, सर्वेश्वरेश्वर विश्वात्मा भगवान् विष्णु जिस उपायसे प्रसन्न हों, उसीको आप विस्तारपूर्वक करें। भगवान् नारायणसे विमुख हुए पुरुष हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय करनेसे भी पावन गतिको नहीं प्राप्त कर सकते॥ ११७—१२३॥

(भगवान्ने इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये) 'भगवान् विष्णो! आप अजर, अमर, अद्वितीय, सबके ध्यान करनेयोग्य, आदि-अन्तसे रहित, सगुण-निर्गुण, स्थूल-सूक्ष्म और अनुपम होकर भी उपमेय हैं। योगियोंको ज्ञानके द्वारा आपके स्वरूपका अनुभव होता है तथा आप इस त्रिभुवनके गुरु और परमेश्वर हैं; अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ'॥ १२४॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे पुण्डरीकखण्डसंवादे षण्णवविंशत्योऽध्यायः॥ ६४०

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुण्डरीक-खण्ड-संवाद' विष्णुखण्ड चौत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६४५

पैंसठवाँ अध्याय

भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के नाम

भरद्वाज उवाच

त्वत्तो हि श्रोतुमिच्छामि गुह्यक्षेत्राणि वै हरेः ।
नामानि च सुगुह्यानि वद पापहराणि च ॥ १

सूत उवाच

मन्दरस्थं हरिं देवं ब्रह्मा पृच्छति केशवम् ।
भगवन्तं देवदेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २

ब्रह्मणेवाच

केषु केषु च क्षेत्रेषु द्रष्टव्योऽसि मया हरे ।
भक्तैरन्यैः सुरश्रेष्ठ मुक्तिकामैर्विशेषतः ॥ ३

यानि ते गुह्यनामानि क्षेत्राणि च जगत्पते ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः पञ्चायतेक्षण ॥ ४

किं जपन् सुगतिं याति नरो नित्यमनन्तरितः ।
त्वद्भक्तानां हितार्थाय तन्मे वद सुरेश्वर ॥ ५

श्रीभगवानुवाच

मृणुष्वावहितो ब्रह्मन् गुह्यनामानि मेऽधुना ।
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि तव वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ६

कोकामुखे तु वाराहं मन्दरे मधुसूदनम् ।
अनन्तं कपिलद्वीपे प्रभासे रविनन्दनम् ॥ ७

माल्योदपाने वैकुण्ठं महेन्द्रे तु नृपात्मजम् ।
ऋषभे तु महाविष्णुं द्वारकायां तु भूपतिम् ॥ ८

पाण्डुसह्ये तु देवेशं वसुरुढे जगत्पतिम् ।
वज्रोवटे महायोगं चित्रकूटे नराधिपम् ॥ ९

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! अब मैं आपसे भगवान् विष्णुके गुप्त तीर्थोंका और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के गुप्त नामोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ; कृपया आप उन पापनाशक नामोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—एक समय मन्दराचलपर विराजमान शंख-चक्र-गदाधारी देवदेव भगवान् विष्णुसे श्रीब्रह्माजीने पूछा ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—सुरश्रेष्ठ! हरे! मुझे तथा मुक्ति चाहनेवाले अन्यान्य भावोंको किन-किन क्षेत्रोंमें जाकर आपका विशेषरूपसे दर्शन करना चाहिये। जगत्पते! कमललोचन। आपके जो-जो गुप्त तीर्थ और नाम हैं, उन्हें मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ। सुरेश्वर। मनुष्य आलस्य त्यागकर प्रतिदिन किसका जप करनेसे सद्गतिको प्राप्त हो सकता है? अपने भक्तोंका हित-साधन करनेके लिये यह बात आप हमें बताइये ॥ ३-५ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्। तुम सावधान होकर सुनो; मेरे जो गुह्य नाम और क्षेत्र हैं, उन्हें मैं ठीक-ठीक बतल रहा हूँ ॥ ६ ॥

कोकामुख-क्षेत्रमें मेरे वाराहस्वरूपका, मन्दराचलपर मधुसूदनका, कपिलद्वीपमें अनन्तका, प्रभासक्षेत्रमें सूर्यनन्दनका, माल्योदपानतीर्थमें भगवान् वैकुण्ठका, महेन्द्रपर्वतपर राजकुमारका, ऋषभतीर्थमें महाविष्णुका, द्वारकामें भूपाल श्रीकृष्णका, पाण्डुसह्य पर्वतपर देवेशका, वसुरुढतीर्थमें जगत्पतिका, वज्रोवटमें महायोगका, चित्रकूटमें राजा रामका,

निमिषे पीतवासं च गवां निष्क्रमणे हरिम् ।
 शालग्रामे तपोवासमचिन्त्यं गन्धमादने ॥ १०
 कुब्जागारे हृषीकेशं गन्धद्वारे पयोधरम् ।
 गरुडध्वजं तु सकले गोविन्दं नाम सायके ॥ ११
 वृन्दावने तु गोपालं मथुरायां स्वयम्भुवम् ।
 केदारे माधवं विन्धाद्वाराणस्यां तु केशवम् ॥ १२
 पुष्करे पुष्कराक्षं तु धृष्टद्युम्ने जयध्वजम् ।
 तृणबिन्दुवने धीरमशोकं सिन्धुसागरे ॥ १३
 कसेरटे महाबाहुममृतं तैजसे वने ।
 विश्वासयूपे विश्वेशं नरसिंहं महावने ॥ १४
 हलाहारे रिपुहरं देवशालां त्रिविक्रमम् ।
 पुरुषोत्तमं दशपुरे कुब्जके व्याघ्रं विदुः ॥ १५
 विद्याधरं वितस्तायां वाराहे धरणीधरम् ।
 देवदारुवने गुह्यं कावेर्यां नागशायिनम् ॥ १६
 प्रयागे योगमूर्तिं च पयोध्यां च सुदर्शनम् ।
 कुमारतीर्थे कौमारं लोहिते हयग्रीवंकम् ॥ १७
 उज्जयिन्यां त्रिविक्रमं लिङ्गकूटे चतुर्भुजम् ।
 हरिहरं तु भद्रायां दृष्ट्वा पापात् प्रमुच्यते ॥ १८
 विश्वरूपं कुरुक्षेत्रे मणिकुण्डे हलायुधम् ।
 लोकनाथमयोध्यायां कुण्डिने कुण्डिनेश्वरम् ॥ १९
 भाण्डारे वासुदेवं तु चक्रतीर्थे सुदर्शनम् ।
 आळ्ये विष्णुपदं विद्याच्छूकरे शूकरं विदुः ॥ २०
 ब्रह्मेशं मानसे तीर्थे दण्डके श्यामलं विदुः ।
 त्रिकूटे नागमोक्षं च मेरुपृष्ठे च भास्करम् ॥ २१
 विरजं पुष्पभद्रायां बालं केरलके विदुः ।
 यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम् ॥ २२
 क्षीराब्धौ पञ्चनाभं तु विमले तु सनातनम् ।
 शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम् ॥ २३

नेमिचारण्यमें पीताम्बरका, गौओंके विचरनेके स्थान ब्रजमें हरिका, शालग्रामतीर्थमें तपोवासका, गन्धमादन पर्वतपर अचिन्त्य परमेश्वरका, कुब्जागारमें हृषीकेशका, गन्धद्वारमें पयोधरका, सकलतीर्थमें गरुडध्वजका, सायकमें गोविन्दका, वृन्दावनमें गोपालका, मथुरामें स्वयम्भू भगवान्‌का, केदारतीर्थमें माधवका, वाराणसी (काशी)-में केशवका, पुष्करतीर्थमें पुष्कराक्षका, धृष्टद्युम्न-क्षेत्रमें जयध्वजका, तृणबिन्दु वनमें धीरका, सिन्धुसागरमें अशोकका, कसेरटमें महाबाहुका, तैजस वनमें भगवान्‌ अमृतका, विश्वासयूप (या विशाखपूष)-क्षेत्रमें विश्वेशका, महावनमें नरसिंहका, हलाहलमें रिपुहरका, देवशालामें भगवान्‌ त्रिविक्रमका, दशपुरमें पुरुषोत्तमका, कुब्जकतीर्थमें व्याघ्रका, वितस्तामें विद्याधरका, वाराह-तीर्थमें धरणीधरका, देवदारुवनमें गुह्यका, कावेरीतटपर नागशायीका, प्रयागमें योगमूर्तिका, पयोष्णीतटपर सुदर्शनका, कुमारतीर्थमें कौमारका, लोहितमें हयग्रीवका, उज्जयिनीमें त्रिविक्रमका, लिङ्गकूटपर चतुर्भुजका और भद्राके तटपर भगवान्‌ हरिहरका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७-१८ ॥

इसी प्रकार कुरुक्षेत्रमें विश्वरूपका, मणिकुण्डमें हलायुधका, अयोध्यामें लोकनाथका, कुण्डिनपुरमें कुण्डिनेश्वरका, भाण्डारमें वासुदेवका, चक्रतीर्थमें सुदर्शनका, आल्यतीर्थमें विष्णुपदका, शूकरक्षेत्रमें भगवान्‌ शूकरका, मानसतीर्थमें ब्रह्मेशका, दण्डकतीर्थमें श्यामलका, त्रिकूटपर्वतपर नागमोक्षका, मेरुके शिखरपर भास्करका, पुष्पभद्राके तटपर विरजका, केरलतीर्थमें बालरूप भगवान्‌का, विपाशाके तटपर भगवान्‌ यशस्करका, माहिष्मतीपुरीमें हुताशनका, क्षीरसागरमें भगवान्‌ पञ्चनाभका, विमलतीर्थमें सनातनका, शिवनदीके तटपर भगवान्‌ शिवका, गयामें गदाधरका

सर्वत्र परमात्मानं यः पश्यति स मुच्यते ।
 अष्टषष्टिश्च नामानि कथितानि मया तव ॥ २४
 क्षेत्राणि चैव गुह्यानि कथितानि विशेषतः ।
 एतानि मम नामानि रहस्यानि प्रजापते ॥ २५
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
 गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ २६
 दिने दिने शुचिर्भूत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
 दुःस्वप्नं न भवेत् तस्य मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २७
 अष्टषष्टिस्तु नामानि त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोके स मोदते ॥ २८
 द्रष्टव्यानि यथाशक्त्या क्षेत्राण्येतानि मानवैः ।
 वैष्णवैस्तु विशेषेण तेषां मुक्तिं ददाम्यहम् ॥ २९

सूत उवाच

हरिं समभ्यर्च्य तदग्रसंस्थितो
 हरिं स्मरन् विष्णुदिने विशेषतः ।
 इमं स्तवं यः पठते स मानवः
 प्राप्नोति विष्णोरमृतात्मकं पदम् ॥ ३०

इति श्रीनरसिंहपुराणे आद्ये पर्यायर्षीश्वरप्रणि विष्णुसूक्त्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'अदि धर्मार्यर्षीश्वरप्रणि विष्णुसूक्त्ये पञ्चमोऽध्यायः' पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

॥ ६५ ॥

छाछठवाँ अध्याय

अन्यान्य तीर्थों तथा सङ्गात्रि और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य

सूत उवाच

उक्तः पुण्यः स्तवो ब्रह्मन् हरेरेभिश्च नामभिः ।
 पुनरन्यानि नामानि यानि तानि निबोध मे ॥ १
 गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः ।
 सरयुः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती ॥ २
 कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथाबुंदम् ।
 नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे ॥ ३

और सर्वत्र ही परमात्माका जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ २९—३० ॥

ब्रह्माजी! ये अष्टषष्ट नाम हमने तुम्हें बताये तथा विशेषतः गुप्त तीर्थोंका भी वर्णन किया। प्रजापते! जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मेरे इन गुह्यनामोंका पाठ या श्रवण करेगा, वह नित्य एक लाख गोदानका फल पायेगा। नित्यप्रति पवित्र होकर जो इन नामोंका पाठ करता है, उसको मेरी कृपासे कभी दुःस्वप्नका दर्शन नहीं होता, इसमें संदेह नहीं है। जो पुरुष इन अष्टषष्ट नामोंका प्रतिदिन तीनों काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें आनन्द भोगता है। सभी मनुष्यों और विशेषतः वैष्णवोंको चाहिये कि यथाशक्ति पूर्वोक्त तीर्थोंका दर्शन करें। जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हें मैं मुक्ति देता हूँ ॥ २४—२९ ॥

सूतजी कहते हैं—जो पुरुष सदा और विशेषतः हरिश्चसर (एकादशी या द्वादशीको) भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनके सामने छाड़ा हो भगवत्स्मरणपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह विष्णुके अमृतपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णु पुनः बोले— ब्रह्मन्! उपर्युक्त अष्टषष्ट नामोंसे भगवान् विष्णुकी पावन स्तुतिका वर्णन किया गया। अब जो दूसरे-दूसरे पावन तीर्थ और नाम हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

सर्वप्रथम गङ्गा पवित्र है; फिर यमुना, गोमती, सरयु, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मण्वती—ये नदियाँ पावन हैं। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र, गया, तीनों पुष्कर और अर्बुद-क्षेत्र तथा परम पावन नर्मदा नदी—ये उत्तरमें परम पावन तीर्थ हैं।

तापी पयोष्णी पुण्ये द्वे तत्सङ्गातीर्थमुत्तमम् ।
 तथा ब्रह्मगिरेश्चापि मेखलाभिः समन्विताः ॥ ४
 विरजं च तथा तीर्थं सर्वपापक्षयंकरम् ।
 गोदावरी महापुण्या सर्वत्र चतुराननम् ॥ ५
 तुङ्गभद्रा महापुण्या यत्राहं कमलोद्भव ।
 हरेण सार्धं प्रीत्या तु वसामि मुनिपूजितः ॥ ६
 दक्षिणगङ्गा कृष्णा तु कावेरी च विशेषतः ।
 सद्यो त्वामलकग्रामे स्थितोऽहं कमलोद्भव ॥ ७
 देवदेवस्य नाम्ना तु त्वया ब्रह्मन् सदाचितः ।
 तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै ॥
 येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापमुच्यति मानवः ॥ ८

सूत उवाच

इत्येवं कथयित्वा तु तीर्थानि मधुसूदनः ।
 ब्रह्मणे गतवान् ब्रह्मन् ब्रह्मापि स्वपुरं गतः ॥ ९

भरद्वाज उवाच

तस्मिन्नामलकग्रामे पुण्यतीर्थानि यानि वै ।
 तानि मे वद धर्मज्ञ विस्तरेण यथार्थतः ॥ १०
 क्षेत्रोत्पत्तिं च माहात्म्यं यात्रापर्वं च यत्र तत् ।
 तत्रासी देवदेवेशः पूज्यते ब्रह्मणः स्वयम् ॥ ११

सूत उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
 सहामलकतीर्थस्य उत्पत्त्यादि महामुने ॥ १२
 पुरा सहावनोद्देशे तरुरामलको महान् ।
 आसीद्ब्रह्मन् महोद्भोज्यं नाम्नायं चोच्यते बुधैः ॥ १३
 फलानि तस्य वृक्षस्य महान्ति सुरसानि च ।
 दर्शनीयानि दिव्यानि दुर्लभानि महामुने ॥ १४

तापी, पयोष्णी—ये दो पावन नदियाँ हैं। इनके संगमसे एक बहुत उत्तम तीर्थ हो गया है तथा ब्रह्मगिरिकी मेखलाओंसे मिले हुए भी बहुत-से उत्तम तीर्थ हैं। विरज-तीर्थ भी समस्त पापोंको क्षीण करनेवाला है तथा चतुरानन! गोदावरी नदी सर्वत्र परमपावन है। कमलोद्भव! तुङ्गभद्रा नदी भी अत्यन्त पवित्र करनेवाली है, जिसके तटपर मैं मुनियोंद्वारा पूजित हो भगवान् शङ्करके साथ स्वयं निवास करता हूँ। दक्षिण गङ्गा, कृष्णा और विशेषतः कावेरी—ये पुण्य नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, कमलोद्भव! मैं सहापर्वतपर आमलक ग्राममें स्वयं निवास करता हूँ। वहाँ 'देवदेव' नामसे प्रसिद्ध मेरे श्रीविग्रहका तुम स्वयं ही सदा पूजन करते हो। वहाँ समस्त पापोंको हर लेनेवाले अनेक तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और आचमन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ २-८ ॥

सूतजी कहते हैं—भरद्वाज! ब्रह्मजोसे इन तीर्थोंका वर्णन करके भगवान् मधुसूदन अपने धामको चले गये और ब्रह्म भी ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ९ ॥

भरद्वाजजी बोले—धर्मज्ञ! उस आमलक ग्राममें जो-जो पुण्यतीर्थ हैं, उनका आप विस्तारके साथ यथार्थ-रूपमें वर्णन करें। जहाँ देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्मजीके द्वारा पूजित होते हैं, उस क्षेत्रकी उत्पत्ति-कथा, माहात्म्य और यात्रापर्वका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये ॥ १०-११ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्र! महामुने। सहापर्वतपर स्थित 'आमलक' तीर्थके आविर्भाव आदिकी पवित्र एवं पापनाशक कथा मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनें ॥ १२ ॥

ब्रह्मन्! पूर्वकालमें सहापर्वतके वनमें एक बहुत बड़ा आँखलेका वृक्ष था। उसे बुद्धिमान् लोगोंने 'महोग्र' नाम दे रखा था। महामुने। उस वृक्षके फल बड़े रसीले, दर्शनीय, दिव्य एवं दुर्लभ होते थे।

परेषां ब्राह्मणानां तु परेण ब्रह्मणा पुरा।
स दृष्टस्तु महावृक्षो महाफलसमन्वितः ॥ १५

किमेतदिति विप्रेन्द्र ध्यानदृष्टिपरोऽभवत्।
ध्यानेन दृष्ट्वास्तत्र पुनरामलकं तरुम् ॥ १६

तस्योपरि तु देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
उत्थाय च पुनः पश्येत्प्रतिमामेव केवलाम् ॥ १७

तत्पादं भूतले देवः प्रविवेश महातरुः।
ततस्त्वाराधयामास देवदेवेशमव्ययम् ॥ १८

गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं ब्रह्मा लोकपितामहः।
द्वादशभिः समभिस्तु संख्याभिः पूजितो हरिः ॥ १९

तस्मिन् क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ माहात्म्यं तस्य को वदेत्।
श्रीसह्यामलकग्रामे देवदेवेशमव्ययम् ॥ २०

आराध्य तीर्थं सम्प्राप्ता द्वादश प्रति चतुर्मुखम्।
तस्य पादतले तीर्थं निस्सृतं पश्चिमाभ्युखम् ॥ २१

तच्चक्रतीर्थं भवत्वुष्यं पापप्रणाशनम्।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२

बहुवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते।
शङ्खतीर्थे नरः स्नात्वा याजपेयफलं लभेत् ॥ २३

पौषे मासे तु पुष्याकं तद्यात्रादिवसं मुने।
ब्रह्मणः कुण्डिका पूर्वं गङ्गातोयप्रपूरिता ॥ २४

तस्यात्रौ पतिता ब्रह्मंस्तत्र तीर्थेऽशुभं हरेत्।
नाम्ना तत्कुण्डिकातीर्थं शिलागृहसमन्वितम् ॥ २५

तत्तीर्थे मनुजः स्नात्वा तदानीं सिद्धिमाप्नुयात्।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा यस्तत्र स्नाति मानवः ॥ २६

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।
कुण्डिकातीर्थादुत्तरे पिण्डस्थानाच्च दक्षिणे ॥ २७

समस्त उत्तम ब्राह्मणोंमें उत्कृष्ट श्रीब्रह्माजीने पूर्वकालमें
महान् फलोंसे युक्त उस महावृक्षको देखा था। विप्रेन्द्र।
उसे देखकर, यह क्या है—यह जाननेके लिये ब्रह्माजी
ध्यानमग्न हो गये। उन्होंने ध्यानमें उस स्थानपर महान्
औंक्तेके वृक्षको देखा और उसके ऊपर शङ्ख, चक्र
एवं गदा धारण करने वाले देवेश्वर भगवान् विष्णुको
विराजमान देखा। फिर उन्होंने जब ध्यानसे निवृत्त हो
खड़े होकर दृष्टिपात किया, तब वहाँ वृक्षके स्थानमें
केवल भगवान् विष्णुकी एक प्रतिमा दिखायी दी।
उसका आधारभूत वह दिव्य महावृक्ष भूतलमें धँस गया।
तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी गन्ध-पुष्प आदिसे
नित्य ही उन अविनाशी देवदेवेश्वरको आराधना करने
लगे। उस समय उनके द्वारा बारह और सात बार
भगवान्की पूजा सम्पन्न हुई ॥ १३—१९ ॥

मुनिश्रेष्ठ। उस आपलकक्षेत्रमें विराजमान भगवान्के
माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है। श्रीसह्यपर्वतस्थ
आमलक ग्राममें इस प्रकार अविनाशी देवेश्वर भगवान्की
आराधना करनेके पश्चात् ब्रह्माजीको वहाँ बारह तीर्थ
और प्राप्त हुए। भगवान्के चरणके नीचे पश्चिमाभ्युख
एक तीर्थ प्रकट हुआ। वह 'चक्रतीर्थ' के नामसे विख्यात
हुआ। वह पावन तीर्थ पापोंको नष्ट करनेवाला है। मनुष्य
चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है
और हजारों वर्षोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसके
बाद 'शङ्खतीर्थ' है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको
याजपेय यज्ञका फल मिलता है। मुने! पौष मासमें जब
सूर्य पुष्य नक्षत्रपर स्थित हों, उसी समय वहाँकी
यात्राका पर्व है। पूर्वकालमें एक समय सह्यपर्वतपर
गङ्गाजलसे भरा हुआ ब्रह्माजीका कमण्डलु गिर पड़ा था,
तबसे वह स्थान 'कुण्डिका' तीर्थके नामसे विख्यात हुआ।
वह तीर्थ सारे अशुषोंको हर लेता है। वहाँ एक शिलामय
गृह भी है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य तत्काल सिद्धि
प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य उस तीर्थमें तीन राततक
उपवास करके स्नान करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा
मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कुण्डिका-
तीर्थसे उत्तर और 'पिण्डस्थान' नामक तीर्थसे दक्षिण

ऋणमोचनतीर्थं हि तीर्थानां गुह्यमुत्तमम् ।
त्रिरात्रमुषितो यस्तु तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ २८

ऋणीस्त्रिभिरसौ ब्रह्मन् मुच्यते नात्र संशयः ।
श्राद्धं कृत्वा पितृभ्यश्च पिण्डस्थानेषु यो नरः ॥ २९

पितृनुद्दिश्य विधिवत्पिण्डाग्निर्वापयिष्यति ।
सुतृताः पितरो यान्ति पितृलोकं न संशयः ॥ ३०

पञ्चरात्रोपितस्नायी तीर्थे वै पापमोचने ।
सर्वपापक्षयं प्राप्य विष्णुलोके स मोदते ॥ ३१

तत्रैव महतीं धारां शिरसा यस्तु धारयेत् ।
सर्वकृतुफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते ॥ ३२

धनुःपाते महातीर्थे भक्त्या यः स्नानमाचरेत् ।
आयुर्भोगफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ३३

शरविन्दी नरः स्नात्वा शतकृतुपुरं व्रजेत् ।
वाराहतीर्थे विप्रेन्द्र सद्यो यः स्नानमाचरेत् ॥ ३४

अहोरात्रोपितो भूत्वा विष्णुलोके महीयते ।
आकाशगङ्गानाम्ना च सद्वात्रे तीर्थमुत्तमम् ॥ ३५

शिलातलात्ततो ब्रह्मत्रिगता श्वेतपुत्तिका ।
तस्यां भक्त्या तु यः स्नाति नरो द्विजवरोत्तमः ॥ ३६

सर्वकृतुफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
ब्रह्मत्रमलसद्वात्रैर्यद्यत्तोयविनिर्गमः ॥ ३७

तत्र तीर्थं विजानीहि स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते ।
सद्वात्रिं गतवात्रित्यं स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ३८

एतेषु तीर्थेषु नरो द्विजेन्द्र
पुण्येषु सद्वात्रिसमुद्भवेषु ।

दत्त्वा सुपुण्याणि हरिं स भक्त्या
विहाय पापं प्रविशेत्स विष्णुम् ॥ ३९

'ऋणमोचन' नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम और गुह्य है। ब्रह्मन्! वहाँ तीन राततक निवास करके जो स्नान करता है, वह निस्संदेह तौनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पिण्डस्थानमें श्राद्ध करके वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक पिण्डदान करेगा, उसके पितर पूर्ण तृप्त होकर अवश्य ही पितृलोकको प्राप्त होंगे ॥ २०—३० ॥

इसके बाद 'पाप-मोचन' तीर्थ है। उस तीर्थमें पाँच राततक निवास करते हुए जो नित्य स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके विष्णुलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहाँ एक बहुत बड़ी धारा बहती है। उसके जलको जो अपने सिरपर धारण करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ३१-३२ ॥

इसके बाद 'धनुःपात' नामक एक महान् तीर्थ है। उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह पूर्ण आयुका भोग करके अन्तमें स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। 'शरविन्दु' तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य मृत्युके बाद इन्द्रपुरीमें जाता है तथा जो सद्वात्रपर्वतपर 'वाराहतीर्थ' में स्नान करता और वहाँ एक दिन-रात निवास करता है, वह विष्णुलोकमें पूजित होता है। इसके बाद सद्वाके शिखरपर 'आकाशगङ्गा' नामक एक उत्तम तीर्थ है। वहाँकी शिलाओंके नीचेसे सफेद मिट्टी निकलती है। विप्रवर! उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ ३३—३६ ॥

ब्रह्मन्! उस निर्मल सद्वागिरिसे जहाँ-जहाँ जलके झरने गिरते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह तीर्थ समझना चाहिये। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नित्य ही सद्वापर्वतकी यात्रा करके वहाँ स्नान करता है, वह निष्पाप हो जाता है। द्विजेन्द्र! जो मनुष्य सद्वापर्वतके इन पावन तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको पुण्य चढ़ाता है, वह पापोंसे रहित हो भगवान् विष्णुमें ही लीन हो जाता है।

सकृत्तीर्थाद्रितोयेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः ॥ ४०

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः ।
एवं ते कथितं विप्र क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४१

श्रीसङ्ग्रामलकग्रामे तीर्थे स्नात्वा फलानि च ।
तीर्थानामपि यत्तीर्थं तत्तीर्थं द्विजसत्तम ।
देवदेवस्य पादस्य तत्तद्भुवि विनिस्सृतम् ॥ ४२

अभ्योयुगं तुरगमेधसहस्रतुल्यं
तच्छकतीर्थमिति वेदविदो वदन्ति ।
स्नानाच्च तत्र मनुजा न पुनर्भवन्ति
पादौ प्रणम्य शिरसा मधुसूदनस्य ॥ ४३

गङ्गाप्रयागगमनैमिषपुष्कराणि
पुण्यायुतानि कुरुजाङ्गलयामुनानि ।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापात्
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सद्यः ॥ ४४

अन्य सभी तीर्थोंके पर्वतोंसे बहनेवाले जलमें यथासम्भव एक बार स्नान कर लेना चाहिये, परंतु गङ्गामें बार-बार स्नान करे; क्योंकि गङ्गामें सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान् विष्णुमें सभी देवता वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी है और सभी धर्मोंमें जीवदया श्रेष्ठ है ॥ ३७—४० १/२ ॥

विप्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। साथ ही सङ्ग्राम और आमलक ग्रामके तीर्थोंमें स्नान करनेके फल भी बताये। द्विजश्रेष्ठ! वही उत्तम तीर्थ है, जो तीर्थोंका भी तीर्थ हो। यह आमलकग्राम तीर्थ देवदेव भगवान् विष्णुके चरण-तलसे प्रकट हुआ है, अतः यह सर्वोत्तम तीर्थ है। यहाँपर जो जल है, उसमें स्नान करना हजार अश्वमेध यज्ञ करनेके बराबर है। उसीको वेदवेत्ता पुरुष 'चक्रतीर्थ' कहते हैं। वहाँ स्नान करके भगवान् मधुसूदनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे मनुष्यका इस संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। गङ्गा, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर, कुरुजाङ्गलप्रदेश और यमुना-तटवर्ती तीर्थ—ये सभी पुण्यतीर्थ हैं। इन तीर्थोंके जलमें स्नान करनेपर ये कुछ समयके बाद पवित्र करते हैं; किंतु भगवान् विष्णुका चरणोदकरूप यह 'चक्रतीर्थ' तत्काल पवित्र कर देता है ॥ ४१—४४ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे तीर्थप्रसंगार्थं कथ्यहितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'तीर्थप्रसंग' विषयक अष्टाध्यायी अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

मानसतीर्थ, व्रत तथा नरसिंहपुराणका माहात्म्य

मूल उवाच

तीर्थानि कथितान्येवं भीमानि द्विजसत्तम ।
मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः ॥ १

सूतजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार अबतक मैंने भूतलके प्रसिद्ध तीर्थोंका वर्णन किया; किंतु इन तीर्थोंकी अपेक्षा मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले हैं।

मनोनिर्मलता तीर्थ रागादिभिरनाकुला ।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ २

गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा ।
स्वधर्माचरणं तीर्थं तीर्थमग्रेरुपासनम् ॥ ३

एतानि पुण्यतीर्थानि व्रतानि शृणु मेऽधुना ।
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासं च वै मुने ॥ ४

पूर्णमास्याममावास्यामेकभुक्तं समाचरेत् ।
तत्रैकभुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवाप्नुयात् ॥ ५

चतुर्ध्यां तु चतुर्दश्यां सप्तम्यां नक्तमाचरेत् ।
अष्टम्यां तु त्रयोदश्यां स प्राप्नोत्यभिवाञ्छितम् ॥ ६

उपवासो मुनिश्रेष्ठ एकादश्यां विधीयते ।
नरसिंहं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७

हस्तयुक्तेऽर्कदिग्बसे सौरनक्तं समाचरेत् ।
स्नात्वा र्कमध्ये विष्णुं च ध्यात्वा रोगात्प्रमुच्यते ॥ ८

आत्मनो द्विगुणां छायां यदा संतिष्ठते रविः ।
सौरनक्तं विजानीयात् नक्तं निशि भोजनम् ॥ ९

गुरुवारे त्रयोदश्यामपराह्णे जले ततः ।
तर्पयित्वा पितृन्देवान्पुत्रींश्च तिस्रस्तन्दुसैः ॥ १०

नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ११

यदागस्त्योदये प्राप्ते तदा समसु रात्रिषु ।
अर्घ्यं दद्यात् समभ्यर्च्य अगस्त्याय महामुने ॥ १२

वास्तवमें राग-द्वेषादिसे रहित मनकी स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है। सत्य, दया, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, माता-पिताकी सेवा, स्वधर्मपालन और अग्रिकी उपासना—ये परम उत्तम तीर्थ हैं। यह तो पावन तीर्थोंका वर्णन हुआ, अब व्रतोंका वर्णन सुनिये ॥ १-३½ ॥

मुने! दिन-रातमें एक बार भोजन करके रहना और विशेषतः रातमें भोजन न करना—यह व्रत है। पूर्णिमा और अमावास्याको एक ही बार भोजन करके रहना चाहिये। इन तिथियोंमें एक बार भोजन करके रहनेवाला मनुष्य पावन गतिकी प्राप्त करता है। जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और त्रयोदशीको रातमें उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ४-६ ॥

मुनिश्रेष्ठ! एकादशीको दिन-रात उपवास करनेका विधान है। उस दिन भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि हस्त नक्षत्रसे मुक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रिमें उपवास करके सौरनक्ष-व्रतका पावन करना चाहिये। उस दिन स्नानके पश्चात् सूर्यमण्डलमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है। जब सूर्य अपनी दुगुनी छायामें स्थित हों, उस दिन सौर नक्षत्रव्रतका समय है। उस समयसे लेकर राततक भोजन न करे ॥ ७-९ ॥

जो पुरुष बृहस्पतिवारको त्रयोदशी तिथि होनेपर अपराह्नकालमें, जलमें स्नान करके तिल और तण्डुलोंद्वारा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करता है तथा भगवान् नरसिंहका पूजन करके उपवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १०-११ ॥

महामुने! जब अगस्त्य तारेका उदय हो, उस समयसे लगातार सात रात्रियोंतक अगस्त्य-मुनिकी पूजा करके उन्हें अर्घ्य देना चाहिये।

शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्।
मन्त्रेणानेन वै दद्याच्छितपुष्पादिनाधिते ॥ १३

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४

आतापी भक्षितो येन चातापी च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः प्रीयतां मम ॥ १५

एवं तु दद्याद्यो सर्वमगस्त्ये वै दिशं प्रति।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १६

एवं ते कथितं सर्वं भरद्वाज महामुने।
पुराणं नारसिंहं च मुनीनां संनिधी मया ॥ १७

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥ १८

ब्रह्मणैव पुरा प्रोक्तं मरीच्यादिषु वै मुने।
तेभ्यश्च भृगुणा प्रोक्तं मार्कण्डेयाय वै ततः ॥ १९

मार्कण्डेयेन वै प्रोक्तं राज्ञो नागकुलस्य ह।
प्रसादान्नरसिंहस्य प्राप्तं व्यासेन धीमता ॥ २०

तत्प्रसादान्यया प्राप्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
पुराणं नरसिंहस्य मया च कथितं तव ॥ २१

मुनीनां संनिधी पुण्यं स्वस्ति तेऽस्तु वज्राम्बुहम्।
यः शृणोति शुचिर्भूत्वा पुराणं ह्येतदुत्तमम् ॥ २२

माघे मासि प्रयागे तु स स्नानफलमाप्नुयात्।
यो भक्त्या श्रावयेद्भक्तात्रित्यं नरहरेरिदम् ॥ २३

सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।
श्रुत्वैवं स्नातकैः सार्धं भरद्वाजो महामतिः ॥ २४

सूतमभ्यर्च्य तत्रैव स्थितवान् मुनयो गताः।

शङ्खमें श्वेत पुष्प और अक्षतसहित जल रखकर श्वेत पुष्प आदिसे पूजित हुए अगस्त्यजीके प्रति निम्नाङ्कित मन्त्र-वाक्य पढ़कर अर्घ्य निवेदन करे—'अग्नि और वायु देवतासे प्रकट हुए अगस्त्यजी! काश पुष्पके समान डज्जल खर्णवाले कुम्भज मुने! मित्र और वरुणके पुत्र भगवान् कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। जिन्होंने महान् अमुर आतापी और चातापीको भक्षण कर लिया और समुद्रको भी सोख डाला, वे अगस्त्यजी मुझपर प्रसन्न हों।' इस प्रकार कहकर जो पुरुष अगस्त्यकी दिशा (दक्षिण)-के प्रति अर्घ्य अर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो, दुस्तर मोहान्धकारसे पार हो जाता है ॥ १३—१६ ॥

महामुने! भरद्वाजजी! इस प्रकार मैंने मुनियोंके निकट यह पूरा 'नरसिंहपुराण' आपको सुनाया। इसमें मैंने सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—सभीका वर्णन किया है। मुने! इस पुराणको सर्वप्रथम ब्रह्मजीने मरीचि आदि मुनियोंके प्रति कहा था। उन मुनियोंमेंसे भृगुजीने मार्कण्डेयजीके प्रति इसे कहा और मार्कण्डेयजीने नागकुलोत्पन्न राजा सहस्रानीकको इसका श्रवण कराया। फिर भगवान् नरसिंहजी कृपासे इस पुराणको मुट्टिमन् श्रोत्र्यसजीने प्राप्त किया। उनकी अनुकम्पासे मैंने इस सर्वपापनाशक पवित्र पुराणका ज्ञान प्राप्त किया और इस समय मैंने यह नरसिंहपुराण इन मुनियोंके निकट आपसे कहा। अब आपका कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ ॥ १७—२१ ॥

जो मनुष्य पवित्र होकर इस उत्तम पुराणका श्रवण करता है, वह माघ मासमें प्रयागतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस नरसिंहपुराणको भगवान्के भक्तोंके प्रति नित्य सुनाता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २२—२३ ॥

इस प्रकार स्नातकोंके साथ इस पुराणको सुन महामति भरद्वाजजीने सूतजीका पूजन-सत्कार किया और स्वयं वहाँ रह गये। अन्य सब मुनि अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २४ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं नृसिंहात्मकम् ॥ २५

पठतां शृण्वतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति ।

प्रसन्ने देवदेवेशे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २६

प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्तिं यान्ति नरा इति ॥ २७

यह नरसिंहपुराण समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यमय है। जो इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन मनुष्योंपर भगवान् नरसिंह प्रसन्न होते हैं। देवदेवेश्वर नरसिंहके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है और जिनके पाप-बन्धन सर्वथा नष्ट हो गये हैं, वे मानव मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २५—२७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे भागसर्गोर्ध्वार्त्तं नाम सप्तविंशत्योऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भागसर्गोर्ध्व-वर्त' नामक सड़सत्तमोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अड़सठवाँ अध्याय

नरसिंहपुराणके पठन और श्रवणका फल

सूत उवाच

इत्येतत् सर्वमाख्यातं पुराणं नारसिंहकम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १

समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम् ।

ये पठन्त्यपि शृण्वन्ति श्लोकं श्लोकाधर्ममेव च ॥ २

न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ।

विष्णुर्वर्षितमिदं पुण्यं पुराणं सर्वकामदम् ॥ ३

भक्त्या च यदतामेतच्छृण्वतां च फलं शृणु ।

शतजन्मार्जितैः पापैः सद्य एव विमोचिताः ॥ ४

सहस्रकुलसंयुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम् ।

किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा तपोभिर्वा किमध्वरैः ॥ ५

अहन्यहनि गोविन्दं तत्परत्वेन शृण्वताम् ।

यः पठेत्यातरुत्थाय यदस्य श्लोकविंशतिम् ॥ ६

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने यह सम्पूर्ण नरसिंहपुराण कह सुनाया। यह सब पापोंको हरनेवाला और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। समस्त पुण्यों तथा सभी यज्ञोंका फल देनेवाला है। जो लोग इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका श्रवण अथवा पाठ करते हैं, उन्हें कभी भी पापोंसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुको अर्पण किया हुआ यह पावन पुराण समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। भरद्वाजजी! जो लोग भक्तिपूर्वक इस पुराणका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनिये। वे सौ जन्मोंके पापसे तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं तथा अपनी सहस्र पौड़ियोंके साथ ही परमपदको प्राप्त होते हैं। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्तसे गोविन्दगुणगान सुनते रहते हैं, उनको अनेक बार तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या और यज्ञानुष्ठान करनेसे क्या लेना है। जो प्रतिदिन सबेर उठकर इस पुराणके बीस श्लोकोंका पाठ करता है,

ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
एतत्पवित्रं पूज्यं च न खाच्यमकृतात्मनाम् ॥ ७

द्विजानां विष्णुभक्तानां श्राव्यमेतन्न संशयः ।
एतत्पुराणश्रवणमिहामुत्र सुखप्रदम् ॥ ८

वदतां भृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ।
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीश्वराः ॥ ९

श्रद्धयाश्रद्धया वापि श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
भारद्वाजमुखाः सर्वे कृतकृत्या द्विजोत्तमाः ॥ १०

सूतं वृष्टाः प्रपूज्याथ सर्वे स्वस्वाश्रमं ययुः ॥ ११

वह ज्योतिष्टोम यज्ञका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें
प्रतिष्ठित होता है ॥ १-६ १/२ ॥

यह पुराण परम पवित्र और आदरणीय है। इसे
अजितेन्द्रिय पुरुषोंको तो कभी नहीं सुनाना चाहिये,
परंतु विष्णुभक्त द्विजोंको निस्संदेह इसका श्रवण करना
चाहिये। इस पुराणका श्रवण इस लोक और परलोकमें
भी सुख देनेवाला है। यह वक्ताओं और श्रोताओंके
पापको उलकात्न गृह कर देता है। मुनीश्वराण! इस
विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। श्रद्धासे
हो या अश्रद्धासे, इस उत्तम पुराणका श्रवण करना ही
चाहिये। इस पुराणको सुनकर भारद्वाज आदि द्विजश्रेष्ठगण
कृतार्थ हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक सूतजीका समादर
किया। फिर सब लोग अपने-अपने आश्रमको चले
गये ॥ ७-११ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूतभारद्वाजदिसंवादे सर्वदुःखोपहर्त्रे श्रीनरसिंहपुराणस्य महात्म्यं समाप्तम् ॥ ६८ ॥

इस प्रकार सूत-भारद्वाजदि-संवादरूप श्रीनरसिंहपुराणमें इसके 'सर्वदुःखहारी महात्म्यका वर्णन' समाप्त

अक्षरान्तर्गते अभ्यास पूरा हुआ ॥ ६८ ॥



'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

1184	कृष्णाङ्क	1135	भगवत्प्राम-महिमा और
749	इंशराङ्क		प्रार्थना-अङ्क
635	शिवाङ्क	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क
41	शक्ति-अङ्क	517	गर्ग-संहिता-[भगवान् श्रीराधाकृष्णकी
616	योगाङ्क		दिव्य लीलाओंका वर्णन]
627	संत-अङ्क	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद
604	साधनाङ्क	1362	सं० अग्निपुराण
1104	भागवताङ्क	1432	वामनपुराण
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	657	श्रीगणेश-अङ्क
44	संक्षिप्त पञ्चपुराण	42	हनुमान-अङ्क—
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	1361	सं० श्रीवराहपुराण
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	791	सूर्याङ्क
43	नारी-अङ्क	584	सं० भविष्यपुराणाङ्क
659	उपनिषद्-अङ्क—	586	शिखोपासनाङ्क
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	628	रामभक्ति-अङ्क
279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	653	गोसेवा-अङ्क
40	भक्त-चरिताङ्क	1132	धर्मशास्त्राङ्क
573	बालक-अङ्क	1131	कूर्मपुराणाङ्क
1183	सं० नारदपुराण	448	भगवद्गीता-अङ्क
667	संतवाणी-अङ्क	1044	वेद-कथाङ्क
587	सत्कथा-अङ्क	1189	सं० गरुडपुराणाङ्क
636	तीर्थाङ्क	1377	आरोग्य-अङ्क
660	भक्ति-अङ्क	1379	नीतिसार-अङ्क
1133	सं० देवीभागवत-मोटा टाइप		(मासिक अङ्कोंके साथ)
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ अङ्क	1472	नीतिसार-अङ्क
789	सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप)		(बिना मासिक अङ्कोंके)
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	1467	भगवत्प्रेम-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर- २७३००५	गीताप्रेस- पौ० गीताप्रेस	☎ (०५५१) २३३४७२१, फैक्स २३३६९९७
	website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	
दिल्ली- ११०००६	२६०९, नयी सड़क	☎ (०११) २३२६९६७८, फैक्स २३२५९१४०
कोलकाता- ७००००७	गोविन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड,	☎ (०३३) २२६८६८९४, फैक्स (०३३) २२६८०२५१
	e-mail: gobindbhowan@gitapress.org;	
मुम्बई- ४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	
	मरीन लाइन्स स्टेशनके पास	☎ (०२२) २२०७२६३६
कानपुर- २०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	☎ (०५१२) २३५२३५१, फैक्स २३५२३५१
पटना- ८००००४	अशोकराजपथ, चण्डे अस्पतालके सामने	☎ (०६१२) २६६२८७९
राँची- ८३४००१	जे० जे० रोड, अपर बाजार	☎ (०६५१) २२१०६८५
सुरत- ३९५००१	वैभव एपार्टमेंट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड	☎ (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५
	e-mail: suratdukan@gitapress.org;	
इन्दौर- ४५२००१	जो० ५, हाँवर्धन, ४ जार एन टी मार्ग	☎ (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७
हैदराबाद- ५०००९६	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, मुल्तान बाजार	☎ (०४०) २४७५८३११
नागपुर- ४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारो रोड	☎ (०७९२) २७३४३५४
कटक- ७५३००९	भरतिषा टावर्स, बादाम बाड़ी	☎ (०६७१) २३३५४८१
रायपुर- ४९२००९	मितल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलधानी चौक	
	(छत्तीसगढ़)	☎ (०७७१) ५०३४४३०
वाराणसी- २२१००१	५९/९, नीचोबाग	☎ (०५४२) २३५३५५१
	e-mail: varanasidukan@gitapress.org	
हरिद्वार- २४९४०१	सच्चीमण्डी, मोतोबाजार	☎ (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश- २४९३०४	गीताभवन, गङ्गाधर, पौ० स्वर्णाश्रम	☎ (०१३५) २४३०१२२
	e-mail: gitabhawan@gitapress.org	२४३२७९२

स्टेशन-स्टाल

दिल्ली जंक्शन (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० ८-९); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बौकानेर (नं० १); गोरखपुर (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय जं० (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना जं० (मुख्य प्रवेशद्वार); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); समस्तीपुर (नं० २); हावड़ास्टेशन (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); सिपायलदा मेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); राऊरकेला (पुस्तक-ट्राली); राजगांगपुर (पुस्तक-ट्राली); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिकन्दराबाद [आ० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी जं० (मुसाफिरखाना), खड़गपुर (नं० १-२) एवं अन्तर्राष्ट्रीय बस-अड्डा, दिल्ली।

फुटकर-पुस्तक-दूकानें-

चूरू- ३३१००१	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क	☎ (०१५६२) २५२६७४
ऋषिकेश- २४९१९२	मुनिकी रेती,	
तिरुपति- ५१७५०४	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स	